विश्व हिंदी साहित्य
2025

विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस

विश्व हिंदी साहित्य
2025

प्रधान संपादक
डॉ. माधुरी रामधारी

संपादक
डॉ. शुभंकर मिश्र

विश्व हिंदी सचिवालय
इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स 73423
मॉरीशस

World Hindi Secretariat
Independance Street, Phoenix 73423
Mauritius

info@vishwahindi.com
वेबसाइट / Website : www.vishwahindi.com
फ़ोन / Phone : 00-230-6600800

ISSN - 1694-3465

वरिष्ठ सहायक संपादक
श्री प्रकाश वीर

सहायक संपादक
श्रीमती श्रद्धांजलि हजगैबी-बिहारी

संपादन सहयोग
श्री नीरज कुमार, सुश्री मीनाक्षी देवी दोमा

निवेदन

विश्व हिंदी साहित्य में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त मत रचनाकारों के हैं।
विश्व हिंदी सचिवालय और संपादक-मंडल का उनके विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पृष्ठ सज्जा
आर. एस. प्रिंट्स, भारत

कवर डिज़ाइन
डॉ. प्रकाश झगारू, मॉरीशस

स्टार पब्लिकेशंस प्रा. लि., 4/5 बी, आसफ़ अली रोड,
नई दिल्ली-110002 (भारत) द्वारा प्रकाशित

प्रधान संपादकीय

भारतेतर देशों में हिंदी में साहित्यिक कार्यक्रमों की शृंखला

एक शताब्दी से अधिक समय व्यतीत हो चुका है, जबसे भारतेतर देशों में हिंदी भाषा में कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध, यात्रावृत्तांत, संस्मरण, व्यंग्य आदि अनेक विधाओं में साहित्य-सृजन हो रहा है। कभी पुस्तक के रूप में, तो कभी पत्र-पत्रिकाओं में या ऑनलाइन मंचों पर हिंदी की रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। परंतु, प्रकाशन से हिंदी-लेखन को उतना बढ़ावा नहीं मिलता, जितना कि पाठकों का रचनाओं से जुड़ाव होने पर प्राप्त होता है। भारतेतर देशों में हिंदी साहित्य के पाठकों की संख्या अपेक्षाकृत कम रही है। हिंदी-लेखन को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से इन देशों में हिंदी में साहित्यिक कार्यक्रम भिन्न स्तरों पर आयोजित होते रहे हैं। इन गतिविधियों में समकालीन प्रभावशाली कवियों एवं लेखकों को अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करने और साहित्य-प्रेमियों को इनका लाभ उठाने के अवसर प्राप्त होते रहे हैं।

विश्व भर में हिंदी प्रचारिणी संस्थाएँ हिंदी की साहित्यिक गतिविधियों का विकास करने में प्रयत्नशील रही हैं। मॉरीशस में स्थित विश्व हिंदी सचिवालय अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कवि-सम्मेलन की विधिवत् व्यवस्था करके नवीन रचनाओं का पाठ करने एवं प्रकाशित कृतियों पर सार्थक परिचर्चा करने का वैश्विक मंच प्रदान कर रहा है। पिछले कई वर्षों से विश्व हिंदी सचिवालय के सभागार में नव प्रकाशित पुस्तकों के लोकार्पण एवं पुस्तक-प्रदर्शिनी के साथ-साथ साहित्य-सृजन की कार्यशालाएँ आयोजित होती रही हैं। आभासी मंच पर 'हिंदी साहित्य के प्रति अभिरुचि' विषयक कार्यक्रम द्वारा युवा पीढ़ी को साहित्यिक रचनाओं के पठन की ओर प्रवृत्त करने में विश्व हिंदी सचिवालय कटिबद्ध है।

मॉरीशस में महात्मा गांधी संस्थान, हिंदी संगठन, हिंदी प्रचारिणी सभा, हिंदी लेखक संघ आदि संस्थाएँ समय-समय पर काव्य-पाठ, कहानी-कथन, पुस्तक-चर्चा आदि गतिविधियों का आयोजन करके देश में हिंदी साहित्य का वातावरण सँवारने में योगदान देती रही हैं। इसी तरह सूरीनाम में 'सूरीनाम हिंदी परिषद्', 'माता गौरी संस्थान', 'साहित्य मित्र संस्था', 'विद्यानिवास साहित्य संस्था' और गयाना में 'भारतीय सांस्कृतिक केंद्र', 'हिंदी प्रचार सभा', 'नेशनल सेंटर फ़ॉर एजुकेशनल रिसर्च' आदि केंद्र अथवा सभा या संस्था हिंदी में साहित्यिक सक्रियता सुनिश्चित करने में प्रयासरत रही हैं। फ़िजी में भी हिंदी साहित्य की गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं। डॉ. विमलेश कांति वर्मा लिखते हैं -

"हिंदी प्रेमी लेखकों ने हिंदी समिति तथा हिंदी केंद्र बनाए हैं, जो वहाँ के प्रतिष्ठित लेखकों के निर्देशन में गोष्ठियाँ, सभाएँ तथा प्रतियोगिताएँ आयोजित करते हैं, जिनमें हिंदी कार्यक्रम होते हैं, कवि और लेखक अपनी रचनाएँ सुनाते हैं।"

वास्तव में, मॉरीशस, फ़िजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद आदि प्रवासी देशों में साहित्यिक कार्यक्रमों का बीजारोपण तभी हो चुका था, जब गिरमिटिया मज़दूर अपनी दिन-भर की थकान और दुख को भुलाने के लिए संध्या के समय एक-साथ मिलकर बैठते

थे और धर्म-ग्रंथों से कथा बाँचते थे, महापुरुषों के जीवन की कहानियाँ सुनाते थे और दोहे, चौपाई, भजन, गीत, लोकगीत आदि गाते थे। इस प्रकार की अनौपचारिक साहित्यिक सभा का सुंदर निरूपण श्रीमती भावना सक्सेना अपने शोध-लेख 'सूरीनाम में हिंदी : वर्तमान स्थिति' में करती हैं –

"सूरीनाम में हिंदी साहित्य की रचना कब से प्रारंभ हुई, यह निश्चित रूप से कह पाना कठिन है। सन् 1873 में जब भारतीय श्रमिकों को यहाँ लाया गया, तब उनके पास लिखने-पढ़ने की सुविधा नहीं थी। दिन भर के कठिन परिश्रम के पश्चात् वे संध्या को आपस में बैठते व किस्से-कहानियाँ कहते, गीत गाते, बच्चों को लोरियाँ सुनाते तथा महाभारत, रामायण, पंचतंत्र, हितोपदेश, बीरबल-बादशाह की कहानियाँ सुनाते, महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानंद और महर्षि दयानंद के विचारों पर चर्चा करते। इस तरह मौखिक साहित्य जीवित रहा।"

यूनिवर्सिटी ऑफ़ दरबन, वेस्टविल्ल के पूर्व व्याख्याता प्रो. रामभजन सीताराम दक्षिण अफ़्रीका में भारतीय आप्रवासियों द्वारा अपनी साहित्यिक विरासत को संरक्षित करने तथा साहित्यिक पिपासा शांत करने के प्रयासों का मनोरम वर्णन करते हैं –

"दक्षिण अफ़्रीका के हिंदीभाषी भारतीय मूल के लोग भर्तृहरि के 'साहित्य संगीत कला विहीन' वाली कोटि में कदापि नहीं हैं। ... जिस समय भारत में आधुनिक हिंदी साहित्य का सृजन हो रहा था, दक्षिण अफ़्रीका के हिंदीभाषी लोककथाओं और कहानियों के द्वारा अपना मनोरंजन करते थे तथा रामचरितमानस के पठन-पाठन और चर्चा से आध्यात्मिक परितोष और भाषा ज्ञान प्राप्त करते थे। उनके लिए भारत के ग्रामीण अंचलों से उपलब्ध मौखिक या वाचिक परंपरा ही साहित्यिक पिपासा का शमन करती थी।"

समय की गति के साथ प्रवासी देशों में हिंदी के पठन-पाठन का विकास हुआ और हिंदी साहित्य के नए रूप उभरने लगे। शनैःशनैः हिंदी में साहित्यिक गतिविधियाँ औपचारिक रूप से आयोजित होने लगीं, जिनके माध्यम से हिंदी के प्रति लगाव बढ़ा और हिंदी समुदाय में एकता की भावना प्रबल हुई।

यद्यपि हिंदी के गढ़ माने जाने वाले प्रवासी देशों में साहित्यिक कार्यक्रमों के आयोजन की दीर्घ शृंखला रही है, तथापि जिन देशों में व्यापार या व्यवसाय करने के लक्ष्य से भारतीय मूल के लोग भारी संख्या में निवास कर रहे हैं, वहाँ भी हिंदी साहित्य की गतिविधियाँ अक्सर दृष्टिगोचर होती हैं। भारतवंशियों के हृदय में साहित्य के प्रति गहरी दिलचस्पी होने के कारण विदेशी भूमि में बस जाने के बावजूद भी उनका साहित्य से जुड़ना और दूसरों को भी जोड़ना स्वाभाविक-सा प्रतीत होता है। वेब पर हिंदी को लोकप्रिय बनाने वाली 'अभिव्यक्ति' और 'अनुभूति' जाल-पत्रिकाओं की संपादिका श्रीमती पूर्णिमा वर्मन संयुक्त अरब अमीरात में निवास करने लगी, तो साहित्य के प्रति अपने सच्चे अनुराग के कारण वे अपने घर में साहित्य-प्रेमियों को आमंत्रित करने लगीं। उनके शब्दों में –

"हर शुक्रवार को 'शुक्रवार चौपाल' के नाम से मेरे घर पर एक साप्ताहिक गोष्ठी होती है, जिसमें दुबई, अजमान और शारजाह नगरों के अनेक हिंदी रंगकर्मी और साहित्य-प्रेमी सम्मिलित होते हैं। इस गोष्ठी में नियमित रूप से किसी साहित्यिक रचना या नाटक का पाठ होता है। साहित्य या रंगकर्म से संबंधित कार्यशालाएँ होती हैं और नाटकों के रिहर्सल होते हैं। भारत से आए साहित्यकारों या रंगकर्मियों से मुलाकात भी होती है।"

मनुष्य की साहित्यिक वृत्ति के संबंध में डॉ. वेदप्रकाश 'वटुक' का कथन है –

"किसी भी भाषा के बोलनेवाले लोग जहाँ भी जाते हैं, उनमें से जो साहित्यिक प्रवृत्ति के लोग हैं, वे परस्पर जुड़ते ही हैं। हिंदी भी इसका अपवाद नहीं है। मैं जब सन् 1954 से 1958 तक लंदन में था, तब लंदन हिंदी परिषद् के मंत्री के रूप में

साहित्यिक आयोजन करता था। यूँ तो परीषद् की साप्ताहिक बैठक हर शुक्रवार की शाम साढ़े सात बजे हिंदू भवन में होती थी, जिसमें लेख, कहानियाँ, कविताएँ पढ़ी जाती थीं, आलोचना-परिचर्चा के साथ, किंतु विशेष मनीषियों के आगमन पर भी अतिरिक्त सभाओं का आयोजन होता था। इन्हीं सभाओं में मुझे जैनेन्द्र जी, अज्ञेय जी, दिनकर जी, सागर निजामी, कृष्ण चंदर प्रभृति जैसे अनेक साहित्यकारों का अभिनंदन करने का सौभाग्य मिला।"

वस्तुत: लंदन में ही नहीं, अपितु इंग्लैंड के कई शहरों में साहित्यिक कार्यक्रम होते रहे हैं। इंग्लैंड में कवि-सम्मेलनों की लंबी परंपरा पर प्रकाश डालते हुए श्री राकेश दुबे लिखते हैं –

"प्रतिवर्ष की ही भाँति सन् 2007 में भी हिंदी दिवस के अवसर पर कवि-सम्मेलन आयोजित किए गए : यू.के. वूल्वरहैम्पटन, 'गीतांजलि बहुभाषी साहित्यिक समुदाय', नॉटिंघम, 'भारतीय भाषा संगम' यॉर्क, 'हिंदी भाषा समिति', मानचेस्टर, 'चौपाल', लेस्टर आदि में। ये हिंदी कवि-सम्मेलन पिछले 14 वर्षों से लगातार आयोजित किए जा रहे हैं।"

इंग्लैंड की ही भाँति अमेरिका के विविध प्रांतों में कवि-सम्मेलन निरंतर हो रहे हैं। प्रयोगवादी कवि अज्ञेय कैलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले में जब अतिथि प्राध्यापक के रूप में रहे, तब वहाँ कवियों के मिलन का विशेष वातारण उत्पन्न हुआ। हिंदी के नामी साहित्यकार डॉ. प्रभाकर माचवे भी अमेरिका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय में कार्यरत हुए, तो साहित्य पर गंभीर चर्चा के कार्यक्रम के अलावा कवि-सम्मेलन होने लगे। अमेरिका में 'भारतीय साहित्य संगम', 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति', 'विश्व हिंदी समिति' आदि संगठनों द्वारा सूरदास, कबीरदास, निराला जैसे विश्वविख्यात कवियों की जयंती पर कवि-सम्मेलनों का आयोजन हो रहा है।

अमेरिका के उत्तर में स्थित कनाडा में भी शानदार कवि-सम्मेलन 'भारतीय विद्या संस्थान', 'हिंदी साहित्य सभा', 'हिंदी प्रचारिणी सभा', 'हिंदी परिषद्' और 'हिंदी लिटरेरी सोसाइटी ऑफ़ कनाडा' द्वारा योजनाबद्ध तरीके से आयोजित होते हैं। सन् 1982 में राष्ट्रीय स्तर पर पहला कवि-सम्मेलन 'हिंदी परिषद्', टोरंटो ने किया था और पहला अंतरराष्ट्रीय कवि-सम्मेलन 'हिंदी लिटरेरी सोसाइटी ऑफ़ कनाडा' ने वैन्कूवर के ब्रिटिश कोलम्बिया विश्वविद्यालय में सम्पन्न किया था। इस संबंध में आचार्य श्रीनाथ प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं –

"तब से एच.एल.एस.सी. (हिंदी लिटरेरी सोसाइटी ऑफ़ कनाडा) ने कनाडा के अनेक शहरों तथा ग्वेल्फ़, हैमिल्टन, रेजिना, मॉट्रीयल, क्यूबेक, विनीपेग, कैल्गरी, टोरंटो तथा ओटावा इत्यादि शहरों में ऐसे सम्मेलनों का आयोजन किया था।"

पुस्तक-चर्चा, रचना-पाठ, साहित्यिक कार्यशाला, कवि-सम्मेलन, लेखन-प्रतियोगिता, पुस्तकों का विमोचन व प्रदर्शनी, जैसे कार्यक्रमों के अतिरिक्त हिंदी साहित्यकारों से भेंट करने और उनके साथ वार्तालाप करने के कार्यक्रम भी होते रहे हैं। सुश्री अपर्णा क्षीरसागर फ़्रांस का उदाहरण देते हुए कहती हैं –

"साहित्यकारों से भेंट करनी हो, तो आपको पेरिस में ही आना पड़ेगा। कुछ साल पहले कृष्ण बलदेव वैद, निर्मल वर्मा जैसे हिंदी साहित्य के अधिकारियों को पेरिस में निमंत्रित किया गया था। इनालको के हिंदी विभाग की प्रमुख, श्रीमती आनी मोंतो ने ...दुभाषिया बनकर फ़्रांसीसी लोगों और इन लेखकों को आपस में बातचीत करने में सहायता भी की।"

हिंदी भाषा और विदेशी भाषा अर्थात् दो भाषाओं के साहित्य पर एक साथ चर्चा करने के अनोखे कार्यक्रम अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के विकास को नया आयाम प्रदान करता है। विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा प्रकाशित 'विश्व हिंदी पत्रिका' के प्रथम अंक में श्री अमित जोशी लिखते हैं –

"सन् 2010 में नॉर्वे में साहित्यिक सांस्कृतिक संस्था 'सिल्क' एक हिंदी/नॉर्वेजियन सेमिनार का आयोजन कर रही है,

जिसका शीर्षक है 'विश्व में महिलाओं की स्थिति और लेखकों का दायित्व'। इस अंतरराष्ट्रीय सेमीनार में भारतीय व विदेशी साहित्यकार भाग लेंगे। हिंदी के इस अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य यह भी है कि नॉर्वे में हिंदी का प्रचार-प्रसार बढ़े।"

भारतेतर देशों में हिंदी की साहित्यिक गतिविधियों की परंपरा लंबे समय से चलती आ रही है। इन कार्यक्रमों में समकालीन हिंदी-लेखन की वास्तविकता सहज प्रकट होती है, साहित्यिक विमर्श होता है, प्रतिभागियों को साहित्य-पठन की प्रेरणा मिलती है, नई पीढ़ी से साहित्य का जुड़ाव होता है और रचनाकारों को पाठकों की प्रतिक्रिया प्राप्त करके अपने लेखन को बेहतर बनाने तथा साहित्य-सृजन को जारी रखने का प्रोत्साहन मिलता है। साहित्यिक कार्यक्रमों में यदि नियमितता बनी रहेगी, तो हिंदी साहित्य जीवंत, प्रासंगिक और समृद्ध होगा तथा उसका प्रभाव बढ़ेगा।

डॉ. माधुरी रामधारी
महासचिव

संपादकीय

स्वदेशी ज्ञान परंपराओं से हो हमारा संवाद

समावेशी और बहुविषयी शिक्षा सांस्कृतिक निरंतरता के सुदृढ़ीकरण तथा सतत विकास को आगे बढ़ाने में केंद्रीय महत्त्व रखती है। शिक्षा के क्षेत्र में आधुनिक पाठ्यक्रमों में स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों का समावेशन न केवल संज्ञानात्मक क्षमताओं और शिक्षार्थियों की संदर्भगत समझ को समृद्ध करता है, बल्कि यह भी सुनिश्चित करता है कि पारंपरिक बुद्धिमत्ता समकालीन आवश्यकताओं में कैसे अपना सार्थक योगदान दे सके। भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तथा जी20 जैसे वैश्विक मंचों पर होने वाले विमर्श इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि हमारे समग्र एवं समावेशी प्रगति के लिए स्वदेशी ज्ञान परंपराओं से सीखना अनिवार्य है।

दक्षिण अफ़्रीका के जोहानेसबर्ग में 22-23 नवंबर 2025 को आयोजित जी20 शिखर सम्मेलन में भारत के माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा प्रस्तुत दृष्टिकोण ने यह रेखांकित किया कि पारंपरिक ज्ञान, कौशल विकास और मानव सुरक्षा को एक साथ जोड़कर ही समावेशी वैश्विक विकास की परिकल्पना साकार की जा सकती है। वैश्विक पारंपरिक ज्ञान भंडार के विकास के लिए ये पहल बखूबी दर्शाते हैं कि स्वदेशी बुद्धिमत्ता अब सतत विकास का एक प्रभावी साधन है। पारंपरिक ज्ञान भंडार का उद्देश्य सदियों पुराने चिकित्सा और वैज्ञानिक ज्ञान का संरक्षण और प्रसार करना है। ये प्रयास मानव-केंद्रित विकास के लिए विरासत, अवसर और सुरक्षा को आधार स्तंभ के रूप में स्थापित करते हैं।

स्वदेशी ज्ञान प्रणालियाँ मूलतः समुदाय-आधारित ज्ञान हैं, जो प्रकृति के साथ दीर्घकालिक अंतःक्रिया से विकसित हुई हैं और जिनका निर्माण अवलोकन, अनुभव तथा मौखिक परंपरा के माध्यम से हुआ है। भारत में यह अवधारणा 'भारतीय ज्ञान परंपरा' (आईकेएस) के रूप में एक सुविकसित बौद्धिक परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है, जो शास्त्रीय ग्रंथों, मौखिक परंपराओं और लिखित स्रोतों के माध्यम से संरक्षित रही है। दर्शन, गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, वास्तुकला, कला, पारिस्थितिकी और भाषाविज्ञान जैसे अनेक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान का व्यापक विस्तार भारत को वैश्विक स्वदेशी ज्ञान परिदृश्य में एक विशिष्ट स्थान प्रदान करता है।

भारत का स्वदेशी ज्ञान ढाँचा पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण, अध्ययन और उसके शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य, जैव-विविधता प्रबंधन तथा सांस्कृतिक प्रशासन जैसे समकालीन क्षेत्रों में अनुप्रयोग को प्रोत्साहित करता है। कतिपय अंतरराष्ट्रीय अनुभव भी इस दिशा में हमारी शिक्षा के लिए मार्गदर्शक हैं। भारत का दृष्टिकोण राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के मार्गदर्शन में शास्त्रीय ग्रंथों से प्रेरणा लेकर आधुनिक चुनौतियों के समाधान की ओर उन्मुख है। शिक्षा का यह मॉडल नैतिकता, सातत्य और सांस्कृतिक जड़ों के महत्त्व को मज़बूत करता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 बहुविषयी-बहुभाषी मॉडल का समर्थन करती है, जिसमें स्वदेशी ज्ञान को आधुनिक शिक्षा के साथ एकीकृत कर रचनात्मकता, समस्या-समाधान और समालोचनात्मक चिंतन को सुदृढ़ किया जाता है। अनेक शोधों के निष्कर्ष यह भी प्रमाणित करते हैं कि कम-से-कम पाँचवीं कक्षा तक मातृभाषा में शिक्षा से समझ और संज्ञानात्मक विकास बेहतर होता है तथा बहुभाषिक क्षमताओं को भी बल मिलता है। साथ ही, यह संप्रेषण, सहयोग, डिजिटल साक्षरता और अनुकूलनशीलता जैसे इक्कीसवीं सदी के अपेक्षित कौशलों पर भी बल देती है, जो आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान और स्वदेशी ज्ञान - इन दोनों में निहित परस्पर संबद्ध चिंतन से मेल खाते हैं।

आधुनिक विज्ञान व्यवस्थित अवलोकन और प्रयोग पर आधारित है, जबकि स्वदेशी ज्ञान प्रणालियाँ जीवनानुभव, अनुभवजन्य अंतर्दृष्टि और दार्शनिक विवेचन से विकसित हुई हैं। दोनों का समन्वय शिक्षा को अधिक समग्र और व्यावहारिक बनाता है। ऐतिहासिक रूप से भारतीय ज्ञान परंपरा बहुविषयी अध्ययन को अपनाती रही है। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला और वल्लभी जैसे प्राचीन विश्वविद्यालयों में विविध क्षेत्रों के विद्वान अध्ययन और शोध के लिए एकत्र होते थे। चरक, सुश्रुत, आर्यभट, भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त, पाणिनि और पतंजलि जैसे आचार्यों ने चिकित्सा, गणित, खगोल, व्याकरण और दर्शन सहित अनेक विषयों को दिशा दी। इन परंपराओं का आधुनिक शिक्षा में समावेशन निस्संदेह हमारे विश्लेषणात्मक सोच, नैतिक बोध और समग्र दृष्टि को प्रोत्साहित करता है।

भारतीय प्रसंग में ध्यातव्य है कि डिजिटलीकरण के क्षेत्र में पारंपरिक ज्ञान डिजिटल लाइब्रेरी (टीकेडीएल) जैसी पहल ने आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध और योग से संबंधित चार लाख पचास हज़ार से अधिक सूत्रों का दस्तावेज़ीकरण कर बौद्धिक संपदा संरक्षण में भारत की स्थिति को सुदृढ़ किया है। एआईसीटीई के अंतर्गत 'आईकेएस' प्रभाग बत्तीस से अधिक केंद्रों के माध्यम से पाठ्यक्रम विकास, अनुसंधान और नवाचार को बढ़ावा दे रहा है। विद्यार्थी 'आईकेएस' में माइनर पाठ्यक्रम कर सकते हैं और विश्वविद्यालयों को पाठ्यपुस्तकों तथा डिजिटल सामग्री के विकास में मार्गदर्शन मिलता है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) की 'अस्मिता' परियोजना भारतीय भाषाओं में बाईस हज़ार उच्च गुणवत्ता वाली पुस्तकों के निर्माण के लक्ष्य के साथ है, जबकि संस्कृति मंत्रालय का 'ज्ञान भारतम्' मिशन भारत की पांडुलिपियों और बौद्धिक विरासत का एकीकृत डिजिटल भंडार (डिजिटल रिपॉज़िटरी) विकसित कर रहा है।

नीति के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए व्यावहारिक स्तर पर एक ठोस रणनीति आवश्यक हैं। विद्यालय जीव-विज्ञान को आयुर्वेद से, अर्थशास्त्र को ग्रामीण ज्ञान प्रणालियों से और मनोविज्ञान को योगिक अभ्यासों से जोड़ सकते हैं। शिक्षक प्रशिक्षण में पारंपरिक ज्ञान, आधुनिक शिक्षाशास्त्र और डिजिटल उपकरणों का संतुलित समावेश आवश्यक है। विश्वविद्यालय अनुसंधान, पाठ्यक्रम विकास और सामुदायिक सहभागिता के लिए विशेष केंद्र स्थापित कर सकते हैं। फिर भी हमें यह स्वीकार करना होगा कि स्वदेशी ज्ञान प्रायः मौखिक परंपरा में संरक्षित रहा है और समान रूप से संहिताबद्ध नहीं है। अतः इनके उचित समावेशन के लिए नीतिगत दृष्टि से वैचारिक स्पष्टता, मातृभाषा में शिक्षण और ऐसे मूल्यांकन ढाँचे आवश्यक हैं, जो दोनों ज्ञान प्रणालियों की गरिमा-गुणता को बनाए रखें और पूरी तरह से समावेशी बनकर कदम-से-कदम मिलाकर आगे बढ़ें। इस दिशा में, समुदाय-आधारित दस्तावेज़ीकरण, स्थानीय ज्ञान-धारकों की सहभागिता तथा बहु-स्तरीय पाठ्य संरचना के माध्यम से मौखिक, स्थानीय और विविध ज्ञान को क्रमिक रूप से मानकीकृत पाठ्यक्रमों से जोड़ना प्रासंगिक हो सकता है, ताकि ज्ञान की प्रामाणिकता सुरक्षित रहे और साथ ही, अकादमिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी संभव हो सके।

इस दिशा में 'डिजिटल असमानता' एक बड़ी चुनौती बन सकती है। मोबाइल नेटवर्क व्यापक होने के बावजूद कतिपय ग्रामीण क्षेत्रों में घरेलू इंटरनेट और व्यक्तिगत कंप्यूटर की उपलब्धता सीमित है, जिससे ऑनलाइन शिक्षण और ज्ञान संसाधनों तक समान पहुँच बाधित होती है। इन अंतरालों को पाटे बिना हमारे समावेशी शिक्षा का लक्ष्य अधूरा ही रहेगा। इसके बावजूद,

भारत के लगभग बारह विश्वविद्यालयों में अड़तीस से अधिक औपचारिक 'आईकेएस' पाठ्यक्रम संचालित हो रहे हैं और लगभग आठ हज़ार संस्थान अपने पाठ्यक्रम में स्वदेशी ज्ञान को सम्मिलित कर चुके हैं। जयपुर का राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान यह दर्शाता है कि पारंपरिक ज्ञान किस प्रकार व्यावसायिक कौशल और सतत विकास में योगदान दे सकता है।

वैश्विक अनुभव बताते हैं कि जब स्वदेशी ज्ञान को आधुनिक पाठ्यक्रमों के साथ जोड़ा जाता है, तो विद्यार्थियों की निरंतरता, सांस्कृतिक पहचान और पारिस्थितिक चेतना में वृद्धि होती है। तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रमों में ऐसे समावेशन से अनुकूलनशीलता और समस्या-समाधान की क्षमताएँ भी सुदृढ़ होती हैं। इस दृष्टि से राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 वैश्विक स्तर पर एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत कर रही है, जो आधुनिक शिक्षा के साथ स्वदेशी ज्ञान को औपचारिक मान्यता देती है।

स्वदेशी ज्ञान का समावेशीकरण रोज़गार के अवसरों को भी बढ़ाता है। इससे उन्नत व सतत कृषि, औषधीय पौधों पर आधारित उद्योग, पर्यावरण प्रबंधन, सामुदायिक विकास और सांस्कृतिक उद्योगों के क्षेत्र में कई नए अवसर बनते हैं। साथ ही, टीमवर्क, अनुकूलनशीलता और रचनात्मकता जैसे गुण विकसित होते हैं, जो आज के रोज़गार के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। इसके लिए अकादमिक जगत, समुदायों और उद्योग के बीच सक्रिय सहयोग अनिवार्य है, ताकि शिक्षा और रोज़गार के बीच की दूरी कम की जा सके।

स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों की पूर्ण क्षमता को साकार करने के लिए संस्थानों को क्षमता निर्माण, शिक्षकों के सतत प्रशिक्षण और ऐसे पाठ्यक्रमों के विकास पर ध्यान देना होगा, जो लचीलापन और अकादमिक गुणवत्ता के बीच संतुलन स्थापित करें। डिजिटल भंडारों (डिजिटल रिपॉज़िटरीज़) का अधिकाधिक विस्तार कर बौद्धिक संपदा की रक्षा और अनुसंधान को प्रोत्साहन देना समय की माँग है। साथ ही, पारंपरिक ज्ञान के ज्ञाताओं की भूमिका को भी इन प्रयासों के केंद्र में रखना उतना ही महत्त्वपूर्ण है, ताकि ज्ञान का उपयोग प्रामाणिक रूप से हो सके। समेकित ज्ञान प्रणाली के निर्माण से समालोचनात्मक चिंतन, सांस्कृतिक जागरूकता, पारिस्थितिक संवेदनशीलता और वैश्विक प्रासंगिकता को साथ लेकर आगे बढ़ा जा सकेगा। यह मार्ग न केवल भारत, अपितु वैश्विक बौद्धिक विरासत को भी समकालीन शिक्षा तथा सतत विकास के केंद्र में बनाए रखने का एक सशक्त माध्यम बन सकेगा।

प्रसंगतः साहित्य को भी वैश्विक समाज के इन प्रयासों और सरोकारों के प्रति सजग होने तथा समावेशी दृष्टि अपनाने की आवश्यकता है, ताकि इनके माध्यम से साहित्य का पाठक वर्ग आशातीत रूप से लाभान्वित हो सके और वैश्विक स्तर पर बहुभाषी तथा समावेशी समाज के निर्माण की दिशा में हो रहे इन भगीरथ प्रयत्नों को अपेक्षाकृत और अधिक बल मिल सके। अस्तु, शुभं भूयात्!

इन्हीं मंगलकामनाओं के संग!

भवदीय

डॉ. शुभंकर मिश्र

उपमहासचिव

अनुक्रम

लघुकथा

1.	भारत	बागवां	राधेश्याम भारतीय	1
2.	भारत	सुख	सुभद्रा प्रसाद	1
3.	भारत	असफलताओं का कैदी	डॉ. मोनिका राज	2
4.	भारत	रोशनी	डॉ. यशोधरा भटनागर	3
5.	भारत	हिंदी माध्यम शिक्षा	डॉ. विजयानन्द	3
6.	भारत	निर्णय से पहले	पवित्रा अग्रवाल	4
7.	भारत	छोटा-सा सवाल	श्री देवेन्द्रराज सुथार	4
8.	भारत	चार शब्दों ने	राम मूरत 'राही'	5
9.	भारत	किन्नर की जात	डॉ. वर्षा महेश	5
10.	भारत	अपना परिवार	नमिता सिंह 'आराधना'	6
11.	भारत	आज्ञा की अवहेलना	मीरा जैन	6
12.	भारत	परख	श्री सन्तोष सुपेकर	7
13.	भारत	पर उपदेश कुशल बहुतेरे	वर्षा गर्ग	7
14.	सिंगापुर	बँटवारा	आराधना झा श्रीवास्तव	8
15.	कनाडा	रंगों में भीगी तकदीर	शिखा पोरवाल मनस्विनी	8
16.	सूरीनाम	सूरीनामी बारा और डच ओलीबोलन	अश्विनी केगांवकर	9
17.	ऑस्ट्रेलिया	मूक दर्शक	हरिहर झा	9
18.	यू.ए.ई.	पर उपदेश कुशल	मीरा ठाकुर	10
19.	थाईलैंड	विदेश में दीवाली	शिखा रस्तोगी	10

कहानी

20.	भारत	किधर है सत्य	डॉ. अमित रंजन	11
21.	भारत	प्लेटोनिक लव की परिणति	महेश चंद्र द्विवेदी	17
22.	भारत	प्रार्थना	चंद्रेश कुमार	20
23.	भारत	कबीर	पुष्पेश कुमार पुष्प	22
24.	भारत	दहलीज़ पर अम्मा	रतन चंद 'रत्नेश'	25

25.	कनाडा	गूलर का फूल	डॉ. हंसा दीप	27
26.	नीदरलैंड	जिप्सी फूल	डॉ. ऋतु शर्मा ननंन पाँडे	31
27.	मॉरीशस	ले मोर्न शिखर पर मारविन	प्रो. राज शेखर	34
28.	स्पेन	मसाज के नशे में	पूजा अनिल	37

कविता

29.	भारत	मिट्टी सिहर रही है	प्रतिभा चौहान	40
30.	भारत	अहमदाबाद विमान हादसे में दिवंगत आत्माओं को काव्यात्मक श्रद्धांजलि	डॉ. शैलेश शुक्ला	41
31.	भारत	कर्मनाशा की हार	अभिनव अरुण	42
32.	भारत	किताबें	सुश्री राजलक्ष्मी जायसवाल	42
33.	भारत	विकल्प	डॉ. जगदीश पन्त 'कुमुद'	43
34.	भारत	समय का दरवाज़ा	पवन शर्मा	43
35.	भारत	घर-घर में रावण	डॉ. प्रियंका सौरभ	44
36.	भारत	उम्मीद	श्री रमाकांत	45
37.	भारत	कहो मुनिया, कटोरे में क्या लाई हो?	वेद प्रकाश सिंह	45
38.	भारत	हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा हो	डॉ. सरिता चौहान	46
39.	ऑस्ट्रेलिया	शृंखला	श्रीमती मधु खन्ना	47
40.	कुवैत	आज नदी को फिर उदास देखा	संगीता चौबे पंखुड़ी	47
41.	कैलिफ़ोर्निया	दृष्टि	अविनाश श्रीवास्तव	48
42.	संयुक्त अरब अमीरात	मृत्यु	आलोक कुमार शर्मा 'अहन'	49
43.	सिंगापुर	जब रूह का मुझको भान हुआ	अनुसूया साहू	50
44.	न्यूज़ीलैंड	बेटी की विदाई	हिमानी मिश्र गालब्रेथ	51
45.	श्री लंका	कर्मचारी की आदत	हसारा दसुनि हिरिमुतुगॉड	51
46.	मॉरीशस	मज़दूर से महामहिम	सविता तिवारी	51
47.	तंज़ानिया	हिंदी शिक्षिका बनकर मुझे क्या मिला?	सविता अशोक मौर्य	52
48.	बुल्गारिया	लुका-छिपी – जीवन का अनवरत खेल	डॉ. मौना कौशिक	53
49.	नाइजीरिया	आखिरी दम तक वह चलता रहता	ईशिता यादव	54

दोहा/हाइकु

50.	भारत	दोहों के रंग : आईने के संग	हलीम आईना	55
51.	भारत	गंगावतरण की कथा	अजय कुमार पाण्डेय	55
52.	भारत	विविध रंगों में पगे हाइकु	डॉ. रमेश यादव	58
53.	मॉरीशस	हाइकु	श्रीमती कल्पना लालजी	59

गीत

54.	भारत	गीत	नितीश पाण्डेय	60
55.	भारत	गीत	विवेक बादल बाज़पुरी	60
56.	भारत	जीवन में निर्झर दो	डॉ. अर्जुन गुप्ता 'गुंजन'	61
57.	मॉरीशस	जयतु हिंदी	डॉ. कीर्ति देवी रामजतन	61
58.	अमेरिका	हिंदी मन की मधुर बात	रचना श्रीवास्तव	62
59.	रूस	हिंदी है भाषा अपनी	डॉ. अनूपा आर्या	63
60.	सिंगापुर	जा रे, उड़ जा रे हिंदी-तरंग पंछी	श्वेता वर्मा सिंघल	63

गज़ल

61.	भारत	गज़ल	लक्ष्मीकांत मुकुल	65
62.	भारत	गज़ल	नवीन माथुर पंचोली	65
63.	भारत	गज़ल	धर्मेन्द्र गुप्त 'साहिल'	66

नाटक

64.	भारत	जीवन की साँझ	छाया वेलिप	67
65.	मॉरीशस	हज़ारों सपने चूर	डॉ. सोमदत्त काशीनाथ	71
66.	अमेरिका	एक नई उमंग जगी	दीपक कुमार चौरसिया	79
67.	न्यूज़ीलैंड	अनकही	रोहित कुमार 'हैप्पी'	81

निबंध

68.	भारत	कृत्रिम बुद्धिमत्ता की चकाचौंध में बुझती संवेदनाएँ	नृपेन्द्र अभिषेक 'नृप'	84
69.	दक्षिण अफ़्रीका	हिंदी शिक्षा संघ, दक्षिण अफ़्रीका - बीज से फल तक	माला रामबली	87
70.	न्यूज़ीलैंड	मेरे देश का हिंदी प्रचारक - रोहित कुमार 'हैप्पी'	आरती शर्मा	89
71.	ऑस्ट्रेलिया	सत्य और असत्य	डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव	91
72.	स्वीडन	इनलांसो में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन	बीएट्रिस स्टाइनवाल	94

संस्मरण

73.	भारत	नवजात, नियति और यथार्थ	डॉ. महेश कुमार मिश्र	96
74.	भारत	वह मुझे जीने की वजह दे गई	श्रीमती शशि पुर्वर	98
75.	ऑस्ट्रेलिया	उन्नीस सौं पैंसठ का युद्ध और मैं	रेखा राजवंशी	100
76.	मॉरीशस	कोरोना का अभिशाप 'जान है, तब ही जहान है'	श्रीमती सुनीता आर्यनाईक	103

यात्रावृत्तांत

77.	भारत	वृत्त में बसी ऊर्जा : मितावली का 64 योगिनी मंदिर	भावना सक्सैना	106
78.	भारत	महाकुंभ : एक यात्रा	आस्था दीपाली	108
79.	यू.ए.ई.	गिरमिटिया देश - मॉरीशस	डॉ. आरती 'लोकेश'	112
80.	अमेरिका	रोम में ईस्टर सप्ताह	शकुंतला बहादुर	120
81.	मॉरीशस	कर्मभूमि से जन्मभूमि तक	दिव्या बलजीओं	123
82.	स्वीडन	आखरी सफ़र, काठमांडू का	हाइंस वरनर वेस्लर	126

व्यंग्य

83.	भारत	खुजली है भई खुजली है	डॉ. पवनेश ठकुराठी	129
84.	भारत	गिरवी बाबू, बहती हुई गंगा और गणतंत्र	मलय जैन	131
85.	भारत	नारायण की वेदना	धर्मेन्द्र कुमार सिंह	137
86.	ऑस्ट्रेलिया	फ़ेसबुकिया सेलिब्रिटीज़	रीता कौशल	139
87.	मॉरीशस	नया प्राणी	जिष्णु होरीसरन	142
88.	जर्मनी	ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय	डॉ. शिप्रा शिल्पी सक्सेना	143

रिपोर्ताज

89.	भारत	तृतीय अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन	डॉ. काजल पाण्डे	145
90.	अमेरिका	भारत के स्वतंत्रता-दिवस के अवसर पर अमेरिका में फैली गंगा-जमुनी की खुश्बू!	विनीता तिवारी	147
91.	मॉरीशस	मौत का तांडव	आकाश आर्यनाईक	149
92.	यूरोप	दिवाली उत्सव - लंदन ठुमकदा	इंदु बरोट	150

लेख

93.	भारत	भारतीय नृत्यकला	डॉ. के. एन. एल. वी. कृष्णवेणी	153
94.	भारत	हिंदी के वैश्विक विस्तार में सिनेमा का योगदान	डॉ. विनय कुमार शर्मा	157
95.	भारत	हम कौन थे, क्या हो गए और क्या होंगे अभी	डॉ. मीनू नन्दा	159
96.	नीदरलैंड	उपन्यासकार देवदत्त पाटील : जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. सौ. आनंदी सचिन शिंदे	161
97.	इंग्लैंड	ब्रिटेन का बदलता परिदृश्य	मधु कुमारी चौरसिया	164
98.	मॉरीशस	मॉरीशस ब्रोडकॉस्टिंग कार्पोरेशन द्वारा हिंदी भाषा का प्रयोग	याचना मिश्र जांगी	166
99.	थाईलैंड	थाईलैंड की भगवान बुद्ध से संबंधित किंवदंतियाँ	कित्तिपोंग बुनकर्ड	168

साक्षात्कार

100.	भारत	संतुलन ही असली साधना है	डॉ. पूनम सिंह	172
101.	अमेरिका	हिंदी सेविका पूजा अनिल के साथ साक्षात्कार	अनुराग शर्मा	175
102.	अमेरिका	नई पीढ़ी के लिए नए माध्यम गढ़ता लेखक अनुराग शर्मा से एक बातचीत	धर्मपाल महेंद्र जैन	178
103.	फ़िजी	फ़िजी की हिंदी सेविका - श्रीमती सुकलेश बली से साक्षात्कार	सुभाषिनी लता कुमार	181

समीक्षा

104.	भारत	विमर्शों की संवेदनाओं को व्यक्त करती रमेश कुरे की 'जनमोर्चा तथा अन्य कहानियाँ'	रमा नवले एवं उमेश दत्त तिवारी	184
105.	भारत	'घुमक्कड़ी - अंग्रेज़ी साहित्य के गलियारे में 'पुस्तक समीक्षा	डॉ. कमला नरवरिया	188
106.	यूके	विवाह संस्था के मिथक-भंग और पारिवारिक संबंधों के विघटन की त्रासदी का दस्तावेज़ - 'आधे अधूरे' - मोहन राकेश	डॉ. अरुणा अजितसरिया एम बी ई	189
107.	यूके	एक साहित्यिक जासूसी उपन्यास	उषा राजे सक्सेना	193

बागवां

राधेश्याम भारतीय
करनाल, भारत

एक सामाजिक संस्था बाल-मज़दूरी रोकने में सहयोग देने वाले सदस्यों को सम्मानित करने जा रही थी। संस्था के दो सदस्य उस कार्यक्रम में मुख्य वक्ता के रूप में प्रो. कमल किशोर जी को आमंत्रित करने उनके घर पहुँचे थे। कमल किशोर जी कॉलिज में प्रोफ़ेसर होने के साथ-साथ सामाजिक कार्यों में सक्रिय भागीदारी निभाते रहते हैं। उन्होंने कार्यक्रम के विषय में चर्चा की, तो कमल किशोर जी ने ससम्मान उनका निमंत्रण स्वीकार कर लिया।

इतने में दस-बारह वर्ष का एक लड़का चाय लेकर आया। उसके कपड़ों की सादगी और पैरों में घिसी हुई चप्पल देखकर संस्था के सदस्यों को लग रहा था कि वह घर का नौकर है। बस फिर क्या था! संस्था के सदस्य भड़क गए - "यह क्या साहब! क्या आपको भी बताना पड़ेगा कि यह तो बाल-मज़दूरी के अन्तर्गत आता है।"

"मालूम है," कमल किशोर ने शांत स्वर में उत्तर दिया।

"फिर भी?"

"हाँ।"

"क्यों?"

कमल किशोर जी मुस्कुराए - "क्योंकि इसके घर कमाने वाला कोई नहीं है। इसकी माँ मज़दूरी करती है, अभी वह किसी के घर काम करने गई हैं।"

"पर यह तो सरेआम बाल-मज़दूरी है... चलिए जी।" कहकर वे उठने लगे।

दरवाज़े तक पहुँचे ही थे कि लड़का बोला - "अंकल जी! आप सही कह रहे हैं, यह बाल-मज़दूरी है, लेकिन क्या आप यह जानते हैं कि बाबू जी हमारे लिए कितना कुछ करते हैं? मैं और मेरी माँ बाबू जी के क्वार्टर में रहते हैं। इन्होंने मुझे स्कूल में दाखिला दिलवाया है। बाबू जी कहते हैं कि बेटा खूब पढ़ो और पढ़-लिखकर उन बच्चों को भी पढ़ाओ जो किसी भी वजह से पढ़ नहीं पा रहे हैं। पढ़ाई ही हर समस्या का समाधान करती है। और अंकल जी, यदि मैं बाबू जी के लिए छोटे-मोटे काम कर भी देता हूँ, तो इसमें गलत भी क्या है? क्या हम अपने घर में काम नहीं करते?"

अब संस्था के सदस्य निरुत्तर थे।

सुख

सुभद्रा प्रसाद
झारखंड, भारत

"अरे सुनंदा, तुम्हारी घड़ी तो बहुत सुंदर है, चमक रही है। कितने की ली?" पार्क की बेंच पर बैठी सुमन ने उत्सुकता से पूछा।

"ली नहीं है, बेटे ने विदेश से कल ही भेजा है। लाखों में कमाता है। हमेशा मेरे या पापा के लिए महँगे-महँगे गिफ़्ट भेजता रहता है," सुनंदा ने गर्व से उत्तर दिया।

"विदेश में रहने वाले बच्चों की बात ही कुछ और होती है। मेरा बेटा भी विदेश से एक से बढ़कर एक महँगे सामान भेजता है। पैसों की कभी कमी नहीं होने देता।" सौम्या के स्वर में अहंकार और तृप्ति की झलक थी।

"हाँ, सही है। हम तीनों के बच्चे विदेश में बसे हैं, अच्छा कमाते हैं, तभी तो हम अच्छा जीवन जीते हैं।" सुनंदा ने कहा - "यह बात तो है," सुमन बोली, "अब राखी को ही देख लो। कितना समझाया था इसे कि बेटे को विदेश भेज दे। बेटा तेज़ है, अच्छी नौकरी करेगा। पर इसने हमारी बात नहीं मानी। अब बेटा यहीं नौकरी कर रहा है। शादी हो गई, पत्नी है, दो बच्चे हैं, माता-पिता हैं। किस-किस पर कितना खर्च करे? क्या सुख है इसके जीवन में ?" सुमन ने राखी की ओर

व्यंग्यपूर्ण दृष्टि से देखा।

चारो महिलाएँ पार्क में बैठी थीं। तीनों अपनी-अपनी शान बधार रही थीं। राखी जो अब तक उनकी बातें चुपचाप सुन रही थी, बोल पड़ी - "देखो बहनों, सुख की परिभाषा सबके लिए अलग-अलग होती है। तुम तीनों के बेटे लाखों कमाते हैं, विदेश में रहते हैं, पैसे और महँगे उपहार भेजते हैं, पर क्या तुम्हें उनके साथ रहने का, पोते-पोतियों के साथ खेलने का सुख है? कितना भी बीमार पड़ो, कैसी भी परिस्थिति हो, वे पास नहीं होते। दूसरों की मदद लेनी पड़ती है। कितना अकेलापन है, तुम सबकी ज़िंदगी में।" इतना कहकर राखी थोड़ा रुकी। फिर बोली -

"मेरा बेटा बहुत समझदार है। पिछले साल उसकी कंपनी उसे विदेश भेजना चाह रही थी, पर उसने हमें छोड़कर जाना नहीं चाहा। वह पैसे से ज्यादा परिवार को महत्त्व देता है।" "मैं खुश हूँ कि मैं अपने परिवार के साथ रहती हूँ। मेरा बेटा बीमार पड़ने पर हमारे पास होता है, तुरंत डॉक्टर के पास ले जाता है। बहू सेवा और देखभाल करती है। रात का खाना हम सब साथ खाते हैं। पोते-पोती की हँसी, बाल-सुलभ हरकतों से हमारा घर गुलज़ार रहता है। इन्हें पेंशन मिलती है, कभी थोड़ी बहुत पैसों की कमी हो जाए, तो हम आपस में सामंजस्य बैठा लेते हैं। हमारी खुशी महँगे या कीमती सामानों में नहीं, परिवार की एकता और अपनेपन में है।" इतना कहते हुए राखी मुस्कुराई। तीनों सहेलियाँ एकदम मौन हो गईं। सचमुच राखी उनमें सबसे अधिक सुखी थी।

subhadraprasad94@gmail.com

असफलताओं का कैदी

डॉ. मोनिका राज
बिहार, भारत

"बस एक आखिरी मौका माँ... इस बार मैं ज़रूर सफल हो जाऊँगा!" अमन की आवाज़ में गहरी बेचैनी थी।

माँ ने उसके सिर पर हाथ फेरा - "बेटा, सफलता और असफलता तो जीवन का हिस्सा है।"

अमन ने माँ की ओर उदास आँखों से देखा। चार साल हो गए थे सिविल सर्विस परीक्षा की तैयारी करते हुए, हर प्रयास के बावजूद असफलता ही हाथ लगती। उसके सहपाठी आगे बढ़ चुके थे। किसी की नौकरी लग गई थी, कोई विदेश चला गया था। और वह? अपनी असफलताओं के बोझ तले दबा हुआ वहीं खड़ा था।

रात के सन्नाटे में जब पूरा घर सो रहा था, अमन किताबों के पन्नों पर झुका था, पर अब अक्षर धुंधले पड़ने लगे थे; मन और मस्तिष्क जैसे विद्रोह करने लगे थे। वह सोचने लगा - क्या सच में काबिलियत की कमी है मुझमें, या फिर किस्मत ही मेरा साथ नहीं दे रही? भीतर कुछ टूटता-सा महसूस हो रहा था। कमरे में चारों ओर बिखरी किताबें और दीवार पर चिपके नोट्स; सब जैसे ताने मार रहे हों - "फिर से असफल हो जाओगे!"

सुबह माँ ने देखा कि अमन चुपचाप बैठा खिड़की से बाहर देख रहा है। नज़रें कहीं दूर खोई हुई थीं।

माँ ने धीरे-से पूछा - "क्या हुआ, बेटा?"

अमन ने धीमे स्वर में कहा, "माँ, मैं थक गया हूँ... अब और नहीं होता।"

माँ की आँखें नम हो गईं। उन्होंने अमन का हाथ थाम लिया - "बेटा, तू थक सकता है, लेकिन हार नहीं सकता। असफलता को अपनी पहचान मत बना, इसे अपनी ताकत बना।"

अमन कुछ बोल नहीं पाया। भीतर कहीं एक गहरी आवाज़ गूँजी - "क्या मैं सिर्फ़ असफलताओं का कैदी बनकर रह गया हूँ?" उस आवाज़ में प्रश्न भी था और एक नई शुरुआत की संभावना भी।

monikaraj270@gmail.com

रोशनी

डॉ. यशोधरा भटनागर
मध्यप्रदेश, भारत

"सुनो! सुनो! सुनो! चाचा! चाची! भैया! भाभी! दीदी! जीजा! कान लगाकर सुनो! ध्यान लगाकर सुनो!

रोशनी लेकर आ गया हूँ। झुग्गी-झोपड़ी, खेत-खलिहान, अगर-डगर, घर-बाहर इमरजेंसी में साथ दे, रोशनी इमरजेंसी। अंधेरे से छुटकारा, भय से छुटकारा! बस एक ही नारा - रोशनी इमरजेंसी, रोशनी इमरजेंसी। कहीं भी, कभी भी।"

हाट-बाज़ार में घूम-घूमकर रोशनी बेचने वाले राजू 'रोशनी' का मजमा जम चुका था। लोग अपनी ज़रूरत के अनुसार मोल-भाव कर लाइटें खरीद रहे थे।

घंटे भर में भीड़ छँट गई। सबसे पहले आकर बैठी बुढ़िया अब भी अपनी जगह पर बैठी थी।

"क्या चाहिए माई?"

"बेटा, मेरी झोपड़ी में तो दिन में भी अंधेरा रहता है। क्या तेरी रोशनी मेरा अंधेरा दूर कर देगी?"

"हाँ, हाँ! क्यों नहीं? मगर दिन में अंधेरा कैसा माई?"

"बेटा जब से दंगे की काली अंधेरी रात में मेरे घर का चिराग बुझा है, तब से आज तक दिन-रात मेरी झोंपड़ी में अंधेरा-ही-अंधेरा है।" कहते-कहते माई शून्य में ताकते हुए कहीं खोई रोशनी को ढूँढ रही थी।

लाचार राजू अपना सामान समेट रहा था। उसकी आँखों में भी उस बूढ़ी माई की झोंपड़ी के अंधकार की परछाइयाँ उतर आई थीं।

yashu.deep1958@gmail.com

हिंदी माध्यम शिक्षा

डॉ. विजयानन्द
उत्तर प्रदेश ,भारत

एक शहर में पति-पत्नी अपने तीन बच्चों के साथ रहते थे। पति रोज़ नौकरी पर चले जाते और पत्नी बच्चों को तैयार कर विद्यालय भेजती। पत्नी ने कई बार पति से कहा कि बच्चों को हिंदी माध्यम के विद्यालय में पढ़ाया जाए, लेकिन पति नहीं माने। उन्होंने अपने दोनों बेटों का प्रवेश अंग्रेज़ी माध्यम विद्यालय में करा दिया और छोटी बेटी को हिंदी माध्यम के विद्यालय में दाखिला दिलाया।

एक दिन पति महोदय बीमार पड़ गए। लंबी बीमारी के कारण उन्हें नौकरी से अनिवार्य सेवानिवृत्ति लेनी पड़ी। दोनों बेटे निजी संस्थानों में अच्छी तनख्वाह पर नौकरी करने लगे थे और बेटी भी एक विद्यालय में अध्यापिका हो गई थी। रविवार का दिन था। संयोग से सभी लोग घर में ही थे, तभी अचानक पतिदेव की साँस फूलने लगी। बड़ा बेटा "थका हूँ" कहकर, नींद का बहाना बनाते हुए सोने चला गया और छोटे बेटे को उसके दोस्त ने फ़ोन कर बाहर बुला लिया। माँ असहाय-सी देखती रह गई। बेटी ने हिम्मत दिखाई और उसने पिता को पास के अस्पताल पहुँचा दिया। दो दिन अस्पताल में भर्ती रहने के बाद वे घर लौट आए। उनके दोनों बेटे अस्पताल में उनसे मिलने भी नहीं आए।

अब वे अपनी पत्नी और बेटी की ओर नज़र तक नहीं उठा पा रहे थे। उन्होंने कहा - "तुम ठीक कह रही थी। अंग्रेज़ी विद्यालयों की महंगी पढ़ाई के बाद बच्चे बड़े पद और अच्छी तनख्वाह तो पा लेते हैं, लेकिन संस्कार नहीं सीखते। हिंदी और गुरुकुल शिक्षा के संस्कार, अंग्रेज़ी माध्यम के विद्यालयों में कहाँ? मेरी बेटी ही अब मेरा बेटा है। इसका विवाह मैं किसी संस्कारवान परिवार में करूँगा। बेटे केवल अपनी सुविधा देखते हैं। अपना विवाह भी वे स्वयं ही करेंगे और माता-पिता से कोई विशेष लगाव नहीं रखेंगे।"

33vijayanand@mail.com

निर्णय से पहले

पवित्रा अग्रवाल
कर्नाटक, भारत

सुगंधा मिठाई लेकर घर पहुँची तो एक सौम्य-से युवक को अपने मम्मी-पापा के साथ बैठा देखकर वह समझ गई कि वे उसी को देखने आए हैं। उसने सभी को नमस्ते की और मिठाई खिलाते हुए बोली - "माँ, मुझे नियुक्ति-पत्र मिल गया है, यह मेरी ज़िंदगी का सबसे सुखद दिन है।"

युवक, जिसका नाम सूरज था और उसके माता-पिता ने भी उसे बधाई दी। कुछ ही देर में आपसी बातचीत का सिलसिला शुरू हो गया।

सूरज की माँ ने पूछा - "भविष्य में कभी परिवार के लिए नौकरी छोड़नी पड़ी, तो छोड़ पाओगी?"

"नहीं आंटी, नौकरी छोड़ पाना संभव नहीं है। यहाँ तक पहुँचने के लिए बहुत मेहनत की है। हाँ, ज़रूरत पड़ने पर कुछ दिन का ब्रेक ले सकती हूँ।"

"क्या भविष्य में आप विदेश में बसना चाहेंगी?" सूरज ने जानना चाहा।

अगर "कंपनी कुछ महीनों के लिए किसी प्रोजेक्ट पर भेजेगी, तो मना नहीं करूँगी। विदेश घूमने का मौका मिला, तो ज़रूर जाऊँगी, पर वहाँ बसना नहीं चाहूँगी।" सूरज ने मुसकुराते हुए पूछा - "अपने जीवन-साथी में कैसी खूबियाँ देखना चाहेंगी?"

सुगंधा ने सहज स्वर में कहा - "पहली बात तो वह उग्र स्वभाव का न हो। आज की ज़रूरत है कि लड़के घर के किसी काम को करने में संकोच न करे, ज़रूरत पड़ने पर बेसिक कुकिंग भी जानता हो। वैसे, मैं शाकाहारी हूँ।"

"सहमत हूँ", सूरज बोला - "माँ ने मुझे सिखाया भी है। घर में पापा भी सहयोग करते हैं।"

" हाँ, करोना ने सब सिखा दिया है, बर्तन माँजना भी।" यह सुनकर सब हँस पड़े।

सुगंधा ने अगला सवाल किया - "सूरज जी, आपकी हॉबीज़ क्या हैं?"

"पढ़ना, संगीत सुनना, नई-नई जगहों पर घूमना और बेडमिंटन मेरा प्रिय खेल है। आपकी?"

"मेरी भी लगभग यही रुचियाँ हैं" सुगंधा मुस्कुरा उठी।

माँ ने कहा -"तुम दोनों चाहते हो तो नीचे गार्डन में जाकर कुछ और बातें कर लो।"

थोड़ी देर जब वे लौटे दोनों के चेहरे पर संतोष के भाव थे, पर उन्होंने कहा कि वे कुछ बार और मिलना चाहेंगे।

agarwalpavitra78@gmail.com

छोटा-सा सवाल

श्री देवेन्द्रराज सुथार
राजस्थान, भारत

"बेटा, तुम्हें क्या बनना है?", अध्यापिका ने पूछा।

आठ साल का अमन संकोच-भरे स्वर में बोला - "सफ़ाई कर्मचारी।"

कक्षा में हँसी गूँज उठी। अध्यापिका ने मुस्कुराते हुए बच्चों को शांत कराया।

"अरे नहीं बेटा, तुम डॉक्टर बनो, इंजीनियर बनो।"

"लेकिन मैडम, पापा कहते हैं, हमारी जाति के लोग यही काम करते हैं।"

अध्यापिका कुछ देर मौन रहीं। फिर बोलीं - "आज कक्षा में एक नया खेल खेलेंगे। सभी बच्चे आँखें बंद करो।"

बच्चों ने आँखें बंद कर लीं।

"अब बताओ, किसी को दिख रहा है कि कौन किस जाति का है?"

"नहीं मैडम!", सभी ने एक साथ कहा।

"तो फिर जाति यह कैसे देख लेती है कि कौन क्या बन सकता है?"

अमन की आँखें अभी भी बंद थीं, पर उसके मन में रोशनी-सी फैल गई। पहली बार उसने एक ऐसी दुनिया की कल्पना की, जहाँ सपनों का कोई धर्म, जाति या सीमा नहीं होती।

अगले दिन जब अध्यापिका ने फिर पूछा - "बेटा, तुम्हें क्या बनना है?" अमन ने बिना झिझककर कहा - "अध्यापक!

क्योंकि मैं चाहता हूँ कि कोई और अपने सपनों को जाति के बंधनों में न बाँधे।"

devendrakavi1@gmail.com

चार शब्दों ने

राम मूरत 'राही'
इंदौर, भारत

"कहा जाता है कि एक सफल पुरुष के पीछे एक स्त्री का हाथ होता है। इसके बारे में आप क्या कहेंगे?"

प्रशांत को एक संस्था द्वारा प्रतिष्ठित पुरस्कार से सम्मानित किए जाने के बाद मंच पर साक्षात्कारकर्ता ने पूछा।

सामने की पंक्ति में बैठे वृद्ध पिता और पत्नी की तरफ़ प्रशांत ने नज़र डाली।

पत्नी श्वेता उसकी ओर उत्सुकता से देख रही थी।

तभी साक्षात्कारकर्ता ने पुनः वही प्रश्न दोहराया।

प्रशांत ने बड़े गर्व के साथ उत्तर दिया - "आज मैं जिस जगह पर पहुँचा हूँ, इसके पीछे किसी स्त्री का नहीं, एक पुरुष का हाथ है और वे हैं मेरे पिता।"

"पिता का?" साक्षात्कारकर्ता ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ", प्रशांत ने भावुक होकर कहा - "उन्होंने मुझे किसी भी चीज़ की कमी महसूस नहीं होने दी, भले ही वे स्वयं कितनी भी परेशानी में रहे हों। मुझे यहाँ तक पहुँचाने के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। अपनी पूरी जवानी होम कर दी।"

प्रशांत की आवाज़ भर्रा गई। उसने पिता की ओर देखा और कहा - "आई लव यू पापा।"

यह सुनकर पिता की आँखें नम हो उठीं। उन्हें ऐसा लगा, जैसे इन चार शब्दों ने उनके जीवन के सारे कष्ट धो दिए हों।

rammooratrahi@gmail.com

किन्नर की जात

डॉ. वर्षा महेश
मुंबई, भारत

"अरे, ज़रा जगह बनाओ बहन, मेरा पैर लग गया तो सारा मोगरा ट्रेन में बिखर जाएगा।" मालन को यह कहते हुए एक किन्नर मुंबई लोकल के फ़र्स्ट क्लास डिब्बे में चढ़ा। जींस पर लंबा कुर्ता और खादी की कोटी पहने उस किन्नर की वेशभूषा देखकर मैं चौंक गई। उसके व्यक्तित्व में संयम और आत्मविश्वास झलक रहा था, पर मन के किसी कोने में 'किन्नर की जात कभी नहीं बदलती' जैसी जड़ सोच अब भी सिर उठा रही थी। मैंने अनायास ही पर्स से रुपए निकालने के लिए हाथ बढ़ाया। किन्तु इससे पहले कि मैं कुछ कहती, उसने अपने कंधे से झूलते झोले में से खादी कॉटन की तीन साड़ियाँ निकालीं और मुस्कुराते हुए बोला - "दस रुपए का नोट नहीं चाहिए दीदी, अगर संभव हो, तो इनमें से एक साड़ी खरीद लीजिए। मैं ताली बजाकर भीख माँगने से बच जाऊँगा।" उसके अनुरोध में छिपा स्वाभिमान और आत्मसम्मान मुझे भीतर तक छू गया। मेरी पूर्वाग्रही सोच उस पल लड़खड़ा गई। मैंने बिना देर किए उसकी वे तीनों साड़ियाँ खरीद लीं और महसूस किया कि उस दिन किन्नर नहीं, इंसान की गरिमा जीत गई थी।

kostavarsha@gmail.com

अपना परिवार

नमिता सिंह 'आराधना'
गुजरात, भारत

"माँ, आप अब आ रही हैं। आपसे मिलने के लिए मैं दो घंटे से इंतज़ार कर रहा हूँ। आपको तो अपने बेटे से मिलने की कोई जल्दी ही नहीं है।" विनय ने झल्लाते हुए अपनी माँ से कहा, जिन्हें वह कुछ महीने पहले वृद्धाश्रम में छोड़ गया था।

"क्या काम है बेटा? तुम मुझसे मिलने यूँ ही तो नहीं आए होगे।" रमा देवी ने बहुत ही संयमित स्वर में पूछा। "कुछ लोग हमारा घर देखने आए थे। उन्होंने कहा कि आप वह मकान बेच रही हैं। आप ऐसा कैसे कर सकती हैं, जब मैं अपने परिवार के साथ वहाँ रह रहा हूँ।" विनय ने नाराज़गी-भरे स्वर में कहा।

"अपने परिवार के साथ?" रमा देवी ने व्यंग्य से कहा। फिर स्वर में दृढ़ता लाते हुए बोलीं - "लेकिन वह मकान तो मेरा है न बेटा? इसीलिए मुझे पूरा अधिकार है कि मैं उसे बेचूँ। वैसे भी, अब मेरा परिवार तो यही वृद्धाश्रम है। अपने परिवार के सदस्यों की देख-रेख के लिए मुझे कुछ पैसों की आवश्यकता है।"

"लेकिन फिर मैं कहाँ जाऊँ?" विनय की आवाज़ धीमी पड़ गई।

"अनाथालय।" रमा देवी ने सपाट स्वर में उत्तर देते हुए मुँह फेर लिया।

nvs8365@gmail.com

आज्ञा की अवहेलना

मीरा जैन
उज्जैन, भारत

जैसे ही जलज ने घर में कदम रखा, बुज़ुर्ग पिता ने बिना किसी लाग-लपेट के अपने मन की बात कही, या यूँ कहें, आदेश दिया -

"बेटा! मोहल्ले के कम्युनिटी हॉल में वास्तु-सामग्रियों की शानदार प्रदर्शनी लगी है। घर में सुख, शांति, समृद्धि और खुशहाली के लिए वहाँ अनेक उपयोगी वस्तुएँ हैं। आस-पास के सभी महिलाएँ और पुरुष अपनी आवश्यकतानुसार वस्तुएँ ले रहे हैं। तुम भी बहू के साथ जाकर चार-छह वस्तुएँ ले आओ।"

जलज पिता की बातों से बेपरवाह सोफ़े पर पसर गया। अपने आदेश की अवहेलना से खफ़ा मोहन जी भी नाराज़ होकर अपने कमरे में चले गए।

कुछ देर पश्चात्, जलज कमरे में जाकर पिता से मनुहार के अंदाज़ में बोला -

"चलो पापा! चाय बन गई है।"

नाराज़गी-भरे स्वर में मोहन जी ने उत्तर दिया -

"अभी नहीं पीनी मुझे चाय।"

जलज ने पिता का हाथ अपने दोनों हाथों में लेकर चूमते हुए कहा -

"जिसके पास पिता हों, उसे किसी भी 'वास्तु' की आवश्यकता नहीं होती है, मेरे प्यारे पापा।"

इतना सुनते ही मोहन जी भाव-विभोर होकर बेटे को अपलक निहारने लगे। बेटे द्वारा की गई आज्ञा की अवहेलना से मोहन जी की आँखें खुशी के आँसुओं से नम हो गईं।

jainmeera02@gmail.com

परख

श्री सन्तोष सुपेकर
मध्यप्रदेश, भारत

"अरे, वह कहाँ गया तीसरे नंबर वाला?" मंदिर के बाहर बैठे भिखारियों की कतार को देखकर वरुण जी बड़बड़ाए। अर्पित झल्लाकर बोला - "अरे, किसी को भी दे दो यार ये पूरियाँ और सब्ज़ी। पर एक बात बताओ, तुम उसे ही क्यों देते हो भीख ? और वह भी सिर्फ़ खाने का सामान ही ?"

वरुण जी मुस्कुराए और बोले - "तुम्हें याद है अर्पित", एक बार हम दोनों यही से गुज़र रहे थे? हम अस्पताल की सर्जिकल नेग्लिजेन्स की बातें कर रहे थे कि ऑपरेशन के दौरान डॉक्टर ने मरीज़ के पेट में सुई छोड़ दी, कभी नैपकिन छोड़ दी, कभी आठ सेंटीमीटर का चम्मच छोड़ दिया... तब वही एक था, जिसने कहा था - "ऐसे कोई डॉक्टर कभी किसी मरीज़ के पेट में रोटियाँ क्यों नहीं छोड़ देता?"

santoshsupekar29@gmail.com

पर उपदेश कुशल बहुतेरे

वर्षा गर्ग
महाराष्ट्र, भारत

"मैडम, अब एक हफ़्ते नहीं आ पाऊँगा..!"

गाड़ी की चाबी लेने आए ड्राइवर के शब्दों ने मुझे विचलित कर दिया।

"क्यों नहीं आओगे?"

"गाँव जाना ज़रूरी है, राशन कार्ड को आधार से लिंक करना है। नहीं किया तो अगली बार से मुफ़्त अनाज नहीं मिलेगा।"

"हद हो गई! इतना कमाते हो, फिर भी मुफ़्तखोरी की आदत नहीं छूटती। तुम्हीं लोगों ने नेताओं को नया रास्ता दिखाया है। अगर मुफ़्त का सामान लेने से मना कर दो, तो वोटों की खरीदी-बिक्री भी रुक जाए।"

ड्रावर ने सहजता से उत्तर दिया - "मैडम! हमें बहुत सहारा मिल जाता है, बाज़ार में यही चावल चालीस रुपए किलो मिलता है, फिर मुंबई जैसे शहर की महँगाई तो आपको पता ही है।"

मैंने तीखे स्वर में कहा - "पूरे बीस हज़ार तनख्वाह लेते हो, बोनस और ईनाम अलग। क्या महीने में पाँच-दस किलो चावल नहीं खरीद सकते? बस मुफ़्त है, तो ले लो, ये क्या बात हुई?"

मन में छिपी भड़ास मैंने एक ही साँस में ड्राइवर पर उँडेल दी और कुछ हल्का महसूस किया।

आज बेटा गोवा से वापस आ रहा था। उसी के लिए गाड़ी एयरपोर्ट रवाना कर मैं अखबार लेकर हॉल में ही बैठ गई।

थोड़ी देर में बेटा आ गया।

"बहुत थक गया मम्मा, कॉफ़ी पिलाओ न" उसने कहा और बैग से सामान निकालने लगा।

मोबाइल चार्जर, नोटपैड के साथ ही एक बर्गर का डिब्बा भी निकाला।

मैंने पूछा - "बर्गर अभी खाओगे?" वह बोला - " नहीं! इस समय बर्गर कौन खाएगा? गरम खाना ही खाऊँगा।"

"फिर लाए क्यों?" मैंने हैरानी से पूछा।

"मम्मा! फ़्लाइट में मुफ़्त मिला था, तो कैसे छोड़ता ? ले आया।"

अब गाड़ी की चाबी लौटाने आए ड्राइवर के चेहरे की वह विद्रूप हँसी मुझे भीतर तक बैचेन कर रही थी।

varshagarg68@gmail.com

बँटवारा

आराधना झा श्रीवास्तव
सिंगापुर

पूर्णिमा का चाँद अपने पूरे यौवन पर था। उससे छिटककर चाँदनी का एक टुकड़ा आरव के मन को रौशन करने की कोशिश कर रहा था। मगर आरव के बुझे हुए दिल में रोशनी पल भर टिकने को तैयार न थी। घर की छत के बीचों-बीच खड़े होकर उसने चारों ओर नज़र दौड़ाई, तो बस रेत और सीमेंट से बने कई छोटे-बड़े टीले नज़र आ रहे थे। उसकी आँखों के आगे पुराने दिन चलचित्र की तरह घूमने लगे। हरे-भरे वृक्ष, घास का विशाल मैदान और कमल के फूलों से सजा हुआ छोटा-सा तालाब, जिसके किनारे उसने अपने दोस्तों के साथ न जाने कितनी बार दौड़ लगाई थी। आज वहाँ कंकरीट के जंगल उग आए हैं।

"माँ, सामने वाले वकील साहब ने अपनी ज़मीन बेच दी है क्या?"

"नहीं तो। जहाँ तक मुझे पता है, सारी ज़मीन घरवालों ने आपस में बाँट ली है और अब सभी अपने-अपने हिस्से में मकान बना चुके हैं। सामने वाली ज़मीन पर उनके छोटे भाई की पत्नी ने तीन मंज़िला मकान बना लिया है। निचला तल्ला अपने पास रखा है, बाकी हिस्से में किराएदार रहते हैं।"

"अच्छा सुशीला आँटी? उनका तो पति से तलाक हो चुका है न?"

"तलाक नहीं हुआ है, बस दोनों अलग-अलग रह रहे हैं। वकील साहब ने न्याय करते हुए उन्हें उनका पूरा अधिकार दिया। बेचारे बड़े भले इंसान थे। अपनी संतान नहीं हुई, मगर अपने भाइयों के परिवार का लालन-पालन करने के बाद जाते-जाते अपनी पूरी सम्पत्ति भाई-भतीजों के बीच बाँट दी।"

"यदि यह बँटवारा न होता, तो आज भी हमारे सामने घास का वह हरा-भरा मैदान और कमलताल होता।"

माँ ने दीर्घ श्वास छोड़ते हुए कहा - "अब तो जिस घर की बड़ी-सी छत पर तुम खड़े हो, उसके भी टुकड़े होने की नौबत आ गई है। अभिषेक का फ़ोन आया था। उसे घर में अपना हिस्सा चाहिए। वहाँ पुणे में उसने अपने लिए एक घर पसंद किया है, मगर खरीदने के लिए पैसे कम पड़ रहे हैं, इसीलिए उसे अपना हिस्सा बेचने की जल्दी है।"

माँ एक साँस में कहती जा रही थी और आरव को अपने पैरों के नीचे की ज़मीन खिसकती महसूस होती जा रही थी। वकील साहब की ज़मीन के बँटवारे से अपनी बचपन की सुनहरी यादों की टूटती डोर का दुख अब उसके अपने घर के बँटवारे की कल्पना के आगे फीका लगने लगा। आँवले और आम के पेड़ों से सजे अपने आँगन को देखते हुए बिछोह की पीड़ा भीतर गहरे पसरती चली गई।

jhaaradhana@gmail.com

रंगों में भीगी तकदीर

शिखा पोरवाल मनस्विनी
वैंकूवर, कनाडा

पूरे शहर में होली का रंग बिखरा हुआ था। आज होली थी, लेकिन नीला के मन में कोई रंग या उमंग नहीं थी। वह गली के कोने में खड़ी अतीत में खो गई... उसके जीवन में सबसे खूबसूरत रंग भरा था - अर्जुन ने। वही अर्जुन, जो प्रेम का रंग उड़ाते हुए, उसके सपनों का सरताज बना था। परंतु जात-पांत और भारी दहेज के चक्कर में उसकी शादी कहीं और तय कर दी गई।

नीला पुराने दिनों की याद में खोई थी, अचानक किसी ने पीछे से गुलाल उड़ाया। वह चौक पड़ी और गुस्से से मुड़ी -अर्जुन!

उसका अपना अर्जुन, जो किसी और का होने जा रहा था।

"तुम यहाँ?" उसने खुशी से काँपती आवाज़ में पूछा।

"हाँ नीला," अर्जुन मुस्कराया, "मैं वापस आ गया हूँ।"

"पर... तुम्हारी शादी?" नीला ने हिचकिचाते हुए पूछा।

मैंने अपने माता-पिता को मना लिया और अपनी होने वाली मंगेतर को भी सारी बात बता दी! "मैं सिर्फ़ तुम्हारे लिए ही बना हूँ।" अर्जुन की आँखों में सच्चाई झलक रही थी।

अर्जुन ने अपने को दहेज के बाज़ार में बेचा नहीं, बल्कि अपनी मोहब्बत को नई दिशा दी। नीला को महसूस हुआ कि इस बार सिर्फ़ चेहरे पर नहीं, तकदीर में भी सुंदर रंग भर गया। नीला और अर्जुन ऐसे घुल-मिल गए, जैसे रंग और पानी!

shikhapowal@yahooc.om

सूरीनामी बारा और डच ओलीबोलन

अश्विनी केगांवकर
सूरीनाम

अनीता पति मैक्स की आँखें बंद कर उसे डाइनिंग मेज़ की ओर ले जाती है। खुश होते हुए उसे विवाह की वर्षगाँठ की बधाईयाँ देती है।

मैक्स अपनी आँखें खोलते हुए अचरज से बोलता है - "यह क्या अनीता? मैं टार्ट (डच भाषा में केक) की उम्मीद में था। तुमने मेरा पूरा मूड खराब कर दिया। ये क्या सूरीनामी बारा और ओलीबोलन (पारम्परिक डच मिष्ठान) ! यह कैसा कॉम्बिनेशन है?"

अनीता बोली - "यह हमारी ज़िंदगी का कॉम्बिनेशन है! भारतवंशी सूरीनामी और डच संस्कृति का साझा संसार! सूरीनामी बारा जैसा करारा, थोड़ा-सा तीखा, पर स्वादिष्ट और डच ओलीबोलन जैसा मीठा और स्वादिष्ट!"

आगे अनिता कहती है - "और हाँ, ये दोनों एक साथ परोसे हैं। कोई एक पहले या दूसरा बाद में नहीं, जिससे औपनिवेशिक मानसिकता हमारे रिश्ते पर हावी नहीं हो।"

ak.official.nl@gmail.com

मूक दर्शक

हरिहर झा
ऑस्ट्रेलिया

चित्रगुप्त का दरबार सजा हुआ था। आज के मुकदमे में अठारह अभियुक्त उपस्थित थे, जिनमें प्रमुख था - रतनलाल।

"आपकी आज्ञा हो तो कार्यवाही प्रारंभ करें" - एक देवदूत ने निवेदन किया।

चित्रगुप्त की अनुमति मिलते ही पहला अभियोग पढ़ा गया।

"रतनलाल और उसके मित्र अपनी-अपनी पत्नियों सहित पिकनिक के लिए गए हुए थे। पिकनिक स्थल पर पहुँचकर उन्हें ज्ञात हुआ कि घी घर पर ही रह गया है। रतनलाल ने भजनलाल से कहा - 'मित्र! तुम बाज़ार जाकर घी ले आओ।' भजनलाल बाज़ार गया। उसके जाने के बाद रतनलाल ने उसकी पत्नी से अश्लील बातें करनी शुरू कर दीं और उसके साथ अनुचित व्यवहार किया। यही उसका मुख्य अपराध है।"

चित्रगुप्त ने पूछा - "बाकी के सत्रह अभियुक्तों पर क्या आरोप हैं?"

उत्तर मिला - "रतनलाल की पत्नी और बाकी सभी युवतियाँ मौन रहीं। किसी ने विरोध नहीं किया।"

चित्रगुप्त का स्वर कठोर हुआ - "तुम सबने मिलकर अपराधी का हौसला बढ़ाया। तुम सब अपराधी हो।" "रतनलाल को दस वर्ष तक कुंभीपाक नरक में रहने की सज़ा दी जाती है, ताकि उसका मन ठिकाने आए। बाकी के नौ अभियुक्तों को बीस वर्ष तक उसी नरक में रहने की सज़ा दी जाती है, क्योंकि मूकदर्शक बनना भी उतना ही जघन्य अपराध है, जितना स्वयं अपराध करना।"

"और अब मैं दूसरा, अत्यंत महत्त्वपूर्ण निर्णय सुनाने जा रहा हूँ।"

"क्या?", सभी विस्मित हो उठे।

"वर्षों से न्याय करते-करते मेरा मन विरक्त हो गया है। आज मैं अपना त्याग-पत्र दे रहा हूँ।" कल से चित्रगुप्त का दरबार सदा के लिए विलीन किया जाता है।"

"फिर न्याय की व्यवस्था कैसे चलेगी?" किसी ने पूछा।

चित्रगुप्त बोले - "अब स्वर्ग और नरक की व्यवस्था समाप्त की जाती है। हर व्यक्ति को अपने कर्मों का फल इसी जीवन में मिलेगा - अपने ही अनुभवों, मानसिक स्थितियों और घटनाओं के रूप में।" सभा स्तब्ध रह गई। न्याय की अंतिम घोषणा गूँजती रही - "अब हर मनुष्य स्वयं ही अपना चित्रगुप्त होगा।"

hariharjha2007@gmail.com

पर उपदेश कुशल

मीरा ठाकुर
आबूधाबी, यू ए ई

मेरी तबीयत कुछ खराब थी। दवा लेने के लिए मैं फ़ार्मेसी में लंबी कतार में खड़ी थी। कतार आगे बढ़ ही नहीं रही थी। एक तो दवा के काउंटर की कई खिड़कियाँ बंद थीं। जो खुली भी थीं, उनके सामने कतारें चीटियों की तरह बढ़ रही थीं। मेरे पास में एक दम्पत्ति भी दवाई की कतार में खड़ा था। दोनों पति-पत्नी लगातार दवा काउंटर वाले की बुराई कर रहे थे - "काउंटर वाला कितने आराम से दवा दे रहा है। आज वह सभी लोगों को दवा दे देगा क्या?" मेरा ध्यान उस दम्पत्ति की तरफ़ इसी बातचीत की वजह से ही गया। बड़ी देर तक इंतज़ार करने के बाद उनका नंबर आया। अपना क्रम आने पर तो दोनों मानो चौकड़ी मारकर बैठ ही गए और अपनी दवा की छानबीन करने लगे। लोग पीछे कतार में हैं, इसका उन्हें कोई भान न रहा। बड़े आराम से तकरीबन हर दवा का पोस्टमार्टम करने के बाद उन्होंने कुछ दवाइयाँ वापिस करवाईं, क्योंकि उनकी कीमत कुछ ज्यादा थी। महँगी दवाई के बदले उन्होंने सस्ते दामों की दवाई मँगवाई। कुछ की एक्स्पाइरी डेट देखकर बदलवाई। एक्स्पाइरी डेट कम-से-कम साल भर की हो, इसका भी ध्यान दिया। अब तक समय बर्बाद करने की शिकायत करने वाले स्वयं समय का खून करने में लगे हुए थे।

meerasid@yahoo.com

विदेश में दीवाली

शिखा रस्तोगी
थाईलैंड

बैंकॉक के छोटे-से फ़्लैट में जय ने दीये जलाए। पत्नी सुमन रसोई में मिठाई बना रही थी। बेटी रिया मोबाइल पर व्यस्त थी।

"रिया, आ जा, पूजा करनी है," जय ने आवाज़ लगाई।

"पापा, मुझे फ़्रेंड्स के साथ पार्टी में जाना है," रिया ने थाई में जवाब दिया।

सुमन चुपचाप बाहर आई। उसकी आँखों में नमी थी। जय ने उसका हाथ थाम लिया।

दोनों ने साथ बैठकर दीये जलाए। खिड़की से बाहर बैंकॉक की चमकती लाइटें दिख रही थीं, पर दिल उदास था। अपने देश में दीवाली मनाने के लिए कैसे पूरा परिवार इकट्ठा हो जाता था।

"विदेश में नई पीढ़ी के लिए यह त्योहार सिर्फ़ एक रस्म रह गया है," सुमन ने धीरे-से कहा।

जय ने मुस्कुराते हुए दीये की लौ की ओर देखकर कहा - "कम-से-कम यह लौ तो जल रही है।"

srastogi357@gmail.com

किधर है सत्य

डॉ. अमित रंजन
बिहार, भारत

हॉल पत्रकारों से खचाखच भरा हुआ था। देश भर के नामचीन मीडिया संस्थानों के प्रतिनिधि अपने कैमरों और माइकों के साथ मंच की ओर टकटकी लगाए बैठे थे। दो घंटे के विलंब के बाद जब महामहिम का आगमन हुआ, तब हॉल में हलचल-सी मच गई। दो घंटे का विलंब हो जाना कोई असामान्य बात नहीं थी, क्योंकि महामहिम उस राज्य के महामहिम थे, जिसे देश की सबसे कम साक्षरता दर वाला राज्य माना जाता है। एक ऐसा राज्य, जहाँ उच्च शिक्षा की इमारत जर्जर हो चुकी थी और जहाँ विश्वविद्यालयों की दीवारों से अधिक वहाँ के अकादमिक मूल्य दरक चुके थे । उस राज्य में यदि कोई एक व्यक्ति था, जिसके कंधों पर इस पतनशील व्यवस्था को सुधारने और नई दिशा देने की नैतिक ज़िम्मेदारी थी, तो वे महामहिम राज्यपाल ही थे। इन्हीं सब कारणों से उन्हें आने में विलम्ब हो गया। महामहिम मंच पर अपने छोटे पोते के साथ आए और सभा को शिष्ट अभिवादन देकर मंचासीन हुए। मंच के पीछे दीवार पर एक ओर गांधी जी की आदमकद तस्वीर थी, तो दूसरी ओर बाबा साहब डॉ. भीमराव अंबेडकर की छवि, जो एकता, समानता और संवैधानिक मर्यादाओं का मौन पाठ पढ़ा रही थी।

महामहिम के आते ही मीडिया के कैमरे जैसे किसी अदृश्य इशारे पर एक साथ चमक उठे। तभी उनके सम्मुख एक बाल्टी लाई गई - काली, पुरानी, और कई स्थानों से पिचकी हुई। बाल्टी में लीचियाँ थीं। महामहिम ने मुस्कराते हुए कहा - "पानी कम है भाई।" और फिर स्वयं मग से पास के नल का पानी भरकर बाल्टी में डालने लगे। फिर वे लीचियाँ खाने लगे और अपने पोते को भी प्रेमपूर्वक खिलाने लगे।

आलोकरपुरम की शाही लीची देश-विदेश में प्रसिद्ध थी। उसकी मिठास, सुगंध और स्वाद अद्वितीय था। किंतु इधर पिछले कुछ वर्षों से एक रहस्यमयी बीमारी 'चमकी बुखार' का संबंध इस लीची से जोड़ दिया गया था। यह बीमारी मुख्यतः आलोकरपुरम और आसपास के क्षेत्रों में व्याप्त थी।

महामहिम इस मिथक को तोड़ना चाहते थे। वे यह दिखाना चाहते थे कि लीची इस रोग का कारण नहीं, बल्कि इस क्षेत्र की शान है। वे मंच से आलोकरपुरम की शाही लीची खाते जा रहे थे और उसके पोषण, व्यापारिक महत्त्व और वैज्ञानिक गुणों की चर्चा कर रहे थे। तभी एक अनहोनी हो गई। खाते-खाते लीची का एक बीज अचानक उनके गले में अटक गया। उनकी साँस रुकने लगी। वे छटपटाने लगे। माइक से उनकी आवाज़ अचानक टूट गई। मंच पर खलबली मच गई। किसी को कुछ समझ में आता, उससे पूर्व ही महामहिम अचेत हो गए।

क्षणभर में दर्जनों एंबुलेंस दरबार हॉल के बाहर आ गईं। महामहिम के एक प्रमुख परिचारक ने तत्काल AIIMS के निदेशक को सूचित किया। दरबार हॉल से एम्स के बीच की सड़कों को पलक झपकते ही खाली करा लिया गया। मंच पर उपस्थित डॉक्टरों की टीम महामहिम के पास पहुँची। उन्हें स्ट्रेचर पर लिटाया गया और एंबुलेंस से एम्स ले जाया जाने लगा। रास्ते में डॉक्टर उनके गले में फँसे बीज को निकालने का हर संभव प्रयास कर रहे थे और उन्हें प्राथमिक उपचार दे रहे थे, पर उनके सारे प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए। महामहिम को बचाया न जा सका। यह एक आश्चर्यजनक घटना थी।

कालदेव अपने प्रचंड सिंहासन पर आसीन थे। उनकी आँखों की ज्वाला अंधकार में भी स्पष्ट चमक रही थी। उनके बगल में चित्रगुप्त गंभीर मुद्रा में अपनी दिव्य बही के साथ विराजमान थे। कतारबद्ध आत्माएँ कालदेव के सम्मुख आतीं, अपना पक्ष रखतीं और चित्रगुप्त उस पक्ष को उनके कर्मों की बही से मिलाते। कुछ आत्माएँ साक्षात काल के सम्मुख भी होशियारी दिखाने से नहीं चूक रही थीं। वे अपने पापों को पुण्य बताने का प्रयास कर रही थीं। पर उन्हें ज्ञात नहीं था कि यह दिव्य लोक है; यहाँ छल या मायाजाल नहीं चलता। ऐसा करके वे अपने पापों का भार और अधिक बढ़ा रहे थे। काल देव से कुछ भी नहीं छुपता।

कुछ तो कालदेव के दर्शन होते ही रोने-गिड़गिड़ाने लगते, क्षमा-याचनाएँ करते, पर जो हो चुका था, उसका लेखा अब केवल सज़ा से ही मिटाया जा सकता था। यहाँ सज़ा की एक विस्तृत व्यवस्था थी, हर पाप के लिए एक विशिष्ट यातना थी। 'तामिस्र' में वे भेजे जाते थे, जिन्होंने दूसरों की संपत्ति को छल से हड़पा। वहाँ अंधकार ही अंधकार था और निरंतर जलती अग्निशलाकाओं से आत्मा को तपाया जाता था। 'रौरव' उन पाखंडी धर्माचार्यों के लिए था, जिन्होंने धर्म का व्यवसाय बना लिया था। वहाँ जीवित साँप आत्मा को काटते थे और विष चित्त तक पहुँचता था। 'अंधतमस' में वे भेजे जाते थे, जिन्होंने शिक्षा के नाम पर जनता को मूर्ख बनाए रखा। वहाँ आत्मा को एक कुएँ में गिरा दिया जाता था, जहाँ उसे सतत भ्रम, विषाद और मर्मांतक पीड़ा से गुज़रना पड़ता था। 'वज्रकंटक' उन राजनीतिज्ञों का नरक था, जिन्होंने जन-कल्याण की आड़ में सत्ता का दुरुपयोग किया था। वहाँ आत्मा को काँटों भरी धरती पर नग्न पाँव दौड़ाया जाता था, जहाँ हर काँटा उसके पापों का प्रतीक बनकर उसे चीरता था। 'महारौरव' में मासूमों की जान लेने वालों को अग्नि के जीव चीखों के बीच दंडित करते थे।

महामहिम अभी यह सब देख ही रहे थे कि उन्हें ध्यान आया कि वे खड़े हैं और बैठने को कोई आसन नहीं है। उन्होंने कुर्सी माँगी, पर किसी ने उत्तर न दिया। "यहाँ अत्यंत दुर्गंध है", उन्होंने कहा, और पास खड़े एक यमदूत से रूम फ्रेशनर छिड़कने का आदेश दिया। यमदूत ने उनकी इस अनवरत 'राजशाही' मुद्रा पर एक नुकीले सरिये से उन्हें कोचा। तभी उनके मन में यह यथार्थ कौंधा कि वे जीवित नहीं हैं। वे मर चुके हैं और यह वही यमलोक है, जिसके बारे में उन्होंने ग्रंथों में पढ़ा था। यह एहसास होते ही उन्होंने रोने का प्रयास किया, पर उनके आँसू नहीं निकले। वे शीघ्र ही कालदेव के सम्मुख थे। उन्होंने कालदेव के समक्ष अपना पक्ष रखना शुरू किया...

जैसे ही यह समाचार मिला कि मुझे उस पिछड़े प्रदेश का महामहिम नियुक्त किया जा रहा है, मेरी प्रसन्नता का पारावार न रहा। मैंने कर्मचारियों के बीच मिठाइयाँ बाँटीं और अपने करीबियों के लिए एक छोटी-सी पार्टी आयोजित की। कुछ लोगों को यह प्रदर्शन मात्र दिखावा और आत्म-प्रशंसा लगा और कुछ शुभचिंतकों ने तो यहाँ तक अनुमान लगा लिया कि मैं किसी मानसिक आघात में हूँ। किंतु सत्य केवल मैं जानता था। दरअसल, मैं भीतर से अत्यंत प्रसन्न था, क्योंकि इस नई भूमिका में मुझे उस राज्य की उच्च शिक्षा-व्यवस्था को सुधारने का एक दुर्लभ अवसर मिल रहा था। वहाँ काम करने के लिए बहुत कुछ था। कई अधूरे प्रयोगों को मूर्त रूप दिया जा सकता था।

महामहिम अपनी बात को आगे बढ़ाते, इससे पहले ही चित्रगुप्त ने टोका -

"आप वास्तव में इसलिए प्रसन्न थे, श्रीमान, कि आपको उच्च शिक्षा को सुधारने का अवसर मिल रहा था? या इसलिए कि महानगरों में बैठे अपने समकक्षों के बीच आप एकमात्र थे, जिन्हें उस 'पिछड़े' राज्य में कार्य करने का अनुभव था?"

चित्रगुप्त की यह टिप्पणी सुनकर समीप खड़ा यमदूत चौंक गया। अखबारों में तो यह चर्चा थी कि महामहिम बनाए जाने से पूर्व वे कभी उस पिछड़े प्रदेश में गए ही नहीं थे। आलोचना भी हुई थी कि ऐसे व्यक्ति को उस राज्य का महामहिम बनाया जा रहा है, जिसने वहाँ की धरती तक नहीं देखी। ऐसे में वे उस प्रदेश को कितनी गहराई से जान पाए होंगे?

"चौंकिए नहीं, श्रीमान चक्रपालीत महोदय", चित्रगुप्त ने यमदूत को संबोधित करते हुए कहा, "उस राज्य का महामहिम बनने से बहुत पहले ही इन्होंने वहाँ वर्षों कार्य किया था। अपनी युवावस्था में एक समाज-सेवी धर्म-प्रचारक संस्था से जुड़े रहे थे और उसी के अंतर्गत दो वर्षों तक उस पिछड़े राज्य के अनेक इलाकों में कार्यरत रहे थे।"

फिर चित्रगुप्त ने जोड़ा -

"तो बात बस इतनी नहीं थी। आप अपने समकक्षों में अकेले थे, जिन्हें वहाँ का अनुभव था और आप भली-भाँति जानते थे कि इस प्रदेश में महामहिम बनकर दोनों हाथों से लाभ बटोरे जा सकते हैं। यह बात भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं कि आपको वहाँ भेजा नहीं गया था, आपने स्वयं इस पद के लिए सिफ़ारिश करवाई थी।"

"हाँ, यह सत्य है कि मैंने उस पिछड़े राज्य में पहले काम किया था और यह भी सत्य है कि मैंने स्वेच्छा से वहाँ जाने की

इच्छा प्रकट की थी। किंतु उसके पीछे मेरा उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट था। मैं वहाँ की उच्च शिक्षा-व्यवस्था को नई दिशा देना चाहता था।" महामहिम ने पूरे आत्मविश्वास और गरिमा के साथ उत्तर दिया।

अभी उन्हें मरे थोड़ा ही समय हुआ था। धरती पर महामहिम रहे व्यक्ति की आंतरिक ठसक अब भी उनके स्वर और मुद्रा में उपस्थित थी। नरक के कोलाहल और पीड़ा से भरे वातावरण में कोई और होता तो चित्रगुप्त के रहस्योद्घाटन से व्याकुल हो रो पड़ता, पश्चाताप करता, क्षमा-याचना करता। परंतु महामहिम, महामहिम ही थे। चित्रगुप्त उनके लिए बस एक सेवक था, कालदेव का एक लिपिक। भला एक महामहिम को किसी लिपिक से भय कैसा?

वे पुनः बोले -

"राज्यपाल पद की शपथ लेते ही मैंने उच्च शिक्षा की स्थिति को सुधारने के लिए तत्काल कार्य आरंभ किया। सबसे पहला कदम था - एक विश्वविद्यालय में दीक्षांत समारोह का आयोजन करवाना, जहाँ स्थापना के बाद से अब तक नहीं हुआ था। इसके बाद एक अन्य विश्वविद्यालय की सीनेट बैठक में मैं स्वयं उपस्थित हुआ। फिर यह क्रम चलता गया। मैं उस राज्य के प्रत्येक विश्वविद्यालय की बैठकों में भाग लेने लगा। यहाँ तक कि एक केंद्रीय विश्वविद्यालय, जो मेरे अधिकार क्षेत्र में भी नहीं आता था, वहाँ भी मैं पहुँच गया। कुछ लोगों ने कहा कि महामहिम जैसे पदधारी को बिना आमंत्रण वहाँ नहीं जाना चाहिए, यह उसकी प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं। पर मैंने इन बातों की कभी परवाह नहीं की। मेरी आँखों में केवल एक स्वप्न था - राज्य के विश्वविद्यालयों का उत्थान। कई विश्वविद्यालयों के कुलपतियों पर भ्रष्टाचार के गंभीर आरोप थे। शैक्षणिक सत्र दो-दो, तीन-तीन साल पीछे चल रहे थे। तीन वर्षों में पूरा होने वाला कोर्स पाँच वर्षों में भी पूर्ण नहीं हो रहा था। कई वर्षों से डिग्रियाँ छपी नहीं थीं, तो कहीं परीक्षा-फल में गंभीर त्रुटियाँ थीं। मैंने सभी कुलपतियों को राजभवन बुलाया, बैठकें कीं, उन्हें समय-सीमा दी और शपथ-पत्र भरवाए कि वे कितने समय में लंबित परीक्षाएँ पूरी कर लेंगे। फिर उन्हें सार्वजनिक किया और अखबारों में प्रकाशित करवाया। इसके अतिरिक्त..."

महामहिम आगे कुछ कहते, उससे पहले ही काल के दरबार में खड़ी दूसरी पंक्ति में एक युवक प्रकट हुआ। उसकी आयु कोई चौंतीस-पैंतीस वर्ष की रही होगी। महामहिम की दृष्टि उस पर पड़ी। वह युवक न सिर्फ़ उनसे, बल्कि यमलोक में उपस्थित बाकी सभी आत्माओं से अलग दिख रहा था। उन्हें यह बुरा लगा कि उस युवक की उपस्थिति ने उनके वक्तव्य को बीच में ही रोक दिया। उस युवक का नाम कुणाल था। बचपन में विज्ञान शिक्षक ने उसे 'लॉर्ड माउंटबेटन' नाम दिया था। अब विज्ञान के शिक्षक ने अपने एक छात्र को इतिहास के एक चरित्र का नाम क्यों दिया, यह तो वे ही जानें। अपने साथियों के बीच वह सामान्य ज्ञान का प्रकांड विद्वान कहलाता था, जिसके लिए वह गर्व के साथ-साथ उपहास का भी पात्र था।

युवावस्था में, इंजीनियर पिता के पुत्र ने सिविल सेवा की राह चुनी, पर पारिवारिक ज़िम्मेदारियों ने उसे राजभवन में एक प्रशासनिक सहायक की मामूली नौकरी तक सीमित कर दिया। राजभवन के शिक्षा विभाग में कार्यरत, वह विश्वविद्यालयों के दस्तावेज़ संभालकर ट्रांसफ़र आवेदन प्रबंधित करता था और कुलपतियों की बैठकों का प्रबंधन करता था। वह एक मेधावी युवा था, जिसके लिए 'नैतिकता' केवल शब्द नहीं, बल्कि जीवन का आधार थी। पर सत्ता का भ्रष्ट तंत्र उसे हर कदम पर चुनौती देता था।

माँ की अस्वस्थता, पिता की कमज़ोरी और पत्नी की चिंताएँ - ये सब उसके जीवन की धुरी बन चुकी थीं। उसकी शक्ति का अधिकांश हिस्सा परिवार की ज़िम्मेदारियों और सत्ता के गलियारों में सत्य की तलाश में खर्च हो जाता था। वह भ्रष्टाचार के सबूत गुप्त रूप से इकट्ठा करता था, इस उम्मीद में कि एक दिन वह उन्हें उजागर करेगा। पर नियति ने उसे पहले ही यमलोक की चौखट पर ला खड़ा किया। उस दिन कुणाल आवश्यक दस्तावेज़ लेने के लिए राजभवन के मुख्य द्वार पर था। महामहिम, दरबार हॉल में, एक पिचकी काली बाल्टी से आलोकरपुरम की शाही लीची खाने का प्रदर्शन कर रहे थे - एक ऐसा प्रदर्शन, जो मिथक तोड़ने की आड़ में उनकी अपनी छवि को चमकाने का प्रयास मात्र था। पर नियति का खेल कुछ और था। एक लीची का बीज महामहिम के गले में

उलझ गया और उनकी साँसें थम गईं। उसी अफ़रा-तफ़री में, सत्ता की तेज़ रफ़्तार ने कुणाल को भी अपने क्रूर खेल में शामिल कर लिया। वह महामहिम की एंबुलेंस की चपेट में आ गया और कोमा में चला गया। चूँकि वह राजभवन की सेवा में घायल हुआ था, उसे तत्काल अस्पताल में भर्ती कराया गया, जहाँ वह जीवन और मृत्यु की सीमा पर जूझ रहा था। कुणाल अभी जीवित था, पर उसकी आत्मा को क्षणिक रूप से यमलोक लाया गया था। अब वह कालदेव और महामहिम के सम्मुख खड़ा था, जैसे सत्य स्वयं समय के सामने अपनी गवाही देने को बेताब हो।

"श्रीमान, क्या आप इस युवा को पहचानते हैं?" चित्रगुप्त ने कुणाल की ओर संकेत करते हुए पूछा, उनकी आवाज़ में एक तीक्ष्ण शांति थी, मानो वे सत्य को तौलने की तैयारी कर रहे हों।

महामहिम ने कंधे उचकाए, चेहरा बिचकाया, जैसे कह रहे हों - "नहीं।"

"यह वही युवा है, जो राजभवन के शिक्षा विभाग में आपकी सेवा में था। वह विश्वविद्यालयों के दस्तावेज़ संभालता था, कुलपतियों की बैठकों के मिनट्स तैयार करता था और आपके सुधारों की सच्चाई का प्रत्यक्ष साक्षी था। आज सुबह, आपकी ही एंबुलेंस की चपेट में आकर वह धरती पर जीवन और मृत्यु की सीमा पर जूझ रहा है।"

महामहिम ने चित्रगुप्त के शब्दों को अनसुना कर दिया। यमलोक की गंध उनके लिए असह्य थी। वे शीघ्रातिशीघ्र अपना पक्ष रखकर इस स्थान से मुक्त होना चाहते थे। उन्होंने अपनी बात शुरू की - "कुलपतियों को सुधारने के बाद मैंने सभी रजिस्ट्रारों को दुरुस्त करने का संकल्प लिया। एक विश्वविद्यालय के कुलपति ने शिकायत की कि उनके रजिस्ट्रार ने मिठाई के डिब्बे में नोटों की गड्डियाँ भेंट करने का प्रयास किया था। मैंने छानबीन की और पाया कि राज्य के लगभग सभी रजिस्ट्रार भ्रष्टाचार के दलदल में डूबे हुए थे। एक झटके में मैंने सबको बर्खास्त कर दिया और नए चेहरों की नियुक्ति की। मैं स्वयं विश्वविद्यालयों का दौरा करता था, मैंने अपने निजी सचिव को स्पष्ट निर्देश दिए थे कि 'जिस दिन तुम अपने कक्ष में बैठे दिखे, उस दिन तुम्हारी सेवा समाप्त।' वह प्रतिदिन किसी-न-किसी विश्वविद्यालय के दौरे पर होता और जब कक्ष में होता, तब फ़ोन पर कुलपतियों से समस्याओं का जायज़ा लेता रहता। मैं भ्रष्ट नहीं था, श्रीमान। मेरे सुधारों ने शिक्षा को नई दिशा दी।"

"क्या आपका पक्ष समाप्त हुआ, श्रीमान?" कालदेव की गहन आवाज़ यमलोक में गूँजी। महामहिम का आत्म-विश्वास क्षणभर को डगमगा गया। कालदेव ने पुनः कहा - "यदि आपकी बात समाप्त हो गई है, तो हम श्रीमान कुणाल का पक्ष सुनें। इन्हें शीघ्र धरती पर लौटना है।"

कुणाल ने एक गहरी साँस ली, जैसे वह वर्षों की चुप्पी को शब्दों में ढालने जा रहा हो। उसने आरंभ किया - "तीन वर्षों से मैंने राजभवन में सत्य को दस्तावेज़ों के बोझ तले दबते देखा। मैंने विश्वविद्यालयों के ट्रांसफ़र आवेदनों को रिश्वत की भेंट चढ़ते देखा। एक आवेदन के लिए निजी सचिव ने मुझसे कहा - 'छह लाख लगेंगे, नहीं तो फ़ाइल धूल खाएगी।' मैंने ऐसे अनाचार अपने सामने देखे, पर परिवार की ज़िम्मेदारियों ने मुझे चुप रहने को मजबूर किया।"

चित्रगुप्त ने बीच में हस्तक्षेप किया - "श्रीमान कुणाल, हमने आपको यहाँ सहानुभूति के लिए नहीं बुलाया। आपने राजभवन के गलियारों में भ्रष्टाचार को प्रत्यक्ष देखा है। जो आपने देखा, उसे विस्तार से बयान करें।"

"जी, श्रीमान", कुणाल ने कहा, उसकी आवाज़ में एक तल्खी थी, मानो वह सत्ता के काले सच को उजागर करने को तैयार हो। "जब मैंने महामहिम के आगमन के बाद पहली बार कुलपतियों की बैठक के दस्तावेज़ संभाले, तब मैंने एक अजीब उन्माद देखा। चमचमाती गाड़ियाँ राजभवन के मुख्य द्वार से भीतर आ रही थीं। कुलपति अपने साथ लाखों की कीमत के उपहार लाए थे। सोलह कुलपतियों ने चाँदी की मूर्तियाँ, महँगे गैजेट्स और नकदी भेंट की। मैंने इन भेंटों को डायरी में दर्ज करना चाहा, किन्तु महामाहिम के निजी सचिव ने मुझे ऐसा करने से मना कर दिया और फटकार भी लगाई। निजी सचिव ने गेट के पहरेदार को निर्देश दिए कि अमुक-अमुक गाड़ी की जाँच न की जाए। राजभवन में उस दिन महाभोज का आयोजन हुआ था।"

महामहिम ने बीच में टोकते हुए कहा - "कुलपति तो

केवल सोलह थे, क्योंकि राज्य में विश्वविद्यालय ही केवल बीस हैं। शेष जगहों पर प्रभारी कुलपतियों का राज चलता है। क्या मैं उन्हें भूखा लौटाता? और उपहार? वे उनकी अपनी मर्ज़ी से लाए गए थे।"

कुणाल ने तल्खी से जवाब दिया - "सोलह कुलपति, और कुछ उनके साथी, यही न? पर उस दिन भोज का बजट दो हज़ार लोगों का क्यों था, जबकि उपस्थित केवल सौ थे? मैंने वह बजट फ़ाइल स्वयं देखी। और उपहार? एक-एक कुलपति लाखों की कीमत के उपहार क्यों लाया?"

महामहिम के चेहरे पर असहजता छा गई। वे झूठ बोलना चाहते थे कि उपहार लाखों के नहीं थे और उन्होंने कुछ लिया ही नहीं, पर वे चाह कर भी झूठ नहीं बोल सके। धर्म ग्रंथ उन्होंने सिर्फ़ उतना ही पढ़ा था, जितने से उनका धार्मिक चोला बना रहे, वह मंचों पर भाषण दे सकें। अगर उन्होंने गहराई से उसका अध्ययन किया होता, तो जानते कि यमलोक में थोड़ी-बहुत चालाकी, जैसे एक पक्ष की बात बताना, आदि तो चल सकती है, लेकिन सफ़ेद झूठ नहीं।

"मैंने धनतेरस के दिन एक और घटना देखी", कुणाल ने कहना जारी रखा। "ट्रकों से अटैचियाँ उतारी जा रही थीं। सुना गया कि महामहिम ने दरबार हॉल के कर्मचारियों को दिवाली के उपहार स्वयं अपने हाथों से बाँटने का संकल्प लिया था। पर मैंने बजट दस्तावेज़ देखे, उन चमचमाती अटैचियों में केवल उपहार नहीं, कमीशनखोरी की गंध भी छिपी थी। खरीदारी में फ़र्जी बिल बनाए गए और खर्च को दस गुना बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया गया।"

"आपको इतनी गहरी जानकारी कैसे मिली, श्रीमान कुणाल?" चित्रगुप्त ने आश्चर्य से पूछा, उनकी आवाज़ में एक सूक्ष्म कौतुक था।

"राजभवन के एक कर्मचारी होने के नाते मैंने सत्य को अपनी आँखों से देखा है", कुणाल ने कहा। "मैंने निजी सचिव की बातें सुनीं, जो बैठकों के दौरान गुप्त निर्देश देते थे। एक बार मैंने सुना, वे कह रहे थे - 'फ़्लाइट से आम बुक हो रहल बा महामहिम के घर भेजे खातिर। डेढ़ लाख रुपया तो खाली किराया लागल बा।' मैंने वह बिल देखा, डेढ़ लाख केवल आम भेजने का किराया। इतने रुपयों में तो पूरा गाँव आम खा सकता था। आलोकरपुरम की शाही लीची और हाजीपुर के केले, सब सत्ता की भेंट चढ़ रहे थे।"

कुणाल ने एक ठहराव लिया, जैसे वह उन अनचाही स्मृतियों के बोझ को उतार रहा हो। उसने अपनी गवाही को और गहराई से उजागर किया, जैसे वह सत्ता के काले पर्दे को एक-एक कर खींच रहा हो। "महामहिम का निजी सचिव विश्वविद्यालयों के कुलपतियों से गुप्त बातें करता था । वह कहता, 'साहब अभी फ़्री हैं, आकर मिल लीजिए।' उसने कमाई का हर संभव रास्ता ईजाद किया था। एक गरीब राज्य के सरकारी विश्वविद्यालयों में, जहाँ शायद ही किसी कॉलिज में ढंग के चार कमरे और एक टॉयलेट होंगे, दीक्षांत-समारोहों के नाम पर करोड़ों रुपये फूँक दिए गए। मैंने स्वयं उन बजट फ़ाइलों को देखा, जिनमें खर्च को कई गुना बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया गया था।"

"निजी सचिव प्रत्येक दिन विश्वविद्यालयों के दौरे पर जाता था", पर क्या उन दौरों से विश्वविद्यालयों की दशा बदली? नहीं। वह केवल यह देखने जाता था कि कहाँ से कितनी उगाही हो सकती है। यही आरोप महामहिम पर भी लगे थे, जब वे विश्वविद्यालयों का दौरा करते थे, सीनेट की बैठकों में हिस्सा लेते थे। मान भी लिया जाए कि उनके खिलाफ़ ये सारे आरोप झूठे थे, पर यह तो सत्य है कि इनका निजी सचिव जब भी दौरों से लौटता था, उसके साथ दर्जनों सूटकेस उपहारों के नाम पर भरे होते थे। मैंने अपनी आँखों से यह सब देखा है।

कुणाल ने एक ठहराव लिया, फिर कहा - "परीक्षा की कॉपियों का घोटाला तो और भी शर्मनाक था। दस रुपये की कॉपी तीस रुपये में खरीदी जाती थी। महामहिम कहते हैं कि यह पिछले महामाहिम के समय शुरू हुआ, पर आपने इसे क्यों नहीं रोका? आपके कार्यकाल में भी यह खरीद जारी रही और इसकी कोई जाँच नहीं हुई। एक विश्वविद्यालय ने मार्कशीट और डिग्रियों के लिए एक कंपनी को ठेका दिया। उस ठेके में पैसे की बंदरबाँट हुई। कंपनी को भुगतान नहीं मिला और वह परीक्षा का सारा डेटा लेकर रफ़ूचक्कर हो गई। वर्षों तक छात्र अपनी मार्कशीट के लिए दर-दर भटकते रहे। मैंने वे शिकायतें देखीं, जो आपके टेबल तक पहुँचीं, पर आपने क्या किया, महामहिम?"

महामहिम ने बीच में टोकने की कोशिश की, उनकी आवाज़ में हताशा थी। "मुझसे गलतियाँ हुईं, पर ज़िम्मेदारी केवल मेरी नहीं। मैं सुधार के लिए गया था। पर जब कुलपति स्वयं घूस देने को उतारू हों, तब मैं क्या करूँ? मैंने अपने पूरे कार्यकाल में जितना कमाने का सोचा था, उससे कहीं अधिक मुझे पहली ही बैठक में भेंट कर दिया गया। मैंने विश्वविद्यालयों में कड़ाई बरती। नकल रोकने की कोशिश की। पर जब परीक्षा का परिणाम दस प्रतिशत आया, तो छात्रों ने मुझे घेर लिया। उस दिन मैं मुश्किल से जान बचाकर भागा। परीक्षा का परिणाम कम आने पर राष्ट्रीय स्तर पर मेरी आलोचना हुई। क्या यह सब मेरी गलती थी?"

उनकी आवाज़ काँप रही थी। "यह यमलोक की दुर्गंध... कोई इसका उपाय करो!" महामहिम ज़ोर से चीखे, उनका चेहरा क्रोध और तनाव से विकृत हो गया।

"कैसी दुर्गंध?" यहाँ तो कोई गंध नहीं। चित्रगुप्त ने प्रश्नवाचक नज़रों से कालदेव की ओर देखा। यमलोक में जो जीवात्मा जैसी होती थी, उसे वैसी ही गंध मिलती थी। पापी को दुर्गंध और पुण्य आत्मा को सुगंध। तो क्या महामहिम के कर्मों का फ़ैसला हो गया? चित्रगुप्त कान खुजाते हुए विचार में डूब गए।

कालदेव ने बहस को विराम देने का संकेत दिया। उनकी आँखें समय के गर्भ में झाँक रही थीं, मानो सत्य और पाप का हर क्षण उनके सामने जीवंत हो उठा हो। "सत्य का कोई कतरा हमसे छिपा नहीं", उन्होंने गंभीर स्वर में कहा। "कुणाल, तुमने अपनी गवाही दी। तुम्हारा समय यमलोक में समाप्त हुआ। धरती पर तुम्हारी प्रतीक्षा हो रही है।"

उसी क्षण, धरती पर कुणाल के अस्पताल के कमरे में हलचल मच गई। उसकी सुमुखी पत्नी, जो उसके बगल में बैठी थी, मॉनिटर पर दिल की धड़कन शून्य देख चौंकी। वह चीखती हुई डॉक्टर को बुलाने दौड़ी। डॉक्टर ने तुरंत मुआयना किया - दिल की धड़कन बंद थी। सुमुखी ने विलाप शुरू किया और ज़ोर-ज़ोर से कुणाल के सीने पर मुक्के मारने लगी, जैसे वह मृत्यु को चुनौती दे रही हो।

यमलोक इस हलचल से अनजान नहीं था। कुणाल का समय अभी पूरा नहीं हुआ था। कालदेव ने एक सूक्ष्म संकेत दिया और कुणाल की आत्मा तत्क्षण मृत्युलोक की ओर रवाना हो गई। जैसे ही उसकी आत्मा ने उसके शरीर में प्रवेश किया, कुणाल का दिल धड़कने लगा। सुमुखी, जो अभी भी उसके सीने पर मुक्के बरसा रही थी, ने मॉनिटर पर वापस लौटी दिल की धड़कन देखी। वह हतप्रभ थी। उसने खुद को सावित्री-सा अनुभव किया, जिसने अपने सत्यवान को यम के पंजों से छुड़ा लिया था। पर यमलोक में सत्य का प्रश्न अभी अनुत्तरित था। महामहिम खामोश खड़े थे। चित्रगुप्त ने उनकी ओर देखा, उनकी लेखनी रुकी हुई थी। "सत्य क्या है?" उन्होंने कालदेव से पूछा, जैसे समय स्वयं इस प्रश्न का उत्तर माँग रहा हो। कालदेव ने कोई उत्तर नहीं दिया। उनकी निगाहें अनंत में खोई थीं, मानो सत्य को समय के गर्भ में ही छोड़ देना उचित हो। यमलोक की सन्नाटे-भरी हवा में केवल एक प्रश्न गूँज रहा था - सत्य क्या था?

धरती पर, कुणाल चमत्कारिक रूप से कोमा से बाहर निकल आया। उसकी आँखें धीरे-धीरे खुलीं। सुमुखी ने उसे गले लगाया। उसके नेत्र आँसुओं में डूबे थे। पर कुणाल के मन में वही यक्ष प्रश्न गूँज रहा था कि सत्य क्या था? क्या महामहिम सच में भ्रष्ट थे या सत्ता का तंत्र उन्हें भी अपनी गिरफ़्त में ले चुका था? यह प्रश्न अनुत्तरित रहा, जैसे सत्य स्वयं समय के गर्भ में छिपा हो। किधर है सत्य? यह आवाज़ उसके मन-मस्तिष्क में लगातार गूँज रही थी।

amitranjanth1989@gmail.com

प्लेटोनिक लव की परिणति

महेश चंद्र द्विवेदी
लखनऊ, भारत

आज तीन वर्ष बीत चुके थे जब क्षितिजा इंडिया हैबिटाट सेन्टर, दिल्ली के भव्य हॉल में नवनीत का गायन सुनकर अभिभूत हो गई थी। वातानुकूलित हॉल खचाखच भरा हुआ था। प्रकाश मद्धिम था। नवनीत राग यमन में 'सजना, हिय की टीस जाने ना' गा रहा था। नवनीत द्वारा 'ना' के स्वर को लम्बा खींचे जाने पर क्षितिजा के मन में एक अनमना-सा खिंचाव उत्पन्न हो रहा था। उसे लग रहा था कि उसके मन के कंपन नवनीत के स्वरों की आवृत्ति से तादात्म्य स्थापित कर रहे थे। भौतिक शास्त्र के अनुसार दो आवृत्तियाँ समान हो जाने की अवस्था में कंपन का तरंगदैर्घ्य बहुत बढ़ जाता है। क्षितिजा के कंपनों का तरंगदैर्घ्य भी इतना बढ़ा हुआ था कि उसके नेत्र स्वतः निमीलित हो गए थे और वह दूसरे लोक में विचरण करने लगी थी। यह भावानुभूति तब टूटी, जब गायन के स्वर थम गए।

क्षितिजा विश्वविद्यालय में दर्शन-शास्त्र की अध्यापिका थी। उसकी तर्कबुद्धि जितनी प्रखर थी, उतना मुखर उसका स्वभाव था। उसे मित्रों से मिलने-जुलने, बात करने एवं संगीत सुनने का विशेष चाव था। संगीत महाविद्यालय में नवनियुक्त अध्यापक नवनीत की गायन-प्रतिभा के बारे में वह पहले ही सुन चुकी थी और आज इस कार्यक्रम के आयोजन की सूचना मिलते ही वह यहाँ आई हुई थी। घर में किसी अन्य को संगीत में रुचि न होने के कारण वह अकेली ही आई थी। नवनीत द्वारा अन्तिम बार अवरोहित ध्वनि में 'सजना...' कहकर शांत होने पर क्षितिजा कुछ पलों तक अपने को सहज करती रह गई थी और अन्यों के साथ तालियाँ बजाना भूल गई थी। परिवेश से अवगत होने पर वह अनायास नवनीत को बधाई देने हेतु मंच की ओर बढ़ चली थी। क्षितिजा के पहुँचते-पहुँचते नवनीत मंच से उतरते हुए अंतिम सीढ़ी पर आ चुका था।

"बधाई हो नवनीत जी। आपके गायन ने तो श्रोताओं को विस्मृति की स्थिति में पहुँचा दिया" - यद्यपि क्षितिजा कहना चाहती थी कि मुझे विस्मृति लोक में पहुँचा दिया, परंतु भारतीय नारी के संस्कारगत संकोच के वशीभूत होकर उसने बात को समस्त श्रोताओं पर थोपकर कहा। क्षितिजा के स्वर में सत्य का भास तो था ही, साथ-साथ एक अनोखी खनक भी थी, जिसने नवनीत जैसे स्वर-पारखी को क्षितिजा को धन्यवाद देने की औपचारिक प्रक्रिया के दौरान उसकी ओर कुछ अतिरिक्त पलों तक देखते रहने को बाध्य कर दिया था।

मानव जीवन अनोखेपन एवं विरोधाभासों से परिपूर्ण रहता है - कभी जीवन में सहस्रों ऐसे पल बीत जाते हैं, मानो कुछ घटित ही न हुआ हो और कभी-कभी दो-चार पल मात्र ऐसी स्थायी हलचल उत्पन्न कर जाते हैं, जैसे ऐटलांटिक महासागर में गल्फ़-स्ट्रीम की धारा यूरोप से मेक्सिको तक सागर को जीवंत, उद्वेलित एवं ऊष्मित करती है। आज के ये पल अप्रयास क्षितिजा के मानस को भी ऐसे ही ऊष्मित एवं उद्वेलित कर गए थे। इस प्रथम मिलन के पश्चात चाहे-अनचाहे, क्षितिजा इस रूमानी ऊष्मा एवं उद्वेलन की पुनरानुभूति हेतु नवनीत के प्रत्येक गायन कार्यक्रम में जाने लगी। नवनीत के मंच पर आते ही वह औरों से आँखें बचाकर उसे कुछ अतिरिक्त पल के लिए निहारती रहती थी। नवनीत उन अतिरिक्त पलों का गूढ़ार्थ समझने लगा था। वह भी मंच को प्रणाम करते समय क्षितिजा की सीट को ढूँढ लेता था और अवसर पाकर उसे कुछ अधिक क्षणों के लिए देख लिया करता था। लुक-छिपकर देखने का यह मौन खेल गायन के दौरान चलता रहता था। कार्यक्रम की समाप्ति पर क्षितिजा मंच के निकट जाकर नवनीत को बधाई देने के बहाने उससे कुछ क्षणों की निकटता प्राप्त करने का लोभ सम्वरण नहीं कर पाती और क्षितिजा के मंच के निकट पहुँचने में कुछ देरी होने पर नवनीत किसी से बात करते रहने के बहाने उसकी प्रतीक्षा करने लगता।

अग्नि में जितनी समिधा डाली जाती है, वह उतनी ही भड़कती है। नवनीत की स्मित बिखेरती निगाहें शनैः शनैः क्षितिजा के हृदय में प्रवेश कर पहले से सुलगती अग्नि में

समिधा का काम करने लगी थीं। इस अग्नि की ऊष्मा नवनीत को भी उसी अनुपात में तपाने लगी थी। प्रेम का ताप बढ़ने पर विछोह का एक-एक पल अधिकाधिक असह्य होता जाता है एवं प्रेम के ताप में जलकर भस्म हो जाने का उद्वेलन तीव्रतर होता जाता है। क्षितिजा और नवनीत दोनों पतिंगे के समान प्यार के दीये की लौ में भस्म हो जाने की कामना के वशीभूत होने लगे थे। नवनीत के एक गायन कार्यक्रम के पश्चात् एक रात्रि जब क्षितिजा उसे बधाई देने उसके पास गई थी, तभी एक श्रोता ने नवनीत का विज़िटिंग कार्ड माँगा था, तो क्षितिजा भी सस्मित बोल पड़ी थी - "एक कार्ड मुझे भी दीजिएगा?"

नवनीत के मन में गुदगुदी उठी और उसने कार्ड क्षितिजा को देते हुए एक कुशल कलाकार की भाँति उसकी पतली-लम्बी उंगलियों को सप्रयास स्पर्श कर लिया था। दोनों के शरीर में विद्तप्रकम्प हुआ था। उस समय प्रत्यक्षतः दोनों सहज ही बने रहे। रात्रि में जब भोजन के उपरांत घर के सब लोग सोने चले गए थे और क्षितिजा ड्रौइंग रूम में अकेली रह गई, तब उसने सहमते हुए नवनीत को फ़ोन मिलाया था। दूसरी ओर से नवनीत की "हलो!" सुनकर क्षितिजा कुछ क्षण तक कुछ बोल न सकी। तब नवनीत, जो क्षितिजा के फ़ोन की मन-ही-मन प्रतीक्षा करता रहा था, काँपते होठों से बोल पड़ा था - "क्षितिजा?"

"सो गए थे?" - क्षितिजा को फ़ोन पर अपने होने की स्वीकृति करने के बजाय स्वयं प्रश्न करना अधिक सुगम लगा था।

"नहीं... फ़ोन की प्रतीक्षा कर रहा था।"

यह सुनकर क्षितिजा अनायास हँस दी थी, नवनीत भी हँस पड़ा। फिर बातचीत अपने आप बह निकली और देर तक यह सिलसिला चलता रहा। धीरे-धीरे ऐसी बातचीत की आवृत्ति बढ़ती गई, परंतु सप्ताह, माह और वर्ष बीत जाने पर भी दोनों में से कोई भी वे तीन शब्द नहीं कह पाए, जिन्हें बोलने के लिए आदिकाल से प्रेमी लोग बेचैन रहे हैं। इसी बेचैनी के बीच एक दिन क्षितिजा ने नवनीत से एक प्रश्न पूछ लिया था - "क्या आप प्लेटोनिक लव में विश्वास रखते हैं?"

प्रश्न दूरभाष के तारों में झनझनाते हुए नवनीत के मानस को झंकृत कर रहा था। यद्यपि शब्दों की ध्वनि में किसी प्रकार की थरथराहट का होना प्रतीत नहीं हो रहा था, तथापि नवनीत का मन उस प्रश्न की निश्छलता पर पूर्णतः आश्वस्त नहीं हो सका था। नवनीत के पास इसके ठोस कारण भी थे। उसका मन उस प्रश्न के निहितार्थ को समझकर मीलों उछल रहा था, परंतु प्रकटतः उसने एक दार्शनिक के भाव से बोल दिया - "मैडम क्षितिजा! यू मीन ऐमोर प्लेटोनिकस अर्थात् आध्यात्मिक प्रेम? यद्यपि आध्यात्मिक प्रेम की चेतना आदिकाल से समस्त विश्व में रही है, अंग्रेज़ी भाषा में सर्वप्रथम इस शब्दद्वय का प्रयोग सर विलियम डेवेनांट ने अपनी पुस्तक 'प्लेटोनिक लवर्स' (1636) में किया था। पश्चिमी देशों में ऐमोर प्लेटोनिकस की अवधारणा ग्रीक दार्शनिक प्लेटो की पुस्तक 'सिम्पोज़ियम' से उत्पन्न मानी जाती है, जिसमें विपरीतलिंगी व्यक्ति के प्रति ऐसे प्रेम को वर्णित किया गया है, जो दैहिक आकर्षण से ऊपर उठकर दैव के प्रति लगाव उत्पन्न करे। आधुनिक शब्दकोशों के अनुसार यह दो विपरीतलिंगी व्यक्तियों के मध्य ऐसा निर्मल आध्यात्मिक प्रेम है, जिसमें शारीरिक इच्छाएँ न हों।"

क्षितिजा नवनीत के एक-एक शब्द को आत्मसात करती रही थी, फिर हँसकर बोली -

"नवनीत, मुझे लग रहा है कि दर्शन-शास्त्र की अध्यापक मैं नहीं, तुम हो।"

नवनीत कुछ देर तक फ़ोन पर हँसता रहा, फिर बोला -

"मैडम, मैंने ब्याह नहीं किया है, तो क्या बारातें भी नहीं कीं?"

क्षितिजा ने व्यंग्य भरे स्वर में उत्तर दिया - "अच्छा इतनी बारातें की हैं, तो यह भी बता दीजिए कि ऐमोर प्लेटोनिकस की परिणति क्या होती है?"

नवनीत कुछ क्षण सोचता रहा था। फिर गम्भीर स्वर में बोला - "मेरी समझ में दो प्रकार की परिणति सम्भव हैं - 'शारीरिक प्रेम' अथवा 'शरत चंद्र चट्टोपाध्याय के नायक देवदास की जैसी त्रासदी।' नवांकुरित प्रेम सदैव प्लेटोनिक ही होता है - यदि किसी के प्रति प्रारम्भ से मात्र कामाकर्षण उत्पन्न होता है, तो वह वासना मात्र होती है, प्रेम नहीं। कामाकर्षण में दूसरे को प्राप्त करने की चाह कुछ वैसी होती है, जैसे भूखे को तृप्ति की चाह होती है। इसमें प्रेम का

प्राथमिक उद्देश्य होता है, पात्र के शरीर को पाना और उसके मन को जीतना गौण होता है। प्लेटोनिक प्रेम का प्रथम उद्देश्य पात्र के मन को जीतकर अपने प्रेम का प्रतिदान पाना होता है। मन का आधार 'अहं' है, इसीलिए प्लेटोनिक प्रेम में पात्र के प्रति जितना आकर्षण उत्पन्न होता है, उससे कहीं अधिक 'अहं' की रक्षा का भाव भी उत्पन्न होता है। प्लेटोनिक प्रेम में प्रेमी अपने प्रेम के पात्र द्वारा अस्वीकृत कर दिए जाने की आशंका से ग्रस्त रहता है और उसके मन में 'अहं' के आहत होने का भय भी रहता है। यदि प्लेटोनिक प्रेम की परिणति शारीरिक प्रेम में हो जाती है, तो 'अहं' के आहत होने की आशंका कम हो जाती है। लेकिन ऐसे प्लेटोनिक प्रेम, जो शारीरिक प्रेम में परिवर्तित नहीं हो पाते, अक्सर त्रासदी में समाप्त हो जाते हैं। ऐसी त्रासदी जो मानसिक के साथ-साथ शारीरिक भी हो सकती है। अकस्मात प्रेम का अपात्र हो जाना किसी भी मानव के लिए ऐसा अनुभव होता है, जो दुख, नैराश्य तथा अवसाद की जननी होती है।"

नवनीत का उत्तर सुनकर क्षितिजा के मानस को ऐसा झटका लगा, जैसे उसने बिजली का खुला तार छू लिया हो। वह अभी तक एक काल्पनिक प्रेम-संसार में जी रही थी, जो सम्भवतः उसके पति के स्वभाव एवं अपने घर के वातावरण की घुटन से बाहर निकलकर गहरी साँस लेने का प्रयत्न मात्र था। नवनीत द्वारा बताए गए दोनों परिणामों के लिए वह तैयार नहीं थी और उनकी भयावहता से अत्यंत घबरा गई थी। वह देर तक कुछ न बोल सकी, जिससे नवनीत का मन किसी आशंका से भर गया।

"क्षितिजा! क्या हुआ?" उसने चिंतित स्वर में पूछा।

"मुझे कुछ आवश्यक काम है", यह कहते हुए क्षितिजा ने फ़ोन काट दिया।

नवनीत ने बाद में अनेक बार क्षितिजा को फ़ोन किया, परंतु उसने फ़ोन नहीं उठाया और न अपनी ओर से कोई संपर्क किया। क्षितिजा का नवनीत के कार्यक्रमों में आना भी बंद हो गया था। नवनीत को स्पष्ट हो गया था कि कारण चाहे जो भी हो, क्षितिजा उससे बात नहीं करना चाहती है। जितना वह चकित था, उससे कहीं अधिक आहत था। मानवीय समाज में सदियों से पुरुष-वर्चस्व रहने के कारण पुरुष के 'अहं' को लगी ठेस उसे विचलित करती है और नवनीत भी असह्य सीमा तक विचलित था।

क्षितिजा ने इस कथानक से अपने को पूर्णतः असम्बद्ध कर लिया और उसकी परिधि से इस तरह बाहर निकल गई कि उसकी छाया भी उस परिधि में न पड़े। इसलिए यह अनुमान लगा पाना असंभव है कि क्षितिजा पर क्या बीती अथवा उसने अपने दुख को कैसे सहन किया। हाँ, कहानी के पुरुष पात्र नवनीत के तीन संभावित अंत हो सकते हैं। यदि यह 19वीं सदी की घटना होती, तो शरत चंद्र चट्टोपाध्याय के 'देवदास' की तरह क्षितिजा को पाने के लिए उसके द्वार पर अंतिम श्वासें लेता हुआ पाया जाता, यदि 20वीं सदी की होती, तो स्वयं को सुरा के खुमार में डुबोकर किसी चंद्रमुखी के सान्निध्य को क्षितिजा का सान्निध्य समझकर पड़ा होता। परंतु यह 21वीं सदी थी और नवनीत ने एक वर्ष में ही अपने को क्षितिजा से हुए ऐमोर प्लेटोनिकस के बंधनों से मुक्त कर लिया होता। कुछ दिन तो वह दुत्कारे हुए श्वान की भाँति लज्जित, क्षुभित एवं त्रसित बना रहा। फिर उसने एक दिन टी. वी. पर एक पात्र को यह कहते हुए सुन लिया कि प्यार भीख में नहीं मिलता है और भिक्षा में प्राप्त प्यार स्वीकारना भी नहीं चाहिए। बस उसी दिन उसने अपने मन पर असम्पृक्तता का आवरण ओढ़ लिया था। विगत यादों से छुटकारा पाने के उद्देश्य से उसने संगीत महाविद्यालय से त्याग-पत्र दे दिया और एक नामी गज़ल गायक मियां सरवर अली की शागिर्दगी ले ली। अब वह अपनी नई फ़ैन फ़ौज़िया के साथ लिव-इन में रहने लगा था।

maheshdewedy@yahoo.com

प्रार्थना

चंद्रेश कुमार
हिमाचल प्रदेश, भारत

सरकार में बतौर अधिकारी कार्यरत होने के मायने, पद और प्रतिष्ठा से इतर भी होते हैं। समाज और सरकार के लिए सेवारत होने का एक पहलू यह भी है कि अधिकारी को अपने कार्यकाल की समाप्ति पर एक पड़ाव से ट्रान्सफ़र होकर अगले पड़ाव की ओर कदम बढ़ाना होगा। सार्वजनिक जीवन की इसी पगडंडी पर सफ़र करते हुए मेरा ट्रांसफ़र भी शिमला से हो गया था, अगले पड़ाव यानि किन्नौर में, जो हिमाचल प्रदेश के पूर्वोत्तर में दुर्गम पहाड़ों में बसा और तिब्बत की सीमा को छूता एक ज़िला है।

परिवार के साथ छ: वर्ष कब शिमला में बिता लिए, पता ही नहीं चला। अब विस्थापन की मजबूरी में मन में उमड़ती भावनाएँ समंदर की लहरों से ज्यादा हिलोरें लेतीं और शोर मचाती थीं। हॉस्टल में पढ़ाई करने और फिर नौकरी करते हुए यूँ तो मैं बचपन से ही परिवार से दूर ही रहा था, पर शिमला में पत्नी और बेटे के साथ बिताए इन सालों ने इस पारिवारिक दूरी के खालीपन को काफ़ी हद तक भर दिया था। गगरी अभी कुछ ही तो भरी थी, किन्तु जीवन-संगिनी और मुझे भली-भाँति पता था कि एक दिन तो 'इस दिन' को आना ही था। पत्नी अपनी दृढ़ता और आत्मविश्वास को भावनाओं के गुबार में लपेटे हुए, मुझे आने वाली पेशेवर ज़िम्मेदारियों और संभावनाओं की ओर उन्मुख कर रही थीं, मानो उसी बहाने खुद को भी आश्वस्त कर स्थिति को सामान्य बनाने की कोशिश कर रही थीं। उनके आत्मविश्वास और मानसिक परिपक्वता से मैं परिचित था, फिर भी उनके साथ रहकर पारिवारिक ज़िम्मेदारियों को साथ में न निभा पाने का अपराध-बोध मुझे नोचता था। जे.एन.यू. के दिनों में सीखी 'लैंगिक समानता' की विचारधारा को मैं असल ज़िंदगी में उतारना चाहता था, उनके साथ पारिवारिक ज़िम्मेदारियों को निभाना चाहता था - बेटे को स्कूल के लिए तैयार करना, सब्ज़ियाँ काटना, कपड़े इस्त्री करना आदि सबमें हाथ बटाना चाहता था। नन्हा-सा बालक, जिसने अभी-अभी अपने माता-पिता के प्यार को पहचानकर तुतलाना शुरू किया था और उँगली थामे पहाड़ी जीवन की 'पौड़ियाँ चढ़ने लगा था', को इस बात का इल्म ही नहीं था कि अब पौड़ियाँ चढ़ाने और 'क्रेश' के दरवाज़े पर घंटी बजाने के लिए सिर्फ़ माँ होगी; उसके जूते को इत्मीनान से बाँधने, 'जोज़े' और 'माशा' के कार्टून चैनल लगाकर खाना खिलाने, 'यूरो किड्स' की टी-शर्ट पहनते हुए उसके नखरे उठाने वाले 'पापा' की जगह अब 'मम्मा' की 'जल्दी करो बेटा' के साथ अपना बचपन ढालना होगा।

शायद नौकरी करते हुए जीवन को अपनी चाहत की रूपरेखा में सीमित समय तक ही निभाया जा सकता था। पाठक शायद यह सोचे कि लेखक ने खुद को भावावेश में सीमित कर रखा है और भावनात्मक बुद्धिमत्ता यानि 'इमोशनल इन्टलीजेंस' की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। परंतु इससे इतर मेरा अटूट विश्वास है कि 'भाव की निर्बाध अभिव्यक्ति करने की क्षमता' ही मानव को अन्य जीवों से अलग बनाती है और यही क्षमता इंसान को अपने से इतर, समाज के अन्य प्राणियों के प्रति सहानुभूति और समानभूति की दिशा प्रदान करती है।

तमाम संवेदनाओं से जूझते और सोच में तार्किकता को स्थान देते हुए मैंने विचार किया कि सीमा पर तैनात मेरे फ़ौजी मित्र, गाँव से दूर फ़ैक्टरियों, कारखानों और रियल एस्टेट क्षेत्रों में काम करनेवाले अनगिनत मज़दूर, हमारे इर्द-गिर्द शिमला और हिमाचल के सेब के बगीचों में काम करने वाले, मोमो की दुकान लगाने वाले नेपाली मूल के लोग और कश्मीर के 'ख़ान' भी तो सब कुछ छोड़-छाड़कर सैकड़ों-हज़ारों किलोमीटर दूर डेरा डाले हुए हैं। ऐसे में मेरा स्थानांतरण तो मात्र 200 किलोमीटर दूर ही हुआ था।

मुझे किन्नौर पहुँचकर सेवाभार ग्रहण कर मौजूदा अधिकारी महोदय को सेवामुक्त करना था। किन्नौर भारत और चीन की सीमा को जोड़ने वाला एक बहुत ही खूबसूरत ज़िला है, ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ और उनके बीच से मानो

लहराते हुए रास्ते और उन रास्तों पर चलती हुई गाड़ियाँ दूर से चींटियों की लाइनें-सी जान पड़ती थीं। एक ओर सतलुज नदी का मटमैला और धीमी गति से बहता पानी, दूसरी ओर विशालकाय पहाड़ और इनके बीच में साँप की तरह सड़कें। अत्यंत ही खूबसूरत और मनोरम दृश्य। परीक्षा की तैयारी करते हुए नाथपा-झाकरी हाइड्रोपावर प्लांट के बारे में सिर्फ़ पढ़ा था। कभी वहाँ नौकरी करूँगा, यह नहीं सोचा था। कार्यालय तक पहुँचते-पहुँचते ज्ञान में वृद्धि भी हुई कि नाथपा और झाकरी सतलुज के जल को दिशा देते एक-दूसरे से करीब इक्कीस किलोमीटर की दूरी पर स्थित हैं। ऐसा लगता है, मानो नाथपा और झाकरी कोई प्रेमी-प्रेमिका हों और सतलुज उनके प्रणय-निवेदन को एक-दूसरे तक पहुँचाने वाली माया।

सेवाभार ग्रहण करने के दौरान मुझे ज़िले में विभिन्न परियोजनाओं से अवगत होने का मौका मिला। अब तक जो कुछ कागज़ों में पढ़ा था - सेब के बगीचों और किन्नौरी संस्कृति को जानने तथा नाशपाती, अखरोट, चूली और खुमानी को चखने का मौका मिला। इस कड़ी में हम किन्नौर के रक्षम पंचायत पहुँचे, जहाँ के लोग हमारे द्वारा चलाई जा रही परियोजना के तहत अपने सेब के बगीचों में पानी पहुँचाने का प्रबंध कर रहे थे। हमारे स्वागत के लिए उन्होंने फलों की मालाएँ बना रखी थीं। परियोजना पर चर्चा के बाद हम बागवानों के साथ वहीं सेब के बगीचे में ही चट्टानों पर बैठ गए और चाय की चुसकियाँ लेने लगे। मेरे लिए यह अद्‌भुत और अनोखा अनुभव था। अब तक हमने सिर्फ़ फूलों की मालाएँ ही देखी थीं। फूलों से फलों की मालाओं का सफ़र मैंने किन्नर कैलाश की धरती पर तय किया। एक नई चीज़ जो मुझे इस जगह पर देखने को मिली, वह थी 'महिला-सशक्तिकरण' और 'पति-प्रधान प्रथा' का अभाव। रक्षम पंचायत की प्रधान महिला थीं और जिस विश्वास के साथ वे परियोजना के बारे में बता रही थीं और बागवानों का नेतृत्व कर रही थीं, वह अनुकरणीय था तथा देश में महिला अधिकारों और क्षमताओं के विकास में प्रगति का द्योतक है। मेरे लिए यह एक महत्त्वपूर्ण सीख थी।

परियोजना के मुवाइने के बाद हमने वहीं पर भोजन किया। सेब के बगीचे से लौटते समय हमें एक छोटा झबरीला, किंतु उच्च नस्ल वाले कुत्ते का बच्चा दिख गया। देखने में मज़बूत और गबरू, लेकिन स्वभाव में अत्यंत सीधा, थोड़ा-सा पुचकारने पर हमारे साथ हो लिया। उसके साथ-साथ उसकी माँ भी हमारे पास आ गई। उसकी माँ ऊँची और झबरीली थी, गज़ब की फुर्ती दिखी मुझे उसमें। दूर से देखकर कोई उसे भेड़िया ही समझता। नस्ल से शायद 'भोटिया' प्रजाति की थी, लेकिन वह बहुत ही शांत स्वभाव की थी। शायद इसीलिए उसका बच्चा भी शरीर से रौबदार, लेकिन अत्यंत ही शांत दिखता था। हाँ, शांत तो थी, लेकिन अत्यंत ही चौकन्नी और तेज़। जैसे ही कोई बच्चे को खिलाने के लिए उसकी ओर बढ़ता, वह तुरंत ही उसके पास पहुँचकर उसे सूँघने लगती, मानो वह पता लगाने की कोशिश कर रही हो कि क्या इंसान भी उसकी तरह वफ़ादार होते हैं। जब उसे विश्वास हो जाता कि उस आदमी पर भरोसा किया जा सकता है, तब वह उसके पैरों से सटकर उसके साथ-साथ बच्चे को प्यार करने लगती। दोनों हमारे साथ घूमते-घूमते सड़क पर आ गए। चलते-चलते मुझे एहसास हुआ कि यूँ तो मुझे पालतू जानवर बहुत पसंद हैं, लेकिन जानवरों को पालने के बारे में मैंने कभी विचार ही नहीं किया। उनको घर में रखने से संबंधित जो समस्याएँ होती हैं, मसलन उनको मल-निकासी के लिए ले जाना, सफ़ाई और देखभाल इत्यादि की समस्याओं से जूझना शिमला जैसे शहर में काफ़ी मुश्किल था।

खाना खाते-खाते हर कोई उस कुत्ते के बच्चे की बनावट और नस्ल पर अपनी-अपनी बातें रख रहा था। इस दौरान पता चला कि हमारे वरिष्ठ अधिकारी महोदय को कुत्तों से काफ़ी लगाव है और उनकी दिली इच्छा है कि वह इस कुत्ते के बच्चे को पाले। फिर क्या था, साथ बैठे एक नौजवान ने फ़ौरन पेशकश कर दी - "सर, इसको पकड़ लाते हैं, आप इसको ले जाइए।" नौजवान तुरंत उठकर कुत्ते के उस बच्चे को उठाकर लाने के लिए आगे बढ़ा, लेकिन बच्चे के इर्द-गिर्द मंडराती माँ को देखकर ठहर गया। उसकी माँ की मौजूदगी में बच्चे को उठाना मुसीबत मोल लेना था। माँ तो माँ होती है, फिर वह कुत्ते की हो या इंसान की। बच्चे को आँच भी आती तो उसकी माँ नुकसान पहुँचाने वाले पर टूट पड़ती।

योजना बनाई गई कि कुत्ते के बच्चे की माँ को थोड़ा दूर बुलाकर खाना दिया जाएगा और जब वह खाना खाने में जुटी होगी, तब चुपके से उसके बच्चे को उठाकर गाड़ी में डाल दिया जाएगा। मैंने इस योजना को सुना, तो मेरा मन कुछ परेशान हो उठा। अंदर एक टीस उठी। ऐसा लगा मानो इस टीस को मैंने पहले कभी महसूस किया है। हाँ, अभी ही तो बिछड़ने के एहसास से मैं गुज़रा था। मैं सोचने लगा कि जो पीड़ा मुझे हुई है, क्या उसी वेदना से उस कुत्ते की माँ भी गुज़रेगी? क्या वह अपने दुख को अपने परिवार या मित्र से व्यक्त कर पाएगी? क्या वह बिछड़ने से पहले अपने बच्चे से एक बार गले लग पाएगी? क्या उसके बच्चे को ले जाने वाला इंसान उसकी आँखों से बहते शोक को देख पाएगा? यह वफ़ादारी जीव क्या इंसान द्वारा खुद को ठगा हुआ महसूस नहीं करेगा? और क्या वह इंसान के साथ फिर उसी निष्ठा का व्यवहार दिखा पाएगा? उस बच्चे का क्या होगा? क्या वह अपनी माँ से दूर होकर दूध पीना नहीं छोड़ देगा? क्या वह नए घर में इंसानों के प्रति प्रेम और स्नेह का भाव रख पाएगा? मन को तसल्ली देने के लिए इस खयाल को भी जगह दी कि शायद कुछ दिनों में वह ऐसा कर ले, क्योंकि वह एक जानवर है, वफ़ादारी करना उसका गुण है, उसकी पहचान है।

मैं बिलकुल नहीं चाहता था कि कुत्ते का बच्चा अपनी माँ से अलग हो। व्याकुलता की गहराई से बाहर आने के लिए उस नौजवान की योजना को अमल में लाने के लिए 'चलो, बिस्कुट ले आते हैं' कहना काफ़ी था। सड़क के उस किनारे की दुकान से बिस्कुट आ गया था और कुत्ते के बच्चे की माँ को खाने के लिए खोलकर ज़मीन पर रख दिया गया था। शायद भूखी थी वह, जो बिस्कुट के टुकड़ों पर टूट पड़ी।

मन में यह विचार आया कि मुझे कम-से-कम एक बार बच्चे को उठाने से इन्हें रोकने की कोशिश ज़रूर करनी चाहिए। इससे पहले कि मैं कुछ बोलता, किसी ने कहा - "अरे पहले यह देख लो कि कहीं वह मादा तो नहीं है, मादा होगी तो ले जाने का कोई फ़ायदा नहीं'। आमतौर पर लोग नर कुत्तों को पालना पसंद करते हैं। बच्चे के नर या मादा होने के पचास प्रतिशत संभावना से ही मेरे अंदर खुशी की एक लहर-सी दौड़ उठी। यूँ तो मैं ज्यादा पूजा-पाठ और प्रार्थना नहीं करता। प्रकृति और उसके अव्ययों को ही देवी-देवता या शक्ति मानता हूँ, किंतु उस दिन, उस पल में, मैंने गुहार लगाई कि यदि प्रकृति में विद्यमान कोई शक्ति मेरी प्रार्थना को सुन सके और यदि मेरे द्वारा जीवन में कोई अच्छा कार्य हुआ हो, तो आज वह बच्चा मादा ही निकले। जब नज़दीक जाकर उसे देखा गया, तब उसे उठाने वाले की आँखों में कोई उत्साह नहीं दिखा, जिसे समझकर मेरे चेहरे पर मुस्कान फैल गई। वह मादा ही निकली।

इसी बीच कुत्ते के बच्चे की माँ दौड़कर उसके पास आ गई और उसके मुँह को सूँघने और चूमने लगी थी। माँ और बच्चे के इस भाव को मैंने काफ़ी करीब से महसूस किया था। आने वाले दिनों में मैं कुछ दिनों की छुट्टी लेकर बेटे और पत्नी के पास पहुँच गया था। सोने से पहले जब मैंने पत्नी को यह कहानी सुनाई, तब मेरी आँखों में आँसू थे - मगर इस बार खुशी और संतुष्टि के।

chandreshkr2143@gmail.com

कबीर

पुष्पेश कुमार पुष्प
बिहार, भारत

इस छोटे-से अस्पताल में आज भी जब लोग इलाज कराने आते हैं, तब कबीर को अवश्य याद करते हैं। कबीर लोगों के मन-मस्तिष्क में रच-बस गया था, क्योंकि उसका इस अस्पताल से विशेष लगाव रहा। लोगों की सेवा करना ही उसका परम धर्म था। यह वही कबीर था, जो गाँव की गलियों में बेसहारा भटकता-फिरता था। वह अनाथ था। बचपन में ही उसके माँ-बाप गुज़र गए थे। अनाथ कबीर गाँव के लोगों का काम कर दिया करता था और उसके बदले उसे दो वक्त की रोटी मिल जाती थी।

इस प्रकार उसकी ज़िंदगी गुज़र रही थी। अचानक एक दिन कबीर तेज़ बुखार से तड़पने लगा। उस अनाथ की देखभाल कौन करता? वह गाँव के वैद्य के पास गया और

दवा लेकर खाने लगा, लेकिन न जाने यह कैसा बुखार था कि उतरने का नाम ही नहीं ले रहा था। बुखार की आग में वह तड़प रहा था। वह समझ गया कि अब उसका बचना मुश्किल ही है। यही सोचकर वह किसी प्रकार अपने आपको घसीटते-घसीटते अस्पताल के दरवाज़े पर अर्ध बेहोशी की हालत में पहुँचा और वहीं लुढ़क गया। अस्पताल के कर्मचारियों ने भी उसकी ओर नज़र उठाकर देखना मुनासिब नहीं समझा। वह लावारिस की तरह अस्पताल के दरवाज़े पर पड़ा अंतिम साँसें गिन रहा था।

अगले दिन अस्पताल का निरीक्षण करने शहर के बड़े डॉक्टर विजय बाबू आए। अस्पताल के दरवाज़े पर पड़े इस युवक पर उनकी नज़र पड़ी। जब उन्होंने उसकी नब्ज़ देखा तब पाया कि तेज़ बुखार से उसका बदन जल रहा था। उन्होंने तुरंत अस्पताल के डॉक्टर और कर्मचारियों को बुलाया और इस लापरवाही के लिए उन्हें काफ़ी डाँट-फटकार लगाई।

डॉक्टर विजय ने स्वयं उसका इलाज किया और अस्पताल के डॉक्टर को कड़े शब्दों में कहा कि आज से वह यहीं रहेगा। इसके भोजन, दवा और रहने की पूरी व्यवस्था की जाए और इसके इलाज में कोई लापरवाही नहीं होनी चाहिए।

तभी से कबीर इस अस्पताल का बिना वेतन का कर्मचारी नियुक्त हो गया। वह दिन-रात अस्पताल के कामों में लगा रहता तथा रोगियों की सेवा नि:स्वार्थ भाव से करता। इसके बदले उसे दो वक्त की रोटी मिल जाया करती थी और इतना पाकर ही वह संतुष्ट था। अदना-सा कर्मचारी होने के बावजूद, वह अस्पताल के सभी कामों से परिचित हो गया था। रोगियों को दवा देना, सिर फूटने पर पट्टियाँ बाँधना, नि:स्वार्थ भाव से सबकी सेवा करना और यहाँ तक कि अस्पताल की साफ़-सफ़ाई भी कर देता था। वह इस अस्पताल के लिए इतना महत्त्वपूर्ण हो गया था कि उसके बिना यहाँ का कोई काम नहीं हो पाता था। इसके बावजूद उसे सरकार की ओर से कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाता था। कबीर ने भी कभी वेतन की माँग नहीं की। उसे रुपये-पैसे से कोई लेना-देना नहीं था। उसके मन में एक ही भाव था - सेवा, समर्पण और कर्त्तव्य।

एक बार उस गाँव में भीषण दुर्घटना घट गई, जिसमें कई लोग घायल हो गए। उस समय आज की तरह एंबुलेंस की व्यवस्था नहीं थी। डॉक्टर सोच में पड़ गए कि आखिर इतने घायलों को अस्पताल कैसे लाया जाए? उस समय कबीर घायलों को अपने कंधे पर उठा-उठाकर अस्पताल तक लाया। इन घायलों के इलाज के लिए डॉ. विजय भी वहाँ पहुँचे थे। डॉ. विजय और अस्पताल के अन्य डॉक्टरों ने घायलों का समुचित इलाज किया। जब वे इस कार्य से निवृत्त हुए तब डॉ. विजय ने पूछा - "यह नौजवान कौन है? बड़ा वफ़ादार और फुर्तीला है। सारा दिन दौड़-दौड़कर घायलों को अपने कंधे पर उठाकर लाता रहा। सेवा और कर्त्तव्य के प्रति इतना समर्पण तो सरकारी कर्मचारी में हो ही नहीं सकता। "

इसपर अस्पताल के डॉक्टर मुस्कुराकर बोले - "आपने पहचाना नहीं? यह वही नौजवान है, जो उस दिन अस्पताल के दरवाज़े पर बुखार से बेहोश पड़ा था। आपने ही तो उसका इलाज किया था, तब से उसने इस अस्पताल को अपना बसेरा बना लिया। सारा दिन अस्पताल के कामों में लगा रहता है। रोगियों की सेवा करना, उन्हें दवा देना और ऐसे ही दूसरे कामों में लगा रहता है। इसके बदले उसे दो वक्त की रोटी मिल जाया करती है।"

डॉ. विजय यह सुनकर आश्चर्यचकित रह गए। बोले - " यह तो ठीक बात नहीं है। जब यह नौजवान अस्पताल का पूरा काम करता है, तो इसे कुछ पारिश्रमिक भी मिलना चाहिए। आप इसे सरकारी कर्मचारी नियुक्त करें और वेतन भी दें। "

अस्पताल के डॉक्टर बोले - "लेकिन यह कैसे संभव है? मैं इसे सरकारी कर्मचारी के रूप में नियुक्त कैसे कर सकता हूँ? यह मेरे अधिकार से बाहर की बात है। इस मामले में आप ही कुछ कर सकते हैं। आप चाहें, तो इसे दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी के रूप में नियुक्त कर सकते हैं?"

डॉ. विजय बोले - "तो ठीक है, आप इसे दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी के रूप में नियुक्त करें। आगे की जो भी कार्रवाई होगी, मैं पूरी कर दूँगा। जब यह अस्पताल का पूरा काम करता है, तब इसे वेतन पाने का भी पूरा अधिकार बनता है। हम लोगों का भी कर्त्तव्य बनता है कि इसे इसका पूरा मेहताना दें। "

सचमुच उस दिन से कबीर उस अस्पताल का दैनिक

भोगी कर्मचारी नियुक्त हो गया। शुरूआत में तो उसे बहुत कम वेतन मिलता था। उसे पैसों की कोई खास आवश्यकता नहीं थी। महीना पूरा होने पर जब उसे वेतन के लिए बुलाया जाता था, तब वह कहता - "साहब, मुझे पैसों की कोई आवश्यकता नहीं। आप मेरा पैसा रजिस्टर में चढ़ा दें। यदि ज़रूरत होगी, तो मैं ले लूँगा।" और वह रजिस्टर पर अपना अंगूठा लगा देता।

कबीर को अस्पताल में काम करते हुए कई वर्ष बीत गए। अनपढ़ होने के बावजूद वह स्टोर की दवाइयों से भली-भाँति परिचित हो गया था। डॉक्टर के कहने पर वह रोगियों को सर्दी-बुखार की दवाइयाँ दे देता और और उनके संकट की घड़ी में सदैव आगे रहता। इस प्रकार कबीर लोगों के मन-मस्तिष्क में रच-बस गया था। लोग उसकी सेवा-भाव को भूल नहीं पाते थे। ऐसी ही एक यादगार घटना लोगों के मन-मस्तिष्क में कौंध जाती है। एक बार एक युवक तेज़ बुखार से तड़प रहा था। अस्पताल के डॉक्टर उसके बुखार को उतारने में तन्मयता से लगे हुए थे। पर दवा से बुखार उतरने का नाम नहीं ले रहा था। अस्पताल के डॉक्टर के माथे पर चिंता की लकीरें खिंच गई थीं। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि अब कौन-सी दवा दें और क्या करें? ऐसी विकट परिस्थिति में कबीर ही आगे आया था। उसने परिवार के लोगों की हिम्मत बँधाते हुए कहा था - "आप लोग घबराइए मत। अभी एक उपाय बचा है। आप लोग इसकी हथेलियों और तलवे को रगड़िए।"

कबीर और उसके परिवार वालों ने ऐसी तन्मयता और फुर्ती से उसके तलवे और हथेलियों को रगड़ा कि उसका बुखार फ़ौरन उतर गया। कुछ ही दिनों बाद वह युवक पूर्णत: स्वस्थ होकर घर चला गया। उसकी सेवा से एक युवक मौत के मुँह से निकल आया था। इस प्रकार कबीर अस्पताल की पहचान बन गया।

डॉ. विजय जब भी अस्पताल आते कबीर से अवश्य मिलते। कबीर उनके चरणों में गिर जाता और हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता। डॉ. विजय कहते – "कबीर, अब तुम काफ़ी समझदार हो गए हो। अब अपनी घर-गृहस्थी बसा लो। अकेले कैसे जीवन बिताओगे? बुढ़ापे में तुम्हारी देख-भाल कौन करेगा? किसी अच्छी लड़की से शादी करके अपना घर बसा लो। "

वह मुस्कुराकर नम्रता से कहता - "डॉक्टर साहब, घर-गृहस्थी मेरे बस की बात नहीं है। एक अनाथ को कौन अपनी बेटी सौंपेगा! मेरा तो कोई ठौर-ठिकाना भी नहीं है। मेरी बस एक ही इच्छा है कि ईमानदारी से सेवा करता रहूँ। यह अस्पताल ही अब मेरी घर-गृहस्थी है। इसके अलावा मेरा इस दुनिया में है ही क्या ? "

डॉ. विजय उसे समझाते हुए कहते - "कबीर, तुम्हारा कहना सही है। लेकिन ज़िंदगी भर ऐसे ही जीवन व्यतीत कैसे करोगे? तुम्हारी देखभाल भी करने वाला कोई होना चाहिए न? बुढ़ापे में कौन तुम्हारी सेवा करेगा ? "

वह निश्चिंत होकर कहता - "आगे जो होगा, देखा जाएगा। अभी से उसकी चिंता मैं क्यों करूँ? मुझे रोगियों की सेवा करने में बड़ा आनंद आता है। जब तक इस अस्पताल में रहूँगा, तब तक लोगों को संकटों से उबारने का काम करता रहूँगा। यही मेरी इच्छा है।"

उसकी बातों से डॉ. विजय बहुत प्रभावित हुए और बोले - "कबीर, जब भी कोई विपत्ति या काम हो सीधे मेरे पास आना। मेरे घर का द्वार सदैव तुम्हारे लिए खुला है। मेरे यहाँ आने में कभी संकोच मत करना।"

लेकिन कबीर को कभी डॉ. विजय के घर जाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। वह अस्पताल के कामों में ही व्यस्त रहता। इसी प्रकार उसकी दिनचर्या चल रही थी कि एकाएक उसके शांत जीवन में तूफ़ान आ गया। डॉ. विजय और अस्पताल के डॉक्टर का तबादला किसी अन्य शहर में हो गया। अस्पताल के नए डॉक्टर ने कबीर को काम से हटा दिया और उसके सारे बकाए वेतन का भुगतान करवा दिया। कबीर नए डॉक्टर के पैरों पर गिर गया और आरज़ू-मिन्नतें करने लगा - "डॉक्टर साहब, मुझे अस्पताल का एक पैसा भी नहीं चाहिए। मुझे इस अस्पताल में ही रहने दीजिए। इससे मुझे दूर न कीजिए। इस अस्पताल के अलावा मेरा इस दुनिया में है ही कौन ? मुझ पर दया कीजिए।"

लेकिन पर कबीर की बातों का नए डॉक्टरों कोई असर नहीं हुआ। उसे काम से निकाल दिया गया। बकाए के रूप में

उसे काफ़ी रुपये मिले। कबीर को इतनी मोटी रकम मिलने की खबर जंगल की आग की तरह फैल गई। अनाथ कबीर के कई संबंधी सामने आने लगे, जिसको कभी कोई अपनाने को तैयार नहीं था, आज उसे अपनाने के लिए उसके चाचा-चाची डटे थे।

कबीर चाचा-चाची के साथ गाँव चला गया। कुछ समय तक उसकी खूब खातिरदारी हुई। लेकिन जैसे-जैसे कबीर के हाथों से पैसा छूटता गया, वैसे-वैसे उसकी खातिरदारी भी कम होती गई। उसे एक वक्त भोजन मिलता, तो दूसरे वक्त निराहार ही रहना पड़ता। कुछ समय बाद भोजन मिलना तो दूर की बात कोई उसका हाल-चाल भी पूछने वाला नहीं था। बिना भोजन और सेवा-टहल के कबीर कितना स्वस्थ रहता। समय बीतता गया। अचानक एक दिन कबीर शीत लहर की चपेट में आ गया। वह तेज़ जाड़ा- बुखार से तड़पने लगा। उसका इलाज करवाने वाला भी कोई नहीं था। उसके चाचा-चाची ने उसे बोझ समझकर मरने के लिए छोड़ दिया था।

अंत में, वह किसी प्रकार अस्पताल के दरवाज़े पर आकर गिर गया। वह अस्पताल के दरवाज़े पर पड़ा तेज़ बुखार से तड़प रहा था। लेकिन इलाज तो दूर उसे कोई देखने वाला नहीं था। वर्षों तक लोगों की निःस्वार्थ सेवा करने वाला कबीर बिना दवा और इलाज के तड़प-तड़पकर मर गया। उसकी लावारिस लाश अस्पताल के दरवाज़े पर पड़ी थी और उस पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। लोग नज़रें चुराए आ-जा रहे थे। उसे एक कफ़न भी देने वाला कोई नहीं था।

pushpeshkumar530@gmail.com

दहलीज़ पर अम्मा

रतन चंद 'रत्नेश'
पंजाब, भारत

अपने मकान की दहलीज़ पर बैठी अम्मा की निगाहें बार-बार उस राह पर टिक जातीं, जहाँ लोग सारा दिन आते-जाते रहते। राह का अंतिम छोर एक पक्की डामर वाली सड़क से जाकर मिलता था। यह सड़क कई गाँवों को छूती चली जाती है। अम्मा का गाँव पहला गाँव था, जिसे इस सड़क की सुविधा प्राप्त हुई थी। कुछ वर्ष पहले यह बिल्कुल कच्ची थी। दूसरे गाँवों के लोगों को राजमार्ग पर बस या अन्य वाहनों के लिए इसी संपर्क मार्ग को अपनाना पड़ता था। 'प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना' के तहत अब इसे पक्का कर दिया गया है। अब गाँवों में घर भी पक्के हैं और आधुनिकता का बोध कराते हैं। पहले स्लेट की छतों वाले कच्चे मकान हुआ करते थे, जिन्हें समय-समय पर गोरू से लीपकर चमकाया जाता था। फ़र्श पर महिलाएँ गोबर लीपती थीं और अपनी बेलबूटों की कला का भी प्रदर्शन करती थीं। समय ने सब कुछ बदल दिया। अब इस पहाड़ी गाँव के लगभग सभी मकान कमोबेश पक्के हैं, हालाँकि कुछेक पर अब भी स्लेटें छायी दिखाई देती हैं। गोबर लीपने की परंपरा अब समाप्त हो चुकी है। कच्चे फ़र्श के घर रहे ही नहीं, तो कोई गोबर क्यों लीपता? शायद कुछ महिलाओं की अंतिम पीढ़ी ही अब बची हो, जिन्हें गोबर लीपना आता हो। आने वाले समय में इस कला के ज़िक्र बस कहानियों में ही रह जाएँगे।

पहाड़ के इन गाँवों में लोग गाय-भैंस और भेड़-बकरियाँ पालना भी धीरे-धीरे बंद करते जा रहे हैं। दूध-दही हो या अन्य वस्तुएँ, शहर की सारी सुविधाएँ यहीं मिलने लगी हैं, तो कौन इन झंझटों में पड़े? पक्की सड़क की सुविधा ने ग्रामीणों को पैसे का महत्त्व भली-भाँति समझा दिया है। पढ़े-लिखे हों या फिर पाँच-सात जमात पढ़े, हर घर से कोई-न-कोई पुरुष शहर का रुख कर जाता है और कई घरों के सारे मर्द।

अम्मा का दो मंज़िला घर भी अब पक्का है। पहले अलग से बनी रसोई की फ़र्श कच्ची रखी गई थी, जहाँ एक कोने में चूल्हा बना हुआ था। लकड़ियाँ जलाकर अम्मा इसी पर रसोई तैयार करती थी। फिर दो बहुएँ आईं। वे भी चूल्हे पर रोटियाँ सेंक लेती थीं। बड़ी बहू फ़र्श पर गोबर लीप लेती, परंतु छोटी को न यह आता था और न उसने सीखने की कोशिश की। सजने-संवरने का शौक रखनेवाली गोबर की गंध से दूरी ही बनाए रखती। बाद में रसोई-घर में गैस भी पहुँच गई, परंतु

उसका प्रयोग सीमित तौर पर ही हो पाता। अधिकांश समय चूल्हे पर जंगल से लाई गईं लकड़ियाँ ही जलतीं। कई बार गैस का एक सीलिंडर छह से सात महीने तक चल जाता। घर में प्राणी ही कितने बचे रह गए। छोटी बहू, बेटा, दो छोटे-छोटे बच्चे, अम्मा और बाबू जी। बड़े का परिवार दूर दिल्ली में रहता और साल में एकाध बार ही गाँव आ पाता।

बड़ा बेटा दिल्ली में कहीं प्राइवेट नौकरी करता था, जबकि छोटे की सरकारी नौकरी थी। वह प्रदेश सरकार के वन विभाग में नियुक्त था और शुरू से ही ज़िला मुख्यालय में कार्यरत रहा, जो गाँव से बीस किलोमीटर की दूरी पर था। शुरू-शुरू में बस से आता-जाता रहा, फिर उसने एक मोटरसाइकिल खरीद ली। उसी पर सुबह नौ बजे के बाद निकलता और शाम को छः बजे तक घर लौट आता।

समय बीतता गया। छोटी बहू के दोनों बच्चे, बड़ी बेटी और छोटा बेटा अब स्कूल जाने योग्य हो गए थे। वे पास ही एक गाँव की सीमा में बने निजी स्कूल में जाने लगे। यूँ सरकारी स्कूल भी पास ही था, परंतु छोटी को वह अपने स्टैंडर्ड का नहीं लगा। यूनीफ़ॉर्म में सजे-धजे बच्चों को सुबह पास की सड़क तक छोड़ आती, जहाँ से स्कूल की बस उन्हें मिल जाती। तकरीबन एक बजे वह फिर से उन्हें लेने वहाँ पहुँच जाती। कई बार दूसरे कामों में व्यस्त रहती, तो स्कूल-बस हॉर्न बजाकर बच्चों को उतार देती और वे स्वयं धीरे-धीरे घर लौट जाते।

एक दिन, ऐसे ही समय जब वह पचासेक कदम नापकर सड़क तक पहुँचने ही वाली थी, तब पड़ोस की चिरपरिचित महिला लाजो ने उसे रोक लिया। वह अपने घर के सामने की क्यारी से उस समय बींण (धनिया) के हरे पत्ते चुन रही थी।

"क्यों अपने न्याणो की लाइफ़ खराब कर रही हो, सुनीता। गाँव के स्कूल में क्या खाक पढ़ाई होनी है। तुम्हें तो सुविधा है कि तुम्हारा पति ज़िले में लगा हुआ है। अच्छे-से-अच्छे स्कूल हैं, वहाँ पर। सरकारी मकान लेकर रहो और बच्चों का भविष्य सुधारो। तुम्हारी जेठानी तो शहर में मज़े कर रही है और तुम यहाँ गाँव में धक्के खा रही हो।"

"ऐसा क्यों कह रही हो दीदी? मैं भी यहाँ मज़े से हूँ। उस पर सास-ससुर की सेवा भी हो जाती है।"

"सास-ससुर क्या तुम्हारे ही हैं, उसके नहीं? किसी की कितनी भी सेवा कर लो, बाद में कोई नहीं पूछता। अपने हिस्से का लेने सब दौड़े चले आते हैं। देख नहीं रही हो अपने आसपास का हाल?"

छोटी बहू ने उस समय तो हँसकर टाल दिया और बात आई-गई हो गई, परंतु मन में एक गाँठ पड़ गई, जो अब उसे दिन-रात सताने लगी थी। ठीक ही तो कह रही थी, लाजो बहन। जेठानी के बच्चे अच्छे स्कूल में पढ़कर अफ़सर-नवाब बन जाएँगे और मेरे बच्चों का भविष्य गाँव में रहकर मटियामेट हो जाएगा। आखिरकार एक रात उसने अपने पति से कह ही दिया – "आप सुबह ही निकल जाते हैं और शाम को लौटते हैं। अब तो आपके लौटने का निश्चित समय भी नहीं रहता। पहले छः बजे आ जाया करते थे, अब आठ और नौ तक बजने लगे हैं।"

"दफ़्तरों के काम ऐसे ही चलते हैं सुनीता। देर-सवेर हो ही जाती है, और कौन-सा मैं हर रोज़ देर से लौटता हूँ। कई बार कोई ऐसा काम आ जाता है कि रुकना ही पड़ता है।"

"सो तो ठीक है, लेकिन रोज़ सवेरे भागते हुए जाना और शाम को लौटना। गर्मियों के मौसम में तो ठीक है, पर शीतकाल में जल्दी अंधेरा घिर आने से आपका भी इन पहाड़ियों में मोटरसाइकिल चलाना रिस्की है। ऐसा क्यों नहीं करते कि सरकारी मकान अलॉट करवा लेते हैं। मैं भी साथ रह लूँगी और बच्चों को भी किसी अच्छे स्कूल में दाखिला दिलवा देंगे। इस गाँव का स्कूल बस नाम का ही है। बच्चों का बेस मज़बूत नहीं हुआ, तो आगे कई दिक्कतें आएँगी।"

"...और अम्मा-बाबूजी?" सुनीता के पति मनोहर ने सवाल खड़ा किया।

"अभी अम्मा सब कुछ कर पाने में सक्षम है। अपने-आप सब-कुछ कर लेती है। उस पर दो लोगों के लिए काम ही कितना है? हम हर शनि-रवि और छुट्टियों में गाँव आते रहेंगे। मुझे बस बच्चों की पढ़ाई की चिंता है। गाँव के स्कूल के बारे में आपको मुझसे अधिक पता है।"

अंततः वही हुआ जो होना था। छोटी बहू ने सास-ससुर को यह कहकर मना लिया कि उसे शहर के एक प्रतिष्ठित निजी स्कूल में टीचर की नौकरी मिल रही है और वे हर हफ़्ते

घर आ जाया करेंगे। इस तरह सरकारी आवास मिलते ही छोटे का परिवार भी गाँव से चला गया। शुरू में लगभग साल भर वे नियमित रूप से हर हफ़्ते और छुट्टियों में घर आते रहे। फिर यह सिलसिला दो हफ़्ते बाद और उसके बाद अनियमित-सा होता चला गया। छोटे ने अम्मा-बाबू जी की सुविधा के लिए घर पर फ़ोन लगवा दिया। उस पर ही कुशलक्षेम हो जाता और छुट्टियों में न आने के कारणों का खुलासा भी। समय के साथ यह भी कम होता चला गया। बच्चे बड़े होते चले गए और ज़माने की हवा के मुताबिक सब-के-सब व्यस्त हो गए।

पर अम्मा आदतन हर शनिवार और छुट्टी वाले दिन की पूर्व संध्या को मकान के बाहर बनी दहलीज़ पर बैठ जाती। आज भी उसकी निगाहें सड़क की ओर उनके लिए प्रतीक्षारत थीं। आसपास के घरों के क्रियाकलापों को देखतीं, एक लंबी साँस छोड़तीं और आती हुई राह की ओर देखने लग जाती, हालाँकि अब आँखें भी उतना स्पष्ट नहीं देख पातीं। पड़ोस की बहू ने दो खड़े बाँसों के सहारे ताने गए तार पर सूखते धुले कपड़ों को समेटते हुए बोली – "मैं भी कहूँ, आज अम्मा दोपहर बाद से ही बीह पर क्यों बैठ गई है? कल छुट्टी है। छोटी बहू-बेटा आने वाले होंगे?"

"पता नहीं सिमरो, आते भी हैं या नहीं? कई छुट्टियाँ गुज़र जाती हैं, पर आते नहीं। इस बार महीने से भी ऊपर हो गए हैं। आज आने की पूरी आस है। नहीं आते, तो फ़ोन ज़रूर कर देते।"

"लंबा अरसा हो गया है, तो आज ज़रूर आएँगे। फ़ोन भी इसीलिए नहीं किया। तुम कुछ विशेष खाने की तैयारी कर लो अम्मा।" पड़ोसन बहू सिमरो ने भरोसा देते हुए कहा।

"अपने-आप आकर बनाएगी सुनीता। जो खाना होता है, अपनी पसंद का ले आते हैं वे हमेशा।"

दोपहर से साँझ हुई। सूरज पश्चिम में चीड़ के दरख्तों के पीछे जा चुका था। गाँव से धूप ओझल हो गई, परंतु सामने वाले पहाड़ पर टिके गाँव की छतें अब भी झिलमिला रही थीं। धीरे-धीरे वहाँ से भी धूप सरक गई और अंधेरा अपना साम्राज्य फैलाने की तैयारी में जुट गया था।

ratnesh1859@gmail.com

गूलर का फूल

डॉ. हंसा दीप
कनाडा

मैंने गूलर का फूल कभी नहीं देखा। "गूलर का फूल होना" एक मुहावरा भी है, जिसका अर्थ है - दुर्लभ या अदृश्य होना। मुहावरे के अनुसार गूलर के फूल नहीं होते, लेकिन वनस्पति-विज्ञान कहता है कि गूलर के फलों में ही उसका फूल छिपा होता है।

'बा' भी गूलर के फूल की तरह हैं। वे यहीं हैं, हमारे भीतर, बस दिखाई नहीं देती। इस बार बा अस्पताल गई, तो फिर लौटकर नहीं आईं। उन्होंने चिंता भी नहीं की कि किसने खाना खाया और किसने नहीं! उनके रहते कोई एक पल के लिए भूखा नहीं रह सकता था। आज खाना रखा है, पर कोई खा नहीं रहा। बस बैठे हैं, शून्य में ताकते हुए।

हम बा को छोड़ आए हैं। विद्युतीय लपटों के हवाले करके! कैसे छोड़ आए हम! जहाँ भी जाते थे, सबसे पहले बा को गाड़ी में बैठाते थे और लौटते हुए सबसे पहले बा को ही उतारते थे। आज हम चारों लोग ऐसे अनमने-से गाड़ी में बैठे थे, जैसे किसी ने जबरन पकड़कर बैठा दिया हो। गाड़ी से उतरकर घर में ऐसे घुसे, मानो पल भर के लिए भी रुक गए तो बा को छोड़ आने का दुख हमें घर के अंदर नहीं घुसने देगा। बा उठते-बैठते हम चारों की चिंता करती थी। एक बार भी नहीं सोचा कि उनके जाने के बाद उनका चारू और उनकी अनुड़ी कितने अकेले हो जाएँगे?

ऐसे भी कोई जाता है भला! न कोई बीमारी, न कमज़ोरी। रात में सोई और सुबह उठी ही नहीं। एम्बुलेंस से अस्पताल ले गए, पर वह लौटकर नहीं आई। अगर सुबह उठ जाती, तो दिन भर के काम निपटाने की चिंता में कहीं न जाती, भगवान के घर भी नहीं। मन को समझाने के लिए तमाम

खयाल आ-जा रहे थे, पर सच यही है कि बा चली गई, जीवन के तमाम खाते बंद करके। सिवाय उस एक खाते के जो रिश्तों का है; यह सदा खुला रहेगा। समय के पंखों ने बा को अपने साथ उड़ने के लिए बुक कर लिया था। वह उड़ गई थी एक आज़ाद पंछी की तरह। आकाश में स्वच्छंद।

लोग घर पर आते-जाते रहे। फ़ोन, संदेश और आवाजाही से घर में हलचल बनी रही। मैं बा की यादों के साथ अकेले रहने का अवसर ढूँढती रही। बा की अंत्येष्टि के सात दिन बाद शोक सभा आयोजित की गई थी। मैं सभा में बोलना चाहती थी, कागज़ पर लिखकर। बा की नातिन, उनके शब्दों में कहूँ तो - 'म्हारी अनुड़ी' पर अनुड़ी मौन ही रह गई। यूँ तो हज़ारों शब्दों की धाराएँ प्रवाह पाने के लिए व्याकुल थीं। कहने को मेरे पास इतना कुछ था कि कहाँ से शुरू करूँ, इसका ओर-छोर ही न ढूँढ पाई। न आरंभ मिला, न अंत। अंत तो था ही नहीं। मेरे लिए बा का कोई अंत हो ही नहीं सकता था!

बा, इस शब्द के साथ ही मेरा दिन शुरू होता था और इसी के साथ खत्म! वह मेरा हमरूप थी। मेरा अलादीन का चिराग। मम्मा मेरे मन की कोई चीज़ खरीद कर नहीं देती, तो मैं बा से कहकर मम्मा को राज़ी करवा लेती। ज्यादा सोना हो, तो बा को मस्का लगाती। दोस्तों को बुलाना हो, तो बा से मनपसंद नाश्ता बनवा लेती। मम्मा-पापा न सुन रहे हों, तो दोनों की शिकायत बा से कर देती। और भी न जाने क्या-क्या...। बा का हाथ मेरे सिर पर था। मैं अपनी मनमानी करवा ही लेती थी। बा की सिफ़ारिश को कोई नहीं टाल सकता था। न मम्मा, न पापा।

"पंख होते तो उड़ आती रे... रसिया ओ बलमा।" घर में बा के गुनगुनाते स्वर दीवारों से टकराकर गूँजते। बहुत गाती थी बा। सालों पहले जिस तरह अकेले रह गई थी, उसके लिए जीना आसान न था। लेकिन, खुद को कभी अकेले पड़ने नहीं दिया। सामने से मर्दाना मुखौटा पहने रखती, जबकि भीतर से बहुत भावुक! कभी बात करते-करते आवाज़ बैठने लगती, लगता कि अब रोई, तब रोई, पर तुरंत सँभल जाती।

मैं पूछती- "बा, केम रड़े छे?"

"कसु नथी बकुड़ा, आ तो जीवड़ो एवो ज छे।" तत्काल बात बदल देती बा। अकसर गुनगुनाती- "पंखीडा ओ पंखीड़ा... तू उड़ी जा...।"

बा को पंख वाले गाने बहुत प्रिय थे। उनकी जीवटता उसे उड़ान के लिए हमेशा तैयार रखती थी। उन्होंने कई उड़ानें भरीं, स्वयं के बल पर अपना साम्राज्य खड़ा किया। अंतत: हमेशा के लिए उड़ गई बा। आकाश में नज़रें जातीं, तो कुछ दिखाई ही न देता। बादलों में छुपा काला आकाश बा के वहाँ होने का कोई संकेत न देता और देता भी कैसे, बा कहीं गई ही नहीं थी। यहीं तो थी, आसपास। दिन-महीने और साल गुज़रते जाएँगे, पर वह यहीं रहेगी, हमारे साथ, हमारे अंतस में।

बा कहती थी - "मरना तो है ही सबको एक दिन। जन्म लेकर आना, मौत के साथ चले जाना और फिर नया रूप लेकर जन्मना।" बा भी वहाँ चली गई, जहाँ एक दिन हम सबको ही जाना है। वह न बिस्तर पर रही, न कोई दवा, अचानक चली गई! जैसे मन हुआ हो कि बहुत चल लिए ज़मीन पर, अब उड़ जाओ। और बा उड़ गई। ताउम्र उड़ती ही रही। एक जगह टिकती कहाँ थी, घर के अंदर-बाहर, चारों ओर। बच्चों जैसी फुर्ती थी। तीनों मंजिल, ऊपर-नीचे, बेसमेंट के भी कई चक्कर लगाती रहती। साल में एक बार भारत की यात्रा ज़रूर करती। टोरंटो से दिल्ली तक के लंबे सफ़र के लिए खाना-पीना सब पैक करके अपने साथ ले जाती। उड़ान के दौरान मिलने वाले खाने पर कभी विश्वास नहीं किया। अहमदाबाद में अपने घर पहुँचकर दो दिन आराम करने के बाद खूब तीर्थ यात्राएँ करतीं। पहाड़ों पर बसे मंदिरों की पैदल यात्रा करती। सब कहते - "अब बस करो बा, घुटनों का ध्यान रखो। पहाड़ चढ़ने की ज़िद छोड़ दो।"

"अभी तो सब ठीक है, जब जवाब दे देंगे घुटने, तब नहीं चढ़ूँगी पहाड़ पर।"

मैं यादों के पहाड़ पर चढ़ती जा रही थी। बा के खयालों में डूबी मैं शोक-सभा पर ध्यान नहीं दे पा रही थी। इतनी भीड़ के सामने होते हुए भी मैं बा के साथ कहीं खोई हुई थी। चिरायु, उसका नाम बुलाने पर वह माइक पकड़कर खड़ा हुआ। भाई चारू संयत था। बा के लिए दो शब्द कहने चला तो गया, परन्तु 'बा', यह ध्वनि निकलते ही फूट-फूटकर रोने लगा। शब्द गले में फँस गए थे। उसके आगे जो भी बोलना

था, उसके आँसू बोलते रहे। बगैर कुछ कहे, रोता हुआ भाई चारू माइक पकड़कर खड़ा था। लोग उसे सुन-समझ पा रहे थे या नहीं, पर बा सब कुछ समझ लेगी। कुछ पलों बाद मम्मा गई और उसे लेकर आई। तब तक पूरा हॉल उसकी सिसकियों से पैदा हुई खामोशी में डूबा रहा।

मुझे भी बुलाया गया। मैं उठी ही नहीं। जानती थी, मुझसे नहीं होगा। मैंने हामी नहीं भरी थी, पर फिर भी मुझे बुलाया गया, क्योंकि बा की जान थी मैं। बोलना तो चाहती थी, पर कुछ लिख ही नहीं पाई थी मैं। दिमाग जड़ हो गया था। कलम अंगद के पैर की तरह टिकी रही कागज़ पर, आगे ही नहीं बढ़ी। क्या लिखती! बा को चंद शब्दों में कैसे समेटती! शब्दों से परे थी बा। मैं तो बस खोए रहना चाहती थी, उन हज़ारों पलों में जो भीतर झंझावात मचा रहे थे।

एक सींग सलाई-सी, दुबली-पतली महिला, जिसे साड़ी के अलावा कभी कोई पहनावा रास नहीं आया। बहुत कोशिश की थी मैंने - "बा, नॉर्थ अमेरिका में रहती हो। एक बार तो जींस पहनो। जींस नहीं तो चलो सलवार-कमीज़ ही सही।" पर नहीं। मुस्कुराकर रह जाती बा। और तो और साड़ी पर मोटे स्नीकर्स पहनती थी। उन्हें पैरों में बहुत ठंड लगती थी। कभी बाहर जाती, तो उन्हें स्नो बूट्स पहनने पड़ते, ताकि पैर न फिसल जाए। वैसे तो मैं ऐसी चीज़ों का बहुत ध्यान रखती थी। ऊटपटांग आउटफ़िट्स देखकर लोगों पर हँसती भी थी। लेकिन, अपनी बा के कुछ भी पहनने पर मुझे कभी भी बुरा नहीं लगा कि मेरे दोस्त क्या कहेंगे! मैं कहती - "जो आपको अच्छा लगे वही पहनो बा।"

टोरंटो के बर्फ़ीले रास्तों पर चलने में बा बहुत डरती थी। मेरा हाथ पकड़कर बर्फ़ पर चलती तो मुझे सुकून मिलता। मैं खुद को गौरवान्वित महसूस करती। जैसे एक बड़ी ज़िम्मेदारी का निर्वहन करते हुए होता है। प्राइमरी स्कूल तक बा के साथ स्कूल जाती और वापस घर आती। मैं जब भी घर में होती, हमेशा बा के आगे-पीछे मंडराती रहती। कभी अपनी फ़रमाइशों के साथ, तो कभी स्कूल में बिताए अच्छे-बुरे पलों के साथ। मैं उन्हें स्कूल की बहुत सारी बातें बतातीं। कई बार वह सवाल पूछती थी, यूँही हामी नहीं भरती। मेरी बात समझ में आ जाती तो ठीक, न आती तो दोबारा पूछने में सकुचाती नहीं। अंग्रेज़ी के शब्दों को एक बार बताने के बाद बा को उसका मतलब याद हो जाता था, फिर कभी नहीं भूलती। सीखने की ललक एक बच्चे जैसी थी। मैं बा को समझाने में आलस कर जाती, पर बा समझने के लिए कभी न थकती।

बा के साथ बिताए हज़ारों अच्छे-बुरे पलों ने मुझे बदल दिया था। याद है मुझे, एक दिन मैं रोते-रोते घर आई थी। मेरे टिफ़िन में से एक बच्चे ने थोड़ा खाना खा लिया था। मैं किसी का खाना नहीं खाती, तो कोई मेरा खाना क्यों खाए, इस बात को लेकर मुझे बहुत गुस्सा आ रहा था। तब बा ने समझाया था - "उस बच्चे को बहुत भूख लग रही होगी, तभी तो उसने तुम्हारे टिफ़िन से खा लिया। दाने-दाने पर खाने वाले का नाम लिखा होता है, बेटा। और फिर किसी को खाना खिलाना तो सबसे बड़ा धर्म होता है, मेरे बच्चे। कई जानवर भी बाँटकर खाना खाते हैं, हम तो फिर भी इंसान हैं।" उस दिन के बाद कोई भी ललचाई आँखों से मेरा खाना देखता, तो मैं तुरंत डिब्बा आगे कर देती। यह सिलसिला आज तक कायम है। अब औरों को खिलाकर मुझे ज्यादा खुशी मिलती है।

बा हमेशा प्यार ही नहीं करती थी, डाँटती भी थी। कोई बात उन्हें अच्छी न लगती तो खूब खिंचाई करती थी। गलत को गलत कहने में कभी पीछे नहीं रहती। फिर सामने चाहे जो हो, खूब झाड़ देती थी। इंसान-को-इंसान कहने की और शैतान-को-शैतान कहने की जुर्रत बा ही कर सकती थी। न जाने क्या थी बा! थी तो एक इंसान ही, भगवान नहीं थी।

बा के जाने के बाद भी घर की हवा में बासीपन कभी नहीं आया। दाह-संस्कार के दिन भी, पीले, लाल और नवजात हरे पत्ते एक साथ लॉन में उड़ते फिर रहे थे। पीढ़ियों का अंतर दिखाती प्रकृति इठला रही थी। उन उड़ते पत्तों में बा, मम्मा और मैं, हम तीनों साफ़ दिखाई दे रहे थे। जैसे वह हमारी उम्र की छाया हो, जो मिट्टी में मिलकर वापस जन्म लेने की प्रक्रिया को हवा दे रही हो। प्रकृति ने मन को समझाने का नायाब तरीका दिखाया।

न जाने कितनी सारी बातें अनवरत मेरा पीछा कर रही थीं। वह वीरान-सा दिन जब बा को फ़्यूनरल होम में अकेला छोड़ आए थे। अकेले लौट आए थे घर। गाड़ी में बा की सीट पर आज तक कोई नहीं बैठा था। खाली सीट भी मानो सवाल

कर रही थी, मैं खाली क्यों हूँ! हर जगह बा अपनी उपस्थिति दर्ज कराती थी। नींद आने के ठीक पहले मैं बा को महसूस करती थी। शायद बा के आते ही मुझे नींद आ जाती थी। जैसे-जैसे दिन गुज़रते गए, बा की उपस्थिति और दृढ़ होती गई। जब कभी अपने मन को समझाना मुश्किल हो जाता, तब मम्मा के आगोश में मैं खूब रोती थी। मैं जितना रोती, उतना ही बा को करीब पाती। दिन-महीने-साल गुज़रते गए और अपने भीतर जन्मी एक बा को मैं देख सकती थी। मेरा गुस्सा, मेरी हँसी-खुशी, सब कुछ उसी अनुभूति में समाहित होते चले गए।

समय की दौड़ में मैं युवा हुई, तो बा की तरह सजग होकर लोगों की लालची आँखों को पहचानने लगी। बेरहम आँखों के लिए चट्टान थी बा। उनमें जोश था, जुनून भी। कई लोगों ने बा के जीवन को नाटकीय मोड़ दिए थे। जो जीवन के यथार्थ पटल पर होने के बावजूद नाटक जैसा प्रतीत होता था। इसी कारण बा की सदाशयता के किस्से कम और लोगों की घृणित निगाहों से बचने के लिए क्रूरता के किस्से ज्यादा प्रचलित थे।

पुराना कैनवास था, मगर बा ने नए रंगों को चुना। समाज की परंपरा के नाम से चले आ रहे रीति-रिवाज़ों को तोड़ने के लिए उन्होंने रंगों में बदलाव की कोशिशें कीं। हमेशा उसी चटखता के साथ जीवन को आकार देती रही। सुबह की खुशनुमा बयार की ताज़गी लिए बा उद्यमी रास्तों को चुनती रही। समय की पाबंदी और अनुशासन केवल खाने-पीने में ही नहीं, बात करने में भी। वे उस गुलाब की तरह थी, जो किसी भी रूप में ज़ेहन में आए, काँटा नहीं चुभाता, खुशबू ही देता है।

कई चीज़ें अतीत से निकलकर आँखों के सामने आ रही थीं। घर के हर सदस्य की आवाज़ से उसके मन की स्थिति बा पकड़ लेती थी। मम्मा कई बार चिंतित होती, तो बा कहती थी - "किसी भी चिंता को अंदर नहीं रखना, बाहर निकाल देना चाहिए। चिंता को शब्द देना ही चिंता को दूर कर सकता है। चिंता ओढ़े चुप्पियाँ इंसान को अंदर-ही-अंदर खा जाती है।" मैंने भी किताब में पढ़ा था - अनस्पोकन वरीज़। बगैर किताबी ज्ञान के भी बहुत समृद्ध थी बा। समय के तकाज़े का खूब ज्ञान था, अनुभव था। दिल बहुत साफ़ था। बा के मुँह में शब्द कभी कैद नहीं हुए। उनके शब्द आज़ाद थे। जो भीतर, वही बाहर। यही बा की सेहत का राज़ था। वे उन चेहरों के खिलाफ़ थी, जिनपर उदासी मेकअप की तरह चढ़ी रहती। उनकी आँखों में समुद्र भी था, ज्वालामुखी भी। वही बा की ताकत थी।

बा के चले जाने के बाद भी घर में सब कुछ सामान्य था। पूर्ववत। पेड़-पौधे, सब पहले की तरह ही मुस्कुराते रहे। प्रकृति ने परिवर्तन के सच के साथ अलविदा की घड़ियों को हमेशा की तरह स्वीकार लिया था। हर शाख, हर टहनी, हर पत्ता, मानो हवा में लहराते हुए, अपने-अपने शब्दों में कुछ कह रहा था - "शायद यही कि अलविदा कहना कभी रास नहीं आता। लेकिन यह जीवन का सत्य है। सत्य से पीछे कौन हट सका है, भला!"

हाँ, एक बदलाव ज़रूर था। माँ-पापा-चारू और मैं, हम चारों चुप रहने लगे थे। ऊपर-ऊपर से, क्योंकि भीतर-ही-भीतर बा से बातें कर रहे होते थे, खूब सारी बातें। बा के साथ बिताए उन सालों, महीनों और दिनों का निचोड़ हर दिन, हर पल आँखों के सामने आता रहेगा। हर त्योहार, हर सप्ताह, हर दिन, हर पल...।

कैसा लगता है जब कोई अपना चला जाता है! पर क्या जाने वाला सचमुच चला जाता है! अपना इतना कुछ छोड़कर जाता है कि शारीरिक अनुपस्थिति गौण हो जाती है। वह हवा में और अधिक महसूस होती रहती है। बा की तस्वीर देखने की ज़रूरत भी नहीं पड़ती। घर से बाहर निकलते समय लंच का डिब्बा देती या फिर पीछे छूटे हाथ के दस्ताने पकड़ाती। बा वहीं थी।

बा ने बचपन में मुझे परियों की कहानियाँ कभी नहीं सुनाई थीं। ज़मीन से जुड़ी कहानियाँ सुनाई थीं। संघर्षों की, जिनमें एक लड़की ने परी बनने की लगातार कोशिश की और अंत में कामयाबी हासिल की। बा के विचार से बच्चों को यह जानना ज़रूरी था कि समय हमारे जीवन में कभी एक जैसा नहीं रहता। संघर्ष जीवन का हिस्सा है, लेकिन कभी घबराना नहीं है। ज़मीन में धँसी गहरी जड़ें शाखों के टूटने से विचलित नहीं होतीं। हमारी जड़ें भी मज़बूत थीं। बा कई बार कहती - मिलकर रहना, परिवार का हाथ मज़बूती से

थामे रखना।

बा के जाने के बाद क्या-क्या हुआ, मैं सब कुछ बताऊँगी बा को, तभी मुझे चैन मिलेगा। ऊपर देखती, मैं हवा से बातें करने लगती, मानो बा हवा में घुल-मिल गई हो और आसानी से मेरी बातों को सुन रही हो। क्या आने वाली पीढ़ी को बा के बारे में ठीक से बता पाऊँगी। क्या मेरे बच्चों को थोड़ा-सा भी अहसास होगा कि बा कैसी थी। ऐसी कि कोई एक बार मिले, तो हमेशा याद रखे। फिर हमारे घर में तो तब से थी, जब से भाई चारू पैदा हुआ था। उसके बाद मैं आ गई थी। हमारे जन्म से बड़े होने तक का एक-एक पल मुँहज़बानी याद था बा को। वही बा, जो जीवन भर मेरे साथ रही। अब लगता है मुझमें समा गई है। मेरा ही एक भाग, जो मुझसे कहता है - यह करो, वह करो।

शोक सभा में न बोल पाने का दुख मुझे सालता रहा। मैं क्यों नहीं बोल पाई! सॉरी भी कहा था बा से। मेरे शब्द ज़िद्दी हो गए थे। ज़बान पर आने से इन्कार कर रहे थे। लेकिन, बहुत कुछ था, जो बाहर आना चाहता था। वह सब मेरे भीतर है। ये सब कैसे लिखती शोक सभा की स्पीच के लिए। बोला नहीं तो क्या, बा तक पहुँचा ज़रूर। बा से कह देती हूँ, हर वह बात जो मेरे भीतर है। मेरे भीतर जो भी है, उनका ही दिया हुआ है। उसे अगली पीढ़ी तक पहुँचाने का मेरा ज़िम्मा रहा। आपकी अनुड़ी का। बा के लिए मेरी असली श्रद्धांजलि यही होगी।

अस्पताल, शोकसभा, भीड़, बा की तस्वीर पर फूल चढ़ाते लोग, भाई चारू का रुदन, सब कुछ मानो रील की तरह चलता जा रहा था। मैं बा के साथ बिताए उन पलों में गुम थी, जो भीतर से मुझे आवाज़ दे रहे थे। इसी आवाज़ के साथ बा हमारे भीतर बस गई थी, अपने बच्चों के भीतर, गूलर के फूल की तरह।

hansadeep8@gmail.com

जिप्सी फूल

डॉ. ऋतु शर्मा ननंन पाँडे
नीदरलैंड

नींद में वह अक्सर किसी पुरानी भाषा का नाम लेते हुए जागती थी। कभी कोई लोरी, जो उसने बचपन में माँ की गोद में सुनी थी या कभी कोई टूटी-फूटी धुन, जो अब किसी रेडियो पर भी नहीं बजती। उसका नाम 'आर्या' था। यह नाम उसकी माँ का दिया हुआ था, शायद इसी नाम के सहारे उसकी माँ ने अपना अस्तित्व बचाने की कोशिश की थी।

आर्या ने शब्दों के साथ कभी ठीक से रिश्ता नहीं बनाया। जहाँ दूसरे बच्चे अपनी डायरी में कविताएँ लिखते थे, वहाँ आर्या पेंसिल से दीवारों पर आकृतियाँ बनाती थी। जब सहेलियाँ मोबाइल पर अपनी बातें रिकॉर्ड करतीं तब वह एक पुरानी स्केचबुक खोलकर उसमें रंग भरती। उसे ऐसा लगता था कि शब्द अक्सर धोखा देते हैं। वे उसके भीतर उबलते भावों को नहीं पकड़ पाते। चाहे वे शब्द हिंदी के हो या डच के, वे कभी उसके मन की गहराइयों को व्यक्त नहीं कर सके। मगर तस्वीरें झूठ नहीं बोलती थीं। वे सवाल नहीं करतीं, बस जैसा मन हो, बिल्कुल वैसा ही दिखाती थीं।

माँ अक्सर पूछती थी - "तुम इतनी चुप क्यों रहती हो, आर्या? हमसे बात किया करो। हमेशा चित्र ही बनाती रहती हो।" आर्या सोचती - "क्या तस्वीरें बात नहीं करतीं?" उसका पहला बनाया चित्र, जिसे उसने किसी को नहीं दिखाया था, एक लड़की का था, जिसके होंठ सील दिए गए थे और हाथ खुले आसमान की ओर फैले थे। उसने माँ के पुराने सूट के टुकड़ों को काटकर उस पर चिपकाया था। नीले रंग की पट्टियाँ, जो एक तरफ़ से नीदरलैंड के 'डेल्फ़' शहर में बनने वाली नीली टाइल्स से मिलती-जुलती थीं और दूसरी ओर किसी दुपट्टे की गिरती धार जैसी थीं। वह चित्र उसने अपनी पढ़ाई की मेज़ के नीचे छिपा दिया था। कभी-कभी देर रात उसे निकालकर देखती और महसूस करती कि तस्वीर शब्दों के बिना मौन रहकर बोलती है।

एक दिन आर्या को स्कूल में 'कला की भाषा' पर एक प्रोजेक्ट तैयार करना था। कक्षा के सभी बच्चे रंगीन फूलों और कैनवास पर चित्र बनाकर लाए थे। आर्या ने भी अखबार में

लिपटा वही चित्र कक्षा में प्रस्तुत किया। जैसे ही उसने तस्वीर खोली, कक्षा में सन्नाटा छा गया। तभी एक लड़की बोली - "यह तो बहुत डरावनी है।" कला की शिक्षिका कुछ देर उसे देखती रहीं, फिर बोलीं - "यह सिर्फ़ एक कला या तस्वीर नहीं, बल्कि उस कहानी की अभिव्यक्ति है, जो चुप रहने से इंकार करती है।" अपनी अध्यापिका की बात सुनकर आर्या को पहली बार यह एहसास हुआ कि तस्वीर उसकी आवाज़ बन सकती है। वह उनसे वही बात कहलवा सकती है, जो आज तक उसके भीतर कैद थी।

आर्या ने पहली बार एक बड़ा कैनवास खरीदा। उसने उसपर एक महिला का चित्र बनाया, बिना बिंदी और बिना जूड़े के, पर आँखें ऐसी थीं, जैसे किसी को ढूँढ रही हों। उसके चारों ओर फूल थे - कुछ कँटीले, कुछ मुरझाए हुए और बीच में एक नीले रंग का अंजाना फूल। उसने उस फूल का नाम रखा – 'जिप्सी फूल'। यह कोई सामान्य फूल नहीं था। यह उन स्त्रियों के लिए खिला था, जो घर और दुनिया की ज़िम्मेदारियों के बीच कहीं खो-सी जाती हैं। माँ ने चित्र देखा, कुछ देर वह चुप रहीं, फिर पूछा - "यह कौन है?"

आर्या बोली - "मैं नहीं जानती या शायद यह मैं ही हूँ।"

उसी क्षण आर्या ने तय किया कि वह ऐसे चित्र बनाएगी, जो औरतों को खुद को पहचाने में मदद करे। उसने स्कूल में अपने चित्रों की प्रदर्शनी लगाने के विषय में अपनी अध्यापिका से बात की और वे आर्या का साथ देने के लिए तैयार हो गईं। जल्द ही वह दिन आया, जब स्कूल के हॉल में अन्य तस्वीरों के साथ आर्या की बनाई तस्वीर 'जिप्सी फूल' लगाई गई - शब्दहीन पर प्रभावशाली।

लोग प्रदर्शनी देखने के लिए आते रहे। कुछ लोग आर्या की तस्वीर के आगे रुककर उसे समझने की कोशिश करते। कुछ लोग डर जाते और कुछ मुस्कुराते। तभी वहाँ एक डच महिला रुकी, काफ़ी देर तक वह अपनी अनुभवी नज़रों से 'जिप्सी फूल' तस्वीर देखती रही। फिर अचानक बोली - "यह केवल एक फूल नहीं, यह एक पुकार है।"

प्रदर्शनी सफल रही। मीडिया में आर्या की बनाई तस्वीर चर्चा का विषय रही। पर आर्या को जो याद रहा, वह थी एक छोटी-सी लड़की जो चुपचाप आई और उस तस्वीर को समझने की कोशिश में वहीं खड़ी रही और कुछ देर बाद बोली - "क्या यह भी खो गई है? "

आर्या ने उसके सवाल के जवाब में कहा - "हाँ, लेकिन शायद अब उसे रास्ता दिख रहा है।" उस दिन से आर्या की हर तस्वीर 'वह' नहीं, 'मैं' बन गई। अब वह खुद को कैनवास पर उतारने लगी।

आर्या की नींद में अब रंग कम सपने ज्यादा थे। उसे अक्सर सपना आता कि एक बड़े कमरे में बहुत सारी खिड़कियाँ थीं। हर खिड़की के बाहर एक अलग ज़िंदगी चल रही थी। वह एक खिड़की से माँ को हाथों में पूजा की थाली लिए देखती थी। दूसरी खिड़की से खुद को एक बड़ी आर्ट गैलरी में देखती थी। तीसरी खिड़की खाली थी। वह उस तीसरी खिड़की को खोलना चाहती थी, पर दरवाज़ा खुलता नहीं था। मनोवैज्ञानिक ढंग से सोचने पर मन कहता था - "तुम अपनी पहचान बुन रही हो। हर सपना उस पहचान का एक धागा है।"

आर्या सोचने लगी - "तो क्या मैं अभी तक अधूरी हूँ?" उसे यह समझ आने लगा था कि नींद सिर्फ़ विश्राम नहीं, संवाद है। एक ऐसा संवाद, जो दिन की हलचल में खो जाता है। नीदरलैंड की सर्दियों में जब पाँच बजे के बाद बाहर सब कुछ ठहर जाता है, तब आर्या का अन्तर्मन नदी की तरह बहता है। उसी सर्द रात में उसने एक नया चित्र बनाया, एक स्त्री जो नाव में बैठी है, पर नाव ज़मीन पर खड़ी है। आस-पास सब सोए हुए हैं; पर स्त्री की आँखें खुली हैं। उसने उस चित्र को नाम दिया - "नींद में जागना"।

माँ ने पूछा - "अब यह कौन-सी खिड़की है?"

आर्या मुस्कुराई - "शायद वह जो अब खुलने लगी है।"

माँ अक्सर चुप रहतीं, पर उनकी चुप्पी अब खाली नहीं लगती थी। रसोई में चाय रखते-रखते कुछ कह देती थी - बिना शब्दों के। उनकी चाल में, थाली में आटा गूँथने, मंदिर में दीया लगाने आदि हर क्रिया में एक कहानी थी, जिसे आर्या ने देर से पढ़ना शुरू किया। बचपन में आर्या सोचती थी, माँ डरती है - डच भाषा से, गोरी औरतों से और शायद नीले आसमान से भी। किन्तु उसे पता चला कि माँ डरती नहीं थीं, वे थक गई थीं। वे वही थीं, जिनसे आर्या भागती थी और फिर

उन्हीं में लौट आती थी।

एक दिन आर्या ने माँ से पूछा - "आपको कभी बाहर जाने की इच्छा नहीं हुई?" आर्या ने पहली बार माँ की आँखों में झाँका। वहाँ एक गहरी झील थी, शांत पर कर्तव्यों को निभाने के कारण बेहद थकी हुई। उसी रात उसने एक और चित्र बनाया एक स्त्री, जिसकी आँखों में समुद्र है और माथे पर एक छोटा घर। इस चित्र का उसने नाम रखा - "माँ की चुप्पी।"

यह पहली बार था जब आर्या किसी "महिला सभा" में गई थी। यह सभा ऐम्सटर्डम के सामुदायिक भवन में लगी थी। यहाँ विभिन्न देशों की औरतें आपस में मिला करती थीं। इंडोनेशिया, तुर्की, मोरक्को, सूरीनाम, चीन, अफ़्रीका आदि की महिलाएँ इस मिलन का हिस्सा बनती थीं। वहाँ न कोई मंच था, न भाषण, सिर्फ़ चाय की प्यालियाँ और कहानियाँ। एक महिला अपनी भाषा में कुछ कहती और दूसरी महिला उसकी बात का अनुवाद करती। हरेक महिला की आवाज़ दूसरी महिलाओं के भीतर गूँज जाती थी, भले ही वे भाषा न समझें।

मोरक्को की एक स्त्री ने कहा - "मैं हर दिन अपने पति को खाना देती हूँ, मगर मेरी भूख के बारे में कोई नहीं सोचता"। वहाँ बैठी सभी स्त्रियाँ चुप हो गईं। मगर वह चुप्पी भरी हुई थी, क्रोध, दुख और पहचान के अनसुने किस्सों से।

आर्या ने महसूस किया कि ये औरतें टूटी हुई नहीं हैं, उन्हें तोड़ा गया है। उस शाम जब वह घर लौटी, उसने एक ऑडियो रिकॉर्डिंग शुरू की। हर रात वह अपनी आवाज़ में कुछ कहती, बिना भूमिका, बिना समीक्षा। आज आर्या ने माँ को पिताजी से उनके किसी काम को करने से मना करते हुए पहली बार सुना था।

"आज मैंने एक डच पुरुष से 'नहीं' कहा और मुझे लगा जैसे मैंने सौ औरतों की ओर से 'नहीं' कहा हो।"

धीरे-धीरे वह उन महिलाओं की आवाज़ों में धुन पिरोने लगी। उसने इन्हें 'टूटी आवाज़ें' नाम दिया। उसकी पहली सार्वजनिक ध्वनि-प्रदर्शनी एक बंद कमरे में थी, जहाँ चारों दीवारों से औरतों की टूटी-अधूरी, आवाज़ें गूँजती थीं। लोग कमरे में खड़े होकर सुनते रहे। कुछ रोए और कुछ बस सिर झुकाकर खामोश रहे।

एक महिला ने कहा - "आपने हमारी आवाज़ों को दुनिया के कानों तक पहुँचा दिया।" आर्या को ये शब्द उसकी कामयाबी के बिगुल की तरह सुनाई दिए। उस दिन वह बहुत देर तक अपने स्टूडियो में बैठी रही। उसने आईने के सामने एक चित्र बनाना शुरू किया; बिना स्केच, बिना दिशा के। एक चेहरा उभरता गया, धीरे-धीरे, धुंधले से साफ़ होता हुआ। और जैसे ही वह आँखों तक पहुँचा, उसने पेंट ब्रश नीचे रख दिया, क्योंकि वह चेहरा उसका नहीं, उसकी माँ का था। पर अब कुछ बदल चुका था - माथे पर झुर्रियाँ कम थीं, होंठों पर कोई अनकही हँसी थी और आँखों में एक जवाब था।

आर्या ने पहली बार महसूस किया कि शायद एक औरत अपने जीवन की सबसे बड़ी खोज तब करती है, जब वह अपनी माँ को देवी की तरह नहीं, बल्कि एक औरत की तरह देखती है।

उसने चित्रों के नीचे लिखा - " आईने के पार मैं तुम थी।"

आर्या ने अपनी पहली प्रदर्शनी के लिए एक अनुष्ठान विषय चुना - 'स्वत्व का नक्शा'। यह कोई पारंपरिक कला-प्रदर्शनी नहीं थी। यह एक यात्रा थी; वह रास्ता जिसे एक स्त्री तय करती है, जब वह बेटी 'प्रवासी कलाकार' माँ की परछाई से आगे बढ़कर 'स्वयं' बनना चाहती है।

प्रदर्शनी में नक्शे नहीं थे, पर हर चित्र में एक रास्ता था, एक पगडंडी जो गाँव से शहर तक जाती थी। एक समुद्र जो दो महाद्वीपों के बीच काँपता था। एक देह जो अपनी सीमा स्वयं तय करती थी। कई चित्रों में शरीर अधूरा था, कभी गर्दन के नीचे का हिस्सा नहीं था, कभी कंधे बिना उभरे। आर्या मानती थी कि औरत का शरीर सबसे ज्यादा देखा गया, मगर सबसे कम समझा गया नक्शा है।

एक चित्र में एक स्त्री खड़ी थी, उसके पैरों के नीचे नीदरलैंड की ज़मीन थी और सिर के ऊपर भारत का खुला आसमान। उसका दिल बीच में झूलता था, दो भाषाओं, दो संस्कृतियों और दो सपनों के बीच। प्रदर्शनी में एक कोना ऐसा भी था, जहाँ दीवार पर सिर्फ़ एक दर्पण था। उसके नीचे एक पंक्ति लिखी थी, "यह वह नक्शा है, जिससे तुम अब तक बचती रही हो।"

'जिप्सी फूल' वह नाम था, जो आर्या ने अपने भीतर की

उस स्त्री को दिया, जो हर जगह होकर भी किसी एक जगह नहीं रही। जो ज़मीन पर उगी थी, मगर उसकी जड़ें हवाओं में थीं। नीदरलैंड में रहते हुए आर्या ने सीखा कि घर कभी ईंटों से नहीं बनता और पहचान कभी किसी सरकारी कागज़ में नहीं बँधती। पहचान एक जीवंत अनुभव है; जो हर सुबह थोड़ी खिलती है, हर शाम थोड़ा मुरझाती है और हर रात फिर से खुद को चुनती है।

उस दिन उसने अपनी डायरी में लिखा - "मैं कोई कहानी नहीं हूँ। मैं अधूरी कहानियों का एक गुलदस्ता हूँ, जिन्हें मैंने जिया है, सहा है और कभी-कभी चुपचाप छोड़ दिया है। मैं वही हूँ, जो फूल बनकर काँटों में रह सकती है।" माँ अब कम बोलती है, किन्तु आर्या अब ज्यादा समझने लगी है। दोनों के बीच अब शब्दों की ज़रूरत नहीं थी। एक बार माँ ने बस इतना ही कहा - "तू मेरी इच्छा नहीं, तू मेरी आकांक्षा थी"।

उस दिन आर्या ने अंतिम चित्र बनाया; एक फूल, जो जड़ से नहीं हवा से जुड़ा था। चित्र का नाम था – 'जिप्सी फूल'।

RituS0992@gmail.com

ले मोर्न शिखर पर मारविन

प्रो. राज शेखर
मॉरीशस

मारविन बचपन से ही अपने कमरे की खिड़की से दूर ले मोर्न पर्वत को देखा करता था। कभी यह पहाड़ सूर्य की सुनहरी रोशनी में चमक उठता, तो कभी बादलों की सफ़ेद चादर में ढका हुआ रहस्यमय-सा प्रतीत होता और जब उसके ऊपर इंद्रधनुष के सात रंग अर्ध चंद्राकार रूप में फैलते, तब ऐसा लगता जैसे प्रकृति ने स्वयं एक मनमोहक पेंटिंग बनाई हो। उसकी बदलती छवि मारविन को हमेशा चकित कर देती थी, लेकिन सबसे ज्यादा उसे उस पहाड़ की ऊँचाई आकर्षित करता था। उसे लगता, मानो वह पर्वत उसे पुकार रहा हो - "आओ, ऊपर चढ़ो और देखो कि मॉरीशस कितना सुंदर है।"

अक्सर वह अपने दादाजी के साथ उस पर्वत की चोटी पर जाया करता था। वहाँ खड़े होकर चारों ओर नीले समुद्र को निहारना उसे बहुत अच्छा लगता। वहाँ प्रायः हवा तेज़ चलती। उसे समुद्र में चल रहे काइट सर्फ़िंग बहुत आकर्षित करता। बहुत बड़ी-बड़ी रंग-बिरंगी पतंगें आसमान में उड़तीं और लोग उसके सहारे लहरों पर फिसला करते। खासकर वह वहाँ से अपने गाँव ला गौलेट को देखना बहुत पसंद करता था, जहाँ उसका जन्म हुआ था और वहीं उसके पूर्वज सदियों से रहते आए थे। लेकिन ऊपर से उसका गाँव बहुत छोटा दिखाई देता, मानो वह किसी मानचित्र को देख रहा हो।

जब वह बहुत छोटा था तभी उसके पिता का देहांत हो गया था। वे बीमारी से नहीं मरे थे, बल्कि वे समुद्र की लहरों में समा गए थे। वे मछुआरे थे। जब वे मछली पकड़ने के लिए गए तब अचानक आए चक्रवात ने उनकी नाव डुबो दी। उनका शरीर भी गाँववालों को कभी नहीं मिला। गाँव के लोग कहते थे - "समुद्र ने ही उन्हें जीवन दिया और उसी ने उन्हें अपने पास बुला लिया।"

अब इस घटना को चौदह वर्ष बीत चुके थे। मारविन भी सोलह वर्ष का लंबा, मज़बूत और हँसमुख नौजवान हो चुका था। गाँववाले अक्सर कहते - "यह बिल्कुल अपने पिता पर गया है।" उसके पिता जॉन गाँव में बहुत प्रसिद्ध थे। वे कई बार ले मोर्न ट्रेल मैराथन में प्रथम आ चुके थे। लोग उम्मीद करते थे कि मारविन भी उसी तरह दौड़ेगा, जीतेगा और गाँव का मान बढ़ाएगा।

गाँववालों की हौसला-अफ़ज़ाई से ही मारविन ने कई दौड़ प्रतियोगिताएँ अपने विद्यालय में जीती थीं। ले मोर्न ट्रेल मैराथन में भाग लेना और उसे अपने पिता की तरह जीतना उसका भी सपना था। ले मोर्न की पगडंडियाँ उसके लिए किसी खेल के मैदान से कम न थीं, क्योंकि बचपन से वह उस रास्ते पर जाने का अभ्यस्त था। वह मन-ही-मन सोचा करता - "मुझे भी इस पर्वत की ऊँचाई की तरह जीवन के सर्वोत्तम शिखर पर पहुँचना है।"

उसकी माँ भी उस पर गर्व करती। पति की मृत्यु के बाद उन्होंने अकेले ही घर सँभाला था। कई घरों में काम करके

उन्होंने अपने बेटे की परवरिश की। उनका सपना था - "मेरा बेटा पढ़-लिखकर बड़ा अधिकारी बने, देश की सेवा करे और लोगों की भलाई के लिए काम करे।"

मारविन खेल-कूद के साथ-साथ पढ़ाई में भी तेज़ था। बिना ट्यूशन के वह कक्षा में अच्छे अंक लाता। शिक्षक उसकी मेहनत और समझदारी की सराहना करते तथा वह अपने मित्रों में भी बहुत प्रिय था।

वह अपने दादाजी के सबसे करीब था। उसके दादाजी अक्सर उसे मॉरीशस के इतिहास और उन स्वतंत्रता सेनानियों के बारे में बताते, जिन्होंने बहादुरी के साथ ब्रिटिश लोगों का मुकाबला किया और गुलामी से मॉरीशस को आज़ादी दिलाई। वे चाहते थे कि मारविन अपने देश के इतिहास और संस्कृति को गहराई से जाने और समझे।

मारविन के जीवन में सब कुछ ठीक चल ही रहा था कि अचानक उसपर अँधेरे का साया मंडराने लगा। जैसे-जैसे उम्र बढ़ी, पढ़ाई का बोझ और समाज की अपेक्षाएँ उसे दबाने लगीं। धीरे-धीरे उसकी पढ़ाई का स्तर गिरने लगा। उसने देखा कि उसके साथी उससे आगे निकल रहे हैं और वह पीछे छूटता जा रहा है।

इस बीच उसकी मित्रता कुछ ऐसे लोगों से हुई, जो उसे नशे की राह पर ले गए। अब वह अक्सर समुद्र किनारे भटकता और देर से घर लौटता। उसका व्यवहार माँ और दादाजी के साथ भी बदल गया। वह चिड़चिड़ा और गुस्सैल हो गया। उसे लगता - "पिता के जाने के बाद सबकी ज़िम्मेदारी मुझ पर है। मैं असफल हूँ। मैं अकेला हूँ। मैं सबकी उम्मीदों पर खड़ा नहीं उतर पाऊँगा।"

धीरे-धीरे उसकी हालत बिगड़ने लगी। वह माँ से रुपये माँगता और न मिलने पर हिंसक हो जाता। उसका शरीर कमज़ोर हो गया था। अब उसमें पहले जैसी स्फूर्ति नहीं रही। मैराथन की दौड़ तो दूर, वह ले मोर्न पर्वत की ओर देखना भी पसंद नहीं करता था।

एक दिन सुबह अचानक उसने बस पकड़ी और वह ले मोर्न पर्वत की ओर निकल पड़ा। वहाँ पहुँचने पर उसने देखा कि प्रवेश-द्वार पर पर्यटकों की भारी भीड़ है। सब उत्साह और हँसी-खुशी से ऊपर चढ़ने की तैयारी कर रहे थे। हल्की धूप थी। चिड़ियों की चहक, झींगुरों की गुनगुनाहट और हवा की सरसराहट से पूरा वातावरण संगीतमय था। रास्ते के दोनों ओर स्थित ऊँचे-ऊँचे पेड़ों की छाया में आगंतुक आराम से आ-जा सकते थे।

ले मोर्न पर्वत के मार्ग पर वह तेज़ी से सबको पीछे छोड़ता हुआ आगे बढ़ गया और थोड़ी ही देर में शिखर पर पहुँच गया, जहाँ एक ब्रा बांट क्रॉस बना था। उस ऊँचाई पर खड़े होकर उसने चारों ओर देखा। नीला समुद्र जिसने ले मोर्न पर्वत को अपनी बाहों में समेटे हुए था। उसने वहाँ से अपने गाँव को फिर ढूँढने की कोशिश की - "शायद वहाँ है, जहाँ मैं और मेरे पूर्वज पैदा हुए।" उसकी नज़र समुद्र के भीतर उस जल प्रपात पर गई - "शायद यह वही जगह है।" उसे ऐसा आभास हुआ। तभी एक विचित्र विचार उसके मन में आया - "अगर मैं यहाँ से कूद जाऊँ, तो कैसा होगा?" उसके पाँव खुद-ब-खुद आगे बढ़ने लगे। उसी क्षण पीछे से एक आवाज़ आई -

"वाह बच्चे! तुम तो मुझसे भी आगे निकल गए!"

मारविन ने पीछे मुड़कर देखा। एक बूढ़ा आदमी मुस्कुराता हुआ उससे यह बात कह रहा था। उसकी आँखों में चमक और चेहरे पर अपनापन था। उसने अपने थैले से दो संतरे निकाले, एक मारविन को दिया और बोला - "लो बेटा, यह संतरा खा लो। इससे तुम्हें ऊर्जा मिलेगी।"

मारविन ने संतरा लिया और आश्चर्य से पूछा - "आप इस उम्र में इतनी ऊँचाई पर चढ़ जाते हैं? थकते नहीं?"

बूढ़ा हँसकर बोला - "मैं तो यहाँ रोज़ आता हूँ। यह पहाड़ मुझे जीवन का पाठ पढ़ाता है। यहाँ आकर मुझे जीने की नई वजह मिलती है। उम्र तो बस गिनती है, असली ताकत दिल में होती है।"

उसकी बात सुनकर मारविन भीतर से काँप उठा। उसे लगा - "यह बूढ़ा आदमी जीवन के अंतिम पड़ाव पर भी जीना चाहता है, और एक मैं हूँ कि अभी से हार मानकर अपना जीवन त्यागना चाहता हूँ।"

उस बूढ़े ने मारविन को ध्यान से देखा और पूछा - "बेटा, तुम उदास क्यों हो? लगता है तुम्हें कोई भारी चिंता है।"

मारविन ने अपने मन की सारी पीड़ा उसे बता दी। बूढ़ा

चुपचाप उसकी बात सुनता रहा, फिर बोला—

"जानते हो, इस पहाड़ की भी एक कहानी है। सुनोगे?"

मारविन ने 'हाँ' में सिर हिलाया।

बूढ़े ने कहना शुरू किया -

"बहुत समय पहले अफ़्रीका और एशिया से हज़ारों लोगों को मॉरीशस लाकर गुलामी कराई जाती थी। उन लोगों ने बहुत दुख झेला, लेकिन आज़ादी का सपना कभी नहीं छोड़ा। कई गुलाम भागकर इसी ले मोर्न पर्वत पर आ बसे। यहाँ उन्होंने छोटी-छोटी बस्तियाँ बसाईं, खेतीबाड़ी की और अपने ढंग से स्वतंत्र जीवन व्यतीत किया, लेकिन जब 1835 में ब्रिटिश सरकार ने गुलामी की व्यवस्था खत्म की और सैनिक यह खुशखबरी देने ले मोर्न आए, तो यहाँ के गुलाम घबरा गए। उन्हें लगा कि सैनिक उन्हें फिर से पकड़ने आए हैं। भय और निराशा में उन्होंने चोटी से छलाँग लगा दी। यह आत्महत्या नहीं थी, बल्कि अपनी अस्मिता और स्वतंत्रता बचाने के लिए बलिदान था। इसलिए यह पर्वत आज भी स्वतंत्रता और साहस का प्रतीक है।"

कहानी सुनकर मारविन की आँखों में आँसू आ गए। अब उसकी आँखों में निराशा नहीं, बल्कि नई चमक थी। उसने सोचा - "यदि उन गुलामों ने हार नहीं मानी, तो मैं कैसे हार मान लूँ? मुझे भी अपने जीवन के लिए संघर्ष करना होगा।"

बूढ़ा धीरे-से बोला - "चलो बेटा, अब नीचे चलते हैं। अँधेरा होने वाला है।"

मारविन उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। अब उसका मन हल्का हो चुका था और दिल में नया उत्साह एवं आत्मसम्मान जाग उठा था। नीचे पहुँचते समय वह उस बूढ़े से आगे निकल गया। जब उसने पीछे मुड़कर देखा, तब बूढ़ा कहीं नज़र नहीं आया। लेकिन मारविन जानता था कि उसकी बातें अब उसके हृदय में बस चुकी हैं।

ले मोर्न पर्वत की उस चढ़ाई ने मारविन के जीवन को भीतर तक बदल दिया था। जब वह वापस अपने घर लौटा, तब परिवार और पड़ोसी सभी ने महसूस किया कि उसमें कोई अनोखा परिवर्तन आ गया है। मानो जैसे कोई चमत्कार हुआ है या कोई दैवीय शक्ति उसे प्रोत्साहित कर रही है। अब वह पहले की तरह उदास या लापरवाह नहीं था। उसकी बातों और कार्यों में आत्मविश्वास झलकता था। वह अपनी माँ और दादा जी का पहले से अधिक आदर करने लगा। गाँव के छोटे बच्चों से भी वह प्यार से बात करता, उन्हें पढ़ाई में मदद करता। अपनी स्वयं की पढ़ाई में भी उसका ध्यान पहले से कहीं अधिक लगने लगा। किताबें, जो कभी उसके लिए बोझ बन गई थीं, अब उसे नई राह दिखाने वाले दोस्त लगने लगे। वह नशा से भी दूर हो गया। वह समझ गया था कि मेहनत और अनुशासन ही सपनों को सच करने की असली चाबी है। धीरे-धीरे उसका यह बदलाव पूरे गाँव के लिए प्रेरणादायक बन गया।

मारविन के हृदय में ले मोर्न पर्वत की चोटी की याद सदा जीवित रही। इसलिए सप्ताह में कम-से-कम एक दिन वह अवश्य उस पर्वत पर जाने लगा। हर बार वहाँ पहुँचने पर उसे लगता, जैसे प्रकृति स्वयं उसके कानों में कह रही हो - "साहस रखो, तुम सब कुछ अपने जीवन में कर सकते हो!"

पर्वत से हर बार उसे एक अद्‌भुत ऊर्जा मिलती। वहाँ से लौटने के बाद उसमें एक अद्वितीय ताज़गी और दृढ़ता आ गई और वह अपने लक्ष्यों की ओर अधिक अग्रसर होने लगा।

समय बीतता गया। मारविन अब 18 साल का हो गया था। ले मोर्न ट्रेल मैराथन आयोजित होने का समय भी आ गया। यह वही दौड़ थी, जिसमें मारविन के पिताजी हमेशा प्रथम आते थे। अब सबकी निगाहें उस पर थीं। क्या वह मैदान में उतरेगा? क्या वह अपने पिता के इतिहास को दोहरा पाएगा?

मारविन ने निश्चय किया कि वह अपने भय को पीछे छोड़ देगा। मैराथन के लिए उसने कठिन अभ्यास करना शुरू किया। हर सुबह वह सूरज की पहली किरण के साथ दौड़ने निकल पड़ता। आखिर दौड़ का वह दिन भी आया। गाँव के लोग बड़ी संख्या में उसे देखने आए। सबकी साँसें थमी हुई थीं, मानो हर किसी का दिल उसी की धड़कनों के साथ धड़क रहा हो। बच्चे, बूढ़े, स्त्रियाँ; सभी की आँखों में उत्सुकता थी।

सभी धावकों के पैरों से उड़ती धूल और आहट के साथ दौड़ शुरू हुई। कई धावक मारविन के सामने से तेज़ी से आगे निकले, पर मारविन शांत और संयमित ढंग से अपना कदम बढ़ा रहा था। उसे पता था कि यह केवल एक दौड़

नहीं, बल्कि धैर्य और आत्मबल की परीक्षा है।

जब दौड़ अंतिम पड़ाव पर पहुँची, तब सबकी नज़रें केवल मारविन पर टिकी हुई थीं। अब ऊबड़-खाबड़ और चिकनी चट्टानों से सभी को गुज़रना था। कहीं-कहीं ये चट्टानें सीधी खड़ी थीं, जिनपर हाथ और पैर दोनों की मदद से धावकों को बंदरों की तरह चढ़ना था। जल्दबाज़ी में थोड़ी-सी भी पकड़ ढीली होने पर कोई फिसलकर नीचे गिर सकता था। मारविन का चेहरा पसीने से तर था, लेकिन उसकी आँखों में चमक थी। मारविन को बचपन से ही इन कठिन रास्तों से गुज़रने का अनुभव था। वह तेज़ी से एक गजब फुर्ती के साथ अपने प्रतिद्वंद्वियों को पीछे छोड़ते हुए आगे बढ़ने लगा। उसे इस तरह आगे बढ़ता देख सभी मारविन-मारविन चिल्लाने लगे। ले मोर्न का पूरा इलाका उसके नाम से गूँज उठा। अंततः उसने सबसे पहले ब्रा बांट क्रॉस को छुआ। चारों ओर तालियों की गड़गड़ाहट गूँज उठी। उसके गाँववालों को जब उसकी जीत का पता चला, तब वे खुशी से उछल पड़े। वे सभी ले मोर्न पर्वत के नीचे उसका इंतज़ार कर रहे थे। जब मारविन अपने गाँववालों से मिला तब सभी ने उसे अपने कंधे पर उठा लिया। उसने अपने पिता के सम्मान को बरकरार रखा था। उस दिन मारविन सिर्फ़ एक धावक की जीत का प्रतीक नहीं था, बल्कि वह सबके लिए यह संदेश बन गया था कि "जब जागो तभी सवेरा! कभी भी जीवन में ज़ीरो से हीरो बना जा सकता है!"

drrajshekhar@loyolacollege.edu

मसाज के नशे में

पूजा अनिल
स्पेन

योग, ध्यान, प्राणायाम और मसाज सीखने के उद्देश्य से कात्या, अर्थात् कात्यायिनी जर्मनी से भारत आई थी। भारत के संस्कारों ने उसे इतना आकर्षित किया कि वह यहीं बस गई। उसका भारतीय नाम कात्यायिनी उसकी गुरु माँ ने दिया था, जो उसे अत्यंत प्रिय था।

माधुरी के घर के समीप ही कात्या का मसाज और योग केन्द्र था। केन्द्र की स्थापना के पहले दिन ही दोनों की मित्रता हो गई थी। उस दिन माधुरी उसके योग केन्द्र में फूलों की सजावट करने गई थी। कात्या ने जब पहली बार उसे देखा, तभी माधुरी को अपनी मॉडल मान लिया था। वह जब भी कोई नई मसाज विधि सीखती, तब माधुरी को मॉडल के रूप में बुला लेती। माधुरी भी समय निकालकर आ जाती। माधुरी की कद-काठी मसाज अभ्यास के लिए एकदम उपयुक्त थी। वह न ज्यादा लम्बी थी और न ही अधिक वज़नी। इससे सीखने वालों के लिए अभ्यास सहज हो जाता था। दूसरी ओर माधुरी को फ़्री में मसाज मिल जाती थी, जिससे उसकी दिन भर की थकान मिट जाती। इस प्रकार यह दोनों के लिए सुन्दर, सहज और सरल सौदा था। धीरे-धीरे वे दोनों बड़ी अच्छी सहेलियाँ बन गईं।

उस दिन भी कात्यायिनी ने माधुरी को अपने मसाज पार्लर में मॉडल के तौर पर बुलाया था। मसाज करते-करते उसने उसके कान में बुदबुदाकर कहा - "अलेक्स लव्स यू!" मसाज के नशे में माधुरी चौंक उठी। कात्या की बात सुनते ही उसका नशा टूट गया और उसने अपनी जगह से हिलना चाहा, लेकिन कात्या ने उसे हौले-से संभाला और मसाज के बीच हिलने नहीं दिया। इस पर माधुरी ने पूछा, "तुम्हें कैसे पता?"

कात्या - "वह रोज़ तुम्हारा इंतज़ार करता है! देखो सामने की दुकान पर खड़ा अभी भी यहीं देख रहा है।"

माधुरी "अच्छा! यह बात है! मैं भी कुछ दिन से देख रही थी। आजकल चर्च के लिए फूल लेने वह मेरी दुकान पर ही आता है।"

कात्या - "हाँ, तो तुम उस से दोस्ती कर लो, अलेक्स बड़ा प्यारा और समझदार लड़का है।"

माधुरी - "तुम्हें तो पता ही है कात्या, हमारे समाज में इस तरह रिश्ते नहीं बनाए जा सकते, जैसा तुम्हारे यहाँ जर्मनी में होता है।"

कात्या - "अरे! तुम क्यों चिंता कर रही हो, मैं हूँ न,

तुम्हारे साथ! तुम्हारे परिवार वालों से मैं तुम दोनों के लिए बात करूँगी।"

माधुरी - "हे राम! तुमने तो कितना आगे का सोच रखा है, कात्या!"

कात्या - "और नहीं तो क्या! मैंने देखा है, तुम दोनों एक साथ बहुत सुन्दर लगते हो!"

माधुरी यह बात सुनकर थोड़ा संकोच से भर गई। फिर झेंप मिटाते हुए बोली - "चलो, मैं सोचूँगी!"

लेकिन कात्या अपने मन में उन दोनों के साथ की कल्पना कर चुकी थी और उससे आगे का एक कदम ले चुकी थी। अतः उसने झट से कहा - "अरे! सोचना क्या है इसमें? मैंने तुम दोनों के लिए कल कॉफ़ी टेबल बुक कर दी है। डेट है तुम्हारी और अलेक्स की। शाम को बिग कैफ़े में एकदम अच्छे से तैयार होकर जाना। और मैं तुम्हारा एकदम बढ़िया-सा मेकअप भी कर दूँगी।"

यह सुनकर माधुरी को एकदम से कोई करंट-सा लगा। हालाँकि वह पहले ही अलेक्स की आँखों में अपने प्रति भावनाएँ पढ़ चुकी थी, पर स्वीकार नहीं करना चाहती थी। अलेक्स का रोज़ दुकान पर आना भी उसे अच्छा लगता था। दुकान पर जब वह अलेक्स से बात करती, तब कभी-कभी उसके काम के बारे में भी पूछ लिया करती थी। वह एक इंजीनियर था। उसे एक अनजाना-सा खिंचाव महसूस होता था, अलेक्स के लिए, जिसे वह स्पष्ट नहीं देख पा रही थी। कात्या की बातों ने उसकी कल्पना से धुँध हटाकर जैसै एक नई, उजली तस्वीर उसके सामने रख दी थी। पूरी शाम वह उसी तस्वीर की कल्पना में खोई रही, जो अभी-अभी उसके सामने कात्या ने खींच दी थी।

अगले दिन सुबह-सुबह ही कात्या ने फ़ोन करके उसे शाम की डेट के लिए तैयार रहने की याद दिला दी। वह स्वयं भी उतावली थी, लेकिन उसने बड़े ही संयत होकर कात्या को हामी भर दी। शाम को वह एक नीली जीन्स और गुलाबी टॉप में तैयार होकर कात्या के पास मेकअप के लिए पहुँच गई। कात्या ने उसे देखते ही नाक भौं सिकोड़ लिए और उसे एक सुन्दर साड़ी पहनकर आने को कहा। कात्या ने ही उसे बताया कि अलेक्स को साड़ी बेहद पसंद है। माधुरी ने साड़ी न पहनने के लिए कई बहाने बनाए, लेकिन कात्या उसकी बात मानने को बिलकुल राज़ी न हुई। उसने माधुरी को साड़ी पहनाकर ही दम लिया और बाद में उसका मेकअप किया।

माधुरी जब बिग कैफ़े पहुँची, तब अलेक्स पहले से ही वहाँ खड़ा उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। दोनों ने एक-दूसरे को मुस्कुराकर अभिवादन किया और कैफ़े में जाकर बैठ गए। कॉफ़ी आर्डर करके दोनों बातें करने लगे। बहुत देर बात करने के बाद जब वे जाने लगे, तब कात्या वहाँ आ गई। उसके हाथ में एक लिफ़ाफ़ा था। उसने माधुरी को वह लिफ़ाफ़ा दिया। माधुरी ने लिफ़ाफ़ा खोला, तो उसमें से कुछ तस्वीरें निकलीं। वे उन दोनों की तस्वीरें थीं, जो कात्या ने तब ली थीं, जब वे दोनों कॉफ़ी पीते हुए बात कर रहे थे और इस बीच वह पास ही के फ़ोटो शॉप से वे तस्वीरें डेवेलप करवा लाई थी। तस्वीरें देखकर दोनों मुस्कुरा उठे, जैसे कोई नया अध्याय शुरू हो गया हो।

माधुरी और अलेक्स अब रोज़ मिलने लगे। उन्हें एक-दूसरे का साथ बहुत अच्छा लगता था। अब वे बातें करते समय अपने भविष्य की योजनाएँ बनाने लगते। भविष्य के सुनहरे सपने अब उनकी बातों के अक्ष बन गए थे।

देखते-देखते छह महीने बीत गए। एक दिन माधुरी जब कात्या के पास मसाज करवा रही थी, तब कात्या ने बहुत धीमे स्वर में कहा - "अलेक्स चला गया, उसकी शादी हो रही है, लेकिन तुमसे नहीं!"

माधुरी सन्न रह गई! इस बार कात्या ने उसे उठने दिया। वह उठकर बैठ गई, आँखों में अनगिनत प्रश्न तैर रहे थे। उसने बड़ी हैरानी से पूछा - "बस ऐसे ही चला गया?"

कात्या ने कहा - "कल शाम को अलेक्स मेरे पास आया था। उसने बताया कि उसके घर वालों ने उसकी शादी तय कर दी है और उसे तुरंत गाँव बुलाया है। मैंने उसे समझाया कि माधुरी तुमसे बहुत प्रेम करती है, तुम उसी से शादी करो, लेकिन उसने कहा कि उसके परिवार वाले इसके लिए तैयार नहीं हैं और वह अपने माता-पिता को समझा नहीं सकता, इसलिए उसे जाना होगा।"

माधुरी कुछ न बोली। उसकी आँखों में प्रेम की डोर के टूटने का दुख स्पष्ट था, नमी छलक आई थी, लेकिन उस पल

में वह चुप रही। कात्या को बहुत बुरा लग रहा था कि उसी के कहने पर माधुरी ने अलेक्स से दोस्ती की थी और अब वही दोस्ती माधुरी के लिए दिल टूटने और दुख का कारण बन गई।

कात्या ने कहा - "तुम उदास मत होना, आओ चलो, अलेक्स को फ़ोन करते हैं, तुम भी बात करना और मैं भी वापस तुम्हारे लिए कहूँगी उसे।"

लेकिन माधुरी ने स्पष्ट रूप से मना कर दिया - "इसकी कोई ज़रूरत नहीं कात्या, वह बड़ा कायर लड़का है, यदि वह मुझसे बात करने लायक होता, तो गाँव जाने से पहले मुझे अवश्य कहकर जाता, किन्तु उसमें ज़रा भी साहस नहीं है और तुम ही सोचो, यदि उसे रुकना होता तो वह जाता ही क्यों? मैं जानती हूँ अब उसे फ़ोन करके कुछ भी न मिलेगा, शायद अब तो वह फ़ोन उठाएगा भी नहीं! लेकिन बड़े दुख की बात है कि पिछले छह महीनों में उसने मुझसे इस बारे में कोई बात नहीं की, बल्कि मेरी सच्ची भावनाओं की आड़ में प्रेम करने का स्वांग करता रहा।"

कात्या को याद आया कि माधुरी ने पहले ही कहा था कि भारतीय समाज में रिश्ते इस तरह नहीं बनाए जाते, जैसा कि जर्मनी में बनाए जाते हैं।

अगले दिन कात्या को एक चिट्ठी मिली। वह चिट्ठी माधुरी ने उसके लिए छोड़ी थी। उसमें लिखा था कि इस घटना से उसे एक सबक मिला है और अब वह इस जगह पर नहीं रहना चाहती है, इसलिए वह अपने माता-पिता के पास गाँव जा रही है। उसने क्षमा माँगी थी कि सुबह की गाड़ी होने के कारण वह कात्या से मिले बिना ही जा रही थी, लेकिन उसे सदा याद रखेगी। यह भी लिखा था कि वह मज़बूत होकर कार्य करती रहेगी और अपनी ज़िन्दगी को अधिक सुन्दर बनाएगी। उस चिट्ठी के साथ माधुरी और अलेक्स की वे तस्वीरें भी थीं जो कात्या ने ली थीं।

माधुरी के जाने की बात से कात्या अत्यंत दुख से भर गई, उसे माधुरी का दुख अपना-सा लगा। उसने तस्वीर में ही अलेक्स के चेहरे पर एक ज़ोरदार थप्पड़ लगाई और कहा - "बदसूरत दिल वाले अलेक्स! तुम न केवल बुज़दिल हो, बल्कि स्वार्थी और गैर-ज़िम्मेदार भी हो। मुझे दुख है कि मैं तुम्हें पहचान न पाई!"

poojanil2@gmail.com

मिट्टी सिहर रही है

प्रतिभा चौहान
बिहार, भारत

उस रात पहाड़ चुप नहीं था,
करवट बदल रही थी देवदार की देह,
जैसे कोई बूढ़ा पिता,
अपने ही सीने में सब्र का टूटा बाँध थामे बैठा हो।

मिट्टी सिहर रही थी,
क्योंकि उसकी देह पर चल रहे थे,
अदृश्य पंजों के निशान।
पेड़ों की जड़ें काँप रही थीं,
ज्यों कोई माँ, अपने बच्चों के लिए कोई डरावना स्वप्न
देख रही हो,
बिना कुछ कहे।

सो रही थी बस्ती खपरैल तले,
रात्रि के मध्य धरती की चीख सुनी जा सकती थी,
वह कोई ध्वनि नहीं,
वह मिट्टी का फटना था,
पहाड़ के सीने का दरकना था,
नींद में सोई ज़िंदगी का,
एकाएक जागकर चीख पड़ना।

वे गिरे नहीं, बह गए,
जैसे किसी बाढ़ में बह जाती हैं स्मृतियाँ,
घरों की दीवारों में शायद ही ईंट बची होगी।
सिर्फ़ खरोंचों के निशान,
जो अस्तित्व की लड़ाई के अंतिम दौर में रह जाते हैं,
चला जाता है जीवन,
जैसे किसी ने कागज़ फाड़कर,
मिटा दी हो अपनी आत्मकथा।

भूस्खलन में बह जाता है,
हर सपना जो देखा जाना था शेष,
हर दुआ, जो बोली नहीं गई थी अभी।

गाँव के हिस्से की ज़मीन पर एक ज़ख्म है
जो नक्शे में नहीं दिखेगा,
पर किसी आँख में रह जाएगा
किसी के ज़हन में बस जाएगा,
लाल डोरे की तरह सदियों के लिए।

मिट्टी के ढेर में खेलता बच्चा,
कपड़े धोते हुए ज़मीन को घूरती हुई माँ,
इंतज़ार करती हुई एक लड़की,
जो शरमाने से पहले हो जाती थी गुलाबी।

भूस्खलन, मिटा चुका है कुछ,
और रच चुका है कुछ नया।
बचे हुए लोगों की छातियाँ
अब भी धड़क जाती हैं
हर बार बारिश की बूँदों पर।

cjpratibha.singh@gmail.com

अहमदाबाद विमान हादसे में दिवंगत आत्माओं को काव्यात्मक श्रद्धांजलि

डॉ. शैलेश शुक्ला
लखनऊ, भारत

आशाओं से पूर्ण विमान जब नीले गगन में उड़ चला,
किसे पता था नियति का प्रहार उस पल था पीछे खड़ा।
सपनों की वे रेखाएँ जो बादलों में थीं, चित्र रच रहीं,
क्षण भर में टूट ध्वस्त हुईं और निस्तब्ध रह गईं।

माँ की ममता, पिता की सीख, भाई-बहन का सच्चा प्यार,
सब रह गए अधूरे, जब हो गया आकाश पर प्रलय-प्रहार।
जिन आँखों में थे भविष्य के रंगीन सपने सँजोए,
अब उन्हीं आँखों को है पीड़ा के अश्रु से भिगोए।

बिखर गई जो कभी थी हँसी, वे बातें, जीवन की मधुर कहानी,
सुनसान पटरियों पर रह गई केवल कुछ यादें पुरानी।
हादसे की भयंकर आग में झुलस गए सैकड़ों जीवन,
और छोड़ गए पीछे अपनों के लिए, पीड़ा और क्रंदन।

ईश्वर! तुम तो दयालु हो, फिर क्यों यह कठोरता दिखाई?
क्यों वे मासूम आत्माएँ यूँ अचानक काल के गाल समाईं?
प्रार्थना यही है, उन्हें शांति मिले, नया आलोक मिल जाए,
जहाँ भी जन्म हों, बस प्रेम और स्नेह की रश्मियाँ लहराएँ।

जिनका घर टूटा, संसार उजड़ा, आँगन से उजास गया,
उनके जीवन में फिर से लौटे सुख, जो भी उनका गया।
हम सब उनके लिए विनम्र मौन श्रद्धा-सुमन चढ़ाते हैं,
अपने भावों से दिव्य-दीप बनाकर शांति की लौ जलाते हैं।

हर उड़ान अब अभय हो, न हो फिर कोई ऐसा मंज़र,
सावधानी, संवेदना व सतर्कता से हो सुरक्षित, सफल सफ़र।
जो गए हैं सब अपनों को छोड़कर, वे कभी भूले नहीं जाते,
उनके ख्याल हमेशा हमारे दिलों में ज़िंदा रह जाते।

हर टुकड़ा उस मलबे का कहता है कोई कहानी,
हर चुप्पी में बह रही निरंतर दर्द की एक रवानी।
जो सपनों की गठरी लेकर जीवन के रथ पर चढ़े थे,
वे आज नियति के मौन भंवर में चिरनिद्रा में पड़े थे।

कुछ थे नवयुवक, कुछ वयोवृद्ध, कुछ मासूम नन्हें प्राण,
सबकी आँखों में थे पलने वाले अपने-अपने अरमान।
एक क्षण में जीवन पलटा, साँसों की ज्योत बुझ गई,
पीछे रह गए प्रश्न और हकीकत आँसुओं में घुल गई।

कोई थी बेटी, जो उड़ान भरने निकली थी पहली बार,
कोई बेटा था, जो माँ के आँचल से दूर हो रहा था पहली बार।
किसी की माँग का सिंदूर था उस सीट पर, अब राख है जहाँ,
किसी की उँगली पकड़कर चलता बच्चा अब जाएगा कहाँ?

कितना कुछ चुपचाप लील गया एक पल का वह प्रहार,
मानवता चेतना को कर गया तार-तार अनगिनत बार।
आकाश भी आज शांत नहीं, करता करुण आर्तनाद,
प्रकृति की व्याकुल पुकार बन गई हादसे का संवाद।

चलो अब हम सब मिलकर इस पीड़ा में संकल्प करें,
सुरक्षा, जागरूकता के साथ ही हर उड़ान का प्रकल्प करें।
न हो दोहराव कभी दुखद त्रासदी के ऐसे पल का,
हर उड़ान में विश्वास हो सुरक्षित एवं उज्ज्वल कल का।

दिवंगत आत्माओं को बस श्रद्धा से याद करते रहें हम,
और दुख में डूबे सब परिजनों का हाथ थामे रहें हम।
राष्ट्र की आत्मा रोती है जब कोई नागरिक यूँ जाता है,
हर संवेदनशील नागरिक उनका दुख अपना-सा जताता है।

poetshailesh@gmail.com

कर्मनाशा की हार

अभिनव अरुण
वाराणसी, भारत

तुमने पलकें उठाईं, पत्ते हिल उठे
दरख्तों पर बैठे परिंदों को,
सुबह होने का एहसास हुआ।

पवन चल पड़ी
ठहरे हुए झरने
पर्वतों की ऊँचाई से झरने लगे
मोरों ने नाचने की अनुमति माँगी
तुमने अनुमति दे कृतज्ञ किया।

तुमने अंगड़ाई ली
कवियों ने एक से बढ़कर एक कवित्त गढ़े
बाज़ार में हलचल बढ़ गई
चैनलों पर मुबाहिसे ज़ोरदार हुए।

चप्पलें चलीं, टी.आर.पी. बढ़ी
सेंसेक्स कई हज़ार अंक चढ़ गया
तुम्हारी भृकुटी तनीं
ज्वालामुखी फूट पड़े।

समुंदरों में ज्वार आ गया
पहाड़ों से गिरने लगे पत्थर
बादल भी फट पड़े।

सोए हुए शहरों में, सुबह ही नहीं हुई
और गहरे हो गए चाँद के कोटर
और सूरज, हो गया आग बबूला।

महामात्य ! हम समझ गए हैं
यही स्वर्ण मृगों का स्वर्णिम युग है
यही समय है नए छंदों का
नई वर्णमालाओं का
नए व्याकरण
और समीकरणों का समय भी यही है
यही समय है त्रिशंकु की जय का
कर्मनाशा की हार का।

arunkrpnd@gmail.com

किताबें

सुश्री राजलक्ष्मी जायसवाल
झारखंड, भारत

सागर नहीं
सबसे गहरी होती है किताबें
जिनमें छुपा है
अनंतकालीन इतिहास
और स्वप्नों का सहवास।
छिपी है जिनमें
रोटी, कपड़ा और मकान
पीढ़ियों से दबी है जिनमें
शोषितों का स्वाभिमान

व्यक्तियों से समाज तक
भविष्य का निर्माण
भूख से तड़पते
बच्चों का बिलखना
अंगारों-सी फूटती
मज़दूरों की जाति
किसानों के पसीने में
भीगे लहलहाते खेत।

स्त्रियों के बलिदान में
दबी उनकी वेदनाएँ
सैनिकों की कुर्बानी में
पारिवारिक संवेदनाएँ

विनाशकारी स्थितियों में
भारत का पुनर्निर्माण
किताबें मात्र शब्द नहीं
समय की साक्षी हैं।

rajlaxmijaiswal801@gmail.com

विकल्प

डॉ. जगदीश पन्त 'कुमुद'
उत्तराखंड, भारत

अस्ताचल की ओर सूर्य को जाते देख
तुमने दबा दिए बिजली के बटन
उजाला पसर गया घर के भीतर, और बाहर भी
जहाँ दृष्टि पहुँची, वहाँ उजाले ने अपना अधिकार जमा लिया।

हाँ, अँधेरे का गणित इससे कुछ भिन्न है
अचानक बत्ती गुल हो गई
किंतु कुछ फ़र्क नहीं पड़ता इससे तुम्हें
इन्वर्टर बोल उठा - "क्या हुक्म है मेरे आका?"
अँधेरे का अस्तित्व समाप्त कर दो !
आदेश दिया तुमने
और तुरंत आदेश का पालन हो गया।

किंतु यह बात सत्य है कि
रात में घर के बाहर तो रोशनी का पहरा रहता है
लेकिन भीतर थोड़ा अँधेरा बचा रहता है
यही थोड़ा-सा अँधेरा सुकून देता है।

रोशनी के विकल्प अनेक होंगे तुम्हारे पास
इस थोड़े-से अँधेरे का
कोई विकल्प नहीं होता।
इसलिए, बचाए रखना इसके अस्तित्व को।

jpkumud@gmail.com

समय का दरवाज़ा

पवन शर्मा
छिंदवाड़ा, भारत

समय चौखट पर खड़ा है
सफ़ेद दाढ़ी नहीं,
बस धैर्य का एक लैंप थामे।
वह पूछता है
"नेति?"
मैं उत्तर देता हूँ
"नेति।"
"अहम्?"
"न, अहम् का भी स्थान छोड़ा मैंने।"

"तो फिर क्या?"
वह मुस्कुराता है।
मैं कहता हूँ
"जो बचता है, वही मार्ग है।"
हवा मेरे फेफड़ों में ज्वार-भाटा रचती है
एक बार भीतर,
एक बार बाहर
और हर बार लगता है
जैसे किनारा थोड़ा और दूर खिसक गया।

स्मृतियों का एक काफ़िला आता है
चलचित्र, ध्वनियाँ, चेहरे
वे दरवाज़े पर टिकट दिखाते हैं।
समय कहता है
"सब नहीं जा सकेंगे,
केवल वही जो भार हल्का कर दें।"
कुछ स्मृतियाँ वहीं रो पड़ती हैं
कुछ मुस्कुराकर सिर हिलाती हैं
और हल्की-सी फूँक बनकर
मेरे साथ चल पड़ती हैं।

दरवाज़ा खुलता है
कोई संगीन चमक नहीं,
बस एक अचूक सरलता।
मैं अंतिम साँस से कहता हूँ
"तू पहले जा
मुझे एक क्षण
इस सरलता को देख लेने दे।"
वह लौटकर कहती है
"सरलता ही मैं हूँ।
चल।"

और हम दोनों
एक ही रेखा में समा जाते हैं
वह रेखा, जो कहीं 'नहीं' से निकली थी
कहीं 'नहीं' में जाती है
पर बीच में
हर चीज़ को अर्थ देती हुई।

pawansharma7079@gmail.com

घर-घर में रावण

डॉ. प्रियंका सौरभ
हरियाणा, भारत

घर-घर में रावण बसे, चौराहे पर कंस ।
बहू-बेटियाँ झेल रहीं, नित शैतानी दंश ।।

मन के रावण दुष्ट का, होगा कब संहार ।
जलते पुतले पूछते, प्रश्न यही हर बार ।।

पहले रावण एक था, अब हर घर, हर धाम।
राम-नाम के नाम पर, पलते आशाराम।।

बैठा रावण हृदय जो, होता है क्या भान।
मान किसी का कब रखे, सौरभ ये अभिमान।।

रावण वध हर साल ही, होता है अविराम।
पर रावण मन में रहा, सौरभ क्या परिणाम।।

हारे रावण अहं तब, मन हो जब श्री राम।
धीर-वीर-गम्भीर को, करे दुनिया प्रणाम।।

झूठ-कपट की भावना, द्वेष-छल अहंकार।
सौरभ रावण शीश है, इनका हो संहार।।

अंतर्मन से युद्ध कर, दे रावण को मार।
तभी दशहरे का मने, सौरभ सच त्यौहार।।

राम राज के नाम पर, रावण हैं चहुँ ओर।
धर्म-जाति दानव खड़ा, मुँह बाए पुरजोर।।

priyankasaurabh9416@gmail.com

उम्मीद

श्री रमाकांत
बिहार, भारत

कतरा कतरा अभी हरा हूँ मैं
अभी कहाँ मरा हूँ मैं
पतझड़ में छोड़ गए सारे पत्ते
थोड़ा-सा गमजदा हूँ मैं।

फिर बहार को आने दो
कुछ बूँदे बरस जाने दो
फिर निकलेंगे नए कोरक
इस उम्मीद में खड़ा हूँ मैं।

आ रही लक्ष्य की आहट है
अब पथिक हृदय को राहत है
अभी तो बस सीखा है, सँभलना
अभी कहाँ चला हूँ मैं।

ramakantsart@gmail.com

कहो मुनिया, कटोरे में क्या लाई हो?

वेद प्रकाश सिंह
इलाहाबाद, भारत

कहो मुनिया, कटोरे में क्या लाई हो?
तुम्हारी आँखों में शरारत की लहर-सी क्यों छाई है?
पायल छनक रही, बाँहों में चूड़ियाँ खनक रहीं
हँसी तुम्हारी जैसे कोयल ने कोई राग छेड़ दिया है।

बालों में बँधा गजरा, ओस की बूँदों-सा भीगा
तेरे कदमों में जैसे सावन का नृत्य लहराता दिखा।
कंधे पर टिका वह कटोरा, कुछ राज़ छुपाए बैठा
कहो मुनिया, उसमें क्या है? मन बड़ा चकराया है।

क्या उसमें हैं आम के टुकड़े, चाट-मसाले से रंगे
या हैं बेर कच्चे-पक्के, जिनमें बचपन की है उमंग
शायद मीठी गुड़ की डलियाँ, या खट्टे इमली का स्वाद
या माँ की बनाई चूड़ियाँ, जिनमें घुला है प्यार का जादू।

हँसी दबा के मुनिया बोली – "न पूछो अब कोई बात
कटोरे में छुपा है सारा मेरा गाँव
थोड़ी-सी धूप का टुकड़ा है, थोड़ी छाँव
थोड़ा-सा बाबुल का आँगन, थोड़ी सखियों की छाँव।"

"लाई हूँ मैं खेतों की हरियाली, पगडंडी की धूल
चिड़ियों की वह चहचहाहट, जो लगती थी अनमोल।
नदी के किनारे की ठंडी बयार, नीम की मीठी गंध,
कटोरे में भर लाई हूँ, मेरा अपना सुगंधमय बचपन।"

हम सब देखकर रह गए दंग – कटोरे में कुछ था नहीं
पर उसकी बातों में बहकर, मन जैसे लौट चला कहीं।
जहाँ न पैसे का मोल था, न शोर था किसी मशीन का
बस था एक मीठा सपना, अपनी मिट्टी, अपनी ज़मीन का।

तो कहो मुनिया, कटोरे में क्या लाई हो?
"मैं सपनों की सौगात लाई हूँ," वह मुस्काई जब
हमने पाया, जीवन की असली मिठास वही थी
जो वह अपने कटोरे में, चुपचाप समेट लाई थी।

vs8801969@gmail.com

हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा हो

डॉ. सरिता चौहान
उत्तर प्रदेश, भारत

बन जाए अगर हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा
खिल उठे मन की कली
पूरी हो मन की अभिलाषा
कितना अच्छा होता।

सुंदर, विचित्र और मनोरम अपनी हिंदी
देवलोक से आई परियों संग करती अठखेली
प्रकृति विविध रंगों में सजी
लाल, पीला, नारंगी, भूरा, सुनहरा और धानी चुनर
कोयल की सुमधुर कंठ में हिंदी सजती
माँ सरस्वती की वीणा में बजती
अगर हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा होती
कितना अच्छा होता।

संविधान के पन्नों में एक अनुच्छेद में रख दिया गया है
हिंदी को
सिर्फ़ एक दिवस मनाई जाती है
अपनों से ठुकराई जाती है
हम कहाँ याद रखते हैं कि
बच्चों के मुख से निकली पहली ध्वनि 'माँ' है हिंदी।
अगर हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा होती
कितना अच्छा होता।

माँ की ममता और पिता का दुलार
सखियों संग प्रीत का संसार
जो जीवन में भर देता मधुमास
प्रत्येक मन की आशा
अतृप्त हृदय की अभिलाषा
वेदना का स्वर इसमें
भावना का राग इसमें
मनुज का विस्तार इसमें
अगर हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा होती
कितना अच्छा होता।

आओ करें हम इसमें आराधना
विश्व फलक पर इसे ले जाएँ
हिंदी को जन-जन तक पहुँचाएँ
भारत माता की यह बिंदी
सबके होठों पर हो हिंदी
सजा लो अपने रागों में, मुखरित करो इसे अपने स्वर में
अपने निजपन में अपने जीवन में
हृदय तारिका में और मृदुल कंठ में
अगर हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा होती
कितना अच्छा होता।

मत भूलो यह हिंदी हिंद देश की भाषा है
प्रत्येक जन के मन की अभिलाषा है
प्रत्येक की भावनाओं में समा जाती
हृदय तरंगों में हमें उस पार ले जाती
अगर हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा होती
कितना अच्छा होता।

Prithvi88888888@gmail.com

शृंखला

श्रीमती मधु खन्ना
ऑस्ट्रेलिया

शृंखला किस की गिनूँ?
देश पर आघात की
नारी पर अत्याचार की
फैले हुए व्यभिचार की
शृंखला किसकी गिनूँ?

निःवस्त्र होती नारी की
मनुष्य के विकार की
निर्धन पर अत्याचार की
शृंखला किसकी गिनूँ?

गिरते हुए संस्कार की
मदिरा से लिप्त व्यवहार की
मादकता में डूबे संसार की
शृंखला किसकी गिनूँ?

कटुता से भरी धार की
कलुषित हुए व्यापार की
विकृत हुए आकार की
मन में हुए विकार की
शृंखला किसकी गिनूँ?

धर्म में अधर्म की
कर्म में कुकर्म की
प्राण में पाषाण की
शृंखला किसकी गिनूँ?

सुमति से कुमति की
योग से भोग की
रोष से आक्रोश की
जीवन से अंत की
शृंखला किसकी गिनूँ?
रोग से निरोग की
ज्ञान से विज्ञान की
मान से अपमान की
शृंखला किसकी गिनूँ?

khannamadhu45@yahoo.com.au

आज नदी को फिर उदास देखा

संगीता चौबे पंखुड़ी
कुवैत

आज नदी को फिर उदास देखा
आँसुओं का सैलाब फूट-सा पड़ा था
शायद अंतर्मन में,
एक फाँस टूटकर गड़ा था
बिखर गई थी, उसके काजल की रेखा
आज नदी को फिर उदास देखा...

बादलों को सौंपकर अपनी आँखों का पानी
नदी कर बैठी थी नादानी
मन की तलहटी में, दफ़न कर सारी ख्वाहिशें
ओढ़ लिया था धूप का साया
और भूल बैठी
वह अपनी लहरों की रवानी।
हुई नदी विकृत, जो कभी थी इतनी सुरेखा
आज नदी को फिर उदास देखा...

दो पाटों के बीच,
दूरी भी सिमट आई थी,
मानो अहसासों की बारिशों में भीगकर
रूह की दीवारें भी कुछ-कुछ नम हो गई थीं

कब कर पाई थी नदी उसे अनदेखा
आज नदी को फिर उदास देखा...

sangeet.white@gmail.com

दृष्टि

अविनाश श्रीवास्तव
लॉस एंजेलस, कैलिफ़ोर्निया

मैंने आँखें खोकर भी
मन को पढ़ना सीख लिया
तुम आँखें पाकर भी
चित्त को नहीं जान पाए
तुम्हारी आँखों में तो रोशनी थी,
पर उन्हीं आँखों से
दुनिया भर का अँधेरा
तुम्हें कहाँ दिख पाया?

तुमने आँखों से देखी
एक विस्तृत दुनिया
खूबसूरत रंग और चाँद
नीले आसमान पर सतरंगी परिधान
पर नहीं देख पाए
एक लड़की की इक्षा में दबी ऊँची उड़ान
बूढ़े माँ-बाप के अरमान
अज्ञानता में छिपा ज्ञान

मैं, बिना आँखों के
मन से मन को पढ़ता हूँ
इस रंगीन दुनिया को
सिर्फ़ एक ही रंग में गढ़ता हूँ
आत्मा से आत्मा को पढ़ता हूँ
आत्मा से आत्मा को लिखता हूँ
सिर्फ़ आत्मीय नज़र है मेरे पास
जिससे मैं हर नज़रिये को परखता हूँ!

तुमने आँखों से देखे
काले, भूरे और गोरे
तिरस्कृत किया उनको,
जो तन से थे अधूरे
तुमको दिखते रहे
हमेशा विसंगतियाँ और रकीब
तुम्हारी दृष्टि भेदती रही
हमेशा अमीर और गरीब

पर मैं इस रंगभेद से विमुक्त था
अपने आत्मिक रंगों में ही उन्मुक्त था
मन की आँखों ने
मुझे कृष्ण से मिला दिया।
अभागी आँखें ही थीं तुम्हारे पास,
जिनसे सीता को तुमने देखा
और तुम रावण बन गए!!

savinash52@yahoo.com

मृत्यु

आलोक कुमार शर्मा 'अहन'
संयुक्त अरब अमीरात

ध्यान से, विज्ञान से, मनन से, प्रमाण से
बहिर बहते ज्ञान से या अंतस के प्राण से
विशुद्ध सिद्धांत से या जगत के विधान से
मृत्यु ... मृत्यु तुम अटल हो।
जल की भीषण धार से, आग्नेय प्रचंड ताप से
वायु-धमनियों में भड़के, तीव्र वज्रपात से
थल के तांडवीय नृत्य भंगिमा उत्पात से
मृत्यु ... मृत्यु तुम दिव्य हो।
जीव प्रश्न किया करे, जीव प्रश्न में जिए
जीव को मिला यह जीवन, किस तरह जिए मरे
जीव जीवन सत्य है, पर जीवन ही असत्य है
मृत्यु ... मृत्यु तुम सत्य हो।
मृत्यु घटित हो रही, प्रत्येक क्षण हो रही
काल मधुर लहरियाँ गुँजायमान हो रही
बैठी मुख मोड़कर मैं, प्रत्यक्ष सत नकारती
जीवन ... जीवन तुम असत्य हो।
जियो कुछ इस तरह कि, जीव मुक्त हो सके
मरो कुछ इस तरह कि भव्य बिंदु मिल सके
यह मृत्यु उत्सव बन सके, वह जीव-तत्व खिल सके
मृत्यु ... मृत्यु तुम अभीष्ट हो।

actuniversal2020@gmail.com

जब रूह का मुझको भान हुआ

अनुसूया साहू
सिंगापुर

जब रूह का मुझको भान हुआ,
तब जीना भी इम्तिहान हुआ।
जीवन की ऊँची इमारत में,
खुद मन ज्ञान से वीरान हुआ।

अब तक दोस्त थे इंसान सभी,
अब यार मेरा भगवान हुआ।
इस उम्र में ऐसा खेल हुआ,
ईश्वर से मेरा मेल हुआ।

मन के बिखरे थे तार सभी
टूटे अहसास, अकेलापन,
पल भर में जैसे ढेर हुआ।
जो थे घाती, नातेदार सभी,
उन सब से मन मेरा दूर हुआ।

मैं भागी भी, मैं जागी भी,
रुकी साँसों से पूछा भी,
क्या डगर मेरी, क्या सफ़र मेरा?
कौन-सा सच, क्या झूठ मेरा?

समय का पहिया घूम-घूमकर,
मुझको सब्र सिखाता रहा।
चल पर बैठा मैं मौन हुआ,
ईश्वर हाथ बढ़ाता रहा।

धीरे-धीरे सुराही-सा मैं,
घट कर खुद को पाता रहा।
कहानी तब आकार बनी,
जब रूह की आवाज़ सुनी।

हर हाल, हर साल, हर मोड़ पर,
उसने सारथी बन हाँका है।
समझ गया, मन मेरा अश्व है,
और रूह ही इसका आका है।

जब चली रूह ईश्वर की राह,
राहों में चमत्कार मिले।
जो जादू से भी आगे थे,
विश्वास के उपहार मिले।

विश्वास की ये जो डोर बंधी,
रूह ने अचल सब त्यागा था ,
जैसे विशाल जेंट-व्हील सवारी,
आनंद ही आनंद दिखा-सा था।

रूह का साथी कहीं था मगर,
दृष्टि में स्पष्ट न आया था।
वक्त ने उससे मिलवाया फिर,
सम्पूर्णता का भान कराया फिर।

यह अजूबा था मेरे लिए,
था करिश्मा उसके नाम लिखा।

कुछ पुस्तकें छानी जीवन की,
ट्विन फ़्लेम का रहस्य दिखा।

कुदरत का कैसा नियम बना,
जब रूह को यात्रा का जुनून हुआ।
सामने आया सरल-सा पथ,
कर्मों का लेखा दोगुना हुआ।

जन्मों-जन्मों के ये हिसाब,
दो भागों में बँट जाते हैं।
आधा मैं चलूँ, आधा तुम,
तभी मुकम्मल रास्ते हम पाते हैं।

कायनात के लेखकों ने,
क्या खूब कहानी लिख डाली।
जब मिलीं आग-सी दो लपटें,
रूहों ने पहचान बना डाली।

ना बिछड़े थे, ना भूले थे हम,
बस मौन में ठहरे रहते थे।
मिले तो ज़ुबानी कह डाली ,
जो सदियों से भीतर रहते थे।

anusuyasahu@gmail.com

बेटी की विदाई

हिमानी मिश्र गालब्रेथ
न्यूज़ीलैंड

सुबह की पहली किरण जब आई,
माँ ने रसोई में आग जला।
गर्म पराठे, चाय बनाई,
तेरी पसंद की थाली सजाई।

बेटी, तू दूर देश को जाती,
पर दिल में बस यहीं रह जाती।

तेरी हँसी, वे मीठी बातें,
अब खामोश-सी लगती रातें।
पिता जो चट्टान-सा था,
आज आँखों में सैलाब लिए खड़ा।
चुपचाप तेरी तस्वीर को ताके,
भीतर-ही-भीतर आँसू छिपाए।

माँ के हाथों का स्पर्श जो तुझको,
हर सुबह जगाने आता था,
आज वह तेरा तकिया सहलाए,
तेरी खुशबू से दिल बहलाए।
जा बेटी, उड़ान भर ले,
सपनों को अपने रंग चढ़ा ले।
पर याद रखना यह घर तेरा,
जहाँ प्यार सदा बहता रहे।

mishra.himani8@gmail.com

कर्मचारी की आदत

हसारा दसुनि हिरिमुतुगॉड
श्री लंका

आँखों पर चश्मे लगाने लगा,
आँखें धुँधली हो गयीं।
नैन मूँदकर रहने लगा,
आदत पड़ गयी।

आँखों पर पानी छिड़कने लगा,
'भाड़ में जा!'- शाप लग गया।
आँखों में नमी सूख गयी,
आदत पड़ गयी।

उठकर आँखों को जगाने लगा,
पर बेहोश-सा रहने लगा।
रात-दिन सोने लगा,
आदत पड़ गयी।

पहचान गुम हो गयी,
कई साल बीत गए।
अंत की प्रतीक्षा करने लगा,
आदत पड़ गयी।

hasaradh@kln.ac.lk

मज़दूर से महामहिम

सविता तिवारी
मॉरीशस

समय बना लेखनी जिनकी
कथा आज मैं कहती हूँ।
दुख कष्टों से घिरे मनुज की
व्यथा आज मैं कहती हूँ।

जिसने अपनी मेहनत के बल
अपना भाग्य बनाया।
माटी की सेवा की
और महामहिम कहलाया।

सुनो ध्यान से और गुमान से
पुरखों का वह गौरव।
जिनकी रक्त ने सींचा
मॉरीशस का पौरव।
2 नवंबर का दिन था वह
मौसम बड़ा सुहाना।
दो वक्त की रोटी की खातिर
पड़ा था वतन गँवाना।

सपने थे आँखों में सुंदर
कुछ धुँधले से मानो।
वतन छूटने का दुख था
पर कर्म की ही गति जानो।

सागर तट की लहरों ने
उनके कदम पाखरे।
मानो राज छोड़ के
अवध बिहारी कानन में थे पधारे।
आसान नहीं थी राहें उनकी
हर पग में थे काँटे।
पथरीली थी भूमि बड़ी यह
गोरे थे रखवाले।
जिनकी सत्ता कोड़ों में थी
और ज़ुबान में गाली।
रहते थे वह सूट-बूट में
लेकिन मन था खाली।

कोड़े खाओ काम करो
बस उनका था यह नारा।
खाना माँगा जिस भी तन ने
उसे गया था मारा।

जीवन था अभिशाप बना
पर मन ने हार न मानी।
सपने देखे आज़ादी के
या फिर जान गँवा दी।

12 मार्च का दिन फिर आया
चौरंग सबने अपनाया।
दुखों की अब तो घटा छट गई
सुंदर-सा एक नव दिन आया।

आए थे जो पर बस होकर
जन्मभूमि और सब कुछ खोकर।
उसने नव संसार बनाया
सपनों ने आकार बनाया।

समय बना लेखनी जिनकी
कथा आज मैं कहती हूँ।
दुख कष्टों से घिरे मनुज की
व्यथा आज मैं कहती हूँ।

जिसने अपनी मेहनत के बल
अपना भाग्य बनाया।
माटी की सेवा की
और महामहिम कहलाया।

savitapost@gmail.com

हिंदी शिक्षिका बनकर मुझे क्या मिला?

सविता अशोक मौर्य
तंज़ानिया

कहते हैं - हिंदी शिक्षिका बनकर
कुछ खास नहीं किया जा सकता
हिंदी शिक्षिका बनकर
बच्चों की पहली पसंद नहीं बना जा सकता
इसको गलत प्रमाणित करती हूँ आज
इसके कारण मैं बताती हूँ आज।

अपनी मातृभूमि से दूर जाकर
विदेशी भूमि तंज़ानिया में रहकर
हिंदी शिक्षिका बनने का अवसर मिला
हिंदी की ज्योति जलाने का अवसर मिला
हिंदी का ज्ञान फैलाने का अवसर मिला
बच्चों में संस्कार डालने का अवसर मिला।

कविता, गीत, नृत्य और कहानी में
जीवन को जीने का अर्थ मिला
बच्चों की मीठी मुस्कान में
हर प्रश्न का उत्तर मिला
हर 'सविता मम्मा' की पुकार में
अपार सम्मान मिला।

भारतीय-अफ़्रीकन बच्चों में
संस्कृतियों का संगम मिला
'नमस्कार' और 'जाम्बो' के मेल में
निष्कलंक प्रेम मिला
हिंदी भाषा के माध्यम से
छात्रों को समझने का दृष्टिकोण मिला।

हिंदी भाषा सिखाने के साथ-साथ
खुद सीखने का अवसर मिला
कक्षा को परिवार बनाने का भाव मिला
छात्रों की सफलता पर
गर्व हुआ, संतोष मिला
हिंदी पढ़ाकर खुद को पहचानने का अवसर मिला।

हिंदी का अध्यापन करके
साधना का अनुभव मिला
हिंदी-प्रेम बाँटने का आधार मिला
जीवन का वास्तविक अर्थ मिला
बच्चों को सफल बनाने का दायित्व मिला
हिंदी शिक्षिका का दायित्व वहन करने का सुख मिला।

हिंदी शिक्षिका बनकर
उत्तम शिक्षण का पुरस्कार मिला
जीवन का सुख मिला
हिंदी शिक्षिका बनकर
बच्चों का प्यार मिला
बस प्यार-ही-प्यार मिला।

savitaamaurya@gmail.com

लुका-छिपी - जीवन का अनवरत खेल

डॉ. मौना कौशिक
बुल्गारिया

सूरज को चाहिए बादल की ओट
फूलों को रात की गोद
बर्फ़ की सफ़ेद चादर ओढ़े है कौन
अनंत, विशाल पर्वत क्यों है मौन
वृक्ष छुपा लेते हैं अपने बीज
हवा भी मनाती कभी तीज।

चंद्रमा उतरता लहरों की बाहों में
चुपके से ढल जाता धरती के उस पार
चिड़िया धीरे-धीरे घोंसले में लौटता
सूरज भी धीरे-धीरे लौट जाता
वसंत हर बार है लौटता
लहरें किनारे पर हैं लौटतीं।

जो नहीं लौटते, उनकी यादें हैं आतीं
किताबों में छुपे फूलों से खुशबू है आती
दिल के आँगन में पुरानी धुन है गूँजती
तस्वीरों से यादें हैं आतीं,
कभी न जाने के लिए
हमेशा-हमेशा रहने के लिए।

maunakaushik@gmail.com

आखिरी दम तक वह चलता रहता

ईशिता यादव
नाइजीरिया

भारी बोझ उठाता, पर गधा चलता रहता
सफ़र अभी बाकी है, ऐसा सोचता
कभी थक जाता, कभी ठिठक जाता
पर हौसले से आगे बढ़ता जाता
न कोई शिकवा, न कोई गिला
आखिरी दम तक वह चलता रहता

दुनिया का रुख चाहे जैसा भी हो
धूप या छाँव हो, बारिश या सूखा हो
भले डगर कठिन हो, पर हार नहीं मानता
चुनौतियों में भी वह मुस्कुराता
पोथी से नहीं, अपने अनुभव से सीखता
आखिरी दम तक वह चलता रहता

काँटों पर उसके कदम पड़ते
लोग तमाशा देखते, उसकी हँसी उड़ाते
पर गधा कोई फ़िक्र न करता
राह पर वह धीरज धरता
उम्मीदें कभी न छोड़ता
आखिरी दम तक वह चलता रहता

कभी पहाड़ों पर चढ़ता
कभी कीचड़ में धँस जाता
न शोर मचाता, न शिकायत करता
हर हालत में संयम रखता
बस चुपचाप अपना फ़र्ज़ निभाता
आखिरी दम तक वह चलता रहता

गधे को संसार मूर्ख समझता
पर देखो, उसमें कितना दम होता
न कोई छल, न दिखावा
कितना सादा, कितना सच्चा
तूफ़ान में वह टिकना सिखाता
आखिरी दम तक वह चलता रहता

ishita62@gmail.com

दोहों के रंग : आईने के संग

हलीम आईना
कोटा, भारत

सच का दामन थामना, काँटों का है ताज।
झूठ गले में हार है, सच मुख ताले आज।।

'आईना' मत पूछिए, अब उल्फ़त की बात।
तार-तार रिश्ते हुए, पग-पग पर आघात।।

दुखियारों के दर्द का, हो जिस को अहसास।
अँधियारे संसार में, जो बिखराए उजास।।

सब धर्मों का एक ही, यारो निकले सार।
ऐकेश्वर के हाथ है, सारा ही संसार।।

बचना संभव नहीं, काल-चक्र से यार।
अदना चींटी भी कभी, हाथी को दे मार।।

जिनको कहने से बचें, तथाकथित कविराय।
ऐसी ही हर बात को, 'आईना' कह जाय।।

haleemaaina@gmail.com

गंगावतरण की कथा

अजय कुमार पाण्डेय
रायपुर, भारत

गंगावतरण की कथा, चलो सुनाएँ आज।
महाप्रतापी सगर का, था विशाल साम्राज्य।।

धर्म-कर्म में श्रेष्ठ जो, रहे बड़े विद्वान।
षष्ठी सहस्त्र पुत्र थे, सब थे वीर महान्।।

सपना चक्रवर्ती का, करने को साकार।
अश्वमेध के यज्ञ का, नृप ने किया विचार।।

धूमधाम से राज्य में, सकल कर अनुष्ठान।
छोड़ा नृप ने अश्व को, शुरू हुआ अभियान।।

चर्चा फैली सगर की, पहुँची चारों ओर।
बढ़ा यश इक्ष्वाकु का, जन-जन हुआ विभोर।।

यश सुन असित कुमार का, वासव के बिगड़े बोल।
आशंका मन में जगी, गया सिंहासन डोल।।

किया कपट फिर इन्द्र ने, हय को लिया चुराय।
बाँध ऋषिकुल प्राँगण में, छल से दिया छुपाय।।

ढूँढ मची फिर अश्व की, जल-थल में पाताल।
कोई भी न समझ सका, कुटिल इन्द्र की चाल।।

चले ढूँढने अश्व को, पुत्र षष्ठी हज़ार।
मिला बँधा बाज़ी उन्हें, कपिल ऋषि के द्वार।।

सगर पुत्र क्रोधित हुए, मति का रहा न भान।
मुनिवर का मठ ध्वस्त कर, किया घोर अपमान।।

तप में जब बाधा पड़ी, हुई तपस्या भंग।
कुपित कपिल मुनि हो उठे, उठे क्रोध के संग।।

मचा रहे उद्दंडता, आश्रम में उद्दण्ड।
मुनि का रक्त खौल उठा, आया क्रोध प्रचंड।।

ज्वाला दहकी चक्षु से, भय सगर सुत भस्म।
मुक्ति दिलाए कौन अब, कौन निभाए रस्म।।

एक सगर सम्राट के, पौत्र थे अंशुमान।
ज्ञानी कर्मशील थे, थे विनम्र विद्वान।।

पहुँचे कपिल के आश्रम, कुल दीप अंशुमान।
कर जोड़ ऋषि के आगे, खड़े छोड़ अभिमान।।

की मुनिवर की अर्चना, मुनिवर हुए प्रसन्न।
फिर तारने पुरखों को, किया कपिल से प्रश्न।।

संस्कार कैसे करूँ, कैसे रीति-रिवाज़।
कैसे मैं तर्पण करूँ, पुरखों का ऋषि राज।।

प्रभु, विधि कोई बताइए, हो मुझ पर उपकार।
पुरखों को मुक्ति मिले, हो उनका उद्धार।।

पिघले ऋषि तब देखकर, सच्चे मन की चाह।
होकर प्रसन्न कपिल ने, तब बतलाई राह।।

मेरे वश में अब कहाँ, रहा न कुछ भी हाथ।
ब्रह्मा जी की हो कृपा, हो विधि का भी साथ।।

गंगा स्वर्ग निवासिनी, कर सकती उद्धार।
भू पर यदि कोई उन्हें, ले आए साकार।।

सुनकर ऋषि के बोल तब, बँध गई एक आस।
प्रण लिया फिर राजन ने, करने कठिन प्रयास।।

भावपूर्ण माँगी विदा, जोड़कर दुई हाथ।
अंशुमान वापस हुए, लेकर हय को साथ।।

पहुँचे हय को साथ ले, वापस अंशुमान।
पूर्ण कराया यज्ञ को, बढ़ा सगर का मान।।

अंशुमान जग छोड़कर, करने कर्म कठोर।
चले मुक्ति की चाह में, हिम पर्वत की ओर।।

आजीवन करते रहे, तपस्या अंशुमान।
सारी उम्र निकल गई, छूटे उनके प्रान।।

नृप दिलीप ने तब लिया, अंशुमान का भार।
छोड़ दिया तप के लिए, पीछे सब संसार।।

लीन हिमालय में रहे, बरसों बरस दिलीप।
की अराधना ब्रह्म की, पहुँचे और समीप।।

परवश मौसम से हुए, हुए रुग्ण गम्भीर।
छोड़ जगत को चल दिए, त्याग अलील शरीर।।

दिलीप सुत भगीरथ ने, छोड़ा नहीं विकल्प।
सगर सुतों को तारने, लिया अटल संकल्प।।

अपने अधीनस्थों को, सौंप के राज की डोर।
लिये कमण्डल हाथ में, चले हिमालय ओर।

प्रभु आराधना में रहे, बरसों तक तल्लीन।
खोया अपने आप को, ईश-भक्ति में लीन।।

सुध-बुध सब बिसरा गई, जग से रहे अज्ञेय।
भूल सकल संसार को, रहा एक ही ध्येय।।

कुल को अपने तारने, तपस्या की कठोर।
भू पर गंगा आ सके, लगा दिया पुरजोर।।

भूख प्यास सब त्याग कर, रहे ध्यान में लीन।
भक्ति राह चलने लगे, होकर के तल्लीन।।

श्राप-मुक्त करने किया, भागीरथी प्रयत्न।
कठिन तपस्या देखकर, ब्रह्मा हुए प्रसन्न।।

दुखियों के दुख तारने, करने कष्ट निदान।
भू पर गंगा को दिया, आने का वरदान।।

आशंका सब को हुई, हो न जाए अनर्थ।
विष्णुपदी को थामने, धरती नहीं समर्थ।।

कौन संभालेगा भला, तीव्र सलिल का वेग।
रसातल पहुँचाएगा, धरती को संवेग।।

शिव जी यदि तैयार हो, जाएँ लेने भार।
तब ही कर सकती वहाँ, गंगा जी उद्धार।।

तब शिव जी को साधने, फिर से किया प्रयत्न।
रहे पद अंगुष्ठ खड़े, वर्षों योगी रत्न।।

तप योगी का था कड़ा, आराधना निर्दोष।
हुए प्रसन्न निहारकर, सदाशिव आशुतोष।।

ज्येष्ठ शुक्ल वासर दशम, समय काल अनुकूल।
हर्षित था ब्रह्मांड भी, पुलकित धरा समूल।।

विष्णु पद से तब निकलीं, चलीं धरा की ओर।
लहरें नर्तन कर उठीं, चलीं मचाती शोर।।

गर्जन से गुँजित हुआ, जगत् गया सब डोल।
शंकर पर्वत पर खड़े, सभी जटाएँ खोल।।

नैनों में न समा सका, ऐसा रूप विशाल
माँ गंगा भू पर चलीं, लिये रूप विकराल

अगवानी करने खड़े, सुर-नर-दानव राज।
विनती सब करने लगे, पूर्ण हो महा काज।।

उत्सुकता सब को बड़ी, सब ने किया प्रणाम।
आशंका मन में रही, क्या होगा परिणाम।।

रत्नाकर-सा रूप था, थी जल राशि विशाल।
शिव ने पल भर में लिया, जटाओं में सँभाल।।

की अगवानी गंगा की, भोलेनाथ सहाय।
सिर पर धारण जब किया, गंगाधर कहलाय।।

करतल-ध्वनि होने लगी, हुई सुमन बरसात।
सकल जग उल्लसित हुआ, हुआ नवीन प्रभात।।

मिली धरा को स्वर्ग से, गंगा की सौगात।
बड़ा अनोखा दृश्य था, बड़ी अनोखी बात।।

उलझ गईं जटाओं में, हुईं बहुत गुमराह।
कैसे निकलेंगी भला, नहीं सूझती राह।।

शंकर ने लट खोल दीं, निकली सिर से धार।
गंगा फिर उद्यत हुईं, करने जग उद्धार।।

चले भगीरथ सामने, देवदूत-सादृश्य।
भगीरथी पीछे चलीं, बड़ा मनोरम दृश्य।।

मार्ग में ऋषि जन्हु के, मठ से निकली गंग।
सब सामग्री बह चली, गंगा-जल के संग।।

हुए जन्हु क्रोधित बड़े, विपदा थी निकटस्थ।
गंगा जी का कर लिया, सारा जल उदरस्थ।।

जन्हु सकल जल पी गए, आया उनको क्रोध।
चिंतित भागीरथ हुए, हुआ कार्य अवरोध।।

विनती की ऋषिराज से, किया उन्हें प्रसन्न।
ऋषि जन्हु ने तब जाकर, टाला अप्रिय विसन्न।।

निकलीं ऋषि के कर्ण से, हुईं मुक्त माँ गंग।
माँ जाह्नवी कहलाईं, आया मधुर प्रसंग।।

कहाईं मोक्षदायिनी, कर के पाप निवार।
मार्ग में जो भी मिले, किया सकल उद्धार।।

लाए भागीरथ उन्हें, ऋषि कुल कपिल विशेष।
पड़े हुए थे जिस जगह, पुरखों के अवशेष।।

पतित पावनी ने किया, उन सब का उद्धार।
ऋषि श्राप से मुक्त किया, खुल गया मोक्ष-द्वार।।

हो प्रवाहित जा पहुँचीं, भागीरथ के संग।
रत्नाकर में मिल गईं, जाकर माता गंग।।

गंगा भू को स्वर्ग का, है पावन उपहार।
धन्य धरा है जो लिया, गंगा ने अवतार।।

ajaypandey117@gmail.com

विविध रंगों में पगे हाइकु

डॉ. रमेश यादव
मुबंई, भारत

(1) बारिश-बूँदें
तन मन को चूमे
प्रकृति झूमे

(2) बिखरी नहीं
तूफ़ानों के दौर में
खड़ी है दूब

(3) बूँदें वर्षा की
झम-झम गिरतीं
भीगी धरती

(4) बादल आए
बरसात लेकर
धरा मचली

(5) सर्द मौसम
करता बेवफ़ाई
दे दो रजाई

(6) तितली रानी
फूलों पे मंडराती
स्नेह लुटाती

(7) पियरी ओढ़े
खेतों में है मुस्काती
सरसो प्यारी

(8) नीड़ बनाती
तिनके-तिनके से
गौरैया प्यारी

(9) फिसला नहीं
बहक गया मन
प्रीत ही तो है

(10) उषा हँसती
फुलवारी खिलती
बात बनती

(11) चाँद चकोरी
गाँव की भोली छोरी
मासूम प्यारी

(12) दीया में बाती
तेल संग जलती
प्रकाश देती

rameshyadav0910@yahoo.com

हाइकु

श्रीमती कल्पना लालजी
मॉरीशस

(1) कलकत्ता के
कहें कलकतिया
आज तलक

(2) रोपीं फ़सलें
चुनकर पत्थर
संतोष-धन

(3) छोटा-सा तारा
लघु मोती आकार
इंद्रधनुषी

(4) रखते शांत
गीता व रामायण
सदैव उन्हें

(5) भूखा था पेट
और झोली थी खाली
भोगे संकट

(6) बने साहसी
झेले घाव अनेक
राम कृपा से

(7) देकर खून
सींचा मेहनत से
इस देश को

(8) परम्पराएँ
देतीं रही हिम्मत
जीवन भर

(9) बहा पसीना
लहराईं फ़सलें
मन हर्षाए

(10) खाई ठोकर
डिगा नहीं विश्वास
किए संघर्ष

(11) पसीना बहाते
तन-मन जलाते
काटते दिन

(12) बसाया आज
कुलियों ने मिलके
छोटा-सा टापू

Kalpanal_2008@yahoo.com

गीत

नितीश पाण्डेय
कानपुर/हैदराबाद, भारत

विश्व पटल पर चमक रही है, बनी विश्व की भाषा
कई रूप हैं, कई रंग हैं, कई दिलों की आशा।
छंद, सोरठे, दोहे, मुक्तक, बन बनकर बलखाए
ब्रज, अवधी, बुंदेली, मगही-सब रूपों में गाए।
स्वर गूँजे तो राग मिले, वीणा का वह तान
हिंदी गाए जग का मन, भारत की पहचान।

हिंदी, हिंदी, विश्व की रानी
मधुर वचन की अमृत वाणी।
सबको गले लगाती जाए
प्रेम की भाषा, जन की बानी।

यहाँ सूर के कृष्ण मिलेंगे, तुलसी के हैं राम
मीरा का गायन इसमें है, रस बरसे अविराम।
गद्य-पद्य, निबंध-साहित्य, ज्ञान का सागर गहरा
हर अक्षर विज्ञान छिपा है, स्वर में जादू ठहरा।
कभी किसी की माँ बन जाती, बहना या सहचरी
हर एक रूप में लागे सुंदर, हिंदी कारीगरी।

हिंदी, हिंदी, विश्व की रानी
मधुर वचन की अमृत वाणी।
सबको गले लगाती जाए
प्रेम की भाषा, जन की बानी।

हर माटी में रची बसी है, सबकी बनी सहेली
सबको चलना साथ सिखाए, रहती नहीं अकेली।
स्वर जैसे कोकिला गान हो, अक्षर मोती जैसे
शुद्ध व्याकरण, भाव - विधा, हैं पूजक कैसे-कैसे।
जो आए, अपनापन पाए, मन में रच बस जाती
बिखरे, तो भी नहीं टूटती, और अधिक खिल जाती।

हिंदी, हिंदी सर्वसुहानी
धरती की यह मधुर निशानी।
विश्व गगन पर दमके नित दिन
भारत-भाषा हिन्दुस्तानी।

niteeshpandey@gmail.com

गीत

विवेक बादल बाज़पुरी
बाजपुर, भारत

हो गई है रूत समर्पित, भावना के भाव की
थाम लो पतवार आकर, ज़िंदगी के नाव की।

मेरी गज़लें, गीत सारे, प्रेम की इक अर्चना है
मुक्तक, दोहे, कुंडली, प्यारे कर रहे बस वंदना है।
ये सिंदूरी शाम कर दो दीप के स्वभाव की
थाम लो पतवार आकर, ज़िंदगी के नाव की।

पास होकर भी, रही अपनी क्यों दूरी प्रिये
कौन बतलाए हिरण को उसकी मजबूरी प्रिये।
जीत न ले यह ज़माना, बाज़ी अपने दाव की
थाम लो पतवार, आकर ज़िंदगी के नाव की।

कैसे पतझर से बचाना होगा, मधुवन प्यार का
हर तरफ़ मेला लगा है, आजकल तलवार का।
सुन नहीं सकती प्रथाएँ, धुन नए बदलाव की
थाम लो पतवार आकर, ज़िंदगी के नाव की।

एक बादल, एक बिजली, चूमकर झूमी घटा
झूमकर बरसता नाची रूप, घूंघट हटा।

लाखों घुंघरू ने लिखीं, फिर गाथा इस प्रस्ताव की
थाम लो पतवार आकर, ज़िंदगी के नाव की।

vc33322@gmail.com

जीवन में निर्झर दो

डॉ. अर्जुन गुप्ता 'गुंजन'
प्रयागराज, भारत

खुशियाँ सारी झुलस रही हैं
जीवन में निर्झर दो।
पतझड़-सा है जीवन मेरा
उसको सावन कर दो॥

दुख के झंझावातों ने नित
मन बगिया को कुचला।
अंगारों पर चाहत सारे
जीवन अब तो फिसला॥
रिमझिम बूँदों की बारिश कर
शीतलता अब भर दो।
पतझड़-सा है जीवन मेरा
उसको सावन कर दो॥

सुख के सब पत्ते नित झड़ते
जीवन बगिया सूनी।
नागफ़नी नित चुभते पग में
पीड़ हुई अब दूनी॥
शीतलता जीवन में भर दो
सब मनभावन कर दो।
पतझड़-सा है जीवन मेरा
उसको सावन कर दो॥

काँटें उगते नित जीवन में
है हर ओर निराशा।
बाधा-विपदा के मंज़र में
पीड़ा हुई बिपाशा॥
आशाओं की बारिश कर दो
सुख-संपद घर भर दो।
पतझड़-सा है जीवन मेरा
उसको सावन कर दो॥

arjun_shaw2002@yahoo.co.in

जयतु हिंदी

डॉ. कीर्ति देवी रामजतन
मॉरीशस

आज जो प्रगति, भारत देश की, देख रहा संसार
उसके पीछे हिंदी भाषा, बना हुआ आधार।

हिंदी भाषा का करलो मान, बना रहेगा तेरा सम्मान
इसी से है अस्तित्व अपना, यही तो है अपनी पहचान।

वेदों से चाहे दूरी हो, पर ज्ञान मिले हमको उनकी भी
संस्कृत है यदि जननी तो, तनया है उसकी हिंदी
सेतु-सूत्र बनकर के हिंदी, करती वेदों को प्रकाशमान
इसी से है अस्तित्व अपना...
जयतु हिंदी... जयतु हिंदी... विश्व भाषा हिंदी...

जग का दीपक बनी हुई, आज विश्व की है शान बनी
ज्ञान-संस्कृति की पहचान, माँ की ममता की वाणी
'वसुधैव कुटुम्बकं' का पाठ पढ़ाए, करे एकता-नाद का गान
इसी से है अस्तित्व अपना...
जयतु हिंदी... जयतु हिंदी... विश्व भाषा हिंदी...

भारत की आत्मा से निकली, बनी वही भाषा हिंदी
कबीर-तुलसी-सूर-मीरा ने मिलकर, दी इसको अपनी वाणी
इसी ने फैलाया 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का संदेश महान्
इसी से है अस्तित्व अपना...
जयतु हिंदी... जयतु हिंदी... विश्व भाषा हिंदी...

विज्ञान-जगत् में फैली हुई, नूतन विकास-धारा बनी हुई
तकनीक जगत् में और शोध जगत् में बनी हुई है अग्रणी
सरल-सुबोध-प्रखर यह भाषा, रहे नवपीढ़ी की बनकर जान
इसी से है अस्तित्व अपना...
जयतु हिंदी... जयतु हिंदी... विश्व भाषा हिंदी...

हिंदी न केवल बोली है, विश्व-पटल की है ज्योति भी
होगी इससे ही संभव, 'विद्या ददाति विनयम्' की वाणी
पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, हो चारों ओर इसी का गुणगान
इसी से है अस्तित्व अपना...
जयतु हिंदी... जयतु हिंदी... विश्व भाषा हिंदी...

k.ramjatton@mgi.ac.mu

हिंदी मन की मधुर बात

रचना श्रीवास्तव
अमेरिका

हिंदी कोयल की पहली पुकार,
फूलों में जैसे सजे बहार।
ओस की बूँद शब्दों का तारा,
हर दिल में इसका उजियारा।

गंगा-सी निर्मल, हिम-सी अटल,
मन की गुफ़ा में दीप संबल।
अम्बर में इंद्रधनुष का इशारा
हिंदी जन-जन का सहारा।
ओस की बूँद...

माँ की लोरी, दादी की कहानी,
गुज़रे पलों की मधुर निशानी।
हर भाषा का यही किनारा,
हिंदी में बसता सब कुछ हमारा।
ओस की बूँद...

बनी कम्प्यूटर की धड़कन,
डिजिटल युग में नई चमकन।
महके बन तकनीक का सितारा,
विश्व मंच पर हिंदी पुष्प प्यारा।
ओस की बूँद...

रेगिस्तान में शीतल फुहार,
बंजर में उग आए बहार।
विस्तृत पलों का सजीव फव्वारा,
हिंदी में महके हर बीता नज़ारा।
ओस की बूँद...

पर्वत शिखर-सी ऊँची उड़ान,
धरती से जुड़ी पर छुए आसमान।
शब्दों का है सजीव नज़ारा,
संवेदन का मधुर किनारा।
ओस की बूँद...

सागर-सी गहराई, नभ-सा विस्तार,
हिंदी में छुपा विश्व का प्यार।
संस्कृति की रग-रग में इसकी धार,
बने विश्व भाषा, हो सब पर उपकार।
ओस की बूँद...

लोकगीत की धड़कन हिंदी
वीणा के स्वरों की कंपन हिंदी।
मस्तक ऊँचा करती हमारा
विश्व मंच पर चमके बन सितारा।
ओस की बूँद...

rach_anvi@yahoo.com

हिंदी है भाषा अपनी

डॉ अनूपा आर्या
मास्को, रूस

हिंदी है भाषा अपनी, हिंदी अपनी आन है।
हिंदी करती संगठित सबको, दो हृदयों की बाँध है।।
सरल सुगठित प्रवाहमयी, इसकी यही परिभाषा है।
हिंदी करे विकास जगत् में, अपनी यह अभिलाषा है।।

भारत को मुक्ति दिलायी, इसने सन् सैंतालीस में।
बोया क्रांति बीज हिंदी में, लेखक सेनानी ने ।।
क्रांति को देकर वाणी, रचा था नया इतिहास।
अंग्रेज़ों से मुक्ति का, पुनः जगा फिर जन आस।।

प्रेमचंद, अज्ञेय, शुक्ल, सबकी वाणी हिंदी थी।
हिंदी में कविता रचते थे, पंत, प्रसाद, निराला जी।।
था बढ़ाया मान हिंदी का, भारतेंदु ने अपने युग में।
रचा था इतिहास नया, भारत के नवयुग में।।

मीरा, तुलसी, सूर, कबीर ने, भक्ति की थी हिंदी में।
नाम बदला समकाल का, भक्तिकाल से स्वर्ण युग में।।
प्राण गवाँकर वीरों ने, रक्षा की थी हिंदी की।।
थे सच्चे सपूत हिन्द के, मिल गए हिन्द की मिट्टी में।।

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
अपनी प्यारी हिंदी को, तुम ना जाओ भूल।।
हिंदी हैं हम वतन हैं, हिन्दोस्तान हमारा है।
सारे जहाँ से अच्छा है, वेद ज्ञान फैलाता है।।

हिंदी है भारत की आन, विश्व का है नव निर्माण।
हिंदी उतनी ही असीम है, जितना है यह धरा आसमाँ।।
हम हैं सच्चे हिन्दुस्तानी, विश्व को यह दिखलाना है।
भेद-भाव मिटाना है, वसुधा को एक बनाना है।।

anupaarya30@gmail.com

जा रे, उड़ जा रे हिंदी-तरंग पंछी

श्वेता वर्मा सिंघल
सिंगापुर

जा रे, उड़ जा रे पंछी, हिंदी का तू कर उजास,
विश्व के हर कोने में, कर प्रेम-सौहार्द संचार।

तेरे पंखों से बहे वाणी, हिंदी की मधुर शक्ति,
जो जोड़े मन से मन तक, वही सच्ची भक्ति।
तुलसी की सुगन्ध लिए, मीरा के स्वर का सार,
कबीर के दोहों की धारा, ले चल विश्व के पार।

जा रे, उड़ जा रे पंछी, विस्तृत कर हिंदी का सत्कार।

पंत की कल्पनाएँ जैसी, निराला की वाणी धार,
महादेवी की मौन पीड़ा, दिनकर की हुंकार।
इन स्वरों को जो गढ़े, वह हिंदी की सच्ची रीत,
अमृत बन बह चली, फैली विश्व में प्रीत।

जा रे, उड़ जा रे पंछी, विस्तृत कर हिंदी का सत्कार।

भारत की मिट्टी का रंग लिए, उड़ चला पवन के पार,
हिंदी की गूँज से चमकें, विश्व के सब द्वार।
इतिहास समेटे खुद में, अमूल्य परंपरा अपार।
हिंदी है अभिमान हमारा, बढ़े सम्मान हर बार।

जा रे, उड़ जा रे पंछी, विस्तृत कर हिंदी का सत्कार।

मौलिकता से सजी हुई, गौरवमयी पहचान,
व्यापार, संचार, कूटनीति में, गूँजे हिंदी गान।

विश्व भाषा हिंदी का गौरव, संस्कृति का उपहार,
शब्दों में बसी, युगों की गौरवगाथा अपार।

जा रे, उड़ जा रे पंछी, विस्तृत कर हिंदी का सत्कार।

shwetavermaca2004@gmail.com

गज़ल

लक्ष्मीकांत मुकुल
बिहार, भारत

आती है हवा से खुश्बू ओ नज़ाकत नई-नई
जिस तरह से हुई थी तुमसे मेरी उल्फ़त नई-नई

कितने ज़माने बीते कुछ होश रहा न बाकी
खला बनी मुलाकातों में ये मसाफ़त नई-नई

अगर्चे भूल न पाया वे गलियाँ, वे रस्ते
पर गुज़रने की नहीं की मैंने हिमाकत नई-नई

अर्से गुज़र गए अब कहाँ वे खत ओ किताबत
अब कहाँ वे गुफ़्तगू, और ज़हानत नई-नई

तारों की झिलमिल वे फूलों की वादी
पर तुम-सा कहाँ हैं उनमें नज़ाकत नई-नई

करती मनुहार मुझे मनाने को तमाम रात
पर बाद मेरे-तेरे रूठ जाने की चाहत नई-नई

खेतों में सुखी बालियाँ हौले से बजती हैं
जैसे खनकती चूड़ियों की खनखनाहट नई-नई

kvimukul12111@gmail.com

गज़ल

नवीन माथुर पंचोली
मध्य प्रदेश, भारत

लाख आँसू हमारे ढलते हैं,
लोग पत्थर कहाँ पिघलते हैं।

जान पाएँगे हम उन्हें कैसे,
शक्ल पे शक्ल जो बदलते हैं।

शूल महफ़ूज रहते शाखों पर,
फूल पैरों तले कुचलते हैं।

यह ज़माना है अजनबी उनसे,
जो घड़ी भर कहीं निकलते हैं।

बात हो आपकी असर कैसे,
आप कहते जिसे फिसलते हैं।

navinmathurpancholi@gmail.com

गज़ल

धर्मेन्द्र गुप्त 'साहिल'
वाराणसी, भारत

तप्त दोपहर जहाँ
शाम है धुआँ-धुआँ

कोई भी न मेहरबाँ
सब के सब हैं बदगुमाँ

इस शहर में क्यों भला
हर कोई है बेज़ुबाँ

ताप का सफ़र है यह
और कहीं न सायबाँ

देख लेना शीघ्र ही
आएगा प्रलय यहाँ

प्रकृति के लिए अब
ज़रूरी पासबाँ

देख कितने त्रस्त हैं
जीव-जन्तु बेज़ुबाँ

dharmendraguptsahil@gmail.com

जीवन की साँझ

छाया वेलिप
भारत

पात्र

1. राकेश	4. शेखर	7. बसन्ती	10. सुमित्रा
2. रूपा	5. दीपक	8. नीरज	11. संगीता
3. मोहन	6. दीक्षा	9. रामदास	12. मोहनलाल

प्रथम दृश्य

(गाँव का दृश्य है। हल्की धूप है और हरे-भरे खेत दिखाई देते हैं।)

राकेश : *(उत्साहित होकर)* रूपा, मुझे लगता है कि अब हमें कुछ बड़ा करने के लिए शहर जाना चाहिए। वहाँ अवसरों की कमी नहीं है। हमें अपने बच्चों के जीवन के बारे में सोचना चाहिए।

रूपा : *(चिंता के साथ)* लेकिन राकेश, शहर का जीवन आसान नहीं होता। वहाँ लोग पैसे के लिए भागते रहते हैं। क्या हम वहाँ खुश रह पाएँगे?

राकेश : *(विश्वास के साथ)* यहाँ हमारे पास सीमित विकल्प हैं। शहर में मेहनत करने से प्रगति होती है। एक बार कोशिश तो करें।

रूपा : *(आशंकित होकर)* ठीक है! मैं तुम्हारे साथ हूँ। लेकिन हमें यह भी याद रखना होगा कि सुकून का जीवन भी महत्त्वपूर्ण है।

(दोनों एक-दूसरे की ओर देखकर सहमति में सिर हिलाते हैं।)

दूसरा दृश्य

(शहर का दृश्य है। ऊँची-ऊँची इमारतें, गाड़ियाँ, भीड़-भाड़ और शोर। राकेश और रूपा भारी सामान के साथ आते हैं।)

राकेश : *(थके हुए स्वर में)* रूपा! देखो यह हमारा नया घर है। यहाँ से हमारी यात्रा की शुरुआत होगी।

रूपा : *(घर को देखते हुए)* यह तो बहुत छोटा है, गाँव के घर से बिल्कुल अलग। आसपास कितनी भीड़ है। मुझे इसकी आदत नहीं है।

राकेश : *(हिम्मत बँधाते हुए)* धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा। हमें नए जीवन के साथ तालमेल बिठाना होगा।

(इसी बीच मोहन आता है, जो राकेश का पुराना दोस्त है।)

मोहन : *(खुशी से)* अरे, राकेश! तुम शहर आ गए! स्वागत है तुम्हारा!

राकेश : हाँ मोहन, यह जगह हमें नई उम्मीदें देगी। लेकिन यहाँ के लोगों को देखकर लगता है जैसे हर कोई किसी दौड़ में है।

मोहन : *(हँसते हुए)* हाँ, यहाँ सबके पास समय की कमी है। कोई किसी के लिए रुकता नहीं है। काम, पैसा और अपने-अपने लक्ष्य की दौड़ में सब लगे रहते हैं। यही शहर का असली रंग है।

तीसरा दृश्य

(ऑफ़िस का दृश्य। शेखर अपने काम में व्यस्त है। राजेश वहाँ पहली बार काम के लिए आता है।)

शेखर : *(कड़क स्वर में)* देखो राकेश! यहाँ गलती की कोई गुंजाइश नहीं है। अगर तुम समय पर काम पूरा नहीं कर सकते, तो यहाँ काम करना तुम्हारे लिए मुश्किल हो जाएगा।

राकेश : *(संजीदगी से)* जी, मैं पूरी मेहनत करूँगा और

आपकी उम्मीदों पर खरा उतरने की कोशिश करूँगा।

शेखर : *(व्यंग्य के साथ)* हर कोई मेहनत करने की बात करता है, लेकिन यह शहर मेहनत से भी ज्यादा तेज़ी से चलने का नाम है। जो पीछे रह गया, वह इस दौड़ में कभी आगे नहीं आ पाएगा।

(राकेश सिर हिलाकर सहमति जताता है, लेकिन उसकी आँखों में दुविधा है।)

चौथा दृश्य

(राकेश काम से घर लौटता है, रूपा उसे पानी देती है।)

रूपा : *(राकेश के चेहरे पर थकान देखकर)* क्या हुआ? आज बहुत थके हुए लग रहे हो!

राकेश : *(गहरी साँस लेते हुए)* सीमा, यहाँ ज़िंदगी कठिन है। दिन भर काम में दौड़ना पड़ता है। लोग एक-दूसरे की परवाह नहीं करते। हर कोई अपने में ही व्यस्त है।

रूपा : *(कोमल स्वर में)* राकेश, हमें यहाँ की आदत नहीं है। लेकिन सोचो! क्या यह जीवन हमारे लिए है? यहाँ कोई सुकून नहीं है।

राकेश : कुछ दिन हमें परेशानी सहनी पड़ेगी। हमारे बच्चों के लिए मैं कष्ट उठाने के लिए तैयार हूँ।

रूपा : लेकिन हमें अपनी सेहत का भी ख्याल रखना चाहिए। यहाँ की स्कूल फ़ीस भी बहुत ज्यादा है। ऊपर से ट्यूशन का भी खर्चा है।

राकेश : सब कुछ ठीक हो जाएगा। अभी तो नई नौकरी मिली है।

रूपा : कल से मैं घर पर कपड़े सिलने का काम शुरू करती हूँ। इससे हमें कुछ मदद मिलेगी।

(स्कूल से दीपक और दीक्षा का घर में प्रवेश)

दीपक : माँ, अगले हफ़्ते हमारे स्कूल की पिकनिक है। उसके लिए हमें 500 रुपये लाने के लिए कहा गया है।

रूपा : *(राकेश की ओर देखकर)* देखा! एक खर्चा और आ गया।

राकेश : *(कुछ सोचते हुए)* मोहन से थोड़े पैसे उधार लेता हूँ। बाद में उसे लौटा देंगे।

रूपा : मैं दीपक को पिकनिक जाने से मना करती हूँ।

राकेश : नहीं, नहीं... ऐसा करने की ज़रूरत नहीं है।

दीक्षा : भैया पिकनिक के लिए जाएगा, तो मैं भी जाऊँगी।

(रूपा दीक्षा को पिकनिक जाने से मना करती है। उसे समझाती है, अगले साल चले जाना। दीक्षा जाने की ज़िद करती है। दीपक ये सारी बातें सुनता है।)

दीपक : माँ, मैं पिकनिक नहीं जाऊँगा। मेरा मन नहीं है।

राकेश : क्यों बेटा, यह पिकनिक तो तुम्हारे पाठ्यक्रम से संबंधित है। तुम्हें पिकनिक के लिए ज़रूर जाना चाहिए।

दीपक : लेकिन पैसे.....

राकेश : पैसे मैं दे दूँगा।

दीपक : माँ ने मुझे सब कुछ बता दिया।

राकेश : *(राकेश दीपक से नज़रें झुकाते हुए)* मैं तुम्हारे सपनों को उड़ान नहीं दे सका।

दीपक : आप अच्छे पिता हैं। इसमें कोई शक नहीं है। हमारे सपनों के लिए आपने अपने सपने छोड़ दिए हैं।

(राकेश मन में अपने आपको कोसता है।)

पाँचवाँ दृश्य

(एक पार्क का दृश्य। राकेश और बसंती आपस में बातचीत कर रहे हैं। बसंती एक बुज़ुर्ग महिला है, जो अकेली रहती है और शहर के जीवन से ऊब चुकी है।)

बसंती : *(दुखी स्वर में)* बेटा, इस शहर ने मुझे बहुत कुछ दिया, लेकिन अकेलापन भी दिया। यहाँ कोई रुकता नहीं, किसी के पास समय नहीं। सब दौड़ते रहते हैं, लेकिन असल में किसी के पास मंज़िल नहीं है।

राकेश : *(संवेदनशील होकर)* अम्मा, मैं भी यही महसूस कर रहा हूँ। हम सब दौड़ रहे हैं, लेकिन किसके लिए और क्यों? इसका किसी को पता ही नहीं है।

बसंती : बेटा, गाँव की ज़िंदगी में चाहे सुविधाएँ कम थीं, लेकिन सुकून और खुशियाँ थीं। यहाँ सब कुछ होकर भी जैसे कुछ नहीं है।

राकेश : अम्मा, आप यहाँ कब से रह रही हैं? क्या आप घर में अकेली रहती हैं? क्या आपका बेटा-बहू कोई नहीं है?

बसंती : बेटा-बहू हैं। वे विदेश में नौकरी करते हैं। दो-तीन साल में एक बार आते हैं। मेरा ख्याल रखने के लिए एक नौकरानी रखी थी। फ़िलहाल वह अपने गाँव गई है।

राकेश : अकेलेपन को दूर करने के लिए आप पार्क में आती हैं?

बसंती : नहीं, अनाथाश्रम और वृद्धाश्रम चली जाती हूँ। वहाँ बच्चों के साथ समय बिताने से मन हल्का होता है। *(बसंती भावुक हो जाती है।)*

राकेश : सही कहा आपने अम्मा।

बसंती : अच्छा बेटे! मैं अभी वृद्धाश्रम जा रही हूँ।

राकेश : अम्मा मैं भी आपके साथ आ सकता हूँ?

बसंती : क्यों नहीं बेटा, चलो साथ चलते हैं।

(दोनों वृद्धाश्रम चले जाते हैं)

छठा दृश्य

(वृद्धाश्रम का हॉल। एक साधारण-सा कमरा दिखाई देता है, जहाँ रामदास, सुमित्रा और मोहनलाल बैठे हैं। नीरज और संगीता उनके पास आते हैं।)

नीरज : *(सभी की ओर देखते हुए)* नमस्ते, कैसे हैं आप सब?

रामदास : *(गंभीरता से)* नमस्ते बेटा, हम तो बस समय काट रहे हैं। वैसे तुम्हारे आने से यहाँ कुछ रौनक आ जाती है।

सुमित्रा : हाँ, बेटा, तुम्हारे जैसे लोग ही हमें यह अहसास कराते हैं कि हम अभी भी समाज के लिए मायने रखते हैं।

संगीता : ऐसा मत कहिए! आप सब तो हमारे लिए प्रेरणा-स्त्रोत हैं। आपके अनुभव हमें ज़िंदगी का असली मतलब सिखाते हैं।

मोहनलाल : *(उदास स्वर में)* बेटा, हमारे पास केवल यादें हैं। बच्चे, परिवार... सब कहीं खो गए हैं। क्या तुम समझ पाओगे, हमारे इस अकेलेपन को?

नीरज : *(संजीदगी से)* हम समझते हैं, इसलिए तो हम सबके साथ हैं। आपके अनुभव हमें भी आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। और हाँ, इसी कड़ी में हमने एक कार्यक्रम रखा है, जिसमें आप सभी भाग ले सकते हैं।

सुमित्रा : *(उत्सुकता से)* कैसा कार्यक्रम बेटा?

संगीता : *(मुस्कुराते हुए)* एक नाटक का आयोजन। इसमें आप सभी अपनी-अपनी कहानियों को दर्शकों के सामने रख सकते हैं। यह दूसरों के लिए भी प्रेरणादायक रहेगा।

रामदास : *(हँसते हुए)* हमने तो कभी सोचा भी नहीं था कि इस उम्र में हम भी नाटक करेंगे।

मोहनलाल : हाँ, यह नाटक हमें अपने दिल की बात कहने का एक ज़रिया देगा।

(राकेश और बसंती का प्रवेश)

सुमित्रा : देखो! बसंती भी आ गयी। वह भी हमारे साथ कार्यक्रम में भाग लेगी। यह कौन है तुम्हारे साथ?

बसंती : यह राकेश है। कुछ दिन पहले ही शहर में आया है। और तुम लोग किस कार्यक्रम की बात कर रहे हो?

मोहनलाल : नीरज और संगीता ने नाटक आयोजित किया है। इसमें हम सभी को अपनी-अपनी कहानी कहनी है।

बंसती : यह तो अच्छा कार्यक्रम है! हम सभी इस कार्यक्रम का लाभ उठाएँगे।

सातवाँ दृश्य

(वृद्धाश्रम का बगीचा। वृद्धाश्रम के सभी सदस्य नाटक की तैयारी कर रहे हैं। संगीता, नीरज और राकेश उनकी मदद कर रहे हैं।)

सुमित्रा : *(प्रेम से)* नीरज बेटा, तुमने हमारे लिए इतनी अच्छी व्यवस्था की है। हमें फिर से महसूस हो रहा है कि हम किसी के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

नीरज : आप सब महत्त्वपूर्ण हैं। कभी-कभी हालात हमें अलग रास्तों पर ले जाती हैं, परंतु, यह नाटक सिर्फ़ एक नाटक नहीं, बल्कि आपके जीवन की आवाज़ है।

रामदास : अच्छा, तो चलो! अब हम अपने जीवन का नया अध्याय शुरू करते हैं। हम जीवन के हर दर्द और हर खुशी को लोगों के सामने प्रस्तुत करेंगे।

(सभी अपनी-अपनी कहानियों की झलक प्रस्तुत करते हैं।)

नीरज : *(ताली बजाते हुए)* वाह! आप सभी ने बहुत सुंदर प्रस्तुति की। आप सभी की कहानियाँ हम सबके दिल को छू गईं।

संगीता : *(भावुक होकर)* सच में, यह नाटक हमें यह समझाता है कि ज़िंदगी का हर पहलू महत्त्वपूर्ण है, चाहे वह खुशी का हो या दुख का।

मोहनलाल : *(आँसू पोंछते हुए)* बेटा, इस नाटक ने हमें एक नई ज़िंदगी दी है। हमें महसूस हुआ कि हम अकेले नहीं हैं। हमारे पास आप जैसे लोग हैं, जो हमें समझते हैं।

सुमित्रा : *(नीरज को आशीर्वाद देते हुए)* बेटा, तुमने हमारे जीवन में खुशी का रंग भरा। हम इसे कभी नहीं भूलेंगे।

नीरज : यह हमारा सौभाग्य है कि हम आपकी सेवा कर पा रहे हैं। आपकी कहानियाँ हमें जीवन के असली मायने सिखाती हैं। आज हमने एक नाटक नहीं, बल्कि हमारे समाज की सच्चाई प्रस्तुत की है। वृद्धाश्रम में रहने वाले सभी बुज़ुर्ग किसी के माँ-बाप, किसी के दादा-दादी या नाना-नानी हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम इन्हें वह इज़्ज़त दें।

(सभी गले मिलते हैं। बिदाई के क्षण में सभी की आँखों में आँसू हैं।)

आठवाँ दृश्य

(राकेश और रूपा अपने घर में हैं। दोनों एक-दूसरे से मन की बात कर रहे हैं।)

राकेश : मैं आज वृद्धाश्रम गया था। वहाँ जाकर मन थोड़ा हल्का हुआ। भाग-दौड़ भरी ज़िंदगी से कुछ आराम मिला।

रूपा : तुम अचानक वृद्धाश्रम क्यों चले गए?

राकेश : आज पार्क में मुझे एक वृद्ध महिला बसंती मिली थी, उन्हीं के साथ मैं वृद्धाश्रम चला गया।

रूपा : उनका तो अलग ही दुख है।

राकेश : हाँ, बहू-बेटे होकर भी वह अकेले रहती है। आज सब पढ़-लिखकर बड़े बन गए हैं, लेकिन मानवीयता को भूलते जा रहे हैं।

रूपा : बिल्कुल सही कहा।

राकेश : यहाँ हम मशीन बनकर पैसा तो कमाएँगे, लेकिन...

रूपा : क्या हम इस भागदौड़ में अपने आप को खोते जा रहे हैं? यहाँ खुशियाँ तो मिलती नहीं, बस हर दिन एक नई चिंता लेकर आता है।

राकेश : *(सोचते हुए)* हमें लगता था कि शहर हमें आगे बढ़ाएगा, पर शायद यहाँ कुछ पाकर भी हमने बहुत कुछ खो दिया है।

रूपा : *(भावुक होकर)* क्यों न हम वापस गाँव चले जाएँ? वहाँ चाहे सुख-सुविधाएँ कम थीं, लेकिन सुकून था।

राकेश : *(मुस्कुराते हुए)* हाँ रूपा, शायद हमें यहाँ कभी नहीं आना चाहिए था। गाँव में कम में भी हमें सब कुछ मिल रहा था।

(दोनों मौन रह जाते हैं।)

नौवाँ दृश्य

(राकेश और रूपा अपने पुराने गाँव में वापस लौटते हैं।)

राकेश : *(खुशी से)* रूपा, देखो यह हमारा गाँव। यहाँ की मिट्टी की खुशबू, यहाँ की हवा, सब में अपनापन है।

रूपा : हाँ, सच में। हम अब समझ गए कि सच्ची खुशी और सुकून हमारे अपनों के बीच ही है, न कि शहर की उस भागदौड़ में।

(दोनों हाथ पकड़कर आगे बढ़ते हैं, जैसे जीवन का असली मतलब समझ लिया हो।)

chayavelip22@gamil.com

हज़ारों सपने चूर

डॉ. सोमदत्त काशीनाथ
मॉरीशस

पात्र

1.	**मोहनलाल जी**	- पैंसठ वर्ष के वृद्ध, परिवार के मुखिया
2.	**निम्मी**	- वरुण और अमर की बहन (लगभग 14-15 साल की)
3.	**अमर**	- मोहनलाल जी का बड़ा पोता (20-25 वर्ष का युवक)
4.	**वरुण**	- मोहनलाल जी का दूसरा पोता (17-18 वर्ष का युवक)
5.	**माँ**	- अमर, निम्मी और वरुण की माँ (40-45 साल की महिला)
6.	**ऑफ़िस की सेक्रेटेरी**	- (एक 35 वर्षीय महिला)
7.	**साक्षात्कार करनेवाले**	- (1) निष्ठा जी (एक 40-45 वर्षीय महिला)
		- (2) प्रताप जी (एक 50-55 वर्षीय पुरुष)
		- (3) राघव जी (एक 50-55 वर्षीय पुरुष)
8.	प्रथम पुलिसवाला	
9.	दूसरा पुलिसवाला	

साक्षात्कार के लिए आए तीन उम्मीदवार (20 से 30 वर्ष के बीच की आयु के 2 युवक और एक युवती)

प्रथम दृश्य

(घर का दृश्य है। घर के सामने फूलों के कुछ गमले रखे गए हैं, जोकि कृत्रिम भी हो सकते हैं। उन फूलों के बीच बूढ़े मोहनलाल जी झुके हुए फूलों की क्यारियों से खरपतवार उखाड़ रहे हैं। उन्होंने एक हाथ में खुरपा पकड़ा हुआ है और दूसरे हाथ में एक मुट्ठी घास। पास में, उनका छोटा पोता वरुण हज़ारे से गुलाब के पौधों को सींचने का अभिनय कर रहा है। वह धीमी आवाज़ में आनन्दपूर्वक कुछ गुनगुना रहा है।)

वरुण : *फूल ही फूल खिले हों जहाँ*
ऐसी सुन्दर धरती और है कहाँ
हम यदि थोड़ी भी मेहनत करते हैं।
इससे फूल अनगिनत निकलते हैं।
फूल ही फूल खिले हों जहाँ
ऐसी सुन्दर धरती और है कहाँ।
देश को अपना हम स्वर्ग बनाएँगे
असंभव को भी संभव कर दिखाएँगे।
गिरने पर हम चलना छोड़ेंगे नहीं
हार के डर से हम कभी डरेंगे नहीं।
फूल ही फूल खिले हों जहाँ

ऐसी सुन्दर धरती और है कहाँ।
नौजवान देश के हम साथ हैं खड़े
देशहित में करेंगे काम छोटे या बड़े।
दूर रखेंगे भ्रष्टाचार से देश को सदा
पूरा करेंगे इसे बनाने का वादा।
फूल ही फूल खिले हों जहाँ
ऐसी सुन्दर धरती और है कहाँ।

(वरुण की जुड़वा बहन निम्मी दौड़ी-हाँफ़ती हुई आती है।)

निम्मी : दादा जी ! दादा जी, माँ ने आपसे आरती के लिए कुछ फूल माँगने के लिए कहा है... भैया को इंटरव्यू पर जाना है। आरती के लिए फूल चाहिए... माँ ने माँगे हैं...

मोहनलाल जी : *(कमर पर हाथ रखकर निम्मी की ओर देखते हैं और वरुण से कहते हैं।)* वरुण बेटा, गुलाब और गेंदे के थोड़े फूल तोड़कर निम्मी को दे दो!

वरुण : जी दादा जी! *(वह हज़ारा नीचे रखकर फूल तोड़ने लगता है। फूल निम्मी की अंजलि में रखकर वह फिर अपने काम में व्यस्त हो जाता है।)*

(निम्मी जाने लगती है। दादा जी फिर कुछ कष्ट के साथ अपनी कमर सीधी करते हुए पुकारते हैं।)

मोहनलाल जी : *(आवाज़ ऊँची करते हुए)* निम्मी बेटा! अमर भैया से कहना जाने से पहले मुझसे मिलकर जाए।

निम्मी : जी दादा जी! *(वह दौड़ती हुई चली जाती है।)*

मोहनलाल जी : *(आसमान की ओर देखते हुए)* हे प्रभु, मेरा बच्चा आज फिर से इंटरव्यू देने जा रहा है। उसकी मदद करना! दस साल हो गए जब उसके सिर से पिता का साया छिन गया था। दुखों का सामना करते हुए वह बड़ा हुआ। अब उसका दुख दूर कर दो भगवान! *(अपने कंधे पर रखे गमछे से पसीना पोंछने के बहाने वे अपने आँसू पोंछते हैं।)*

(मंच पर धीरे-धीरे अँधेरा होता है और पर्दा गिरता है।)

दूसरा दृश्य

(पर्दा उठता है। घर के अन्दर का दृश्य - बैठक में एक साधारण-सी छोटी मेज़ और कुछ पुरानी कुरसियाँ हैं। पीछे सोफ़े और टेलीविजन हैं, जो मध्यवर्गीय परिवार की निधियों का आभास करा रहे हैं। माँ अमर की आरती उतार रही है। आरती के बाद अमर माँ का चरण-स्पर्श करता है।)

माँ : *(अपनी आँखें पोंछती हुई)* जीते रहो बेटा। आज तुम्हारे पिताजी जीवित होते तो कितना खुश होते!

अमर : हाँ माँ! अच्छा माँ! मैं चलता हूँ।

माँ : ठीक है बेटा! इंटरव्यू में ध्यान से प्रश्न सुनकर उत्तर देना।

अमर : हाँ माँ! तुम्हारा आशीर्वाद मेरे साथ है, तो कोई भय नहीं।

निम्मी : बेस्ट ऑफ़ लक, भैया।

अमर : थैंक यू निम्मी!

निम्मी : शाम को मिठाइयाँ लाना मत भूलना, भैया।

अमर : अरे छुटकी! पहले नौकरी तो पक्की होने दो। अभी तो मैं इंटरव्यू देने जा रहा हूँ। नौकरी थोड़ी ही पक्की हुई है। मेरे जैसे न जाने कितने उम्मीदवार होंगे वहाँ पर। नौकरियाँ इतनी आसानी से नहीं मिलती हैं।

निम्मी : नहीं भैया! उम्मीदवार तो बहुत होंगे, किन्तु तुम्हारे जैसे नहीं होंगे। माई भैया इज़ द बेस्ट!

अमर : अब तुम्हें कौन समझाएगा बहन? आजकल नौकरियाँ केवल बेस्ट होने से नहीं मिलती हैं।

निम्मी : भैया! मुझे पूरा विश्वास है कि यह नौकरी तुम्हीं को मिलेगी।

माँ : तुम्हारे मुँह में दही शक्कर!

निम्मी : वह भी लाई हूँ माँ। कल ही दादा जी ने कहा था कि अमर भैया को दही-शक्कर खिला देना। इससे सब शुभ होता है। *(दही-शक्कर का कटोरा सामने बढ़ाती हुई।)* यह लो खिला दो माँ!

माँ : अरे पगली! कटोरे में चम्मच कहाँ है?

निम्मी : ठहरो! मैं रसोई-घर से लाती हूँ। *(दौड़ती हुई जाती है और पीछे से चम्मच लाती है।)* यह लो माँ चम्मच!

(माँ अमर को दही खिलाती है। दो चम्मच खाने के बाद अमर और खाने से मना कर देता है।)

अमर : बस माँ! बाकी निम्मी को दे दो। कहीं बस छूट गई, तो देर हो जाएगी।

माँ : निम्मी बचा दही तुम खा लो बेटी!

निम्मी : ठीक है माँ! हाँ भैया, दादा जी ने तुम्हें जाने से पहले मिलने के लिए कहा है।

अमर : अच्छा है। मैं चलता हूँ।

(अमर बाहर जाने के लिए उद्यत होता है और प्रकाश धीमा होकर लुप्त हो जाता है। पर्दा गिरता है।)

तीसरा दृश्य

(पर्दा उठता है। घर के बाहर का वही दृश्य। बगीचे में दादा जी एक हाथ कमर पर रखे हुए और दूसरा हाथ माथे से लगाए अमर की राह देखने की मुद्रा में खड़े हैं। अमर सामने से आता है। उसकी काँख के नीचे एक फ़ाइल दबी है और वह अपनी नेक-टाई और कॉलर को ठीक करता हुआ चल रहा है।)

अमर : *(हाथ जोड़कर)* नमस्ते दादा जी। मैं इंटरव्यू के लिए जा रहा हूँ, आशीर्वाद दीजिए।

मोहनलाल जी : जाओ बेटा! हाँ हर सवाल का आराम से जवाब देना।

अमर : जी दादा जी!

मोहनलाल जी : बेटा यह तुम्हारे लिए महत्त्वपूर्ण इंटरव्यू है। घबराना नहीं!

अमर : दादा जी आप चिन्ता मत कीजिए, मैंने जमकर तैयारी की है।

मोहनलाल जी : बेटे मेरी एक बात याद रखना। *(इतना कहते-कहते मोहनलाल जी की आँखें भर आती हैं। उनकी आवाज़ में अनायास ही भारीपन आ जाता है।)*

अमर : क्या हुआ दादा जी?

मोहनलाल जी : कुछ नहीं, बेटे, तुम्हारे पिता की याद आ गई। अगर वे यहाँ होते, तो कितने खुश होते!

अमर : दादा जी! अब आप लोग ही तो मेरा परिवार हैं। मैं चलता हूँ।

मोहनलाल जी : अमर बेटे इंटरव्यू का परिणाम कुछ भी हो, तुम उदास मत होना। कहीं और नौकरी मिल जाएगी।

अमर : आप देखना दादा जी, यह नौकरी मुझे ही मिलेगी।

मोहनलाल जी : मैं ईश्वर से यही प्रार्थना करूँगा बेटा! जाओ, तुम्हें अवश्य सफलता प्राप्त होगी।

(अमर अपने दादा जी का चरण-स्पर्श करके आगे बढ़ने लगता है। पीछे से वरुण की आवाज़ आती है।)

वरुण : बेस्ट ऑफ़ लक, भैया।

अमर : धन्यवाद वरुण! *(इतना कहकर अमर नैपथ्य में चला जाता है।)*

(मंच पर सभी फ़्रीज़ हो जाते हैं। धीरे-धीरे

प्रकाश कम होने लगता है और प्रकाश मोहनलाल जी पर जाकर केंद्रित होता है)

मोहनलाल जी : *(स्वगत)* इस दुनिया के काम करने के तरीके हमारी सोच से अलग हैं। जो हम सोचते हैं और जैसा हम सोचते हैं, वैसा नहीं होता है। मेहनत कोई और करता है, उसका फल किसी और को मिलता है। योग्यता देखकर नौकरी देने का ढोंग करने वाले पहले से तय कर लेते हैं कि नौकरी किसे देनी है। यह इंटरव्यू नहीं नौजवानों के लिए मोह-भंग है। हे प्रभु! मैंने जीवन में जितने भी पुण्य कमाए हैं, मेरे अमर को दे दो! उसके सपनों और उम्मीदों को चूर-चूर नहीं होने देना। इसके सहारे ही इसके छोटे भाई और बहन के सपने पूरे होंगे। अब तो अन्याय करना छोड़ दो भगवान।

(प्रकाश धीरे-धीरे कम होता है और पर्दा गिरता है।)

चौथा दृश्य

(मंच दो भागों में विभक्त है। दोनों भागों के बीच लकड़ी की एक पतली दीवार है, अन्यथा पर्दे के माध्यम से दो अलग-अलग कमरों के होने का आभास कराया जाता है। एक ओर कुछ कुरसियाँ हैं, जिनपर साक्षात्कार के लिए उपस्थित कुछ उम्मीदवार बैठे हैं। अमर भी उन्हीं के बीच बैठा है। दूसरे उम्मीदवारों की भाँति वह भी अपने हाथों में एक फ़ाइल पकड़ा हुआ है, जिसमें उसने अपने जीवन भर की पूँजी; अपने प्रमाण-पत्रों को संजोकर रखा है। उसके बगल में सेक्रेटेरी बैठी है जिसके सामने एक छोटी-सी मेज़ पर कुछ कागज़ और एक टेलीफ़ोन रखा है। रह-रहकर वह फ़ोन उठाती है और कागज़ों पर कुछ लिखती है। दूसरे भाग में एक बड़ी मेज़ है, जिसकी एक ओर एक साधारण-सी कुरसी है और दूसरी ओर तीन बड़ी कुरसियाँ हैं। उन पर एक महिला और दो पुरुष बैठे हैं। महिला एक सुन्दर, चमकीली साड़ी पहनी हुई है और दोनों पुरुष कोट-पैंट पहने हुए हैं। उनके सामने कुछ पर्चियाँ रखी हैं और एक-एक गिलास पानी रखा है।)

निष्ठा मैडम : *(अपने सामने रखी हुई छोटी घंटी बजाकर)* सेक्रेटेरी प्लीज़ सेंड द नेक्स्ट केंडिडेट।

सेक्रेटेरी : मिस्टर अमर इट्स यौर टर्न सर। प्लीज़ गो इन! *(उठकर दरवाज़े के पास जाती है। वह दरवाज़ा खोलने का अभिनय करती है।)* आई आम सेंडिग यू केंडिडेट नबर एटीन, मैडम! हिज़ नेम इज़ मिस्टर अमर!

राघव : ओके मिस, सेंड हिम इन!

(अमर इंटरव्यू-कक्ष में प्रवेश करता है। अचानक उसके दिल की धड़कनें तेज़ होने लगती हैं। वह अपने माथे से पसीना पोंछता है और खाली कुरसी की ओर बढ़ता है।)

अमर : गुड ऑफ़्टरनून सर! गुड ऑफ़्टरनून मैडम!

मिस्टर प्रताप : *(दाएँ हाथ में कलम घुमाते हुए)* आइए मिस्टर अमर! बैठिए!

अमर : *(विनम्रता के साथ)* थैंक यू सर!

निष्ठा मैडम : *(अमर के चेहरे पर घबराहट को देखकर)* घबराइए नहीं अमर जी, रिलैक्स!

अमर : जी, मैं ठीक हूँ मैडम! *(अमर अपने प्रमाण-पत्रों से भरा हुआ फ़ाइल साक्षात्कार करने वालों के सामने रखता है और धीरे-से कुरसी खींचकर, उस पर*

बैठता है।)

मिस्टर राघव : अच्छा, अपना परिचय दीजिए!

अमर : सर, मेरा नाम अमर श्रीवास्तव है। मैं ला मारी का रहने वाला हूँ। मैं एक गरीब परिवार से हूँ। किन्तु मेरे परिवार वालों ने मेरी पढ़ाई पर गरीबी का प्रभाव कभी पड़ने नहीं दिया। मेरे परिवार ने हमेशा मेरा साथ दिया। माध्यमिक स्तर की पढ़ाई समाप्त करने के बाद मैंने मॉरीशस विश्वविद्यालय से बी.ए. और एम.बी.ए. की पढ़ाई की। मैंने अपनी पढ़ाई तीन साल पहले समाप्त की है और तब से नौकरी के लिए कई जगहों पर आवेदन दे रहा हूँ। कई बार मैं साक्षात्कार देने गया, किन्तु कोई सकारात्मक उत्तर नहीं मिला। मुझे विश्वास है कि यह नौकरी मुझे... *(मिस्टर प्रताप उसे वाक्य पूरा करने का अवसर नहीं देता है।)*

मिस्टर प्रताप : *(दाएँ हाथ से रुकने का इशारा करते हुए)* ठीक है मिस्टर अमर ! अच्छा यह बताइए कि आप कम्पनी को अधिक लाभ दिलाने के लिए कैसे कदम उठाएँगे?

अमर : सर, व्यर्थ के खर्चों को कम करूँगा और उत्पाद की गुणवत्ता में अभिवृद्धि करूँगा। हाँ, हम बिजली के किराये का खर्च भी कम कर सकते हैं।

मिस्टर राघव : क्या बिजली का कम उपयोग करने से मशीनें बराबर चल पाएँगी? बिजली की खपत कैसे कम की जा सकती है? इस पर थोड़ा प्रकाश डालेंगे आप।

अमर : आप सही कहते हैं सर। हम बिजली की खपत पर पूरी तरह अंकुश नहीं लगा सकते हैं। हमें कुछ ऐसे विकल्प ढूँढने होंगे, जिससे कम्पनी का विद्युत-किराया कम हो। आज के युग में सौर ऊर्जा से बिजली के उत्पादन पर बल दिया जा रहा है। एक बार सौर ऊर्जा का उत्पादन करने वाले यन्त्रों में निवेश करने से कम्पनी को सालों तक लाभ होता रहेगा। मैं कम्पनी को सौर ऊर्जा के यंत्रों में निवेश करने का सुझाव दूँगा। इससे हम बिजली के लिए विद्युत विभाग पर कम निर्भर होंगे।

मिस्टर राघव : *(प्रमाण-पत्रों में नज़र दौड़ाते हुए)* ओ आई सी! कम्पनी को लाभ पहुँचाने के आपके विचार उत्तम हैं। *(कुछ देर रुककर, अमर की ओर मुस्कुराते हुए)* अच्छा आप हमें यह बताइए, क्या आपके पास कोई तजुर्बा है?

अमर : *(सिर हिलाते हुए)* नहीं सर! अभी तक कोई नौकरी ही नहीं मिली है, तो अनुभव कहाँ से आएगा! हाँ, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं कम्पनी को आगे बढ़ाने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ूँगा। मैं पूरी निष्ठा और लगन के साथ काम करूँगा।

मिस्टर प्रताप : *(निष्ठा मैडम की ओर देखते हुए)* सर जी, हमारे पास निष्ठा तो पहले से है। देखिए हमारे साथ बैठी हैं। *(मिस्टर प्रताप और मिस्टर राघव हँसने लगते हैं। निष्ठा मैडम के चेहरे की गंभीरता देखकर दोनों शान्त हो जाते हैं।)* देखिए अमर जी! अब हम गंभीर प्रश्नों की ओर बढ़ते हैं। आप तो जानते ही हैं कि यह एक हाई प्रोफ़ाइल जॉब है, इसके लिए तजूर्बे का होना बहुत ज़रूरी है। फिर भी यदि कोई आपसे बेहतर केंडिडेट नहीं मिला, तो हम आपकी नियुक्ति पर विचार अवश्य करेंगे।

निष्ठा मैडम : मिस्टर अमर क्या आपके पास कोई रिकोमेंडेशन है?

अमर : *(चेहरे पर अपनी लाचारी दर्शाते हुए)* नहीं मैडम!

निष्ठा मैडम : ओके! कोई बात नहीं। हम आपको फ़ोन द्वारा सूचित करेंगे कि आपकी नियुक्ति हुई है या नहीं।

मिस्टर प्रताप : थैंक यू जेंटलमेन! *(मिस्टर प्रताप फ़ाइल बन्द करके अमर को थमाते हैं।)*

अमर : थेंक यू सर! *(अमर फ़ाइल लेता है, अपनी कुरसी धीरे-से खिसकाता है और वह कमरे से निकलने के लिए उद्यत होता है।)*

मिस्टर प्रताप : *(धीमी आवाज़ में)* निष्ठा मैडम क्या आपको पता नहीं कि यह नौकरी चेयरमैन की पत्नी के रिश्तेदार को देनी है। इससे यह कहने की क्या आवश्यकता थी कि आपको फ़ोन द्वारा नियुक्ति के विषय में बताया जाएगा?

निष्ठा मैडम : नहीं मिस्टर प्रताप! चेयरमैन ने मुझे इसके बारे में कुछ नहीं बताया है।

(अमर साक्षात्कार करने वालों की बातें सुन लेता है। वह बिना मुड़े और बिना उनका अभिवादन किए कमरे से निकल जाता है।)

मिस्टर राघव : मिस्टर प्रताप! आप उस लड़के के जाने का इन्तज़ार कर सकते थे न! लगता है उसने आप लोगों की बातें सुन लीं।

मिस्टर प्रताप : *(अपनी आवाज़ में तीव्रता लाते हुए)* सुन ली होगी, तो ज्यादा अच्छा होगा। कम-से-कम वह इस आशा में नहीं बैठेगा कि यह नौकरी उसे मिलेगी।

निष्ठा मैडम : *(खीजकर)* मिस्टर प्रताप! थाट्स वेरी चीप फ़्रॉम यौर पार्ट!

मिस्टर प्रताप : *(विचलित होकर)* मैडम! कृपया आप मुझे शिष्टाचार की शिक्षा मत दीजिए! आपने तो यह पद पाने के लिए चेयरमैन के साथ कई रातें... *(कहते-कहते रुक जाते हैं।)*

निष्ठा मैडम : *(अपने आपे से बाहर होकर)* मिस्टर प्रताप! देखिए, आपने कितनी बार अपनी पत्नी का सौदा करके प्रोमोशन पाया है, क्या मैं आपको गिनाऊँ?

मिस्टर राघव : स्टॉप इट बॉफ़ ऑफ़ यू! हममें से कोई दूध का धूला नहीं है। यह हम सबको पता है। बाहर केंडिडेट बैठे हैं, कहीं उन्होंने हमारी बातें सुन ली, तो क्या सोचेंगे? हमने पदोन्नति के लिए अपनी आत्मा की आवाज़ को कई बार कुचला है। हमारी चेतना पर भ्रष्टाचार के हथौड़े पड़ते रहे हैं। हम बस भ्रष्ट समाज के हाथों कठपुतले हैं। हमें जल की धारा के साथ बहना पड़ रहा है। धारा के विरुद्ध संघर्ष करने वालों की क्या हस्र होती है, यह तो आप जानते ही हैं।

मिस्टर प्रताप : *(सिर झुकाकर)* सॉरी! मैं आवेश में पता नहीं क्या-क्या कह गया। मैं अपने शब्दों के लिए शर्मिंदा हूँ।

निष्ठा मैडम : *(क्रोध अभी पूरी तरह शान्त नहीं हो पाया)* यू बैटर बी सॉरी! *(फिर शान्त हो जाती है।)*

मिस्टर राघव : *(दोनों को समझाने का प्रयास करते हुए)* निष्ठा जी! अब इन बातों को भूल जाइए! हम सब ने अपने से अधिक योग्य उम्मीदवारों से आगे निकलने के लिए अपने उसूलों और सिद्धान्तों से कई बार समझौते किए हैं। यह पाप का ऐसा दलदल है, जिसमें घुसने के बाद निकलना असम्भव हो जाता है। एक बार जो भ्रष्टाचार का आश्रय ले लेता है, वह भ्रष्टाचार उसका निज धर्म बन जाता है। वह इस विकृति से मुक्त नहीं हो पाता है। हमारी भी स्थिति बिल्कुल वैसी ही है।

जिन्हें खुश करके हमने ये पद पाए हैं, उनकी बातों का अवमानना करना हमारे लिए बहुत भारी सिद्ध होगा। सब जैसे चल रहा है, वैसे ही चलता रहे, इसी में हम सबकी भलाई है। हाँ, अगर अगली बार किसी छोटे पद के लिए रिक्ति होगी, तो इस केंडिडेट को कंसिडर कर सकते हैं। मैंने कहा न अपनी आँखों के सामने योग्य पात्रों के प्रति अन्याय होते देखकर कभी-कभी हम सबको दुख तो होता है, किंतु उस दुख से ऊपर है - हमारी खुद की नौकरी की सुरक्षा। है कि नहीं ?

निष्ठा मैडम : *(आवाज़ से आत्मग्लानि का आभास कराती हुई)* मिस्टर राघव, शायद आप ठीक कहते हैं। हमने इतनी गलतियाँ की हैं, जिन्हें अब सुधारना मुमकिन नहीं। किन्तु यदि मौका मिले, तो हमें अपने-आपको नई गलतियाँ करने से रोकना चाहिए! इतना तो हम कर सकते हैं न !

मिस्टर राघव : *(सिर हिलाते हुए)* मैं आपकी बातों से पूर्णतया सहमत हूँ। किंतु अब शायद गलती न करने का विकल्प हमारे हाथों में नहीं है।

निष्ठा मैडम : यदि हम इस होनहार युवक को यह नौकरी दे देते, तो शायद हममें प्रायश्चित करके पुनः सिद्धांतों का अनुसरण करने का संकल्प जागृत हो जाता। *(कहते-कहते रुक जाती है।)*

(कुछ क्षणों के लिए सब शान्त होकर कमरे के दरवाज़े की ओर देखने लगते हैं।)

निष्ठा मैडम : अगर इस नौकरी के लिए केंडिडेट पहले से तय है, तो यह बाह्याडम्बर क्यों? बेहतर है कि हम इस ढकोसले को बन्द करके सभी उम्मीदवारों को घर जाने के लिए कह दें।

मिस्टर प्रताप : आपका क्या मतलब है? हम बॉस की बात न मानकर नौकरी इस लड़के को दे दें! फिर तो अगले महीने ब्रांच मैनेजर बनने की उम्मीद छोड़ दीजिएगा। मैं इसके पक्ष में नहीं! मैं तो बॉस के आदेश का अवमानना नहीं करूँगा।

मिस्टर राघव : *(दोनों को शान्त होने का इशारा करते हुए)* मिस्टर प्रताप और निष्ठा जी देखिए, इतनी बहस करने से क्या लाभ? अन्तिम निर्णय तो चेयरमैन ही लेंगे न। आप यह क्यों भूल जाते हैं?

(मिस्टर राघव की बात सुनते ही मिस्टर प्रताप और निष्ठा मैडम एकदम शान्त हो जाते हैं। एक सन्नाटा-सा छा जाता है। रोशनी धीमी होने लगती है और पर्दा गिरता है।)

पाँचवाँ दृश्य

(परदा उठता है। मंच पर अँधेरा छाया रहता है। धीरे-धीरे प्रकाश होता है और अमर के घर की बैठक का दृश्य दिखाई देता है। मंच पर पाँच-छः कुरसियाँ हैं। कुरसियों के सामने एक छोटी मेज़ पर एक पुरानी टी.वी. रखी हुई है। टी.वी. का आभास दिलाने के लिए एक बक्सा रखा गया है, जिस पर काला रंग चढ़ाया गया है। सामने एक दृश्य का चित्र चिपकाया गया है। दोपहर के पाँच बजने का संकेत दीवार पर टँगी घड़ी से मिल रहा है। पूरा परिवार टी.वी. के सामने बैठा हुआ है और सभी बैठकर कोई मनोरंजक कॉमेडी फ़िल्म देख रहे हैं। रह-रहकर ठहाकों की आवाज़ें आती हैं, फिर सब शान्त हो जाते हैं।)

मोहनलाल जी : अरे! अमर भैया अभी तक नहीं आया है।

उसने तो कहा था कि चार बजने से पहले ही आ जाएगा।

माँ : *(दादा जी को चाय की प्याली थमाती हुई)* हो सकता है कि बस मिलने में देरी हुई है।

मोहनलाल जी : *(हाथों में चाय की प्याली लेकर एक चुस्की लेते हैं और निम्मी की ओर इशारा करते हुए)* निम्मी बेटी! ज़रा भैया को फ़ोन करके देखो तो।

निम्मी : जी दादा जी! *(वह उठती है और जेब से मोबाइल निकालकर नम्बर मिलाने का अभिनय करती है। नम्बर कई बार मिलाने के बाद वह दादा जी से कहती है।)* दादा जी नम्बर नहीं लग रहा है। शायद भैया का फ़ोन बन्द है।

माँ : कोई बात नहीं कुछ देर बाद फिर कोशिश करना बेटी!

निम्मी : ठीक है माँ!

(टी.वी चलने की ध्वनि आने लगती है और रह-रहकर सभी के हँसने की आवाज़ सुनाई देती है। कुछ देर बाद,नेपथ्य से दरवाज़ा खटखटाने की आवाज़ें आती हैं। निम्मी दौड़कर दरवाज़ा खोलने जाती है। दरवाज़ा खोलते ही वह चौंककर दो कदम पीछे हो लेती है। मंच पर दो पुलिसवालों का प्रवेश होता है।)

प्रथम पुलिसवाला : क्या यही अमर श्रीवास्तव का घर है?

मोहनलाल जी : हाँ! क्या हुआ, साहब? क्या मेरे बच्चे ने कुछ गलत किया है? मैं उसकी तरफ़ से आपसे माफ़ी माँगता हूँ।

दूसरा पुलिसवाला: *(सिर से टोपी उतारकर अपनी काँख के नीचे दबा लेता है और क्षोभ प्रकट करते हुए कहता है)* जी बात दरअसल यह है कि हमें बड़े पुल के पास से, बीस-पच्चीस साल के एक युवक की लाश मिली है। उसके पास से एक फ़ाइल मिली है, जिसमें चिट्ठी थी और चिट्ठी में यह पता मिला। लाश को पहचानने के लिए आपमें से किसी को हमारे साथ चलना होगा।

(सुनते ही माँ बेहोश होकर गिर जाती है और मोहनलाल जी के विस्फ़ारित नेत्र प्राणहीन-से प्रतीत होने लगते हैं। निम्मी और वरुण रोने लगते हैं और रह-रहकर अपने आँसू पोंछने लगते हैं। मंच पर सन्नाटा छा जाता है और धीरे-धीरे प्रकाश कम होता है। पर्दा गिरता है।)

mkashinath@gmail.com

एक नई उमंग जगी

दीपक कुमार चौरसिया
अमेरिका

पात्र

1. रितु	2. रोहन	3. सूत्रधार	4. आतुष
5. साइकिलसवार	6. तमाशबीन	7. मोटरसाइकिलसवार	8. अंजान

सूत्रधार : *इस महानगर में आए हुए रितु और रोहन को लगभग दो वर्ष बीत चुके हैं। दोनों अपनी छोटी-सी गृहस्थी से संतुष्ट हैं और लगभग एक सामान्य मध्यमवर्गीय जीवन बिता रहे हैं। लेकिन एक गाड़ी का न होना उन्हें बहुत सालता है। रितु का दफ़्तर उनके अपार्टमेंट से सिर्फ़ कुछ कदमों की दूरी पर है, मगर रोहन का दफ़्तर शहर के दूसरे छोर पर है। जब मौसम अच्छा होता है, तब काम चल जाता है, पर गर्मी, सर्दी या बारिश का समय होता है, तो बस या अन्य साधन से आना-जाना मुश्किल हो जाता है। पति-पत्नी के जीवन के बेहतरीन समय का एक बड़ा हिस्सा बस-मेट्रो में गुज़र रहा है, इससे दोनों दुखी हैं। आज ऑफ़िस से लौटकर घर पर बैठे हुए, दोनों एक गाड़ी खरीदने पर सोच-विचार कर रहे हैं।*

[दृश्य-1]

रितु : *(परेशान स्वर में)* आज तुम्हारे सिर में फिर दर्द हो गया न रोहन?

रोहन : *(दर्द छुपाने का प्रयास करते हुए)* हाँ! कोई खास दर्द नहीं है। अभी हम दोनों साथ में गरम कॉफ़ी पिएँगे, तो दर्द भाग जाएगा।

(रितु अपने हाथों में दो कप लेकर आती है और कॉफ़ी मेज़ पर रखकर, सोफ़े पर लगभग अधलेटे रोहन के पास जा बैठती है।)

रितु : *(हाथों से रोहन का सिर दबाती है, तो रोहन आँखें मूँद लेता है)* बात को फिर से टालने की कोशिश मत करो। हमें एक गाड़ी की ज़रूरत है। यह हम लक्ज़री के लिए नहीं, अपितु अपनी ज़रूरत के लिए ले रहे हैं। कुछ साल पुरानी गाड़ी तो डाउन पेमेंट पर ले ही सकते हैं। बाकी पैसे किश्तों में चुकाते रहेंगे।

(रोहन हामी में सिर हिलाकर आँखें खोल देता है।)

रोहन : *(सोफ़े से उठकर अंगड़ाई लेते हुए)* तुम ठीक कह रही हो, गाड़ी की ज़रूरत बढ़ती जा रही है। विवेक का छोटा भाई आतुष पुरानी गाड़ियाँ खरीदने-बेचने का काम करता है। तुम कहो तो मैं उससे बात कर लेता हूँ। यदि सब सही रहा, तो कल ही ऑफ़िस के बाद हम दोनों सीधा उसके डीलरशिप पर चलते हैं।

रितु : हाँ, यह ठीक रहेगा।

(दोनों एक नई आशा से खुशी-खुशी कॉफ़ी पीने लगते हैं।)

[दृश्य-2]

(अगले दिन रितु और रोहन शाम को लगभग 6 बजे आतुष के डीलरशिप ऑफ़िस पहुँचते हैं। आतुष दोनों को आते देखकर दरवाज़ा खोलता है)

आतुष : नमस्ते भाई साहब, नमस्ते भाभी! मैं आपका ही इंतज़ार कर रहा था।

रोहन : *(मुस्कुराते हुए)* अरे भाई! तुम व्यस्त आदमी हो, हमारे लिए टाइम निकाल रहे हो, यही बड़ी बात है।

आतुष : *(एक झेंप के साथ सिर खुजलाते हुए)* असल में आज कुछ खास काम नहीं था, बाकी सारे

काम दोपहर तक पूरे हो चुके थे। भैया ने मुझे सुबह बता दिया था कि आप और भाभी आने वाले हैं, तो मैंने तीन बेहतर गाड़ियाँ आपके लिए निकालकर रखी हुई हैं।

रितु : क्या बात है! थैंक यू सो मच!!

आतुष : *(उन दोनों के बैठने के लिए कुर्सी खींचते हुए)* आप लोग बैठिए आपके लिए पास की दुकान से ताज़ा समोसे और चाय मँगवाए हैं। बस आते ही होंगे।

रोहन : तुम परेशान मत होओ। हम अगली बार समोसा खा लेंगे। अभी सीधा गाड़ी दिखा दो, प्लीज़...

(रोहन विनम्रतापूर्वक कहता है और रितु भी हाँ में हाँ मिलाती है। आतुष उन्हें ऑफ़िस के पीछे बड़े से अहाते में ले जाता है। वहाँ तीन पुरानी लेकिन नयी-सी चमचमाती हुईं गाड़ियाँ रखी होती हैं। उनमें से एक गाड़ी पर दोनों की सहमति बनती है। वे उसे टेस्टड्राइव के लिए लेकर उत्साहपूर्वक निकल पड़ते हैं।)

[दृश्य-3]

सूत्रधार : *(रोहन गाड़ी चला रहा होता है और रितु उसके साथ में बैठी होती है। रोहन को गाड़ी चलाना आता तो है, लेकिन इस शहर की सड़कों से, वह बतौर ड्राइवर लगभग अंजान होता है। वह गाड़ी लेकर कम भीड़-भाड़ वाले एक इलाके की तरफ़ मुड़ जाता है। अचानक पानी से भरे गड्ढे के ऊपर से गाड़ी निकलती है, तो गड्ढे का गन्दा पानी राह चलते एक साइकिलसवार की कमीज़ को गन्दा कर जाता है। साइकिलसवार के चिल्लाने पर आस-पास के लोग जमा हो जाते हैं और गाड़ी को आगे बढ़ने से रोक देते हैं। अपनी आँखों को बड़ा-बड़ा करते हुए वह साइकिलसवार रोहन पर चीखना शुरू कर देता है।)*

साइकिलसवार : स्साले, अन्धा होकर चलाता है? इतना बड़ा गड्ढा नहीं दिखा तुझे? मेरी नई कमीज़ खराब कर दी। तुझे क्या लगता है, ऐसे ही निकल जाएगा यहाँ से.. तू जानता नहीं है कि मैं कौन हूँ। इस इलाके के दादा का खास आदमी हूँ मैं। अब चुपचाप नई कमीज़ के पैसे निकाल, वरना गाड़ी चलाने के लिए हाथ-पैर सलामत नहीं रहेंगे...

(भीड़ को देखकर रितु और रोहन दोनों सहम जाते हैं। दोनों एक-दूसरे की तरफ़ देखते हैं और रोहन चुपचाप अपनी जेब से दो सौ रुपये निकालकर साइकिलसवार को देते हुए मामला निपटाने की कोशिश करता है।)

रोहन : आय एम सो सॉरी, वैसे मेरी कोई गलती नहीं। मैं एक गड्ढा बचा रहा था और आप अचानक से सामने आ गए। फिर भी ये पैसे ले लीजिए।

तमाशबीन : ज्यादा अंग्रेज़ी मत झाड़ बे, एक तो चोरी और ऊपर से सीनाजोरी! दो सौ में आजकल आता क्या है?

(भीड़ ने तमाशबीन और साइकिलसवार की हाँ में हाँ मिलायी, तो रोहन ने दो सौ रुपये और दे दिए। वह गाड़ी में आगे बढ़ा, परंतु उसका उत्साह बराबर न रहा।)

[दृश्य-4]

सूत्रधार : *दोनों उदास मन से कुछ ही आगे बढ़ते हैं कि अगले मोड़ पर मुड़ते समय पता नहीं कहाँ से एक मोटरसाइकिलसवार जल्दबाजी में गाड़ी से हल्का-सा टकरा जाता है। टक्कर बड़ी मामूली थी और मोटरसाइकिल वाले को चोट नहीं लगी थी, लेकिन गाड़ी रुकवाकर वह रोहन को बाहर निकालता है और धमकाते हुए कहता है -*

मोटरसाइकिलसवार : हाथ में मेहँदी लगाकर गाड़ी चला रहा था क्या? चार पहिये पर सवार है, तो किसी की जान लेगा? मैं यहाँ के कमिश्नर को अच्छी तरह से जानता हूँ। अगर अभी दो

हज़ार निकालकर नहीं दिए, तो थाने में टाँगें तुड़वा दूँगा तेरी... केस बनेगा और लाइसेंस जाएगा, सो अलग..

(घबराकर रितु दूसरी तरफ़ का दरवाज़ा खोलकर बाहर निकलती है।)

रितु : *(हाथ जोड़ते हुए)* भैया प्लीज़, इन्हें छोड़िए। आपका जो भी नुकसान हुआ है, उसे इन पैसों से ठीक करा लीजिएगा।

(कहकर वह दो हज़ार रुपये मोटरसाइकिल वाले को थमा देती है। फिर रोहन गाड़ी को दूसरे इलाके की तरफ़ ले जाता है। अब तक हुए हादसे से पति-पत्नी अनमने हो जाते हैं! आत्मविश्वास डगमगाने से रोहन के पैर हल्के से काँपने लगते हैं।)

रोहन : *(सहमकर रितु की ओर देखते हुए)* - मैं क्या करूँ रितु, तुम देख ही रही हो कि इसमें मेरी कोई गलती नहीं।

रितु : जाने भी दो! तुम बस ड्राइविंग पर ध्यान लगाओ। अँधेरा भी हो गया है।

(रोहन साहस बटोरकर गाड़ी चलाने लगता है। बदकिस्मती से अँधेरे के चलते गाड़ी एक बार फिर किसी भारी-भरकम वस्तु से टकरा जाती है। दोनों डर के मारे थर-थर काँपते हुए गाड़ी को रोककर देखते हैं कि तभी एक शांत और मधुर आवाज़ कानों में पड़ती है।)

अंजान : संभालकर चलाओ भाई।

(रितु अपना माथा पकड़कर अपनी ओर का दरवाज़ा खोलती है। अंधेरे में कोई नहीं दिखता है। आवाज़ की दिशा में देखते हुए रोहन गाड़ी से उतरकर पूछता है।)

रोहन : *(डरते हुए)* आप ठीक तो हैं न?

अंजान : *(धीर-गम्भीर आवाज़ में)* जी हाँ! मैं बिल्कुल ठीक हूँ।

रितु : *(गाड़ी के नीचे झाँकते हुए)* पर आप कौन हैं? आपको चोट तो नहीं लगी? हम आपको अस्पताल ले जा सकते हैं। आप बस हम पर कोई केस न करें।

अंजान : भाई, मेरा नाम ईशुर है। आप निश्चिंत रहें! मैं भला किसी का कोई अहित क्यों करूँगा!!

(रितु और रोहन हैरत होकर एक-दूसरे की ओर देखते हैं। इस नम्र व्यवहार ने रोहन को साहस दिया। एक नई उमंग जगी और वह निर्भीकतापूर्वक गाड़ी चलाते हुए आगे बढ़ गया। एक मधुर संगीत की आवाज़ के साथ पर्दा गिरता है।)

dipakkumarchaurasiya1@gmail.com

अनकही

रोहित कुमार 'हैप्पी'
न्यूज़ीलैंड

पात्र

1. माधव (नायक): आत्महत्या कर चुका प्रेमी।
2. राहुल (नायक से पार्क में मिला व्यक्ति)
3. माँ (राहुल की माँ)
4. श्रुति (माधव की प्रेमिका/नायिका)

दृश्य 1

(एक सुनसान पार्क। हल्की रोशनी में एक पुरानी, जर्जर बेंच दिखाई देती है। शाम का समय है, सूरज डूबने वाला है। दृश्य में एक सन्नाटा पसरा हुआ है। मंच पर धीमी आवाज़ में हवा की सरसराहट सुनाई देती है। राहुल मंच के किनारे से धीरे-धीरे चलता हुआ माधव के पास आता है। वह माधव से कुछ दूरी पर

खड़ा हो जाता है और उसे ध्यान से देखता है।)

राहुल : *(असमंजस में, पास आते हुए)* काफ़ी देर से देख रहा हूँ, तुम यहाँ अकेले बैठे हो। तुम्हारे चेहरे पर इतनी उदासी क्यों है? क्या तुम्हें कोई परेशानी है?

(माधव कुछ पल चुप रहता है, फिर धीरे-से बोलता है।)

माधव : हाँ, मैं परेशान हूँ... कुछ भी ठीक नहीं है।

(राहुल माधव के पास जाकर बेंच पर बैठता है।)

राहुल : *(सहानुभूति दिखाते हुए)* क्या हुआ? मुझे बताओ, शायद मैं तुम्हारी कुछ मदद कर सकूँ!

माधव : *(गहरी साँस लेते हुए)* मुझे... मुझे उसकी बहुत चिंता हो रही है। मैं नहीं जानता वह कैसी होगी...? जाने उस पर क्या बीती होगी!

राहुल : *(उत्सुकता से)* कौन? किसकी बात कर रहे हो?

माधव : *(धीरे-धीरे)* वही, जिससे मैं प्यार करता था। उससे मेरी शादी होने वाली थी। हम एक-दूसरे को बहुत चाहते थे।

(माधव बेंच पर बैठा-बैठा कहीं दूर देखने लगता है और यादों में खो जाता है। राहुल सहानुभूति से उसे देखता है। रोशनी धीरे-धीरे बुझ जाती है।)

दृश्य 2

(माधव और उसकी प्रेमिका श्रुति के मिलन का फ़्लैशबेक है। बैकग्राउंड में धीमा संगीत चल रहा है।)

श्रुति : *(माधव का हाथ पकड़कर)* तुम्हारे बिना एक दिन भी बिताना मुश्किल है। तुम नहीं होते, तो यह दुनिया बेरंग होती। मेरा जीवन खाली होता।

माधव : *(उसकी आँखों में झाँकते हुए)* मैं भी हर लम्हा बस तुम्हारे साथ गुज़ारना चाहता हूँ। श्रुति! तुम्हीं मेरा संसार हो।

(अचानक श्रुति गंभीर होकर माधव की ओर देखती है)

श्रुति : *(रुआँसे स्वर में)* माधव! मेरे परिवार वाले हमारी शादी के लिए तैयार नहीं हैं। उन्होंने मेरी शादी कहीं और तय कर दी है।

माधव : *(चौंकते हुए):* क्या...? ...पर यह कैसे हो सकता है?

श्रुति : *(आँखों से आँसू पोंछते हुए)* मैं नहीं जानती, पर ऐसा ही हो रहा है। मुझ पर घर वालों का बहुत दबाव है। उनकी बात मुझे माननी होगी।

माधव : *(श्रुति का हाथ अपने हाथ में लेते हुए)* नहीं, तुम ऐसा नहीं कर सकती।

श्रुति : *(माधव से अपना हाथ धीरे-से छुड़ाती हुई)* मेरे पास और कोई चारा नहीं है, माधव।

(अगले ही पल जैसे उसे कोई युक्ति सूझती है।) माधव का चेहरा अपने दोनों हाथों में समेटती हुई) चलो, हम यहाँ से भाग चलते हैं। कहीं दूर जाकर अपना घर बसाएँगे।

माधव : नहीं! हम भागकर कहाँ जाएँगे? आखिर, तुम्हारे घर वाले हमें खोज ही लेंगे और...।

श्रुति : *(निराशा से)* तो फिर हम क्या करें?... बताओ माधव... हम क्या करें?

(माधव श्रुति का हाथ कसकर पकड़ता है। मंच पर धीरे-धीरे अँधेरा छाने लगता है।)

दृश्य 3

(पार्क का वही दृश्य, जहाँ माधव राहुल को अपनी कहानी सुना रहा था। मंच पर रोशनी धीमी होती है।)

राहुल : *(गहरी चिंता के साथ)* फिर क्या हुआ? क्या तुमने अपनी प्रेमिका को वापस पाने की कोशिश की?"

माधव : *(दर्द के साथ)* मैंने उससे मिलने की बहुत कोशिश की। लेकिन उसकी शादी कहीं और हो गई और मैं उससे कभी मिल नहीं पाया।

राहुल : *(दुख प्रकट करते हुए)* ओह! फिर तुमने क्या किया?"

माधव : *(गहरी साँस लेकर)* मैं और क्या करता? मैं उसके बिना रह नहीं सका। मैंने आत्महत्या कर ली।"

राहुल : *(चौंककर)* क्....क्या?
(दृश्य में गहरा सन्नाटा छा जाता है।)
"तो...तुमने आत्महत्या...? तो फिर तुम...?"

माधव : *(बेबसी से)* हाँ, अब मैं इस दुनिया का हिस्सा नहीं हूँ। मैं मर चुका हूँ। मेरी आत्मा अभी भी बेचैन है। क्या तुम मेरी थोड़ी मदद कर सकते हो?

राहुल : *(घबराहट में)* मैं... मैं तुम्हारी मदद क्या कर सकता हूँ?

माधव : *(विनम्रता से)* मुझे सिर्फ़ इतना जानना है कि मेरी प्रेमिका श्रुति कैसी है? कहीं उसने भी मेरी तरह कुछ कर लिया तो? और मेरे माँ-बाप... क्या वे ठीक हैं?"

राहुल : *(उलझन में)* मुझे नहीं पता मैं कैसे तुम्हारी मदद कर सकता हूँ... यह बहुत अजीब है... अब क्या हो सकता है?

दृश्य 4

(राहुल के घर का बेडरूम राहुल बिस्तर पर लेटा हुआ है और उसका चेहरा पसीने से भीगा हुआ है। अचानक उसके कानों में उसकी माँ की आवाज़ पड़ती है और उसकी नींद टूट जाती है।)

माँ : *(रसोई से तेज़ आवाज़ में)* अरे, इतनी देर तक सो रहा है! उठ! राहुल! चाय-नाश्ता तैयार है।"
(राहुल घबराकर उठता है। जैसे किसी भयानक सपने से बाहर निकला हो। वह कुछ देर तक कमरे में इधर-उधर देखता है।)

राहुल : *(स्वयं से बुदबुदाता हुआ)* क्या यह एक सपना था...? या फिर...?"
(उसे माधव की बातें याद आती हैं और उसका चेहरा गंभीर हो जाता है। खुद से बड़बड़ाता हुआ।)
काश! माँ ने 5-10 मिनट बाद आवाज़ लगाई होती तो मैं माधव को इतना बता देता कि वह बेवजह परेशान हो रहा है। धरती पर उसकी प्रेमिका ठीक ही, होगी। उसके माँ-बाप भी ठीक-ठाक होंगे। मैं उससे कहता कि वह भूल से भी अपने माता-पिता के घर या अपनी प्रेमिका के घर न पहुँच जाए। वे उसे देखकर 'भूत-भूत' चिल्लाएँगे, वे उससे दूर भागेंगे, क्योंकि वह इस धरती से बहुत दूर जा चुका है।' ---पर मुझे खेद है कि यह सब मैं उसे बता नहीं पाया। यह बात अनकही रह गयी।
... यह तो सपने में अनकही रह गयी!
(राहुल मौन होकर खालीपन में देखता है। मंच पर धीरे-धीरे रोशनी पूरी तरह से बुझ जाती है और इसी के साथ नाटक समाप्त होता है।)

editor@bharatdarshan.co.nz

कृत्रिम बुद्धिमत्ता की चकाचौंध में बुझती संवेदनाएँ

नृपेन्द्र अभिषेक 'नृप'
बिहार, भारत

सभ्यता की लम्बी यात्रा में मनुष्य ने अनेक मोड़ देखे, कभी पत्थरों को घिसकर चिंगारी निकाली, तो कभी धमनियों में विद्युत बहाकर आकाश छू लिया। किंतु इस विकास के हर पड़ाव पर एक प्रश्न अनुत्तरित रह गया कि "क्या हम केवल आगे बढ़ रहे हैं, या भीतर से कुछ छूटता जा रहा है?"

विज्ञान और तकनीक ने मानव सभ्यता को उस मुकाम पर पहुँचा दिया है, जहाँ अब मनुष्य स्वयं के ही बनाए उपकरणों से स्पर्धा करने लगा है। आज यंत्रों ने न केवल हमारी भाषा सीखी है, बल्कि हमारी सोच और संवेदना की भी वे नकल करने लगे हैं, अतः यह प्रश्न और अधिक तीव्र हो उठता है कि "क्या मनुष्य, मनुष्य बना रह गया है?"

कृत्रिम बुद्धिमत्ता विज्ञान की वह धारा है, जो मस्तिष्क की सीमा को पार कर मशीनी सोच को जन्म देती है। यह एक अद्भुत उपलब्धि है, परंतु इसकी चमक में एक मद्धम होती परछाई भी है। वह है - मानवीय संवेदनाओं की, आत्मीय संबंधों की और उस मौन की, जिसमें मनुष्य का हृदय धड़कता है। आज की सबसे बड़ी विडंबना यही है कि जहाँ मशीनें 'भावना' दिखाने में दक्ष होती जा रही हैं, वहीं भावनाओं को जीने में मनुष्य पीछे छूट रहा है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का विकास मानव मस्तिष्क की जटिलताओं की नकल कर मशीनों में सोचने और सीखने की क्षमता भरने का परिणाम है। आज AI आधारित चैटबॉट्स, स्वचालित कारें, स्वास्थ्य निगरानी यंत्र, न्यायिक विश्लेषण उपकरण और भाषायी अनुवादक आम हो गए हैं। मशीन लर्निंग, डीप लर्निंग, न्यूरल नेटवर्क्स जैसे शब्द अब केवल प्रयोगशालाओं तक सीमित नहीं रहे, बल्कि मानव जीवन के हर पहलू में प्रवेश कर चुके हैं। AI ने जीवन को सहज, तीव्र और सुलभ बना दिया है। परंतु इसी सहजता के पीछे एक शून्य धीरे-धीरे आकार ले रहा है, जहाँ भावनाएँ निष्क्रिय हो रही हैं, सहानुभूति सीमित होती जा रही है और मानवीय रिश्तों में कृत्रिमता का संचार हो रहा है।

एक समय था, जब पत्रों में भावनाएँ बसती थीं, संवाद में स्पर्श होता था और मौन में भी अर्थ हुआ करता था। अब संवाद त्वरित हो गया है, प्रतिक्रियाएँ एल्गोरिद्म के अधीन हैं और भावनाओं को इमोजी ने बदल दिया है। सोशल मीडिया पर 'रिएक्शन' देना मानवीय संबंधों को निभाने का पर्याय बन गया है। मशीनें 'थैंक्स', 'सॉरी' और 'लव यू' कहने लगे हैं, पर ये शब्द अपनी आत्मा कहाँ से लाएँगे? संवेदनाएँ उस मिट्टी की तरह हैं, जो केवल जीवंत अनुभवों से उगती हैं। जब बच्चे रोबोट नैनी के साथ खेलें और वृद्ध माता-पिता AI सहायक के भरोसे छोड़ दिए जाएँ, तब प्रश्न उठता है कि क्या हम संबंधों की ऊष्मा को खो नहीं रहे हैं?

AI का उद्देश्य है - दक्षता बढ़ाना, लेकिन यदि दक्षता के नाम पर मानवीय श्रम को अप्रासंगिक ठहराया जाए, तो बेरोज़गारी से उपजने वाली मानसिक पीड़ा, सामाजिक अलगाव और आत्म-संवेदना का ह्रास कैसे रोका जाएगा? मनुष्य सिर्फ़ काम करने वाला जीव नहीं, वह एक अनुभवशील प्राणी है। अस्पतालों में रोबोट नर्सें हो सकती हैं, लेकिन वे ममता की ऊष्मा कैसे देंगी? स्कूलों में रोबोट शिक्षक हो सकते हैं, पर वे बालमन की पीड़ा को कैसे समझेंगे? न्यायालयों में एल्गोरिद्म आधारित निर्णय हो सकते हैं, लेकिन क्या वे परिस्थिति की गहराई को करुणापूर्वक समझ पाएँगे?

हम एक ऐसे युग में प्रवेश कर चुके हैं, जहाँ नियोक्ता भर्ती के लिए AI आधारित साक्षात्कार प्रणाली का उपयोग कर रहे हैं। उम्मीदवार की मुस्कान, आत्मविश्वास, डर, संकोच सब मशीन स्कैन कर लेती है। परंतु क्या मशीन उस युवा की आँखों में छिपी उम्मीद और संघर्ष को पढ़ सकती है? क्या वह उस स्त्री की झिझक को समझ सकती है, जिसने पारिवारिक बंदिशें तोड़कर आवेदन किया है? जब निर्णयों में आत्मीयता अनुपस्थित हो जाए, तब न्याय नहीं, केवल निष्कर्ष बचते हैं। मानव निर्णय की त्रुटियाँ क्षम्य हो सकती हैं, लेकिन एक संवेदनाहीन मशीन की त्रुटि विध्वंसक सिद्ध हो सकती

है।

इस यंत्र प्रधान युग में संवेदनाओं का संरक्षण एक सांस्कृतिक उत्तरदायित्व है। साहित्य, संगीत, चित्रकला, रंगमंच और लोक परंपराएँ हमें बार-बार यह याद दिलाती हैं कि हम मशीन नहीं, मनुष्य हैं। कवि जब एक प्रेम-पत्र लिखता है और चित्रकार जब पीड़ा को रंगों में उड़ेलता है, तब वह उस संवेदना को बचाता है, जो हमें मनुष्य बनाती है। स्कूलों में नैतिक शिक्षा, भावनात्मक बुद्धिमत्ता और सहानुभूति की शिक्षा पहले से कहीं अधिक आवश्यक हो गई है। डिजिटल दुनिया में भटकते युवा मन को आत्म-चिंतन और संवेदना के द्वीपों की ज़रूरत है, जहाँ वह तकनीकी उत्तेजना के परे जाकर स्वयं को खोज सके।

हमारे समय का सबसे बड़ा संकट यह है कि मानवीय व्यवहारों, भावनाओं और रिश्तों को अब मात्र "डेटा पॉइंट्स" में बदला जा रहा है। एक नवजात के हँसने की ध्वनि को जब AI मशीन 'सुखद ध्वनि' कहकर रिकॉर्ड करती है, तब प्रश्न उठता है कि क्या वह उस स्पंदन को महसूस कर सकती है, जो माँ के हृदय में उठता है? जब प्रेम को एल्गोरिद्म 'समान पसंद' के आधार पर मापने लगे और विवाह का निर्णय ऐप आधारित सुझावों पर टिका हो, तब क्या आत्मा का कोई प्रयोजन बचता है?

हम उस युग में प्रवेश कर चुके हैं, जहाँ हर भाव, हर प्रतिक्रिया और हर विचार को मशीनें माप रही हैं, किन्तु मापने मात्र से समझना नहीं आता। एक प्रेमी की प्रतीक्षा, एक माँ की चिंता, एक कलाकार की पीड़ा, एक वृद्ध की तन्हाई, इन सबको आप कोड में बदल सकते हैं, पर उनकी अनुभूति केवल वही कर सकता है, जो मनुष्य है।

यदि आज का मनुष्य अपने ही सृजन से अभिभूत होकर उससे प्रतिस्पर्धा करने लगे, तो यह उसकी शक्ति नहीं, बल्कि उसकी जड़ता की घोषणा होगी। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के समक्ष झुकता हुआ मानव, असल में, उस आत्मबोध को खोता जा रहा है, जो उसे लाखों वर्षों के सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक उत्थान से प्राप्त हुआ था। जो ज्ञान बुद्ध से गांधी तक प्रवाहित होता रहा, वह क्या आज यंत्रों की गणनाओं और डाटा एनालिटिक्स की निःशब्दता में विलीन हो जाएगा? AI की बढ़ती उपस्थिति न केवल काम की प्रकृति को बदल रही है, बल्कि सोचने के तरीके, संबंधों की परिभाषा और जीवन के उद्देश्य को भी तकनीकी नज़रिए से पुनर्गठित कर रही है। मशीनें अब "तर्कसंगत" समाधान प्रस्तुत करती हैं, परंतु उनमें जीवन की विडंबनाओं के प्रति कोई सहानुभूति नहीं होती। यही वह बिंदु है, जहाँ संवेदनशील मानव हार मानने लगता है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने संवाद को सुविधाजनक तो बना दिया है, परंतु उसने उसमें छिपे आत्मीय स्पर्श को विस्मृत कर दिया है। अब हम अपने प्रियजनों से मिलने के स्थान पर उन्हें "वीडियो कॉल" करते हैं, बच्चों को कहानियाँ सुनाने के स्थान पर उन्हें वर्चुअल असिस्टेंट से 'स्टोरी टेलिंग' सुनाते हैं। वृद्ध माता-पिता, जो कभी हमारी भावनात्मक ज़मीन थे, अब AI-सहायक की आवाज़ से सुकून लेने के लिए बाध्य हो गए हैं।

यही वह भावनात्मक अजनबियत है, जो संबंधों को सतही बना रही है। संवाद अब सूचना का लेन-देन बन गया है, न कि आत्मा का स्पर्श। तकनीक के इस महासागर में डूबते हुए, हम अपने भीतर के उस बच्चे को खो रहे हैं, जो निहायत सरलता से प्रेम करता था, दुख सहता था और संवेदना के साथ जीता था।

AI को लेकर समाज में जो उत्साह है, उसमें एक अनदेखा भय भी निहित है और वह है विवेक की धीमी मृत्यु। जब हम हर निर्णय को किसी "एआई सलाह" पर टाल देते हैं, तब स्वयं सोचने की प्रवृत्ति क्षीण होती जाती है। आज का युवा, जो पहले प्रश्न करता था, अब उत्तरों के लिए इंटरनेट और चैटबॉट्स पर निर्भर हो गया है। यह केवल ज्ञान का स्थानांतरण नहीं, बल्कि आत्म-निर्णय की स्वतंत्रता का क्षरण है। विवेक, जो किसी भी समाज की रीढ़ होता है, यदि निष्क्रिय हो गया, तो सामाजिक चेतना का पतन सुनिश्चित हो जाता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि तकनीक का सर्वोच्च उपयोग तभी है जब वह मानव विवेक के अधीन रहे, न कि उसे अपदस्थ कर दे।

स्वास्थ्य क्षेत्र में AI ने नई क्रांतियाँ रची हैं - रोगों का शीघ्र निदान, रोबोटिक सर्जरी, मानसिक स्वास्थ्य ऐप्स और 24x7 मेडिकल चैटबॉट्स। यह एक स्वागत-योग्य परिवर्तन

है, लेकिन चिकित्सा केवल शरीर की मरम्मत नहीं, आत्मा का संबल भी है। रोगी जब डॉक्टर की आँखों में आश्वासन खोजता है और जब वह एक हाथ के स्पर्श से जीवन में फिर से लौटने का हौसला पाता है, तब क्या AI ये सब दे सकती है? कृत्रिम बुद्धिमत्ता रोग की पहचान कर सकती है, लेकिन क्या वह उस विधवा माँ के डर को समझ सकती है, जो अपने बेटे के कैंसर की रिपोर्ट लिए बैठी है? चिकित्सा-सेवा में करुणा, धैर्य और आत्मीयता की आवश्यकता होती है - यह गुण किसी मशीन को प्रशिक्षित करके सिखाया नहीं जा सकता। यहाँ संवेदना ही सबसे प्रभावी औषधि होती है।

AI के प्रयोग से केवल भावनाएँ ही नहीं, बल्कि नैतिकता भी संकट में है। आज मशीनें चेहरे पहचान रही हैं, खरीदारी की प्रवृत्तियाँ पढ़ रही हैं, चुनावी पूर्वानुमान दे रही हैं, यहाँ तक कि युद्धनीति भी तय कर रही हैं। ऐसे में यदि कोई एल्गोरिद्म निर्णय लेता है कि एक बम कहाँ गिरना चाहिए, तो उस निर्णय की नैतिक जवाबदेही किसकी होगी? मानव समाज ने सदियों में जो नैतिक मानदंड और मूल्यों की नींव रखी है, क्या वह AI के नियमों के तहत सुरक्षित रह पाएगी? मशीनों को अधिकार देना आसान है, लेकिन उन्हें उत्तरदायित्व देना असंभव। यहीं वह संकट खड़ा होता है, जहाँ मनुष्य स्वयं को भी मशीनों के तर्ज पर जीने लगता है - नैतिकता से विहीन, संवेदना से परे, केवल तर्क आधारित।

इस संकट का समाधान केवल तकनीकी नियंत्रण नहीं, बल्कि संवेदनशीलता के पुनर्जागरण में है। हमें अपने बच्चों को स्क्रीन से अधिक संवाद देना होगा, किताबों से अधिक कहानियाँ सुनानी होंगी और मशीनों से अधिक मनुष्यों के साथ समय बिताना होगा। शिक्षा प्रणाली में 'भावनात्मक शिक्षण' को अनिवार्य किया जाए। साहित्य, रंगमंच, संगीत, लोक कला को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाया जाए। सार्वजनिक नीति में संवेदना आधारित निर्णयों को बढ़ावा दिया जाए, जैसे कि मानव-केंद्रित न्याय प्रणाली, सहृदय प्रशासन और समावेशी तकनीकी दृष्टिकोण। हमें यह सिखाना होगा कि तकनीक का उद्देश्य मनुष्य को 'बेहतर' बनाना है, न कि 'भिन्न'। यदि हम यह समझ जाएँ, तो AI एक वरदान सिद्ध हो सकता है, वरना वह एक आत्मघाती औज़ार बन जाएगा।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता को नकारना यथार्थ से भागना होगा, पर उसे दिशा देना मनुष्य का दायित्व है। आवश्यकता है एक ऐसे दृष्टिकोण की, जिसमें तकनीक और मानवीय मूल्य साथ-साथ चलें। मानव और मशीन का संबंध केवल उत्पादकता आधारित न हो, बल्कि उसमें संवेदना का स्थान भी सुनिश्चित किया जाए। AI को इस रूप में विकसित किया जाए कि वह मानवीय कार्यों का सहयोगी बने, विकल्प नहीं। निर्णयों में मानवीय हस्तक्षेप सुनिश्चित किया जाए, ताकि संवेदना और न्याय का संतुलन बना रहे। यदि भविष्य का यंत्र मानव की भावनाओं को पढ़ना सीखे, तो पहले हमें स्वयं अपनी संवेदनाओं को फिर से पढ़ना सीखना होगा।

यंत्रों का यह युग जितना प्रगतिशील है, उतना ही संभावनाओं से भरा हुआ है और उतना ही खतरनाक भी। यह वह युग है, जहाँ मनुष्य ने अपनी सोच को मशीनों में उड़ेल दिया है, लेकिन अपने हृदय की पीड़ा को बाँट नहीं सका है। "मनुष्य बुद्धिमान हो गया है, पर क्या वह संवेदनशील रह गया है?"- यह प्रश्न आज की सबसे बड़ी चिन्ता बन चुका है। हम अंतरिक्ष की दूरियाँ नाप रहे हैं, पर मन की गहराइयाँ छूने में चूक रहे हैं। हमने मशीनों को सोचने की क्षमता दी, पर क्या हम स्वयं महसूस करने की क्षमता को जीवित रख पाए हैं? AI का विकास एक युगांतरकारी उपलब्धि है, परंतु यदि इस विकास की चमक में हम अपने भीतर के दीये को बुझा देंगे, तो यह उपलब्धि हमें मनुष्य से यंत्र बना देगी। विज्ञान की उड़ान को विवेक के पंख चाहिए और संवेदना ही वह भूमि है, जहाँ यह उड़ान टिक सकेगी।

यह समय है आत्म-संवाद का, जहाँ हमें यह तय करना होगा कि हम केवल जानकार प्राणी बनना चाहते हैं या एक संवेदनशील समाज। यदि हम संवेदनाओं को पुनः प्राथमिकता देना सीख जाएँ, तो तकनीक हमारी सहयात्री बनेगी, प्रतिस्पर्धी नहीं। वरना, एक दिन शायद यह निबंध भी एक AI द्वारा लिखा जाएगा, लेकिन पढ़ने वाला कोई संवेदनशील हृदय नहीं होगा।

nripendraabhishek@gmail.com

हिंदी शिक्षा संघ, दक्षिण अफ़्रीका - बीज से फल तक

माला रामबली
दक्षिण अफ़्रीका

हर नदी सागर की ओर बहती है। सागर में जाकर जल में विलीन हो जाती है और उसकी बूँदों को अलग नहीं किया जा सकता। भाषा पवित्र जल से कम नहीं है। शायद यही सोचकर भारत में जन्मे पंडित नरदेव वेदालंकार ने दो विचारधाराओं के लोगों को एकत्र कर हिंदी शिक्षा संघ की स्थापना की। ये दो विचारधाराएँ श्री सनातन धर्म सभा और आर्य प्रतिनिधि सभा से जुड़ी थीं, जिनके सदस्य हिंदी भाषी थे। एक समय दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी अधिक बोली जाती थी। भाषा को बचाने और उसकी रक्षा करने के लिए 1948 में हिंदी शिक्षा संघ की स्थापना की गई।

वर्तमान में, दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी जीवित है। शहरों में हिंदी बोली नहीं जाती है, लेकिन इस साल 587 विद्यार्थियों ने हिंदी की परीक्षा दीं। यहाँ रोज़ी-रोटी के लिए लोग अंग्रेज़ी बोलते हैं। सांस्कृतिक बाधा के कारण हम सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ गए हैं। लेकिन हम उन्हें धन्यवाद करते हैं, जिनके प्रयासों से हिंदी आज जीवित है।

पंडित नरदेव वेदालंकार और उनके साथियों ने एक बीज बोया। यह बीज बरसों के परिश्रम से सींचा गया। कभी बाढ़ आई, तो कभी सूखापन। इन परिस्थितियों को झेलकर लोगों ने हिंदी की रक्षा की। हिंदी का पेड़ अब बढ़ गया है और हमें इसकी देखभाल करनी है। यदि पेड़ और जड़ें हैं, तो टहनियाँ भी होंगी। हिंदी शिक्षा संघ की कई पाठशालाएँ जोहान्सबर्ग से डरबन तक, ईस्ट लंदन से न्युकॉसल तक फैली हुई हैं। हमारी पाठशालाएँ कई शहरों में हैं। लोग सोचते हैं कि फूल क्षणभंगुर है। पेड़ से गिर जाने पर वह मुरझा जाएगा। मगर हिंदी के योद्धा मुरझा जाने वालों में से नहीं हैं। वे मज़बूत हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि इनके बिना हिंदी नहीं रह पाएगी। हमारे अध्यापक तथा अध्यापिकाएँ हिंदी की पाठशालाएँ चलाते हैं, ताकि पंडितजी का बोया हुआ हिंदी का पेड़ हर तूफ़ान को झेल सके और इतना मज़बूत रहे कि कभी उजड़ न पाए।

अब उन फूलों की चर्चा करते हैं, जो हमारे विद्यार्थी हैं। वाह ! वे हर रंग के और हर स्वभाव के फूल हैं। माँ और बेटा एक ही कक्षा में हिंदी पढ़ते हैं। एक कारण यह है कि माँ को हिंदी सीखने का मौका नहीं मिला और दूसरा कारण यह है कि माँ को ऐसा लगता है कि उनके बच्चों को हिंदी सीखनी चाहिए, ताकि वे अपनी संस्कृति कभी न भूल पाएँ। हाँ, यह सच है कि हिंदी पढ़ने वालों की संख्या कुछ और हो सकती थी, मगर यह समस्या अन्य देशों में भी देखी जा रही है। हिंदी के पठन-पाठन का फल तो हर विद्यार्थी, हर अध्यापक तथा अध्यापिका के परिश्रम का परिणाम है। जब लोग रामचरितमानस को देवनागरी लिपि में पढ़ते हैं तब उन्हें पता चलता है कि परिश्रम का फल कितना मीठा होता है। हिंदी का झंडा हमें लहराना है और हिंदी को वही पद देना है, जिसकी वह हकदार है। हिंदी के साथ भारतीय संस्कृति को भी जीवित रखना है। भाषा गई, तो संस्कृति गई, संस्कृति गई तो पहचान गई।

समय के साथ हिंदी शिक्षा संघ में परिवर्तन होता रहा। पहले छात्र वर्धा, भारत की परीक्षा देते थे। अब सारी परीक्षाएँ दक्षिण अफ़्रीका में ही तैयार की जाती हैं। हिंदी शिक्षा संघ का शिक्षक दल पाठ्यक्रम और परीक्षाएँ दोनों तैयार करता है। हर पाठशाला के विद्यार्थी एक ही पाठ्यक्रम के अनुसार पढ़ते हैं, ताकि सबके लिए आसानी हो? शिक्षक कार्यशाला के लिए जोहान्सबर्ग भी जाते हैं। महीने में एक शनिवार को ट्यूटोरियल रखा जाता है। हिंदी शिक्षा संघ के सदस्यों की मेहनत से लोग हिंदी सीखते हैं।

हिंदी शिक्षा संघ का दूसरा दल सांस्कृतिक दल है। संघ के दो लक्ष्य हैं - हिंदी का प्रसार और संस्कृति का संरक्षण। हर साल प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं, जिनमें बच्चे से वयस्क व्यक्ति, सभी भाग लेते हैं। सांस्कृतिक कार्यक्रम में कविता, नाटक, गायन और नृत्य प्रस्तुत किए जाते हैं। लोग रामायण-पाठ, गीता-पाठ और वेद मंत्रों का पाठ भी करते हैं।

कई अध्यापक तथा अध्यापिकाएँ खुद अपने नाटक लिखते हैं। प्रतियोगिता के दिन मंच पर हिंदी गूँज उठती है। संस्कृति की जड़ों को सींचते जाना है, ताकि अगली पीढ़ी भी इससे जुड़ सके। प्रतियोगिता आयोजित करने के अलावा, यह दल लोगों को भारतीय संस्कृति की जानकारी भी देता है।

1998 में, जब डॉक्टर हेमराज हिंदी शिक्षा संघ के प्रधान थे, तब उन्होंने और उनके साथियों ने सोचा कि हम एक रेडियो स्टेशन क्यों न चलाएँ। इसी से रेडियो हिंदवाणी का जन्म हुआ। हिंदवाणी एक सामाजिक रेडियो स्टेशन है, जो हिंदी शिक्षा संघ का एक अंग है। सामाजिक स्टेशन का मतलब है कि वह विज्ञापनों से नहीं चलता। इसमें प्रस्तोता स्वयंसेवक और स्वयंसेविकाएँ हैं। हिंदवाणी में अर्चन से लेकर सैरवाणी तक, नारी वाणी से लेकर चटनी और भगड़ा तक, हर आयु के लिए, हर हिंदी प्रेमी के लिए कार्यक्रम प्रस्तुत होते हैं। हिंदवाणी सिर्फ़ डरबन में सुनाई देती है, लेकिन ऑडियो स्ट्रीमिंग के ज़रिये सारी दुनिया के लोग इसे सुन सकते हैं। धार्मिक कार्यक्रमों से लोग लाभ उठाते हैं और रेडियो से मनोरंजन भी पाते हैं।

हम भाग्यशाली हैं कि कई बड़े गायक तथा गायिकाएँ, कवि और कवयित्रियाँ तथा आईटी के महापुरुष यहाँ आए और उन्होंने हमें प्रोत्साहित किया। जब हम इनसे मिलते हैं, तब हमें ऐसा लगता है कि हम हिंदी के लिए काम कर रहे हैं। हरेक व्यक्ति ने हमारी हिम्मत बढ़ाई। हमें और बहुत कुछ करना है। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि हिंदी शिक्षा संघ हिंदी को सुरक्षित रखने में सफल होवें।

दक्षिण अफ़्रीका में कुछ चुनौतियाँ हैं, जो हिंदी शिक्षा संघ के काम को कठिन बना देती हैं। लाख कोशिशों के बावजूद, कई चुनौतियाँ सिर उठाती रहती हैं।

दक्षिण अफ़्रीका में भारतीयों के चार वंश हैं, जिनमें अलग धर्म और भाषा के लोग हैं। कुल मिलाकर भारतीय लोग सिर्फ़ दो प्रतिशत हैं। भारतीयों में हिंदी, तमिल, तेलुगू, उर्दू और गुजराती भाषाओं के सदस्य हैं। जब वे मिलते हैं, तब सब अंग्रेज़ी बोलते हैं, क्योंकि अंग्रेज़ी एक भाषा है, जो सब जानते हैं। हमारी सरकारी पाठशालाओं में सब वंश के बच्चे पढ़ते हैं। स्कूल के बाद हिंदी शिक्षा संघ द्वारा सभी को हिंदी पढ़ाई जाती है। दादा-दादी और पोता-पोती एक ही कक्षा में पढ़ते हैं। हमारी आशा है कि लोग बाहर कोई भी भाषा बोलें, मगर घर में हिंदी बोलें।

एक समस्या यह है कि बच्चों को हिंदी सीखने का समय नहीं मिलता, क्योंकि स्कूल का काम बढ़ गया है। दूसरी समस्या यह है कि लोग हिंदी भाषा की पढ़ाई को सही दृष्टि से नहीं देखते हैं। अगर आप किसी को हिंदी सिखाते हैं, तो उसके मन में यह विचार आता है कि आप उसे हिंदू बनाना चाहते हैं। सभी भारतवंशी अपनी भाषा को सुरक्षित रखना चाहते हैं, लेकिन जोहान्सबर्ग में कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो भारतीय नहीं हैं, फिर भी वे हिंदी सीखते हैं।

तीसरी समस्या यह है कि लोग हिंदी पढ़ते और लिखते हैं, लेकिन बोलते कम हैं। जब वे हिंदी में बोलते हैं, तब हिचकिचाते हैं, यही सोचकर कि कोई उनके प्रयासों पर हँसेगा। मगर बहुत लोग हिंदी समझते हैं। हिंदी समझने और पढ़ने में कभी-कभी कुछ गलतियाँ होती हैं। उच्चारण भी कभी-कभी गलत होता है। लेकिन गलतियों को ज़रूर सुधारा जा सकता है।

चौथी समस्या यह है कि हमारा मन एक जाल में फँस गया है, जहाँ हम सोचते हैं कि जो व्यक्ति अंग्रेज़ी में बोलता है, वह महान् है। मैं तो अंग्रेज़ी को सौतेली माँ की नज़र से देखती हूँ। हमारी मातृभाषा हिंदी होनी चाहिए। साथ ही, हमें अंग्रेज़ी भी सीखनी है। हम क्यों नहीं दोनों माँओं को मान-सम्मान दें? हमें अपने मन से यह विचार निकालना है कि हिंदी, अंग्रेज़ी से कम है। हमें गर्व होना चाहिए कि हम दोनों भाषाएँ बोल सकते हैं। हमें गर्व होना चाहिए कि 153 सालों के बाद भी दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी सुनाई देती है। हमारे बाप-दादा यहाँ दास बनकर आए थे, उनकी मेहनत और संघर्ष से हमें आज़ादी मिली। अब हमें अपने मन को आज़ाद करना है। अब हम कह सकते हैं कि दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी भाषा जीवित है।

2012 में हिंदी शिक्षा संघ ने भारत सरकार के साथ विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया था। प्रोफ़ेसर सीताराम को पुरस्कार मिला। इसके बाद पूरी दुनिया जान गई कि दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी जीवित है। 2014 में डॉ एम एल गुप्ता ने

हमें वैश्विक मंच पर आमंत्रित किया और हमें सम्मान मिला। 2014 में ही हमें मॉरीशस में अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन में भाग लेने के लिए आमंत्रण भी मिला। 2014 में हिंदी शिक्षा संघ की उपप्रधान प्रोफ़ेसर उषा शुक्ल को सम्मानित किया गया। हिंदी शिक्षा संघ को मैं प्रणाम करती हूँ। इस महान संस्था के लिए जो लोग कार्य कर रहे हैं, भगवान उन्हें धैर्य प्रदान करें, ताकि वे कभी हार न मानें और हमेशा लगन और प्रेम से हिंदी के प्रचार-प्रसार में लगे रहें।

mramballi@yahoo.com

मेरे देश का हिंदी प्रचारक - रोहित कुमार 'हैप्पी'

आरती शर्मा
न्यूज़ीलैंड

आज जब आत्म-प्रचार अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ है और फ़ेसबुक जैसे सामाजिक मंचों पर 'मैं-मैं' करने वालों की भीड़ लगी हुई है, जिससे आज का साहित्यकार भी अछूता नहीं है, ऐसे समय में यदि कोई बिना शोर-शराबा किए, हिंदी की साधना में निर्विघ्न लगा हो, तो अवश्य ही अचरज होता है। हिंदी को अपना पहला प्यार मानने वाले न्यूज़ीलैंड के 'रोहित कुमार 'हैप्पी' बिना शोर-शराबा किए हिंदी की सेवा में एक मौन साधक की भाँति बरसों से लगे हुए हैं। वे प्रतिभा के धनी हैं, लेखक, कवि, पत्रकार और कुशल डिजिटल आर्टिस्ट भी हैं। उन्होंने न्यूज़ीलैंड की मैसी यूनिवर्सिटी से जर्नलिज़्म की शिक्षा प्राप्त की हैं। वे इंवेस्टिगेटिव सर्विसर्ज़, ग्रॉफ़िक्स, प्रिंट मीडिया, वेब डिज़ाइन एंड वेब राइटिंग और ब्रॉडकास्टिंग में प्रशिक्षित हैं। नेट इंवेस्टिगेशन में उन्हें महारत प्राप्त है, जिसका उपयोग वे खोजी पत्रकारिता में करते हैं।

सन् 1992 में रोहित कुमार 'हैप्पी' ने एक सामुदायिक समाचार-पत्र 'द इंडियन टाइम्स' से न्यूज़ीलैंड में हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत की। यह पत्र मूलत: अंग्रेज़ी में प्रकाशित होता था और इसके संपादक फ़िजी के 'आफ़िफ शाह' थे। रोहित कुमार ने संपादक को इस पत्र में कुछ 'हिंदी पन्ने' जोड़ने की सलाह दी। यह विचार संपादक को भा गया। प्रकाशक ने कहा कि ऐसा कर पाना असंभव है। पर हिंदी का साधक रोहित कुमार 'हैप्पी' मायूस नहीं हुए। वे स्वयं प्रकाशक से मिलने गए। लंबी बातचीत के बाद प्रकाशक ने सुझाव दिया कि यदि एक फ़ॉर्मेट में हिंदी में सामग्री तैयार करके दी जाएगी, तो यह संभव हो सकेगा। उस समय हिंदी के फ़ॉन्ट प्रचलित नहीं थे।

सन् 1992 में 'द इंडियन टाइम्स' में कुछ समाचार हस्तलिपि में प्रकाशित होने लगे। फिर कुछ पृष्ठ नियमित रूप से हिंदी हस्तलिपि में प्रकाशित होने शुरू हुए। उसके बाद यह पत्र बेच दिया गया और नये प्रकाशक 'कुअर सिंह' बने। वे भी फ़िजी के ही थे। पत्र आर्थिक तंगी से गुज़र रहा था। स्व० एम सी विनोद भी 'द इंडियन टाइम्स' के साथ जुड़ गए। वे फ़िजी में बरसों तक साप्ताहिक-पत्र 'शान्ति-दूत' के संपादक रहे थे। हिंदी में वे लेखन तो करते ही थे, उनकी हस्तलिपि भी बहुत सुंदर थी। वे उम्र में काफ़ी बड़े थे। हिंदी के प्रति अपने स्नेह के कारण रोहित कुमार से उनका अपार लगाव था। वे उनके काम की हमेशा सराहना किया करते थे। उस समय समाचार-पत्र की टीम में हिंदी पर चर्चा करने वाले केवल ये ही दो सदस्य थे। शेष सदस्यों को हिंदी व साहित्य की इतनी जानकारी नहीं थी।

रोहित के आग्रह पर वयोवृद्ध मास्टर एम सी विनोद पत्र में प्रकाशन के लिए हस्तलिपि में कुछ सामग्री देने लगे। उन्हें सब 'मास्टरजी' बुलाया करते थे। वे गतिविधियों में हिस्सा नहीं लेते थे, परंतु हमेशा अपना समर्थन और मार्गदर्शन प्रदान करते थे। एक दिन रोहित कुमार ने मास्टर जी से पूछा कि यदि यहाँ कवि-सम्मेलन करवाएँ, तो कैसा रहेगा? मास्टर जी ने शायरी का शौक रखने वाले मास्टर नफ़ीस अख्तर से बात करने का सुझाव दिया। मास्टर नफ़ीस अख्तर 'द इंडियन टाइम्स' के लिए लिखा करते थे और अन्य शायरी प्रेमियों के साथ उनके अच्छे संबंध थे। सभी को कवि-सम्मेलन और मुशायरे का प्रस्ताव अच्छा लगा। अगस्त 1992 में एक हॉल किराए पर लेकर 'द इंडियन टाइम्स' के झंडे के नीचे कवि-सम्मेलन और मुशायरा रोहित कुमार 'हैप्पी' की अगुआई में आयोजित हुआ। यह न्यूज़ीलैंड में किया गया पहला कवि-

सम्मेलन व मुशायरा था। हॉल पूरी तरह से भरा हुआ था। कवि-सम्मेलन का संचालन रोहित कुमार 'हैप्पी' ने किया था और मुशायरे का संचालन 'मास्टर नफ़ीस अख्तर' ने संभाला। इस कवि-सम्मेलन की रिपोर्ट 'द इंडियन टाइम्स' और नॉर्वे से निकलने वाली हिंदी पत्रिका 'शांति-दूत' में भी प्रकाशित हुई।

1996 में रोहित कुमार 'हैप्पी' ने हिंदी प्रकाशन 'भारत-दर्शन' आरम्भ किया। 'भारत-दर्शन' का संपादन व प्रकाशन करने से पहले वे न्यूज़ीलैंड में हस्तलिपि में हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत कर चुके थे। पत्रिका दिनोंदिन प्रसिद्ध होने लगी, लेकिन इसके लिए तन, मन और धन के समर्पण की आवश्यकता थी। स्वयं सामग्री एकत्रित करना, संपादन करना, प्रकाशन करवाना और उसके पश्चात् इसे भारतीय दुकानों व संस्थाओं पर वितरित करना कठिन था। वे युवा थे और हिंदी-प्रेम के कारण उनमें अधिक ऊर्जा थी।

उनके दो मित्रों वीरेंद प्रकाश व हिंमाशु शाह ने उनका बहुत सहयोग किया। प्रकाश ऑकलैंड के कई हिस्सों में 'भारत-दर्शन' पत्रिका पहुँचाया करते थे, जबकि हिंमाशु 'साप्ताहिक बाज़ारों' में आते-जाते भारतीयों से यह पूछकर कि क्या वे हिंदी पढ़ते हैं, उसके अनुरूप पत्रिका वितरित करते थे। पत्रिका के घाटे-मुनाफ़े के संबंध में रोहित कुमार कहते हैं - "मैं कोई व्यापारी नहीं, बल्कि लेखक हूँ। फिर पैसे की मुझको इतनी भूख कहाँ है?"

सन् 1996 के शुरुआती दिनों में रोहित कुमार 'हैप्पी' ने न्यूज़ीलैंड की एक लाइब्रेरी में हिंदी पत्र-पत्रिका को खोजने का प्रयास किया। तभी उन्हें 'द हिंदू' के दर्शन हुए, जो अंग्रेज़ी में था। लाइब्रेरियन से पूछने पर पता चला कि इंटरनेट पर 'हिंदी' का कोई प्रकाशन उपलब्ध नहीं है। उसी समय रोहित कुमार 'हैप्पी' भारत-दर्शन को इंटरनेट पर प्रकाशित करने के काम में जुट गए। परिणामस्वरूप 'भारत-दर्शन' इंटरनेट पर प्रकाशित होने लगा। यदि वेब पत्रकारिता की बात की जाए, तो इसमें न्यूज़ीलैंड निवासी और पत्रकार रोहित कुमार 'हैप्पी' ने पूर्णतया व्यक्तिगत तौर पर पहल की।

भारत-दर्शन का पहला इंटरनेट संस्करण दिसंबर-जनवरी (1996-97) में आया। पत्रिका को इंटरनेट पर विश्व की पहली हिंदी साहित्यिक पत्रिका होने का गौरव प्राप्त हुआ और विश्व-भर में फैले हिंदी प्रेमियों ने इस प्रथम संस्करण की सराहना की। वर्तमान में भारत-दर्शन हिंदी न्यू मीडिया में अग्रणी है और सर्वाधिक पढ़ी जाने वाली ऑनलाइन हिंदी पत्रिका है।

स्तरीय पाठ तैयार करना, रचनात्मक अध्यापन प्रणालियाँ विकसित करना, पठन-पाठन की नई पद्धतियाँ और पढ़ाने के नए वैज्ञानिक तरीके खोजना आदि हिंदी के विकास के लिए एक बड़ी चुनौती है। इस दिशा में रोहित कुमार 'हैप्पी' ने इंटरनेट के माध्यम से हिंदी सिखाने की पहल की। उन्होंने ऑनलाइन 'हिंदी टीचर' विकसित किया, जिसके माध्यम से अहिंदी भाषी हिंदी सीख सकें। इसके शिक्षण का माध्यम अंग्रेज़ी रखा गया, ताकि विदेशों में जन्मे बच्चे व विदेशी इसका लाभ उठा सकें। 90 के दशक में इस तरह की तकनीक उपलब्ध करवाना अपने आप में एक उपलब्धि रही।

लोग हिंदी में टंकण कर सकें, इसके लिए रोहित कुमार 'हैप्पी' ने सन् 1997 में 'भारतदर्शन' नाम से एक हिंदी फ़ॉन्ट विकसित किया, जिसे नि:शुल्क वितरित किया गया। हज़ारों की संख्या में लोगों ने इसका उपयोग किया और न्यूज़ीलैंड की अधिकतर सरकारी एजेंसियाँ व अनुवाद कम्पनियाँ इस 'फ़ॉन्ट' का इस्तेमाल कर रही हैं। सन् 1999 में इसका दूसरा संस्करण 1.1 जारी किया गया। यह फ़ॉन्ट उस समय के प्रसिद्ध 'सुषा' फ़ॉन्ट के कुंजीपटल के अनुरूप बेहतर सुविधाएँ प्रदान करता है।

ऑकलैंड में सभी समुदायों के लोगों के साथ रोहित कुमार 'हैप्पी' का घनिष्ठ संबंध है। अगस्त 1997 में उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता दिवस के 'स्वर्ण जयंती समारोह' में सभी भारतीयों को एक मंच प्रदान किया। इससे पहले केवल गुजराती समुदाय ही 'स्वतंत्रता-दिवस' मनाता था और सारा कार्यक्रम गुजराती में आयोजित होता था। सन् 1997 में यह समारोह हिंदी में संपन्न हुआ। इसमें मुख्य अतिथि भारतीय उच्चायुक्त व विशिष्ट अतिथि न्यूज़ीलैंड के रेसरिलेशंस काउंसिलर थे। इस अवसर पर विभिन्न हिंदी सेवियों का सम्मान भी किया गया।

सन् 1998 में 'भारत-दर्शन' के बैनर तले रोहित कुमार 'हैप्पी' ने न्यूजीलैंड के महात्मा गांधी सेंटर में एक गैर-भारतीय

न्यूजीलैंड निवासी के सहयोग से 'दिवाली मेले' का आयोजन आरम्भ किया, जो बाद में इतना प्रसिद्ध हुआ कि ऑकलैंड सिटी काउंसिल ने इसके प्रबंधन की ज़िम्मेवारी स्वयं उठा ली। 'भारत-दर्शन' के इस मेले के आयोजन का ध्येय हिंदी तथा अन्य भाषाओं का प्रचार करना था।

न्यूज़ीलैंड में हिंदी के प्रचार-प्रसार में 'हिंदी रेडियो तराना', 'अपना एफ़ एम', 'प्लैनेट एफ़ एम', 'वेलिंग्टन हिंदी स्कूल' और 'ट्रायंगल टी.वी.' का भी योगदान सराहनीय है, लेकिन जितनी निष्ठा के साथ रोहित कुमार 'हैप्पी' लगे हुए हैं, वे भीड़ से अलग हैं।

भारत-दर्शन के एक संपादकीय में वे कबीर की शैली में आह्वान करते हैं - 'जो घर फूँके आपणा, चले हमारे साथ!' हिंदी के प्रचार में तन, मन, धन सब कुछ न्यौछावर करते हुए कबीर बनना आसान नहीं है?

रोहित कुमार 'हैप्पी' उच्च-स्तरीय लेखन व दुर्लभ हिंदी साहित्य को ऑनलाइन उपलब्ध करवाने का प्रयास कर रहे हैं। वे फ़िजी, ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड के हिंदी साहित्यकारों को लेखन हेतु प्रोत्साहित करते हैं। सन् 2000 में उन्होंने फ़िजी का दौरा किया और वहाँ स्व० डॉ० विवेकानंद शर्मा, जोगिन्द्र सिंह कंवल, नीलम कुमार आदि साहित्यकारों से भेंट की। आजकल वे फ़िजी साहित्यकारों की रचनाओं को संकलित करके प्रकाशित करने की कोशिश कर रहे हैं, ताकि फ़िजी का हिंदी साहित्य विस्तृत पाठक-वर्ग तक पहुँच सके। हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य के विकास हेतु रोहित कुमार 'हैप्पी' का योगदान सराहनीय है।

editor@bharatdarshan.co.nz

सत्य और असत्य

डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव
मेलबर्न, ऑस्ट्रेलिया

कहावत है कि पाप और पुण्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं; अर्थात् एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं है और न उनकी सामाजिक मान्यता। अकेले रहकर दोनों एक निर्गुण अदृश्य छाया की तरह भटकते रहते हैं, उनका सगुण रूप या प्रभाव भी लुप्त रहता है। तब प्रश्न उठता है कि मानव जगत में उनका प्रयोजन क्या है? आज के संदर्भ में देखें, तो 'सत्य और असत्य' के मूर्त रूप को देखने के लिए आशातीत धन-दौलत, बुद्धि, विवेक, तर्क-वितर्क इत्यादि का उपयोग होता है, जिसमें व्यक्ति और सरकारों की असीम भागीदारी होती है। सत्य क्या है? या असत्य क्या है? इसे प्रामाणिक रूप से स्थापित करने के लिए न्यायालयों में वकीलों की कलाबाजियाँ सर्वविदित हैं। जो धन जनता की उन्नति और राष्ट्र के विकास पर व्यय होना चाहिए, वह प्रायः इसी प्रक्रिया में नष्ट हो जाता है। राजनीति के बदलते मूल्यों ने सत्य और असत्य की पहचान को धूमिल कर दिया है, उन्हें तौलने वाला तराज़ू अर्थात् न्यायतंत्र भी कभी-कभी भ्रमित हो जाता है।

एक बार छद्मवेश में सत्य और असत्य दोनों उच्चतम न्यायालय में उपस्थित थे। वे केवल सुन सकते थे, किंतु बोल नहीं सकते थे। उनकी अदृश्य छाया प्रकाश के चंगुल से दूर थी। चूँकि मामला सनसनीखेज था; इसलिए दोनों पक्षों की ओर से नामी वकील बहस कर रहे थे और बड़ी संख्या में अन्य वकील भी मौजूद थे। लम्बी बहस के पश्चात् प्रधान न्यायाधीश ने निर्णय सुनाया, जिसे सुनकर एक पक्ष उत्साहित था और दूसरा पक्ष मायूस। अदालत के बाहर कुछ लोग मिठाई बाँट रहे थे, तो कुछ लोग न्यायालय मुर्दाबाद का नारा लगा रहे थे - यह थी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता अर्थात् 'फ़्रीडम ऑफ़ एक्स्प्रेशन'।

सत्य और असत्य कुछ दूर से यह दृश्य देख रहे थे। उनके माथे पर चिंता की रेखाएँ थीं। वे किसी अज्ञात आकर्षण से एक-दूसरे के करीब आ गए। सत्य ने कहा 'सत्यमेव जयते', किंतु आज मेरी पराजय हुई है। असत्य बोल उठा 'सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयात, न ब्रूयात सत्यं अप्रियं'। इस दार्शनिक विषय की सार्थक विवेचना करना उनके लिए असम्भव था, क्योंकि कोई भी निर्णय किसी संदर्भ विशेष के आलोक में होता है। दोनों ने कहा - "हमें ब्रह्मा के पास चलना चाहिए, वे सृष्टिकर्ता हैं, सर्वज्ञ हैं, हमारा सृजन भी उन्होंने ही किया होगा। हमारा भौतिक

अस्तित्व स्थूल नहीं है, हम अदृश्य हैं, परन्तु मानव की तरह संवेदनशील हैं। वस्तुतः हम दोनों भी पंचतत्व की तरह मानव सृष्टि के अभिन्न आधार हैं।"

कुछ दिनों बाद दोनों ब्रह्मा के दरबार पहुँचे। दरवाज़े पर तैनात द्वारपाल ने उनकी पहचान सुनिश्चित करने के लिए रोका। "हम सत्य और असत्य हैं, अदृश्य हैं और हमारी कोई स्थूल पहचान नहीं है। हम मृत्युलोक से आए हैं और मानव के अस्तित्व के अभिन्न अंग हैं। हम अपने सृजन का रहस्य जानने आए हैं।" थोड़ा सहमते हुए दोनों ने द्वारपाल से पूछा- "हम अदृश्य हैं, फिर भी आपने हमें कैसे देख लिया? अन्यथा हम सीधे ब्रह्मा के दरबार में हाज़िर हो जाते और उनसे अपने मन की बात कह डालते।"

"आप दोनों मृत्युलोक में अदृश्य हैं, किंतु देवलोक में नहीं। ठीक उसी तरह जैसे मृत्युलोक में आत्मा निराकार है, लेकिन ब्रह्मा के सामने नहीं। आपने सुना होगा कि मृत्यु पश्चात् स्वयं यमराज उन्हें यहाँ लेकर आते हैं, ताकि उनके कर्मों का फल निर्धारित हो सके।"

"हम समझ गए। कृपया सहयोग करें, ताकि हमारी यात्रा सफल हो," सत्य और असत्य बोल उठे।

"आप दोनों यहीं रुकें, मैं ब्रह्मा जी को आपके आने की सूचना देता हूँ।"

कुछ देर बाद द्वारपाल ने ब्रह्मा के आदेशानुसार पहले सत्य को उनके दरबार में प्रस्तुत किया और स्वयं बाहर चला गया। केवल सत्य और ब्रह्मा आमने-सामने थे। विनम्रतापूर्वक सत्य ने असत्य के साथ आने का प्रयोजन बताया।

ब्रह्मा ने गम्भीर स्वर में सत्य से कहा - "तुम्हें ज्ञात होगा कि सृष्टि के आरम्भ में समुद्र-मंथन से अमृत और विष दोनों एक साथ निकले थे, जिनके गुण एक-दूसरे के विपरीत थे। यही प्रकृति का नियम है, मानव जीवन की सच्चाई है। सत्य और असत्य का सृजन भी इसी के अनुरूप है। इसी बीच तुम्हें अपना प्रभाव बढ़ाना है, ताकि मानव-जाति में नैतिक मूल्यों का संवर्धन हो और उसके जीवन में छल, कपट और ईर्ष्या पर नियंत्रण हो।"

"यह कैसे सम्भव है, जब मैं अदृश्य और मूकदर्शी हूँ? स्वभाव से दुष्ट अहंकारी व्यक्ति सत्य का दमन करना अपना अधिकार समझता है। मैं अपमानित होकर भी उसका विरोध करने में असमर्थ हूँ।"

थोड़ी देर सोचने के पश्चात् ब्रह्मा ने कहा - "मैं तुम्हें एक श्वेत टोपी देता हूँ, जिसे पहनने पर तुम्हारे मस्तिष्क से निकली तरंगें उस व्यक्ति की सोच को प्रभावित कर सकेंगी और तुम्हारी टोपी भी अदृश्य रहेगी। जब वह व्यक्ति सुसुप्तावस्था में होगा, तब तरंगें अधिक प्रभावी होंगी। बार-बार उसे संदेश सुनाई देगा कि वह असत्य का तिरस्कार करे। कुछ दिनों के प्रयोग से तुम्हारा काम सुलभ हो जाएगा। असत्य को बिल्कुल पराजित करना असम्भव है, लेकिन उस पर अंकुश लगाने में तुम सफल हो सकते हो। व्यक्ति विशेष का चुनाव तुम अपनी बुद्धि से करोगे।"

"जी महाशय, मेरा विनम्र अभिवादन स्वीकार करें। मैं धन्य हुआ।" सत्य की आँखों में खुशी की चमक आ गई।

"तुम मृत्युलोक जा सकते हो, अपने कर्तव्य-पथ पर चलते रहो।"

थोड़ी ही देर में असत्य ने सत्य को ब्रह्मा के दरबार से बाहर निकलते देखा, उसके दिल की धड़कन तेज़ हो गई। वह जानना चाहता था कि ब्रह्मा और सत्य में क्या बात हुई। लेकिन इसी बीच द्वारपाल ने असत्य से निवेदन किया - "ब्रह्मा आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, कृपया शीघ्र चलें।"

"क्या दो-चार मिनट सत्य से बात कर सकता हूँ?"

"इसके लिए समय नहीं है, ब्रह्मा जी को चित्रगुप्त जी से मिलना है।"

असत्य को आते देख ब्रह्मा बोल उठे - "मेरे दरबार में तुम्हारा स्वागत है। यहाँ आने का प्रयोजन? कोई जिज्ञासा?"

"महाराज, सत्य से आप मिल चुके हैं। उसने हम दोनों के आने का प्रयोजन बताया ही होगा।"

"किंतु मैं तुमसे सुनना चाहता हूँ। तुम अपनी बात कहने के लिए स्वतंत्र हो।"

असत्य ने गम्भीरतापूर्वक कहा - "आप संपूर्ण मानव-जाति के सृष्टिकर्ता हैं, जिसमें सत्य और असत्य का निवास होता है। मनुष्य के बिना हम दोनों का कोई अस्तित्व नहीं है। फिर हम दोनों विपरीत गुणों के परिचायक हैं, ऐसा क्यों? एक का आधिपत्य दूसरे का हनन है, ऐसा क्यों? इसका क्या रहस्य

है? मेरी दृष्टि में सत्यवादी और मिथ्यावादी दोनों अहंकार से ग्रसित हैं, कोई कम कोई ज्यादा। पृथ्वीलोक पर तो मानो उनके बीच युद्ध चल रहा है; किसकी कहाँ जीत होगी, इसका अनुमान लगाना कठिन है।"

"मनुष्य के जीवन के अनेक आयाम हैं, जिनमें धर्म-कर्म, शिक्षा-दीक्षा, पूजा-पाठ, पालन-पोषण, स्वाध्याय, चिंतन, अध्यात्म इत्यादि शामिल हैं। इनके संदर्भ में वैचारिक मतभेद होते हैं, जो स्वाभाविक है, परन्तु इसमें तर्क और विवेक की प्रधानता होती है, सत्य और असत्य का टकराव दिखाई नहीं देता है। यदि टकराव है भी, तो वह नगण्य है। फिर दोनों के बीच युद्ध तुम्हें कहाँ दिखाई देता है?" ब्रह्मा के कथन में उनका मूर्त विचार था और एक प्रश्न भी।

असत्य ने संयमित स्वर में कहा - "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अर्थात् सामाजिक व्यवस्था उसके व्यक्तिगत जीवन को संचालित करती है। इसके अपवाद भी हैं, कुछ लोग अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति और कर्मठता के बल पर समाज में प्रचलित अवधारणाओं की अवहेलना कर सकते हैं। लेकिन मैं जिस व्यवस्था की चर्चा कर रहा हूँ वह आज समाज पर हावी है, वह है राजनैतिक व्यवस्था और इससे उत्पन्न आचरण। इसने समाज को टुकड़ों में बाँट दिया है; पदलोभ सर्वोपरि है, नैतिकता और अनैतिकता का मापदंड समाप्त हो गया है। राजनैतिक टकराव वस्तुतः सत्य और असत्य के बीच का झगड़ा हो गया है। प्रजातंत्र के युद्ध में एक ही पक्ष जीतता है, सत्य और असत्य भी इसके भुक्तभोगी हैं। समझ नहीं आता मैं क्या करूँ? क्या सत्य को पराजित करूँ या अपनी पराजय स्वीकार करूँ?"

"तुम्हारा प्रश्न जटिल है। क्या तुम सत्य को पराजित करने के लिए मुझसे कोई वरदान माँगने आए हो? या कोई मंत्रणा? जैसा तुमने कहा कि मैं ही सत्य और असत्य का सृष्टिकर्ता हूँ, दोनों की उत्पत्ति प्रकृति के नियम के अनुकूल है, दोनों अमर हैं। लेकिन सत्य का संवर्धन मेरा धर्म है, यही देवलोक की नीति है। पृथ्वी पर सत्य और असत्य के बीच युद्ध चलता रहता है, जय-पराजय के चक्र से दोनों को गुज़रना पड़ता है। समय बलवान होता है, उसी के अनुसार तुम कोई भी निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र हो।"

"आपके दर्शन हुए, यह सौभाग्य की बात है। मेरा नमन स्वीकार करें।" असत्य ब्रह्मा के दरबार से निकल गया।

बाहर निकलते ही सत्य पूछ बैठा - "क्या बात है? देर हो गई। कुछ चिंतित भी दिखते हो?"

"ब्रह्मा का सामना करना एक मुश्किल कार्य है। उनकी दृष्टि पैनी है, उनकी सोच में उदारता के साथ दृढ़ता भी है।"

"कैसी उदारता? कैसी दृढ़ता? मैं समझा नहीं। क्या तुमने कोई विशेष आग्रह किया था? किसी प्रश्न का सीधा उत्तर माँगा था?"

असत्य ने कोई जवाब नहीं दिया। सत्य ने भी दबाव देना उचित नहीं समझा।

"थोड़ा विश्राम कर लेते हैं। फिर अपने देश की ओर प्रस्थान करेंगे।"

दोनों एक रम्य सुंदर शांतिमय बगीचे में एक वृक्ष की शीतल छाया के नीचे बैठ गए। रमणीक स्थान, सुरभित पुष्पों की मोहकता और मंद पवन के आगोश में दोनों को नींद आ गई। करीब एक पहर के बाद जब उनकी निद्रा खुली, तब उनके सामने एक युवती फलों से भरी थाली और जल से भरा कलश लेकर खड़ी थी। अनायास दोनों बोल उठे - "हे सुंदरी, आप कौन हैं? किसने आपको यहाँ भेजा है?"

"मैं इस बाग की मलिका हूँ। जो कोई इस देवलोक के उद्यान में आता है, उसका स्वागत करना मेरा उतरदायित्व है, यही ब्रह्मा का आदेश है। आप थक गए होंगे, अल्पाहार ग्रहण करें, आपको नई ऊर्जा मिलेगी और आगे की यात्रा भी सहज होगी।"

"क्या तुम जानती हो कि हम दोनों कौन हैं? जानने के पश्चात् शायद तुम्हारा निर्णय बदल जाए।"

"नहीं, और मैं जानना भी नहीं चाहती। यहाँ कोई भेदभाव या पक्षपात नहीं किया जाता है।"

सत्य और असत्य ने अल्पाहार ग्रहण किया। फलों का स्वाद अद्‌भुत था, स्वच्छ जल स्फूर्तिदायक था। युवती को धन्यवाद देने के पश्चात् दोनों पृथ्वीलोक की ओर चल पड़े।

थोड़ी देर में असत्य ने सत्य से पूछा - "ब्रह्मा से तुम्हारी क्या बात हुई? कोई खास बात या सुझाव?"

सत्य का स्वभाव था - सच्चाई का पालन करना, आज

भी उसने वही कर्तव्य निभाया। उसने ब्रह्मा से हुई चर्चा का संक्षिप्त विवरण कर डाला, जिसमें उनके द्वारा दी हुई 'टोपी' और इसके सम्भावित प्रभाव की जानकारी शामिल थी।

"मुझे आश्चर्य है कि ब्रह्मा ने तुम्हें मुझे पराजित करने का एक शस्त्र दे दिया है" - असत्य ने क्रोधपूर्ण स्वर में कहा।

"मैं इसका प्रयोग असाधारण अवस्था में ही करूँगा, तुम आश्वस्त रहो।"

असत्य ने बात आगे नहीं बढ़ाई, उसके दिमाग के भीतर एक द्वंद्व चल रहा था – वह इस शस्त्र के प्रभाव को निरस्त करने की युक्ति खोज रहा था। इसी बीच उसे प्रसिद्ध विद्वान मार्क ट्वेन (Mark Twain) का कथन याद आया - "असत्य आधी दुनिया का चक्कर लगा सकता है, जब तक सत्य अपने जूते पहन रहा है।" वह मन-ही-मन मुस्कुरा उठा, जनता के बीच उसकी पैठ आसान होगी।

दोनों अब पृथ्वी पर पहुँचने वाले थे। असत्य ने सुझाव दिया कि उन्हें जनता के बीच जाने से पहले गंगा नदी में स्नान करना चाहिए, ताकि वे किसी भी प्रदूषण के दुष्प्रभाव से मुक्त हो जाएँ। गंगा का स्वच्छ शीतल जल सुखदायी होता है और ग्राह्य भी। सत्य ने हामी भर दी, मुझे स्वीकार है। "मान्यता के अनुसार हरिद्वार में गंगा का जल पवित्र होता है, उसमें स्नान करना एक शुभ कार्य करने के समान है। वह स्थान उपयुक्त होगा, वहाँ के वन-उपवन में देवता निवास करते हैं।"

शीघ्र ही वे गंगा के किनारे पहुँच गए। स्थान मनोरम था और उनके अतिरिक्त वहाँ कोई नहीं था। पहले असत्य ने अपना वस्त्र उतारकर किनारे रख दिया और वह गंगा की धारा में प्रवेश कर गया। सत्य को वस्त्र की निगरानी करने की ज़िम्मेदारी दी गयी। फिर बार-बार जल में डुबकी लगाकर स्नान करने के पश्चात् प्रसन्नचित होकर असत्य बाहर निकल आया। "गंगा में स्नान करने से पूरी थकावट दूर हो गई, अब तुम्हारी बारी है।"

सत्य ने भी वैसा ही किया। उसने अपने वस्त्र उतारकर किनारे पर रख दिए, जिसमें ब्रह्मा प्रदत्त टोपी भी थी। गंगा की पारदर्शी पावन धारा में उसने देर तक स्नान किया और मंत्रोच्चारण भी किया। जब वह बाहर निकला तब असत्य लापता था और उसकी टोपी भी गायब थी ! उसने इधर-उधर देखा, आवाज़ भी दी, लेकिन असत्य का कहीं पता नहीं था। असत्य चालाकी से उसकी टोपी चुराकर भाग गया था। सत्य अपनी सद्भावना पर पश्चाताप करते हुए धीरे-धीरे चल पड़ा।

आज असत्य स्वतंत्र है, निर्भीक है और तीव्र गति से समाज में फैल रहा है, जबकि सत्य पंगु हो गया है!

kkps1944@gmail.com

इनलांसो में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन

बीएट्रिस स्टाइनवाल
स्वीडन

मेरे देश स्वीडन में सिर्फ़ एक विश्वविद्यालय है, जहाँ हिंदी की पढ़ाई होती है। इसका नाम उप्साला विश्वविद्यालय है। चौथे सेमेस्टर में उप्साला विश्वविद्यालय के छात्र एक विकल्प का चुनाव कर सकते हैं, जिसके अनुसार वे एक सेमेस्टर के लिए भारत जाकर हिंदी की पढ़ाई कर पाते हैं। भारत में छात्र 'इनलांसो' नामक एक हिंदी भाषा संस्थान में पढ़ते हैं।

इनलांसो में हिंदी पाठ्यक्रम उपसाला विश्वविद्यालय की आवश्यकताओं के अनुसार तैयार किया जाता है। यहाँ हिंदी का अध्ययन तीन स्तरों पर होता है। शुरुआती स्तर नौसिखियों के लिए है। एक मध्यवर्ती स्तर है और एक अग्रवर्ती स्तर है। सभी स्तरों में छात्र हिंदी के व्याकरण और उच्चारण सीखते हैं। मध्यवर्ती और अग्रवर्ती स्तरों पर छात्र प्रवाह के साथ बोलचाल का अभ्यास करते हैं और मुहावरे का प्रयोग करना सीखते हैं। वे हिंदी अखबार पढ़ते हैं और लेखन का भी अभ्यास करते हैं। हिंदी साहित्य के अंतर्गत छात्र उपन्यास और कहानियाँ पढ़ते हैं। इनलांसो हिंदी संस्था वाराणसी में है, जहाँ छात्रों के लिए हर हफ़्ते 20 घंटे की हिंदी शिक्षा और अभ्यास घर के बाहर करना होता है।

इनलांसो के अकादमिक नेता डॉ. मीरिया मलिक है, जो भारत में नॉर्दिक केंद्र की निदेशक हैं। वे स्टॉकहोम, उपसाला और आर्हुस विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ा चुकी हैं। सन् 2011 में उन्होंने भारत में सेंटर फ़ोर स्टडी ऑफ़ इंडियन लैंग्वेज एण्ड

सोसायटी की स्थापना की।

इनलांसो एक अच्छी संस्था है, क्योंकि उसकी बुनियाद में अनेकता में एकता है और वहाँ भारतीय संस्कृति और समाज का अध्ययन किया जाता है। छात्र अलग-अलग विषयों का अध्ययन करते हैं। भारतीय समाज में जाति, वर्ग, धर्म, राजनीति आदि के अनेक रूप देखे जाते हैं। इनलांसो में संस्कृति की विविधता के साथ आपसी सद्भावना पर बल दिया जाता है। संस्थान सभी धर्मों के बारे में बिना पक्षपात के शिक्षा देती है।

इनलांसो में काम करने वाले अध्यापक अलग धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के हैं। भारत की विविधता से छात्रों को परिचित कराने के लिए अलग-अलग पृष्ठभूमि के प्राध्यापकों को इनलांसो में नियुक्त किया जाता है। उनके व्याख्यान भारतीय दर्शन, इतिहास, जातिभेद, नारीवाद आदि अनेक विषयों पर आधारित होते हैं। कभी-कभी दलित लोग और अल्पसंख्यक समूहों के लोग भी व्याख्यान देते हैं। यह नया प्रयोग है।

इनलांसो में न केवल सर्वधर्मसम्भाव को महत्त्व दिया जाता है, बल्कि भारतीय भाषाओं को सीखने का प्रोत्साहन भी दिया जाता है। छात्र भाषाओं के माध्यम से भारतीय समाज को समझते हैं। इनलांसो में पढ़ने वाले विद्यार्थी हिंदी में साक्षात्कार लेते हैं। जो विषय कक्षा में पढ़ाया जाता है, कक्षा के बाहर उन्हीं विषयों से संबंधित साक्षात्कार समाज के लोगों से लिया जाता है। इनलांसो के पाठ्यक्रम के अनुरूप साक्षात्कार के कुछ विषय इस प्रकार हैं - रिक्शा चालकों के साथ बातचीत, बाज़ार के लोगों से वार्तालाप आदि। विद्यार्थी सभी धर्मों के उत्सवों में शामिल होते हैं। दीवाली, दुर्गा पूजा, महाशिवरात्रि, रामनवमी आदि पर्वों से छात्रों को परिचित कराया जाता है। ईद, मुहर्रम, क्रिस्मस, बुद्ध जयंती आदि उत्सव मनाने के लिए छात्र भारतीयों के साथ घुल-मिल जाते हैं। इसके अलावा भारत का राष्ट्रीय दिवस, गणतंत्र दिवस एवं महात्मा गांधी की जयंती आदि समारोहों में वे सम्मिलित होते हैं। महत्त्वपूर्ण है कि साधारण लोगों से बात की जाए, क्योंकि वे लोग एक अलग तरीके से समाज की ऐसी महत्त्वपूर्ण जानकारी देते हैं, जो पुस्तकों में नहीं मिलती है।

इनलांसो में हिंदी की पढ़ाई केवल हिंदुओं द्वारा नहीं, बल्कि अन्य सभी धर्मों के लोगों द्वारा की जाती है। विद्यार्थी अलग-अलग सामाजिक मुद्दों पर फ़िल्ड वर्क करते हैं। गाँव के जीवन से परिचित होने के लिए छात्र गाँवों में भी जाते हैं।

शुरुआत में इस पाठ्यक्रम के अंतर्गत हिंदी सीखना आसान होता है, लेकिन जैसे-जैसे अध्ययन आगे बढ़ता है, कार्य अधिक कठिन हो जाता है। अर्थात् शुरुआत में साक्षात्कार आसान लगता है, लेकिन बाद में जटिल हो जाता है। उपसाला विश्वविद्यालय और इनलांसो के बीच में एक समझौता है, जो स्वीडिश लोगों को इनलांसो में हिंदी का अध्ययन करने का अवसर देता है।

आज स्वीडन, नॉर्वे, डेनमार्क और जर्मनी से छात्र इनलांसो में हिंदी पढ़ते हैं। भविष्य में बंगाल, गुजरात और नेपाल में नेपाली, गुजराती और बंगाली की पढ़ाई के लिए इनलांसो के कार्यक्रम का विस्तार किया जाएगा। भूमण्डलीकरण के युग में जहाँ हिंदी एक महत्त्वपूर्ण भाषा बन रही है, वहाँ यूरोप के छात्र इनलांसो, वाराणसी, भारत से हिंदी का अध्ययन करने के सुनहले अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाते रहेंगे।

beatrice.steinvall@gmail.com

नवजात, नियति और यथार्थ

डॉ. महेश कुमार मिश्र

भारत

स्मृति के पन्नों को पलट-पलटकर देखने पर ऐसी कई यादें सामने आ जाती हैं, जिनको कागज़ पर उतारने की इच्छा होती है। पत्रकारिता के पेशे से मेरा जुड़ाव रहा है। भारत के एक बड़े-से चैनल में पत्रकारिता के क्षेत्र में अनगिनत सच्ची कहानियों से जुड़ने का अवसर प्राप्त हुआ, जिससे एक व्यक्ति के रूप में मेरे भीतर कई परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों ने मुझे प्रकृति की दशा और समय की महत्ता को भी समझने में सहायता की। समय विधाता का एक ऐसा अस्त्र है, जो आपके सभी प्रश्नों का उत्तर दे सकता है। पद, पदार्थ और प्रतिष्ठा जीवन के तीन बहुमूल्य तत्व हैं, जिन्हें हर व्यक्ति पाने की अभिलाषा करता है। विधाता प्रकृति को अपने विधान से बाँधे रखता है और यही विधान व्यक्ति की नियति तय करता है।

आपको लग सकता है कि इस दार्शनिक अंदाज़ में लेखक आखिर कहना क्या चाहता है? नियति और विधान के खेल के दिलचस्प संयोग का विवरण मैं इस संस्मरण में प्रस्तुत कर रहा हूँ। बात 2006 के आस-पास की है, जब आज की तरह सूचना-क्रांति नहीं थी। मैं चैनल की ओर से प्रदेश के एक बहुत बड़े नेता की रैली को कवर करने के लिए उत्तर प्रदेश की राजधानी, लखनऊ में मौजूद था। मेरे साथ चैनल के कई अन्य सहयोगी भी इस बात से परेशान थे कि लिखे-लिखाए भाषण को सुनने के लिए जनता क्यों पागलों-सा व्यवहार करने लगती है। रिपोर्टिंग के दौरान रैली के कई ऐसे पहलू सामने आए, जो पत्रकारिता की किताबों में नहीं लिखे होते हैं।

खैर, यह घटना उन नेता जी की नहीं, बल्कि वहाँ से लगभग 70 किलोमीटर दूर स्थित सीतापुर की है। सीतापुर, जो नैमिषारण्य के लिए प्रसिद्ध है। मुझे एक लीड मिली कि सीतापुर में एक मज़दूर का बच्चा चोरी हो गया है। पहली नज़र में इस खबर की कोई अहमियत नहीं लगी, क्योंकि हमारे देश में कामगार की हालत अक्सर सिर्फ़ वोट लेने के समय ही सुधरती दिखाई देती है। इस समय मेरी प्राथमिकता रैली वाले नेता जी का साक्षात्कार और बाइट लेना था। इसी बीच मुझे सीतापुर से जुड़े स्थानीय पत्रकार महोदय का फ़ोन आता है और वे सलाह देते हैं कि यह खबर कवर करनी चाहिए, क्योंकि यह मामला कभी भी बड़ा रूप धारण कर सकता है। एक मज़दूर के नवजात बच्चे का चोरी होना, न कभी देश का सबसे बड़ा मुद्दा बना है और न ही कभी बनेगा। लखनऊ में नेता जी के आश्वासनों की चाशनी खत्म हो गई, तो मैं न चाहते हुए भी सीतापुर के स्थानीय थाना इंचार्ज को फ़ोन कर घटना के सम्बन्ध में सतही तौर पर जानकारी लेना चाहता था। मुझे आश्चर्य इस बात का हुआ कि थाना इंचार्ज ने घटना के सम्बन्ध में जानकारी की तो बात कही, लेकिन किसी भी तरह की रिपोर्ट दर्ज करने के बारे में कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिया। हमारे पेशे से जुड़े लोगों को मालूम है कि सरकारी व्यवस्था को सुधारा नहीं जा सकता, लेकिन व्यवस्था को उसके नियमों के अनुसार काम करवाने का दबाव ज़रूर बनाया जा सकता है। थाना इंचार्ज ने जब मेरे फ़ोन पर एफ़आईआर के दबाव के बावजूद कोई कार्य नहीं किया, तब यह खबर मेरे लिए एक बड़ी लीड का रूप लेने लगा। सीतापुर पहुँचकर मैं थाना इंचार्ज से मिला, तो मेरे मन में यह द्वंद खड़ा हुआ कि इस खबर को लोगों तक पहुँचाऊँ या फिर विधाता के विधान पर उस नवजात की नियति छोड़ दूँ।

दो दिनों में घटित यह सच्ची घटना, जो कभी खबर का रूप नहीं ले सकी, एक कंस्ट्रक्शन साइट से शुरू हुई थी। सीतापुर की कंस्ट्रक्शन साइट पर अन्य कई कामगारों की तरह एक दंपति भी दिहाड़ी पर काम करता था। पत्नी कच्ची ईंटों से बने घर में मज़दूर पति की देख-रेख करती थी। उसके प्रसव के दिन निकट थे, लेकिन वह चाहती थी कि पति की दिहाड़ी में किसी भी प्रकार का व्यवधान न आए। इसीलिए उस मज़दूर स्त्री ने अपने पहले बच्चे के लिए कोई खास तैयारी नहीं की। अचानक उठी प्रसव पीड़ा से वह सुध-बुध खो बैठी। इस बीच नियति और यथार्थ के संयोग से एक स्वस्थ बच्चे का जन्म हुआ। बच्चे के रूदन पर किसी का ध्यान नहीं गया, क्योंकि आस-पास के स्त्री-पुरुष दिहाड़ी के काम में काफ़ी व्यस्त थे और उन्हें यह दिन भी एक सामान्य दिन जैसा ही लग रहा था। बच्चे के रोने की आवाज़ सुनकर,

सड़कों पर भटकने वाली एक 45 साल की मानसिक रूप से असंतुलित महिला उस जगह पर पहुँच जाती है और उस बच्चे को उठाकर अपने साथ ले जाती है।

सड़कों पर घूमते हुए वह महिला चिल्लाती-फिरती है - "मेरा बच्चा है, मेरा बच्चा है।" आस-पास में पहले किसी को मालूम नहीं चलता, क्योंकि नवजात की आवाज़ उतनी तेज़ नहीं होती। लेकिन उस बच्चे की किस्मत कहें कि सड़क पर एक मोटरसाइकिल सवार को वह नवजात दिख जाता है और वह उस महिला को वहीं रोककर उससे पूछताछ करने लगता है।

पागल औरत कुछ नहीं बताती है। बच्चे की गर्भनाल और स्थिति देखकर मोटरसाइकिल सवार तुरंत पुलिस को फ़ोन कर देता है। इधर पुलिस सीतापुर से जुड़ी एक बाल-संरक्षण संस्था को फ़ोन कर देती है। मौके पर पहुँचकर पुलिस पगली और आस-पास के लोगों से बच्चे को लेकर पूछताछ करती है, लेकिन उसे कुछ नहीं मालूम चलता और उस नवजात को स्थानीय बच्चों की संस्था के सुपुर्द कर दिया जाता है। उधर, मज़दूर माँ को जब होश आता है, तब वह जैसे-तैसे अपनी स्थिति के बारे में लोगों को बताती है। उसके पति और अन्य लोग बच्चे को ढूँढने के लिए निकलते हैं, जहाँ उन्हें पता चलता है कि बच्चा एक पागल स्त्री के पास था, जिसे पुलिस ने पकड़ लिया है।

पति अपने बच्चे को देखने के लिए तड़प रहा होता है। थाना इंचार्ज, संस्था से जुड़े लोगों को फ़ोन करके निर्देश देता है कि नवजात को उसके मज़दूर पिता को वापस कर दें। यह जानकर थाना इंचार्ज को संदेह भी होता है कि उसकी जानकारी के बिना बच्चे को लखनऊ भेज दिया गया है। गरीब मज़दूर के आँसूओं को देखकर थाना इंचार्ज पसीज जाते हैं और संस्था के सदस्यों पर सख्ती करते हुए उनसे लखनऊ की उस स्थान का पता पूछते हैं, जहाँ बच्चे को भेजा गया।

जब गरीब मज़दूर अपने बच्चे को लेने उस जगह पहुँचता है, तब उसे नियति का एक ऐसा विचित्र संयोग देखने को मिलता है, जिसे हम जैसे लोगों को भी पूरे जीवन में एक-आधा बार ही सुना-देखा होगा। फ़िल्मी कहानी-सी प्रतीत होने वाली यह घटना उस समय और विचित्र हो जाती है, जब मज़दूर बाप को यह पता चलता है कि उसका बेटा राजस्थान के एक मारवाड़ी परिवार को गोद दे दिया गया है, जो बच्चे को लेकर शाम की फ़्लाइट से जयपुर निकल भी चुके थे।

थाना इंचार्ज संस्था के सदस्यों को डाँटते-धमकाते हैं। लेकिन इस व्यवस्था की विडंबना यह थी कि इस घटना-क्रम का कोई भी साक्षी नहीं था। सीतापुर की संस्था ने कागज़ पर उस बच्चे का नाम नहीं लिखा, पुलिस ने अस्पताल वगैरह में पता करवाकर अपने रजिस्टर में कोई शिकायत दर्ज नहीं की। लखनऊ की संस्था ने एक लावारिस बच्चे को एक अमीर परिवार में कागज़ी खानापूर्ति के साथ गोद दे दिया।

उस मज़दूर और उसकी पत्नी की स्थिति दयनीय थी। मैं थाना इंचार्ज के साथ उसके ईंट-भट्टे तक गया और उनसे बात करने की कोशिश की। थाना इंचार्ज ने उस गरीब को कानूनी प्रक्रिया और कोर्ट कचहरी के बारे में समझाया। लेकिन अंत में कहे गए कुछ शब्दों ने मेरी मनःस्थिति को ऐसे कचोटा कि मैं खुद को भी व्यवस्था-क्रम का हिस्सा मानने लगा। थाना इंचार्ज ने मज़दूर से कहा - "तुम चाहे जितने भी जतन कर लो, इस मामले में अंततः कोर्ट ही अपना फ़ैसला देगी। यह मामला 3-4 साल या उससे ज्यादा भी चल सकता है। मैंने उस परिवार के बारे में पता किया है और वह काफ़ी समृद्ध है, लेकिन तुम खुद सोचो, इन भैया लोगों की वजह से अगर तुम्हें तुम्हारा बेटा मिल भी जाता है, तो क्या तुम उसको वह सब दे पाओगे? एक बहुत बड़ा प्रश्न चिह्न, जिसने मुझे भी भीतर तक निरूत्तर कर दिया।

मज़दूर की वह दयनीय स्थिति आज भी मेरे मन-मस्तिष्क में स्थायी रूप से अंकित है। विधाता ने नियति का एक ऐसा खेल रचा है कि वह एक ही दिन में किसी को राजा तो किसी को रंक बना सकता है। इस संस्मरण को मैं किसी निष्कर्ष तक नहीं पहुँचा रहा, बल्कि आप सभी को एक सत्य घटना की स्थिति से अवगत करा रहा हूँ, ताकि आप भी समझ सकें कि भविष्य की स्याही आपके हाथ में नहीं, बल्कि प्रकृति के निर्माता के पास ही है। आप सिर्फ़ इतने सबल होते हैं कि मेरी तरह भूत को सादे पन्ने में पिरोकर आपके समक्ष प्रस्तुत कर यथार्थ के नए आयामों को खोल सकें।

वह मुझे जीने की वजह दे गई

श्रीमती शशि पुर्वर
भारत

बात बरसों पुरानी है। उस समय मैं 11वीं कक्षा में पढ़ती थी। मेरा दाखिला एक नई पाठशाला में हुआ। कक्षा में नई होने के कारण मैं अक्सर इंटरवल में अकेले ही टिफ़िन खाती थी। उस समय कक्षा में हम दो-तीन ही लड़कियों ने एडमिशन लिया था। पुराने लोगों की पहचान नहीं थी और अक्सर नए छात्र ही आपस में जुड़ने का प्रयास करते हैं। उनमें से एक सुनीता नाम की लड़की थी, जो बहुत सुंदर थी। उसके चेहरे पर एक अलग ही चमक रहती थी। हम अक्सर एक-दूसरे को देखते रहते और न जाने कैसा आकर्षण था कि एक मुस्कुराहट के साथ हमारी बातों और नोट्स का भी आदान-प्रदान होने लगा।

मैं बहुत खुश थी कि कोई तो मेरी सहेली बनी, जिसके साथ मैं स्कूल में रह सकती थी। मैं उस समय अपने आप को बहुत अकेली महसूस करती थी। इसकी वजह यह थी कि मैं खुद से लड़ रही थी। दिल की एक बीमारी ने मुझे उम्र से पहले ही थोड़ा गंभीर बना दिया था। मैं जीवन में बहुत कुछ करना चाहती थी, लेकिन खुद को 'बेचारी' कहलाना पसंद नहीं था। इसीलिए यह बात मैंने सबसे छुपाकर रखी थी। मुझे पेनिसिलिन की इंजेक्शन दे जाते थे और इमरजेंसी के लिए एक दवा हमेशा मेरे पास रहती थी। जब भी मेरी साँस उखड़ने लगे, तो मैं उसे तुरंत मुँह में रख लेती थी। मैंने महसूस किया कि थोड़ी-सी उदासी भी मेरी साँसों में बाधा डाल सकती है, इसीलिए अपनी इच्छा-शक्ति से स्वयं को खुश रखने की कोशिश करती थी, जिससे दवा न लेनी पड़े और शरीर में सकारात्मक हार्मोन बना रहे। सामान्य जीवन जीने का यही एक तरीका था।

मैं हँसते-बोलते अपनी ज़िंदगी के पलों को जी रही थी। एक दिन सुनीता ने अचानक कहा -

"क्या बात है शशि? तुम हमेशा मुस्कुराती रहती हो, लेकिन फिर भी तुम्हारी आँखों में एक उदासी क्यों नज़र आती है?"

"नहीं सुनीता ऐसी कोई बात नहीं है।"

"तुम मुझे बता सकती हो, मुझे अपना ही समझो।"

और मैंने हँसते हुए उसे गले से लगा लिया -

"ऐसी कोई बात नहीं है सुनीता। छोटी-सी ज़िंदगी है, इसमें उदास होने की वजह नहीं है। हमें तो बस हँसते हुए जीवन को जीना है।"

"हाँ सही बात है। अब तो ज़िंदगी जीने की वजह तुम ही तो हो, मेरी जान", मदहोशी से कहते हुए खिलखिलाकर हँस पड़ी और उसका चेहरा गुलाबी हो गया। उसके चेहरे की चमक मुझे आसक्त कर गई।

यहाँ से हमारी दोस्ती मुझे कुछ गहराती हुई नज़र आई, लेकिन शायद ज़िंदगी को कुछ और ही मंज़ूर था। एक दो-महीने बाद वह अचानक स्कूल से बहुत छुट्टी लेने लगी और जब भी स्कूल आती, वह हमसे हमारे नोट्स लेकर जाती। हम उसकी मदद भी करते थे। इस तरह अध्ययन जारी था। उसने किसी को अपनी बीमारी के बारे में नहीं बताया और हमें पता भी नहीं था कि उसे बार-बार बुखार क्यों लग रहा है। डॉक्टर ने उसे आराम करने की सलाह दी। वह धीरे-धीरे कमज़ोर हो रही थी और उसके चेहरे पर थकान और पीलापन साफ़ नज़र आता था। मैंने उससे पूछा -

"सुनीता क्या हुआ? बहुत दिनों बाद आई हो?"

"कुछ नहीं तबीयत ठीक नहीं थी, बार-बार बुखार आ रहा है।"

"अच्छा अपना ख्याल रखना, जल्दी ठीक हो जाओगी।"

"पता नहीं क्यों बार-बार कमज़ोरी आ जाती है। शशि, क्या तुम मुझे अपने नोट्स दोगी?"

"हाँ, दूँगी। चिंता मत करो।"

फिर उसने स्कूल आना बंद कर दिया। उसने स्कूल से परमिशन ली है, वह सीधे परीक्षा देने आएगी। उसका नहीं आना मेरे मन के कोने को रिक्त कर रहा था और मैं फिर से अपने में खोई हुई रहने लगी। परीक्षाएँ नज़दीक थीं, इसीलिए हम सभी अपनी-अपनी तैयारियों में लग गए। मैं फिर से अपने कोने में सिमट गई। मैंने भी ज्यादा पूछना उचित नहीं

समझा। यदि वह अपने बारे में बताना नहीं चाहती है, तो हम क्यों ज़बरदस्ती करें? आखिर वह उसकी ज़िंदगी है। फिर नई-नई दोस्ती भी करनी पड़ती है। फिर चाहे किसी को पसंद आता है, या नहीं। कभी-कभी मैं उसे बहुत शिद्दत से याद करती थी और उसकी फ़िक्र भी होती थी। पता नहीं उसे क्या हुआ? उसने किसी को भी अपने घर का पता नहीं बताया था।

परीक्षा से ठीक एक दिन पहले, अचानक वह रात को मेरे यहाँ अपने पापा के साथ आ गई थी। उसके सिर पर स्कार्फ़ बँधा था और उसने मोटी-सी शॉल भी लपेटी हुई थी। उसे देखकर मुझे समझ नहीं आया। इतनी ठंड तो नहीं थी, ऐसे में मुझे चिंता भी हुई कि पता नहीं ऐसी क्या बीमारी है। वह बताती भी नहीं, लेकिन उसे देखकर मुझे अच्छा लगा। वह चुपचाप आकर कुर्सी पर बैठी और अपनी साँसों को नियंत्रित कर रही थी। उसके पापा ने उसे पानी पिलाया और बोले - "तुमसे मिलना चाह रही थी। तुम्हारा पता नहीं था इसीलिए कॉलोनी में हम तुम्हें ढूँढते हुए यहाँ आ गए। क्या तुम इसकी थोड़ी मदद कर दोगी, स्कूल नहीं आने के कारण इसका बहुत नुकसान हुआ है।"

"हाँ, अंकल, चिंता ना करें। सुनीता, कैसी हो? क्या हुआ तुम्हें?"

"कुछ नहीं, बहुत थकान हो रही है और ठंड भी लग रही है। शशि, मुझे तुम्हारी मदद चाहिए। मैं स्कूल तो नहीं आई थी, क्या तुम मुझे कुछ विषय समझा सकती हो?"

मैंने कहा - "हाँ, चिंता मत कर, मैं तुम्हें पढ़ा दूँगी।"

हर पेपर से पहले वह मेरे पास आती और मैं उसे उन विषयों को समझा देती थी। वह लगभग एक घंटे रुकती, फिर चली जाती, लेकिन इस एक घंटे में वह बोलती नहीं थी, सिर्फ़ सुनती थी। परीक्षा समाप्त होने के बाद वह मेरे पास नहीं आई। मुझे उसकी फ़िक्र होती थी, लेकिन उसका घर मुझे पता नहीं था। मैंने सोचा, वह ठीक हो जाएगी, फिर उससे मिल लेंगे। कुछ दिनों बाद अचानक रात को 10:00 बजे घर की घंटी बजी। हम सब परेशान थे कि इतनी रात को कौन आया होगा? पापा ने दरवाज़ा खोला और आवाज़ दी - "बेटा, सुनीता तुमसे मिलने आई है।" मैं दौड़कर बाहर निकली। वह बाहर हॉल में कुर्सी पर बैठी हाँफ़ रही थी। चेहरा पीला पड़ गया था। उसके पापा ने उसे जूस पिलाया। थोड़ी देर बैठने के बाद वह जब संयमित हुई, तब जान में जान आई। उनके पापा बोले कि यह आज तुमसे मिलने की ज़िद कर रही थी, इसीलिए हम उसे अभी लेकर आए हैं। हम इसकी हर इच्छा पूरी करना चाहते हैं। बेटा, इसके पास समय कम है। मेरा कलेजा मुँह को आ गया। मैं चिंतित हो गई। मैंने कहा - "सुनीता, तुम्हें क्या हो गया? तुम ठीक हो जाओगी, चिंता मत करो।"

तभी मेरी बात काटकर वह बोली -

"अब ठीक नहीं हो सकती। मेरे पास समय नहीं है। मुझे ब्लड कैंसर है। और मैं अब अपनी आखिरी स्टेज पर हूँ। घर में पड़े-पड़े अच्छा नहीं लगता, इसीलिए तुमसे मिलने आ गई। मेरी तो और कोई सहेली भी नहीं है। हर 3 दिन में मुझे खून दिया जा रहा है। तुमने मेरी बहुत मदद की है, इसीलिए परीक्षाएँ भी ठीक से दे सकी। तुम बहुत अच्छी हो।"

मैं जड़ हो गई थी। हृदय में जैसे शीशा पिघल रहा था। उसकी पीड़ा और वेदना मुझसे सहन नहीं हो रही थी। उसकी आँखें बहुत कुछ कह रही थी। उसने कसके मेरा हाथ थाम रखा था और बोल रही थी -

"मुझे जीना है। मैं मरना नहीं चाहती। मैं अपने मम्मी-पापा के सामने रो भी नहीं सकती, कारण कि जब वे मुझे याद करें, तो हँसता हुआ चेहरा ही उन्हें नज़र आए।"

वह मेरे हाथों को थामे हुए धीरे-धीरे बोल रही थी। मैंने कहा -

"सुनीता, प्लीज़ शांत हो जा। सब ठीक हो जाएगा।"

"शशि, मुझे पता है कि तुझे दिल की बीमारी है।"

अब मेरी चौंकने की बारी थी। मेरी प्रश्नवाचक निगाहों को देखकर उसने कहा -

"मैंने तेरी दवा देख ली थी। तूने कभी बताया नहीं, लेकिन तेरी ज़िदादिली ने मुझे हौसला दिया है। मैं भी जीना चाहती हूँ...." वह मुझसे लिपटकर रोने लगी।

मैंने कहा - "मैं तेरे पास रोज़ हो आऊँगी, तुझसे रोज़ मिलूँगी।"

"नहीं शशि, मैं नहीं चाहती कि कोई मुझे इस हाल में देखे। मुझे जब ठीक लगेगा खुद ही आकर मिलूँगी। तुमने

मुझे बहुत प्यार दिया है।" यह कहते हुए उसकी आँखों से आँसू अविरल बहने लगे। उसकी आवाज़ मुझे अंदर तक कम्पित कर रही थी। इन 10 मिनट में इतना कुछ घटित हुआ कि मेरी चेतना शून्य हो गई, फिर उसके पापा उसे धीरे से उठाकर ले गए और मैं बस में जाते हुए अंधेरे में उसकी परछाई देख रही थी...

मैं रात भर सो न सकी। उसके लिए प्रार्थना करती रही कि वह जल्दी ठीक हो जाए, हालाँकि जानती थी कि ब्लड कैंसर का उस वक्त कोई इलाज नहीं था। फिर भी हिम्मत नहीं हारना चाहती थी। रोज़ ईश्वर से प्रार्थना करती कि कुछ चमत्कार हो जाए। आठवें दिन अचानक रात को जो घटित हुआ, वह अकल्पनीय था। मुँह पर कपड़ा बाँधकर शॉल में लिपटी हुई सुनीता मेरे सामने खड़ी थी। उसकी आँखों के आसपास कालिमा नज़र आ रही थी, लेकिन आँखों में वही चमक थी। मैंने दौड़कर उसे पकड़ लिया और वहीं बाहर बरामदे में कुर्सी पर बैठाया। उसके पापा की आँखें नम थीं। यह अकेले में तुमसे मिलना चाहती थी। अब पता नहीं किसके पास कितना समय है। मैंने उसका हाथ अपने हाथों में लिया। बड़ी मुश्किल से उसने कहा - "शशि, मैं मरना नहीं चाहती। मेरे पास वक्त नहीं है, मैं कुछ कर नहीं सकी, तुझे जीना है मैं समझूँगी मैंने जिया।" मैं निःशब्द हो गई। दिल चीख रहा था कि कैसे इसे बचा लूँ। काश मेरे पास जादू की छड़ी होती, तो मैं घुमाकर उसे जल्दी से ठीक कर देती, उसके चेहरे पर मुस्कुराहट भर देती।

मैं उसके हाथों की गर्माहट को महसूस कर रही थी, जो जीना चाहती थी। उसके आँसू मेरे सीने को भिगो रहे थे। मैं उसकी पीठ सहलाती रही। यह उसके साथ अंतिम मिलन था। अचानक उसकी साँसें उखड़ने लगीं और उसके पापा घबरा गए। उन्होंने उसे सहारा देकर बिस्तर पर लिटा दिया। थोड़े समय बाद जब वह सामान्य हुई, तब उसे तुरंत लेकर चले गए। अगले दिन खबर मिली कि सुनीता रात 12:00 बजे इस दुनिया को अलविदा कह गई।

उस दिन रात को 11:00 बजे तक वह मेरे पास अपने जीवन की अंतिम साँसे गिन रही थी, आखिरी समय तक वह अपने जीवन से लड़ती रही। उसके जाने के बाद उसके पापा ने मुझे कहा - पता नहीं, उस दिन शायद तुम्हारे लिए उसकी साँसें अटकी थीं। यहाँ से जाने के बाद बहुत शांत मन से वह सोई है। वह तुम्हारे लिए एक पत्र छोड़ गई है। वह लिफ़ाफा मैंने खोला, जिसमें उसने लिखा था -

"शशि तुम मेरे जीने का हौसला बनी, मैं बहुत खुश हूँ कि मुझे तुम जैसी सहेली मिली। जब तुम जिओगी, तब मैं समझूँगी कि मैंने अपना जीवन जी लिया।"

मैंने निश्चय किया कि अब मुझे भी जीना है। अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए जीना है। उनके लिए कुछ करना है। लोगों को सकारात्मक जीवन जीने की प्रेरणा देनी है।

सुनीता परीक्षा में तो अच्छे नंबरों से पास हो गई थी, लेकिन अपने जीवन से हार गई। कभी-कभी मुझे लगता है कि उसकी रूह मुझे ज़रूर देख रही होगी। वह मुझे जीने की वजह दे गई...

shashipurwar@gmail.com

उन्नीस सौं पैंसठ का युद्ध और मैं

रेखा राजवंशी
ऑस्ट्रेलिया

मुझे याद है, मैं भाग रही थी - तेज़ और बस एक ही इच्छा थी कि जल्दी-से-जल्दी घर पहुँच जाऊँ। दिल धड़क रहा था, पसीना बह रहा था। मैं पाँच-छः साल की बच्ची, भागती जा रही थी। सड़कें खाली होती जा रही थीं। मैं पेड़ों के नीचे छिपते-छिपाते भाग रही थी। हमें बताया गया था कि जब भी इस तरह का सायरन बजे, तो समझ लेना कि पाकिस्तान के हवाई जहाज़ बम गिराने आए हैं। बम जहाँ गिरते, वहाँ आग लग जाती है, घर ढह जाते हैं और लोग मर जाते हैं। बम कहीं भी गिर सकता है। भारत और पाकिस्तान के बीच लड़ाई चल रही थी। उन दिनों न टीवी था, न मोबाइल फ़ोन। रेडियो ही सूचना और खबरों का एकमात्र माध्यम था।

1965 की बात है, अगस्त का महीना था। मैं अपने छोटे-

छोटे पैरों को ज़मीन से सटाकर, पूरी शक्ति से भाग रही थी। घर पहुँचते ही माँ ने जल्दी से हमें मकान के नीचे बने तहखाने, यानी बेसमेंट में छिपा दिया।

मुझे याद है, कुछ माह पूर्व ही लखनऊ से इतनी दूर समदड़ी नाम के शहर में पापा का तबादला हुआ था। उन्हें वहाँ एक बहुत बड़ा और सुन्दर बंगला मिला था। बहुत लम्बी ट्रेन यात्रा के बाद हम वहाँ पहुँचे। पाँच-छः साल की उम्र ही क्या होती है? लॉन की हरी घास और क्यारी में लगे रंग-बिरंगे फूलों के अलावा वहाँ की रेत और कैक्टस ने भी मेरे बालमन पर गहरा प्रभाव डाला। पहली बार राजस्थान के बिच्छुओं और साँपों से भी सामना हुआ। हम खुश थे, पर समदड़ी में पढ़ाई की अच्छी व्यवस्था न होने के कारण यह निर्णय लिया गया कि जोधपुर में किराए के मकान में रहेंगे और हम सब जोधपुर सरदारपुरा कॉलोनी के एम. एम. मेहता जी के किराए के मकान में आ गए। पिता, जो अक्सर टूर पर रहते, आते-जाते रहते। जोधपुर में इस समय गर्मी शुरू हो जाती थी। जून आते-आते तो हवाएँ साँय-साँय करके चलने लगी थीं।

यह वह समय था, हम बच्चे राजस्थान को बड़े कौतूहल से देख रहे थे। जोधपुर, एक साफ़-सुथरा शहर था, जहाँ किले, मंदिर, अच्छे स्कूल और ईमानदार लोग थे। हम सब शीघ्र ही वहाँ के माहौल में रम गए थे और हम भाई-बहन, स्कूल जाने लगे। हम सभी कॉन्वेंट स्कूलों में पढ़ते थे और एक सुसंस्कृत वातावरण में पल रहे थे। उस ज़माने में स्कूल दूर होते थे, सुविधाएँ कम थीं, पर लोग खुश थे। रेगिस्तानी हवाएँ जब चलतीं, तो उनकी आवाज़ ऐसी होती कि लगता कि कोई राक्षस आ रहा हो और जब कभी बारिश की फुहारें गिरतीं, तो ऐसा लगता कि अमृत बरस रहा हो। दिन गरम और रातें ठंडी होतीं।

हम सब नए शहर में व्यवस्थित हो गए थे। मुझे याद है कि अगस्त का महीना और रात का समय था। सोने से पहले सदा की तरह हमने अपने खरगोशों को सहलाया, खिलौने सहेजे और पिता के पास वाले बिस्तर में घुस गए। पापा रेलवे में इंजीनियर थे। उत्तर प्रदेश के थे, इसीलिए हिंदी में कविताएँ लिखा करते थे। माँ मुंबई की थीं, पर दोनों में जो तारतम्य और सामंजस्य था, वह अद्‌भुत था। रात में सारे भाई-बहन उनसे देशप्रेम की अनेक कविताएँ सुनते। उस रात पापा ने बताया कि भारत और पकिस्तान के बीच लड़ाई शुरू हो गई है। अचानक युद्ध ने चारों ओर भय का माहौल पैदा कर दिया था।

जब पाकिस्तानी जहाज़ भारतीय सीमा में प्रवेश करते, रात-बिरात कभी भी सायरन बजने लगते और जोधपुर में माइक पर घोषणा की जाती। माँ हमें उठातीं। खाने-पीने की चीज़ें और चटाई लेकर हम सब बाहर निकलते और खाइयों में छिप जाते। घर के सामने खुले मैदान में ज़ेड या एल के आकार की खाइयाँ खुदवाई गई थीं। वे वैसे तो हम बच्चों के लिए मज़े की जगह थीं। पर तब नहीं, जब ऊपर से बम गिर रहे हों और नीचे से चीटियाँ और कीड़े-मकोड़े काट रहे हों। स्कूल जाना, न जाना भी खतरे की गंभीरता पर निर्भर था।

जोधपुर - वह शहर जहाँ भारत-पाक युद्ध के दौरान सबसे अधिक बमबारी हो रही थी। यह भारत-पाक युद्ध अगस्त-सितम्बर 1965 के बीच हुआ था। इसे कश्मीर के दूसरे युद्ध के नाम से भी जाना जाता है। भारत और पाकिस्तान के बीच जम्मू और कश्मीर पर अधिकार को लेकर ही हुआ था। पहला युद्ध 1947 में भी कश्मीर को लेकर ही हुआ था। 1965 में कच्छ के युद्ध में मिली सफलता से उत्साहित पाकिस्तान ने कश्मीर पर हमले का आदेश दिया। भारत उस समय चीन से युद्ध हार चुका था और पाकिस्तान ने सोचा कि भारत उस समय युद्ध करने की स्थिति में नहीं है। इसी के चलते पाकिस्तान ने अपने गुप्त सैनिक अभियान 'ऑपरेशन जिब्राल्टर' का आदेश दे दिया था।

मुझे तो उस उम्र में सिर्फ़ इतना समझ आया कि पाकिस्तान हमारे कश्मीर को, जो भारत की शान है, छीनना चाहता है। प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री इसके लिए कदापि तैयार नहीं थे। कश्मीर, जो स्वर्ग के समान सुन्दर है, जहाँ की खूबसूरत कढ़ाई वाली हुई शालें माँ के पास हैं, जहाँ लाल-लाल सेबों के पेड़ हैं और जहाँ झीलों पर घर बने हुए हैं, उस कश्मीर को मेरा देश कैसे किसी और को दे सकता है?

'क्या कहा कश्मीर दे दूँ, हिन्द की जागीर दे दूँ।' अक्सर मेरे देशभक्त पिता बड़े भावपूर्ण तरीके से सुनाते और हम मन्त्रमुग्ध होकर सुनते। एक रात मैंने देखा कि माँ खिड़की के बाहर देख रही थीं। मैं भी जाकर उसके बगल में खड़ी हो

गई। दूर, बहुत दूर लाइटें-सी दिखीं, पैराशूट से नीचे उतरे लोग दिखे, माँ ने फुसफुसाकर कहा, 'वे पाकिस्तानी हैं। छिपकर हमारे देश में आ रहे हैं।' सच बताऊँ मैं तो उस रात डर के मारे सो नहीं पाई।

इस हमले में जोधपुर के एयर फ़ोर्स बेस में और उसके आस-पास दो सौ से अधिक बम गिराए गए थे। हालाँकि लक्ष्य सैन्य प्रतिष्ठान था, लेकिन किसी भी इमारत या रनवे पर कोई सीधा प्रहार नहीं हुआ, परन्तु बम के छर्रे मुख्य कार्यालयों और हैंगर में घुस गए, जिससे क्षति हुई थी। मुख्यालय की इमारत के अधिकांश शीशे टूट गए थे और कुछ एयरड्रोम क्षतिग्रस्त हो गए थे। मुझे याद है कि जब बम गिरते, तब हम खाइयों में छिपकर देखा करते थे। उन्हीं दिनों किसी महिला को सपना आया कि जोधपुर की चामुंडा देवी कह रही हैं - 'अपने हाथों से बम रोकते-रोकते मेरे दोनों हाथ जल रहे हैं, इनमें ठंडक पहुँचाने के लिए मेंहदी लगाओ, उसके छापे अपने दरवाज़े के बाहर लगाओ और मेरे दर्शन करने आओ।' तब जोधपुर की महिलाओं ने अपने घरों के दरवाज़ों पर मेंहदी के छापे लगाए।

ये सब चल ही रहा था कि पिता जी को आदेश आया कि वे श्रमिकों से भरी स्पेशल ट्रेन लेकर भारतीय सेना के लिए टूटे हुए रेल ट्रैक को ठीक करवाएँ। बाड़मेर के गडरा सेक्टर में, युद्ध के दौरान पाकिस्तानी सेना ने 8 सितंबर 1965 को गडरा रोड पर जाने वाली रेलवे लाइन को उड़ा दिया था। ऐसे समय में जब पाकिस्तान के जहाज़ सिर पर मंडरा रहे थे तब वहाँ जाना बहुत खतरनाक था, पर पापा देशभक्त थे, उन्होंने यह चुनौती स्वीकार की। माँ ने भी उन्हें नहीं रोका, शायद इसलिए कि वह भी पापा की हिम्मत को जानती थीं। एक अन्य अफ़सर, जिसे पहले जाने के लिए कहा गया था, मना कर चुका था। पापा चले गए, आखिर देश का सवाल था।

मुझे आज भी याद है। नौ सितम्बर 1965, अनंत चतुर्दशी का दिन था। माँ पूजा करके बैठी थीं, दोपहर का समय था कि खबर आई कि पापा की गाड़ी दुर्घटनाग्रस्त हो गई है। अगले दिन रेलवे के कर्मचारी पापा का सारा सामान और खून से लथपथ कपड़े लेकर घर आए। माँ को तुरंत अस्पताल जाने को कहा गया। पता चला मज़दूरों से भरी ट्रेन गडरा पहुँचने ही वाली थी, शायद बारह बजे, कि पाकिस्तान ने बम गिरा दिए। कई लोग मारे गए। पापा अफ़सरों को मिलने वाले डब्बे में बैठे फल खा रहे थे। एक युवा खानसामा उनका खाना बना रहा था कि बम के छर्रे से कई लोग घायल होने लगे। खून से लथपथ खानसामा दौड़ता उनके पास आया, जिसकी पीठ से गुज़रते हुए बम का छर्रा पेट से निकल गया था। उसे देख ही रहे थे कि उनकी पीठ में तेज़ दर्द हुआ, बम का दूसरा छर्रा उनकी पीठ की रीढ़ की हड्डी में घुस चुका था। बहुत से लोग मारे गए थे। परन्तु 17 रेलकर्मियों ने पाकिस्तानियों द्वारा भारी बमबारी के बावजूद क्षतिग्रस्त गडरा रोड रेल ट्रैक को एक दिन में ठीक करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

पापा के निरीक्षण में जाने वाली इस ट्रेन में कई मज़दूरों की जानें चली गईं और अनेक मज़दूर घायल हुए। पिता जी को किसी तरह जोधपुर के रेलवे अस्पताल लाया गया।

हम सब भाई-बहनों की ज़िन्दगी अचानक बदल गई। माँ अस्पताल में रहतीं और बड़ी बहन और भाई हम सब छोटे बच्चों को संभालते। बम गिरते, हम खाइयों में जा छिपते, घोषणा होती - 'आप सब अपने-अपने घरों में वापस लौट जाइए।' हम यंत्रचालित से घर लौट आते। अब हम ही नहीं, बल्कि वे गुदगुदे, सफ़ेद खरगोश भी उदास रहते। पापा अस्पताल में ज़ोर-ज़ोर से कराहते। बम का छर्रा उनकी रीढ़ की हड्डी में चुभ रहा था। डॉक्टर मजबूर थे, छर्रा निकलने का ऑपरेशन विफल हो गया। एक दिन माँ ने बताया - 'पापा को दिल्ली के रेलवे अस्पताल में ले जाना पड़ेगा।' सारा सामान समेटा गया और हम सभी भाई-बहनों को अलग-अलग रिश्तेदारों के यहाँ बाँट दिए गए। कॉन्वेंट स्कूल की पढ़ाई छोड़कर सरकारी स्कूल में दाखिल हो गए।

युद्ध हमारी ज़िन्दगी कैसे बदल देता है, यह मुझे पहली बार महसूस हुआ। युद्ध केवल तन को नहीं, मन को भी तोड़ देता है। दो साल तक पापा का वेतन भी रुका रहा। तत्कालीन सांसद, श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी को किसी तरह यह बात पता चला। दिल्ली के सेन्ट्रल अस्पताल में वे पापा को देखने आए और उन्होंने दिल्ली संसद में प्रश्न उठाया कि 'एक इंजीनियर जो जान की परवाह किए बिना रेलवे ट्रैक ठीक करने गया, आज बिना वेतन के घायल अवस्था में अस्पताल

में पड़ा है, उसे वेतन क्यों नहीं दिया जा रहा है।'

इसके बाद उन्हें वेतन मिलना तो शुरू हुआ, पर हम बच्चों की ज़िन्दगी कई सालों तक बँटी रही। दिल्ली के रेलवे अस्पताल में प्लास्टर बेड में बँधे पिता जी की कराहें दूर तक सुनाई देती थी। माँ के हाथ से माला जाप नहीं रुकता था। उनके ऊपर सारी ज़िम्मेदारियाँ आ गई थीं। अक्सर सोचती हूँ कि सारे दिन व्रत रखना, डॉक्टरों से संपर्क करना, ट्रीटमेंट का निर्णय लेना, बच्चों की पढ़ाई को लेकर भागते रहना, सरकार से पापा का वेतन देने के लिए लड़ाई करना, सब कुछ अकेले उन्होंने कैसे किया होगा।

और इस सबकी मूक साक्षी मैं थी - एक छोटी बच्ची।

दिल्ली में दोबारा ऑपरेशन हुआ, जो असफल रहा। पुनः एक साल बाद अगले ऑपरेशन की तैयारी हुई और पाकिस्तान के किसी सर्जन के हाथों रीढ़ की हड्डी में तीन साल से लगातार चुभने वाले छर्रे को बाहर निकालने में सफलता मिली। कुछ वैसा ही कि 'जिसने दर्द दिया उसी ने दवा भी की।' धीरे-धीरे वे स्वस्थ हो गए और हम सब साथ रह पाए और उनके मार्गदर्शन से पढ़-लिख पाए।

और हाँ, आपको यह बता दूँ कि मेरे पापा पर मुझे बहुत गर्व है। कभी-कभी यह सोचती हूँ कि अगर हम इतिहास के पन्ने पलटें, तो मेरे पापा जैसे न जाने कितने लोग 'अनसंग हीरोज़' मिल जाएँगे, जिन्होंने अपने परिवार के हित को भुलाकर, देश के बारे में सोचा और अपना जीवन समर्पित कर दिया। शायद नार्दर्न रेलवे की 1965 की फ़ाइलें खँगाली जाएँ, तो उनमें कहीं पापा का केस भी बंद पड़ा होगा।

आज वे इस दुनिया में नहीं हैं, चाहे उनके बलिदान के बारे में किसी मीडिया या अखबार में नहीं लिखा गया हो, चाहे इसके लिए देश या रेलवे ने उन्हें कोई अवॉर्ड नहीं दिया हो और मैं चाहे भारत में नहीं भी हूँ, पर उनके मूल्य, उनके संस्कार और उनके द्वारा वंशानुगत रूप से मिला लेखन मेरे साथ सदा रहेगा।

आज मैं अपने पिता को एक देशभक्त, ईमानदार रेलवे अफ़सर और सबसे अच्छे पापा का अवॉर्ड देती हूँ।

जय हिन्द!

rekha_rajvanshi@yahoo.com.au

कोरोना का अभिशाप 'जान है, तब ही जहान है'

श्रीमती सुनीता आर्यनाईक
न्यू ग्रोव, मॉरीशस

कोरोना महासंकट ने केवल हमारी सोच एवं संवेदना को ही नहीं बदला, बल्कि हमारा सम्पूर्ण जीवन बदलकर रख दिया है। हमने देशव्यापी लॉकडाउन, लोगों से दूरी, निजी स्वच्छता, संयम और आत्मबल जैसे उपायों के माध्यम से कोरोना वायरस के भयावह प्रसार को रोकने का भरसक प्रयत्न किया। कोरोनाकाल ने जीवन और मृत्यु के बीच खड़े रहस्यमयी काले पर्दे को बड़ी बेरहमी से हटा दिया। इसी काल की एक सच्ची घटना मैं बताने जा रही हूँ, जो मेरे जीवन का कभी न भूलनेवाला संस्मरण बन चुका है।

कोरोना लॉकडाउन के चलते कहीं एक पुत्र अपने पिता की अस्थियाँ प्रवाहित करने की प्रतीक्षा में था, तो कहीं कोई पुत्र अपने मृत पिता को मुखाग्नि देने से भी वंचित रह गया। अगर परिवार के किसी सदस्य की कोरोना से मौत हो जाती, तो परिजन उसके अंतिम संस्कार में भी शामिल नहीं हो पाते। पहले किसी के निधन पर जहाँ सैकड़ों लोग एकत्र हो जाते थे, वहीं कोरोना के समय चिताओं के आस-पास तीन-चार ही लोग उपस्थित हो पाते थे। ऐसे में रस्मों को पूरा करना लगभग असंभव था। रिश्तेदारों को मृतक के संबंध में सूचना तो दी जाती थी, लेकिन उनसे घर में ही रहकर मृतक की आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करने का अनुरोध किया जाता था।

मुझे आज भी वह दिन याद है, जब मैं मॉरीशस से अपने परिवार के पास भारत गई थी। 24 अप्रैल 2021 में मैं अपनी बुआ के घर बनारस घूमने गई थी। लॉकडाउन लग जाने के कारण मुझे वहीं रुकना पड़ा। कोरोना संक्रमण की दर बढ़ने

के साथ मृत्यु के आँकड़े भी लगातार बढ़ रहे थे। अधिक लोगों की मृत्यु के कारण हर जगह हड़कंप मचा हुआ था।

मेरी बुआ का घर मणिकर्णिका घाट के पास स्थित है। वह 27 अप्रैल की एक अविस्मरणीय संध्या थी, जब सूरज ढलने को था और अँधेरा धीरे-धीरे हर कोने पर विराजमान हो रहा था। चारों ओर सब कुछ बंद होने के कारण हम घर की छत पर थे, जहाँ से मणिकर्णिका श्मशान-घाट का दृश्य साफ़ दिखाई देता था। आमतौर पर श्मशान-घाट का अँधेरा बहुत डरावना होता है, किंतु उस अँधेरे को अत्यधिक भयावह बना रही थी, आग की वे लपटें, जो पास में जल रही चिताओं से उठकर हवाओं को चीरती हुई ऊपर की ओर उठ रही थीं।

कतार में लगभग बीस से बाईस चिताएँ एक साथ जल रही थीं। आग में माँस के जलने और लकड़ियों के चटकने की भयानक आवाज़ें आ रही थीं, जो कि मैंने कभी नहीं सुनी थी। चिताओं से दूर खड़े शोकाकुल परिजनों की तेज़ सिसकियाँ और करुण चीत्कार सुनकर दिल दहल जाता था। आँखों में आँसू भरकर कोई इन चिताओं की ओर बेबसी से हाथ जोड़े खड़ा था, तो कोई किसी को सहारा देकर ढाढ़स बाँधने का प्रयास कर रहा था और स्वयं भी सुबक रहा था, तो कोई इस नियति की क्रूरता को कोस रहा था। वे सब अभागे लोग थे, जो न तो अपने परिजनों को अस्पताल में भर्ती कराते समय उनसे मिल पाए और न इस अंतिम विदाई के पश्चात् उन्हें ढंग से देख पाए। मेरी बुआ उनमें से कई लोगों को पहचानती थी।

कोरोना के संक्रमण का भय अपने को मृत देह से दूर किए हुए था। ऐसी ही चिताएँ मुख्य श्मशान-घाट के दूसरी ओर भी सजी हुई थीं, जहाँ कोरोना से दम तोड़ने वाले मृतकों का ही अंतिम संस्कार किया जा रहा था। पिछले कई दिनों से प्रतिदिन लगभग अस्सी से नब्बे मृतकों का इस स्थान पर अंतिम संस्कार हो रहा है। शवों को देखकर एक बार फिर मानवता करुण क्रंदन कर उठी। इस करुण दृश्य को देखकर ऐसा आभास होता था, मानो विधाता ने पीड़ितों के भाग्य में कुछ ही दिनों तक जीना लिखा था।

अंतिम संस्कार के लिए आ रहे मृतकों की इतनी संख्या श्मशान-घाट में वर्षों से कार्यरत लोगों ने पहली बार देखी थी। लकड़ी से होने वाले परंपरागत संस्कार के स्थल के पास विद्युत शवदाह-गृह स्थित था, जिसकी ऊँची चिमनियाँ लगातार आसमान की ओर धुआँ उगल रही थीं। मैं और बुआ बस यही सोच रहे थे कि क्या यही जीवन है। तभी समाचार आया कि मेरी बुआ के दामाद, जिनका नाम नीरज था, की कोविद-19 के कारण मृत्यु हो गई। सभी एक-दूसरे का चेहरा देखने लगे, पूरे घर में मातम पसर गया। किसी को समझ नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए। हमने बाहर के लोगों का हृदयविदारक हाल देखा...नहीं पता था कि हमारे घर में भी ऐसा ही कुछ हो जाएगा। पूरा परिवार स्तब्ध रह गया था। क्या करें? कैसे जाएँ, क्योंकि सारे रास्ते बंद थे। किसी तरह कुछ लोग भागते हुए श्मशान-घाट के पास पहुँचे। वहाँ रीता दीदी बेसुध पड़ी थी। बच्चे दीदी को देखकर रोए जा रहे थे। दीदी ने इस कठिन घड़ी में अकेले ही सब कुछ संभाला।

दीदी के कहने पर यह तय हुआ कि नीरज का अंतिम संस्कार विद्युत शवदाह-गृह में होगा। रीता दीदी इसी शवदाह की चिमनी की ओर एकटक निहारे जा रही थी। उनकी आँखों से आँसू लगातार बह रहे थे। उनको अपने कंधे का सहारा देकर उनका बारह साल का बेटा अजय खड़ा था और छोटा बेटा विजय जो कि चार साल का था, दीदी की साड़ी पकड़े खड़ा था। दीदी का हाल बेहाल था। अचानक निढाल-सी खड़ी रीता दीदी के शरीर में हरकत हुई और उन्होंने कहा - 'अजय, विजय देखो, धुएँ के बीच में देखो, तुम्हारे पापा का चेहरा दिख रहा है। देखो, अच्छे से देखो, वे मुस्कुरा रहे हैं। देखो, अजय ध्यान से देखो, तुम्हारे पापा के चेहरे का फ़ोटो उतारो, जल्दी कैमरा निकालो।'

उधर पास में ही दीवार पर खड़े होकर परिवार के लोग अपने कैमरे से श्मशान-घाट में अनवरत जल रही चिताओं का फ़ोटो ले रहे थे। कुछ समय पश्चात्, मेरी तरफ़ देखकर रीता दीदी चीखीं - 'अरे आओ! मेरे नीरज का फ़ोटो निकालो। देखो वे जा रहे हैं, उस धुएँ के बीच में बैठकर। आप जल्दी उनका फ़ोटो उतारो! जल्दी करो! वे दूर हो जाएँगे!' दीदी का करुण रुदन सुनकर वहाँ उपस्थित सभी लोगों की आँखें नम हो उठीं। क्या पता था, ऐसा भी कुछ हो जाएगा।

कोरोना की विभीषिका को अपने कैमरे की नज़र से देख रहे फ़ोटोग्राफ़र के लिए यह अचानक आई चुनौती थी।

फ़ोटोग्राफ़र ने विद्युत शवदाह-गृह से निकल रहे धुएँ की लंबी लकीर का फ़ोटो लिया। साथ में, शोक में डूबे एक-दूसरे का हाथ थामे माँ, रीता दीदी और उसके बच्चों के फ़ोटो भी खींच लिये।

दीदी की ज़िंदगी दो दिन में ही उजड़ गई। नीरज केवल दो दिन ही बीमार रहे। चिकित्सकों ने दिलासा दिलाया था कि सब ठीक हो जाएगा। दीदी, नीरज और दो बच्चे अपने पिता रिटायर्ड अधिकारी अतुल और अपनी माँ रीना के साथ रहते थे। बहुत ही खुशहाल परिवार था। अचानक पिता अतुल और माँ रीना की तबीयत बिगड़ गयी थी। दोनों को सर सुन्दरलाल चिकित्सालय में भर्ती कराया गया था।

अगली सुबह नीरज और रीता दीदी अपने दो बच्चों के साथ भागे-भागे सर सुन्दरलाल चिकित्सालय पहुँचे। अतुल साहब की तबीयत बिगड़ती गयी और उन्हें वेन्टिलेटर पर रखा गया। मगर सुबह भर्ती कराई गई सास रीना ने कोविद का इलाज शुरू होते ही शाम तक हार्ट-अटैक के कारण दम तोड़ दी। इस आपदा से दीदी और नीरज संभल भी नहीं पाये कि शुरू हो गयी मृत शरीर को लेने की लंबी प्रक्रिया। मोर्चरी से लेकर श्मशान-घाट तक एंबुलेंस की मदद से पहुँचाने के लिए इतने कागज़ी इंतज़ाम करने पड़े कि दुख-दर्द सब भूलकर इसी कठिन प्रक्रिया को पूरा करने में लगने पड़े।

मौत के बाद अगले दिन सुबह से शाम हो गई, तब जाकर मृत शरीर मिला। उसके बाद श्मशान-घाट में लंबा इंतज़ार... बनारस के सारे श्मशान-घाट उन दिनों मृत देहों से भरे पड़े थे। ढेर सारी एंबुलेंस मृत शरीरों को रखकर अपनी बारी का इंतज़ार कर रहे थे। मणिकर्णिका घाट और हरिश्चंद्र घाट सब जगह से इतनी देह आ रही थीं कि प्रबंधकों के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ती दिख रही थीं। कहीं पर लकड़ी की कमी हो रही थी, तो कहीं पर लगातार एक जैसा काम करने से घाट के कर्मचारियों में थकान और तनाव दिखने लगा था।

रीता दीदी बताती हैं कि वे और नीरज उनकी सास का अंतिम संस्कार कर जल्दी अपने ससुर के पास अस्पताल और बच्चों के पास घर जाना चाहती थी। मगर जब बताया गया कि बीस शवों को जलाने के बाद नंबर आयेगा, तब उन्होंने विद्युत शवदाह-गृह की मदद ली। अंतिम संस्कार कर दोनों वापस आए ही थे कि नीरज ज्वर से बुरी तरह तपने लगा। दो घंटे बाद दीदी ने नीरज को एक चिकित्सक की सलाह पर दवा दे दी। कोई असर न होता देख, दीदी उन्हें अस्पताल ले गई। थोड़ी देर बाद नर्स ने बताया कि सब ठीक है... पर ना जाने क्या हुआ कि अस्पताल से आए मोबाइल फ़ोन की एक घंटी ने सब कुछ खत्म कर दिया। नीरज नहीं रहे। दीदी की तो जैसे दुनिया ही समाप्त हो चुकी थी। बताते ही दीदी विलाप करने लगी।

मौत का यह स्वरूप सबसे डरावना था। रीता दीदी के मन का दर्द जब बाहर आया, तब वे बोलीं कि कोविद के समय अस्पताल की अवस्थाएँ, श्मशान में लोगों की लंबी कतारें और लगातार जलती चिताएँ असली नरक थीं।

कोरोना काल ने यह सोचने पर विवश किया कि भविष्य में इंसान व इंसानियत के लिए क्या ज़रूरी है और क्या ज़रूरी नहीं है। कोरोना व लॉकडाउन का यह काल सिखा गया कि - "जान है, तब ही जहान है" बाकी सब मिथ्या है।

sunitaarianaick@gmail.com

वृत्त में बसी ऊर्जा : मितावली का 64 योगिनी मंदिर

भावना सक्सैना
दिल्ली, भारत

कुछ यात्राएँ केवल स्थानों तक सीमित नहीं होतीं, वे स्मृतियों और अनुभवों के ऐसे ताने-बाने बुन देती हैं, जो वर्षों बाद भी मन में गूँजते रहते हैं। वे भीतर किसी अज्ञात को स्पर्श कर जाती हैं। ऐसी ही एक यात्रा मैं, मेरे पति और हमारे दो बेटे, हम चारों ने दो वर्ष पूर्व दिल्ली से ग्वालियर की ओर की।

यह तीन दिवसीय पारिवारिक यात्रा थी, जिसमें ग्वालियर के किले, संग्रहालय और ऐतिहासिक गलियों से होते हुए हमने एक ऐसा पड़ाव लिया, जो अपने इतिहास, स्थापत्य और रहस्य के कारण आज भी मेरे मन में गहराई से बसा है - मितावली का 64 योगिनी मंदिर।

जैसे-जैसे हम शहर की सीमा से बाहर निकले, वैसे-वैसे रास्ते सुनसान और निर्जन होते गए। कभी कोई ट्रैक्टर दिखाई देता, तो कभी दूर कोई बस्ती। मानो हम किसी पुराने समय की ओर लौट रहे हों। मेरे बेटे इस नए माहौल को बड़े कौतूहल से देख रहे थे और मेरे पति रास्ते की भौगोलिक बनावट को गूगल मैप और अपनी जिज्ञासा से परख रहे थे। पूरा मार्ग शांत और ग्रामीण परिवेश से भरा हुआ था। अंततः हम जहाँ पहुँचे, वहाँ का दृश्य मन मोह लेने वाला था। घास के एक बड़े से मैदान को पार कर जैसे ही हमने बटेश्वर मंदिर समूह के मुख्य द्वार को पार किया, एक अद्भुत दृश्य हमारी आँखों के सामने आ गया, मानो किसी चित्रकार ने प्राचीन भारत की आत्मा को रंगों की जगह पत्थरों से उकेर दिया हो। द्वार पार करते ही धरती हल्की-सी ढलान में नीचे उतरती जाती है और उसी उतरती ज़मीन पर फैला है, मंदिरों का एक अद्वितीय संसार। एक ऐसी घाटी जो मंदिरों से आच्छादित है, शांत, विस्मयकारी और अलौकिक।

सामने दूर तक फैले सैकड़ों मंदिर, जैसे समय की परतों में से एक-एक कर उभरते हुए, चुपचाप खड़े हुए। वे न ऊँचे हैं, न अति विशाल, लेकिन उनकी सादगी और संख्या मिलकर जो प्रभाव रचती है, वह शब्दों से परे है। जैसे किसी मंत्र के प्रभाव में सब कुछ ठहर गया हो और हवा में बस एक धीमा-सा कंपन बचा हो।

हर मंदिर भूरे पत्थर से बना है और हर एक की बनावट में कुछ-न-कुछ विशिष्ट है। कहीं झुका हुआ तोरण है, तो कहीं टूटा हुआ शिखर। कहीं-कहीं अब भी शिवलिंग और मूर्तियाँ खड़ी हैं, जिनकी मुस्कानें समय की धूल में भी धुँधली नहीं हुईं।

पेड़ों की परछाइयाँ इन मंदिरों पर ऐसे गिर रही थीं, जैसे कोई वृद्ध साधु किसी शिष्य का मस्तक सहला रहा हो। एक पक्षी उड़कर एक मंदिर की छत पर बैठा और क्षणभर को लगा, जैसे वह अनंतकाल से इसी शांतिमय परिसर का अभिन्न हिस्सा हो।

पत्थरों पर पड़ती धूप और छाया ऐसा खेल रच रही थी कि कहीं कोई स्तंभ स्वर्ण-सा चमक उठता, तो कहीं कोई खंडहर छाया में डूबकर रहस्यमय हो जाता।

वहाँ कोई शोर नहीं था, बस हवा में मंदिरों के शिखरों से टकराती पत्तियों की सरसराहट या दूर किसी पशु की आवाज़। इस मौन में एक गहन संवाद छिपा था - प्रकृति और पुरातत्व के बीच, जीवन और जीवंत प्रस्तरों के बीच।

उस क्षण, बटेश्वर मंदिर समूह कोई 'पर्यटन स्थल' नहीं लग रहा था। वह एक जीवित घाटी थी। एक ऐसा स्थान जहाँ काल, कला और साधना तीनों समकाल में साँस ले रहे थे।

बटेश्वर मंदिर समूह में 200 से अधिक मंदिर हैं, जो 8वीं से 10वीं शताब्दी के बीच गुर्जर-प्रतिहार शैली में बनाए गए थे। ये मंदिर शिव, विष्णु और शक्ति को समर्पित हैं और इनकी पुनर्रचना भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के अधिकारी के. के. मोहम्मद के अथक प्रयासों से संभव हो सकी है। एक समय यह पूरा परिसर ध्वस्त, झाड़ियों से ढँका हुआ और लगभग खो चुका था। लेकिन आज यह धीरे-धीरे अपने पुराने वैभव की ओर लौटता प्रतीत होता है।

समान शैली में खड़े हुए छोटे-छोटे मंदिर और उनके पीछे पहाड़ियों की पृष्ठभूमि, यह सब कुछ एक चित्र-पट जैसा लगा। बच्चे मंत्रमुग्ध थे और हम पति-पत्नी स्तब्ध होकर उस स्थापत्य कौशल को निहारते रहे, जो बिना किसी आधुनिक

तकनीक के उस काल में संभव हुआ था। इन मंदिरों में न कोई भीड़ थी, न कोई पुजारी, न कोई आरती; बस पत्थरों की दीवारों पर समय की परछाइयाँ। यह एक ऐसा स्थान है, जहाँ आप अपने भीतर उतर सकते हैं, जहाँ पत्थर बोलते नहीं, लेकिन आपको सुनने पर विवश कर देते हैं।

कुछ मंदिर अभी भी अधूरे थे और कई केवल खंडहर। कुछ जीर्णोद्धार की प्रक्रिया में थे। चारों ओर मरम्मत के सामान फैले हुए थे। पुराने प्रस्तरों की आकृतियों की नकल कर नए प्रस्तर बनाए जा रहे थे। हर टूटे पत्थर में राजाओं की, शिल्पकारों की और बीते हुए समय की एक कहानी थी।

हम एक ऊँचे चबूतरे पर बैठ गए और साँझ की ढलती रोशनी में मंदिरों को देखते रहे। बच्चों ने कैमरे से तस्वीरें लीं और मैंने बस दृश्य को आँखों में भर लिया।

बटेश्वर से निकलकर कार चालक ने बताया कि पास ही गढ़ी पडावली नामक एक और पुरातात्विक स्थल है। जिज्ञासा हमें वहाँ खींच ले गई। जैसे-जैसे हम पास पहुँचे, एक गढ़ी जैसी संरचना सामने आई, जो ऊँचाई पर स्थित थी। वहाँ की सीढ़ियाँ बहुत ऊँची और खड़ी थीं। हर कदम किसी प्राचीन रहस्य की ओर ले जा रहा था। ऊपर पहुँचकर जो दृश्य सामने आया, वह शब्दों से परे था। वहाँ किसी मंदिर का भग्नावशेष था, लेकिन उसका सौंदर्य आज भी पत्थरों में जीवित था। भीतरी मंडप और स्तंभों पर खुदी हुई मूर्तियाँ, नारी आकृतियाँ, योद्धा, पशु, देवी-देवता इतनी बारीकी से उकेरी गईं थीं कि मानो पत्थर में साँस बसती हो।

चारों ओर प्रकृति का सन्नाटा था, लेकिन उस वीराने में भी एक गूढ़ शक्ति का अनुभव हो रहा था। वहाँ के गुंबदों में मधुमक्खियों के विशाल छत्ते थे और चमगादड़ हवा में मँडरा रहे थे। उस क्षण एक विचित्र रोमांच हुआ, मानो समय थम गया हो और हम किसी प्राचीन युग की दहलीज़ पर खड़े हों।

मेरा छोटा बेटा बोला - "यह तो किसी फ़िल्मी सीन जैसा लग रहा है।" सच में, ऐसा प्रतीत हुआ जैसे हम किसी रहस्यलोक में आ गए हों, जहाँ हर दरार, हर जर्जर शिला कुछ कह रही हो।

गढ़ी पडावली का सौंदर्य गूढ़ और अंतर्मुखी था, जिसे देखने के लिए मन को शांत करना पड़ता है। फिर हम वहाँ पहुँचे, जहाँ के लिए मुख्य रूप से चले थे। वह पड़ाव था मितावली का चौंसठ योगिनी मंदिर, जो ग्वालियर से लगभग 40 किमी. की दूरी पर एक छोटी पहाड़ी पर स्थित है। लेकिन जब कार गाँव की एक सँकरी पगडंडी से होती हुई मितावली पहुँची, तब पहली झलक में कुछ भी विशेष नज़र नहीं आया।

कार से उतरते ही एक क्षण को मन हल्का-सा बुझ गया। मंदिर किसी ऊँचाई पर ज़रूर था, लेकिन बाहर से सिर्फ़ एक छोटी-सी पगडंडी दिख रही थी, जो ऊपर की ओर जा रही थी। वहाँ न कोई भव्य द्वार, न कोई आकर्षक सूचना-पट और नाही किसी तरह की आभिजात्य छवि थी। मन में लगा क्या यही वह स्थल है, जिसके बारे में इतना कुछ पढ़ा और सोचा था?

फिर शुरू हुई चढ़ाई - कई सीढ़ियाँ, कुछ कच्ची और कुछ पथरीली। धूप थोड़ी तीखी थी और चारों ओर सिर्फ़ पेड़, झाड़ियाँ और खामोशी थी। जैसे-जैसे ऊपर चढ़ते गए, मन में एक अजीब-सी बेचैनी जागने लगी। शायद जो दिख नहीं रहा, वही सबसे बड़ा रहस्य है। हमने अंतिम सीढ़ी पार की, तो सामने का दृश्य हमें अवाक कर गया।

एक गोलाकार, पूर्ण वृत्त में बना पत्थर का मंदिर - 64 योगिनी मंदिर, जिसकी वास्तुकला इतनी सटीक थी कि पहली नज़र में ही समय थम-सा गया। मध्य में खुला आँगन, चारों ओर एक जैसे 64 कोष्ठक, प्रत्येक में देवी की मूर्ति के लिए स्थान, उनके पीछे पत्थर की शांत, अनुभवी दीवारें और केंद्र में एक शिवलिंग। यह न केवल एक धार्मिक स्थल है, बल्कि एक शक्तिपीठ और तांत्रिक साधना का केन्द्र भी माना जाता है। माना जाता है कि इस मंदिर का निर्माण कलचुरी वंश के राजा देवपाल ने 1323 ईस्वी में करवाया था। कुछ इतिहासकार इसे प्राचीन खगोल एवं गणित शास्त्र के अध्ययन स्थल के रूप में भी मानते हैं।

ऊपर खुला आकाश था, कोई छत नहीं। यह आकाश ही तो था, जो यहाँ की तांत्रिक साधना का मौन साक्षी रहा होगा। पूरे परिसर में कोई पुजारी नहीं, पूजा की कोई तैयारी नहीं, फिर भी वहाँ एक गहन आध्यात्मिक ऊर्जा थी, मानो वहाँ की शिलाएँ ध्यानमग्न हों। उस क्षण समझ आया कि जो स्थल बाहर से साधारण लगता है, वही भीतर से सबसे अधिक

गहन होता है। उस क्षण हमारे चरणों में थकान थी, पर हृदय में विस्मय। मेरे लिए यह मंदिर उस साँझ की उतरती धूप के कारण सबसे अधिक यादगार बना। सूर्य की किरणें गोल दीवारों से टकराकर मंदिर के भीतरी भाग में उतरती हैं, तो वहाँ गोलाकार प्रकाश का नृत्य होता है - मानो कोई बिना किसी वाद्य के ध्यानमग्न मुद्रा में अंतर्यात्रा कर रहा हो।

जिस बात ने हमें सबसे अधिक विस्मित किया, वह थी इस मंदिर की बनावट और भारत के संसद भवन के बीच की समानता। गोलाकार संरचना, केंद्र में खुला भाग और चारों ओर स्तंभ। यह सब देखकर सहज ही ध्यान संसद भवन की ओर चला गया। वास्तव में, कई वास्तु विशेषज्ञ मानते हैं कि जब सर एडविन लुटियन्स और सर हर्बर्ट बेकर ने भारत की राजधानी का नक्शा तैयार किया, तो उन्होंने मितावली के इस मंदिर से प्रेरणा ली थी। यह जानकर भीतर गर्व का संचार हुआ कि जिस भवन में आज देश की राजनीति की धड़कन बसती है, उसकी नींव की प्रेरणा किसी पश्चिमी विचार से नहीं, बल्कि हमारी ही मिट्टी के प्राचीन ज्ञान और स्थापत्य से निकली है। इस मंदिर में खड़े होकर मैं चारों ओर देख रही थी। ऐसा लगा जैसे किसी अनदेखे कालखंड में प्रवेश कर लिया हो। हम चारों अपने-अपने विचारों में मग्न उस स्थल की अनोखी उर्जा को महसूस कर रहे थे। शायद सभी के मन में एक ही विचार था कि क्या कभी प्राचीन भारत की योगिनियाँ भी इसी वृत्त में शक्ति का आवाहन करती होंगी? वहाँ की चुप्पी कोई साधारण सन्नाटा नहीं थी। यह मौन ध्यान में गूँजता है, साधना में प्रकट होता है। शिवलिंग के पास कुछ पल बैठना, किसी गहरे आत्मिक अनुभव से गुज़रना था।

शाम तक हम वापस ग्वालियर लौट आए, लेकिन मितावली मंदिर का प्रभाव मन में देर तक बना रहा। दिल्ली लौटने के बाद भी कई दिनों तक उस गोल वृत्त, उन योगिनियों की टकटकी और वहाँ के शून्य की स्मृति बनी रही। हम आज भी उस दिन को एक ऐसे पल के रूप में याद करते हैं, जब अतीत और वर्तमान एक ही बिंदु पर आकर ठहर गए थे।

हमारी यह तीन दिवसीय यात्रा एक वृत्त की तरह पूरी हो गई। ग्वालियर का किला, मितावली की योगिनियाँ और बटेश्वर के सौम्य देवालय; तीनों ने मिलकर एक ऐसी यात्रा रच दी, जो अब केवल स्मृति नहीं, बल्कि आत्मा में बसी अनुभूति है। बटेश्वर की पुनर्जीवित ऊर्जा, गढ़ी पडावली का रहस्यमय वैभव और मितावली का मौन ध्यान, तीनों ने हमें यह अनुभव कराया कि भारत केवल वर्तमान में जीवित देश नहीं, बल्कि काल की गहराइयों में रचा-बसा एक आध्यात्मिक और बौद्धिक महादेश है। दिल्ली लौटकर मैंने अपने मित्रों से इस यात्रा का ज़िक्र किया और कुछ चित्र साझा किए, तो उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ कि ग्वालियर के पास इतने अद्‌भुत, प्राचीन और अनदेखे स्थल हैं। इस यात्रा की सबसे बड़ी सुंदरता उस इतिहास को जानना था, जो किताबों में नहीं, बल्कि मिट्टी और पत्थरों में लिखा गया है। हम अपने साथ सिर्फ़ तस्वीरें नहीं लाए, एक मौन अनुभव, एक आत्मिक स्मृति और एक सीख लेकर लौटे कि यात्रा केवल स्थान बदलने का नाम नहीं, बल्कि दृष्टि बदलने का अनुभव है।

bhawnasaxenactb@gmail.com

महाकुंभ : एक यात्रा

आस्था दीपाली
बिहार, भारत

13 फ़रवरी को सुबह 10:30 बजे मम्मी का कॉल आया - "महाकुंभ चलोगी?" मैंने "हाँ" तो कह दिया, लेकिन मन-ही-मन दिमाग में कई सवाल उमड़ने लगे - कैसे जाएँगे? कब जाएँगे? किसके साथ जाएँगे? शुरुआत में बस इतना ही पता चला कि गाड़ी से जाएँगे। 14 फ़रवरी को शब-ए-बारात की छुट्टी थी। अतः मैंने 15 फ़रवरी का आकस्मिक अवकाश ले लिया।

महाकुंभ प्रयागराज जाने की इच्छा तो हमेशा से ही थी, लेकिन समय की नज़ाकत को देखते हुए अक्सर लगता था कि कभी बाद में जाएँगे। ऐसा इसलिए था, क्योंकि ट्रेन की लचर व्यवस्था को देखकर एक सामान्य नागरिक यात्रा पर जाने की सोच भी कैसे सकता है? सामान्यतः आवागमन के

लिए ट्रेन ही पहला विकल्प होती है, इसलिए सबसे पहले उसी का ख्याल आया। किंतु सोशल मीडिया पर प्रतिदिन सामने आ रही घटनाओं को देखकर समझ में आया कि अब इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि आपके पास ट्रेन का टिकट है या नहीं। भीड़ इतनी अधिक है कि जिनके पास टिकट है, वे भी ट्रेन में चढ़ नहीं पा रहे हैं और जो किसी तरह चढ़ गए हैं, वे अंदर से दरवाज़े बंद कर बैठे हैं, क्योंकि ट्रेन में चढ़ने लायक जगह ही नहीं बची है। इन्हीं सब व्यवस्थाओं को देखकर लगा कि अब कार ही सबसे सुरक्षित विकल्प है। सोशल मीडिया पर दिखाए जा रहे रील्स और वीडियो में कारों की वजह से लगने वाले जाम को भी नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता था। फिर भी मन को दृढ़ करते हुए और ईश्वर का नाम स्मरण करते हुए हमने अगले दिन सुबह 10:45 बजे अपनी यात्रा प्रारंभ की।

हम कुल 15 लोग थे, जिनके लिए तीन गाड़ियों की व्यवस्था की गई थी। हमारी पहचान के एक अंकल थे, जिनके परिवार के साथ हमारा जाना तय हुआ। मैं गूगल मैप पर देखने लगी कि प्रयागराज पहुँचने में कितने घंटे लगेंगे। प्रयागराज, मुजफ्फरपुर से 418 कि.मी. दूर है और वहाँ पहुँचने में लगभग 8.15 घंटे लगते हैं वह भी तब, जब रास्ते में ट्रैफ़िक जाम न मिले। सफ़र की शुरुआत होती है और हम सभी गाड़ी में बैठ जाते हैं। जिस गाड़ी में हम बैठे थे, उसमें कुल चार लोग थे - मैं, मम्मी, एक महिला और उनके पति। साथ ही, एक ड्राइवर साहब थे, जो लगभग 20-25 वर्ष के होंगे।

हम मुजफ्फरपुर से निकले और गोरौल, वैशाली के एक पेट्रोल पंप पर बाकी दो गाड़ियों के लोग एकत्रित हुए। मुजफ्फरपुर से गोरौल के बीच कुढ़नी रेलवे स्टेशन के पास ही मेरा विद्यालय स्थित है। मैंने मम्मी को उत्साहपूर्वक अपना विद्यालय दिखाया। फिर गाड़ी की रफ़्तार बढ़ी और हम हाजीपुर पहुँचे और ओवरब्रिज पार करते हुए पटना स्थित दीघा की ओर मुड़े। पटना छपरा रॉब ब्रिज के मोड़ पर ही हरे-हरे, ताज़े एवं मीठे अमरूद के ठेले दिखे और बगल में चाय की टपरी दिखी। सभी गाड़ियाँ अमरूद के ठेले के पास रुकीं और हम सभी ने वहाँ के मीठे अमरूद खरीदे। कुछ अमरूद तो वहीं पर खाए और कुछ को कटवाकर आगे के सफ़र के लिए रख लिये। बीच दुपहरी में ठंडी बहती हवाएँ और तेज़ धूप में खड़े होकर चाय की चुस्की लेते हुए मन गदगद हो उठा। कुछ देर वहाँ रुकने के बाद हम जेपी गंगा पथ की ओर बढ़े। पहले हमने सोनपुर ब्रिज से गंडक नदी को पार किया और थोड़ा आगे बढ़ने पर हमें गंगा नदी मिली। गंगा की लहरों को देख मन मोहित-सा हो गया। शीतल जल, कलकल करती ध्वनि और प्रकृति के बीच गंगा की हिलोर मारती लहरों का दृश्य देखने लायक था। मन में एक विचार उपजा - हम तो गंगा में ही डुबकी लगाने जा रहे हैं, तो क्यों न यहीं डुबकी लगा ली जाए? फिर संगम का ख्याल आते ही हम आगे दानापुर की ओर बढ़े। पटना से दानापुर जाते समय हमने पाटलिपुत्र रेलवे स्टेशन देखा, जिसके पीछे 2-3 किलोमीटर तक झोपड़ियाँ बनी हुई थीं, जो ज़मीन पर नहीं, बल्कि नाले के ऊपर थीं। सभी मकान एक ढलान पर बने हुए थे। ऊपर की ओर रेलवे स्टेशन और नीचे की ओर नाले के ऊपर फैली तमाम झुग्गियाँ। छोटे-छोटे बच्चे उस नाले के किनारे अपना दैनिक कार्य कर रहे थे। मैं अचंभित होकर सोच रही थी कि कैसे ये लोग ऐसी जगह पर रह पा रहे हैं, जहाँ हम नज़र तक डालना पसंद नहीं करते।

दानापुर रेलवे स्टेशन पर बहुत जाम था। भारी-भरकम गाड़ियाँ और पतली, टूटी-फूटी सड़कें, शायद ये सड़कें चुनावी तैयारियों तक ही बनी थीं। फिर हमने बिहटा की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में हमें कई ऐसी सरकारी सड़कें दिखीं, जिन पर लोग अपने मन से घर बना चुके थे और सरकार उन सभी घरों को तोड़कर सड़क चौड़ी कर रही थी। मकान तो टूटा-फूटा था, किंतु उसमें रहने वाले लोग अभी भी वहीं रह रहे थे। इसी बीच दानापुर पार करते हुए ऐसे-ऐसे विद्यालय दिखे, जो या तो ज़मीन में धँसने के कगार पर थे या फिर जर्जर स्थिति में थे। मैं सोच रही थी कि कैसे यह विद्यालय चलता होगा और यहाँ किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता होगा।

राष्ट्रीय राजमार्ग पर हम आरा की ओर अग्रसर हुए। रास्ते में हमें एनआईटी पटना दिखाई दिया, शहर से बिल्कुल दूर, एकांत में, लाल रंग में रंगा, बिहटा में नवनिर्मित विस्तृत

परिसर। इसके बाद हम सभी एक लाइन होटल के पास रुके। तीन बज चुके थे और सभी को भूख लग रही थी। सभी ने घर से लाया हुआ अपना भोजन निकाला और हम सबने एक साथ मिलकर भोजन किया। फिर हम आरा से बक्सर की ओर बढ़े। चार बजते ही शाम ढलने लगी। सूर्य की दिव्य रोशनी अब मद्धम लालिमा में बदल चुकी थी और उसकी विस्तृत लालिमा पूरे आसमान में फैल गई थी। सूर्य क्षितिज से मिलने को तैयार था। इस अप्रतिम दृश्य को निहारते हुए शाम ढल गई और हम मोहनिया की ओर अग्रसर हुए। मोहनिया बिहार और उत्तर प्रदेश की सीमा रेखा के पास ही था। इसलिए प्रयागराज जाने के लिए गाड़ियों की भरमार थी। ट्रक से लेकर बड़ी और छोटी गाड़ियों की लंबी-लंबी कतारें लगी थीं। इसीलिए टोल नाका पार करते समय हमें भारी जाम का सामना करना पड़ा। इसी जाम में यह नज़ारा देखने को मिला कि दिव्य स्थल महाकुंभ, प्रयागराज जाने के लिए लोग अपनी-अपनी सुविधानुसार विभिन्न साधनों का प्रयोग कर रहे थे। टेम्पो से लेकर छोटी ट्रक, बड़ी ट्रक, बोलेरो, स्विफ़्ट तमाम बड़ी से लेकर छोटी गाड़ियाँ मुझे उस जाम में नज़र आ रही थीं। गाड़ियाँ चल रही थीं, वह तो स्वाभाविक था, पर उसमें जिस प्रकार लोग लद कर जा रहे थे, ऐसा दृश्य मैंने कभी नहीं देखा था। ट्रक में ही बाँस से डबल डेकर बनाकर सोते हुए लोग, भजन गाते हुए लोग, बड़े-छोटे, बूढ़े-बच्चे, अमीर-गरीब सब तरह के लोग नज़र आ रहे थे। बिहार, बंगाल, झारखंड, असम की गाड़ियाँ नज़र आ रही थीं। कहाँ-कहाँ से लोग गंगा मइया में डुबकी लगाने महाकुंभ जा रहे थे। इतनी श्रद्धा, इतनी आस्था कि किसी भी मुश्किल का सामना करने को लोग सहर्ष तैयार थे।

टोल नाका पार करते ही हम उत्तर प्रदेश में प्रवेश कर चुके थे। हमारी गाड़ी सबसे आगे थी, इसलिए हमने रुककर बाकी गाड़ियों के आने का इंतज़ार किया। फिर सभी एक जगह पर एकत्रित हुए। रात के दस बज चुके थे। हम बनारस की ओर बढ़ते हुए प्रयागराज पहुँचने वाले थे। रास्ते में हमें एक दुर्घटना भी दिखी - एक कार दूसरी कार से टकरा गई थी और एक कार डिवाइडर में घुस गई थी। एक घड़ी के लिए मैं सन्न रह गई। लेकिन यात्रा थी, इसलिए हम आगे बढ़ते रहे। धीरे-धीरे वाराणसी को पार करते हुए हम प्रयागराज की धरती पर पहुँचने वाले थे। वाराणसी और प्रयागराज की सीमा पर फिर से हमें जाम का सामना करना पड़ा। कुल मिलाकर आठ घंटे का सफ़र कब पंद्रह घंटे में तब्दील हो गया, पता ही नहीं चला। तमाम गाड़ियों की भीड़ की वजह से मौसम भी गर्म हो चुका था। हम जाम में धीरे-धीरे सरकते हुए आगे बढ़ते रहे। बीच-बीच में ड्राइवर भइया, जिनका नाम सत्यम था, अपने मोबाइल में जाम के स्नैप भेज रहे थे। कभी वे अन्य गाड़ियों के लोगों से बातचीत कर रहे थे कि वे कहाँ तक पहुँच पाए हैं। भले ही वे मोबाइल बीच-बीच में चला रहे थे, लेकिन गाड़ी भी बेहतरीन ढंग से चला रहे थे। उन्होंने अपने कुछ किस्से हमसे साझा किए। उन्होंने बताया कि वे पुलिस में भर्ती होने की तैयारी कर रहे थे और लिखित एवं मेडिकल राउंड में सफलतापूर्वक उत्तीर्ण भी हुए थे, लेकिन इंटरव्यू में उनसे पाँच लाख रुपए माँगे गए, ताकि उनका चयन हो सके। एक और वाक्या उन्होंने बताया कि गाड़ी चलाना उन्होंने शौक पूरा करने के लिए सीखा था। उन्होंने पुलिस में ड्राइवर के पद के लिए भी परीक्षाएँ दी थीं, लेकिन विडंबना यह कि बिना पैसे दिए नौकरी मिलना नामुमकिन था। फिर यही शौक उनकी किस्मत बन गया, बावजूद इसके उनके चेहरे पर एक पल भी कोई शिकन दिखाई नहीं दी। वे मस्ती में कभी अरिजीत सिंह का गाना बजा रहे थे, कभी नब्बे के दशक के गाने, तो कभी पार्टी वाले गाने फुल वॉल्यूम में।

हम प्रयागराज की पावन धरती पर रात्रि भोजन करने उतरे। रात के बारह बज चुके थे। हम एक लाइन होटल में रुके। वहाँ कुछ लोगों ने दाल और तंदूरी रोटी खायी, कुछ लोगों ने भात-दाल और कुछ ने वेज थाली ली। चूँकि बारह बज चुके थे, धीरे-धीरे गाड़ियों की संख्या कम होने लगी थी। हमने खा-पीकर आगे की ओर प्रस्थान किया। ड्राइवर भैया ने बताया कि महाकुंभ के लिए यह उनका पाँचवाँ ट्रिप है, पर वे अभी तक महाकुंभ में स्नान नहीं कर पाए हैं। उन्होंने यह भी बताया कि अन्य गाड़ियों के ड्राइवर भैया जानते हैं कि घाट के सबसे पास कौन-सी पार्किंग है। हमने उन पर विश्वास कर लिया। लेकिन जहाँ तक मेरा महाकुंभ संबंधी शोध था, मुझे पता था कि अरैल घाट जाना सरल रहेगा और वहाँ से नाव

लेकर बीच संगम तक पहुँच सकते हैं। चूँकि हम शुक्रवार को पहुँचने वाले थे, हमें मालूम था कि शनिवार और रविवार होने की वजह से बहुत भीड़ होगी। हमने बस यही सोचा था कि हम ऐसे समय जाएँ जब भीड़ कम मिले। रास्ते में यह भी चर्चा हुई कि अगर रात में पहुँचेंगे, तो उसी समय स्नान कर वापस लौट आएँगे। लेकिन अब रात के एक बज रहे थे। हमने नागेश्वर पार्किंग में अपनी गाड़ियाँ खड़ी कीं। हम सभी एकत्रित होकर उतरे, पर यात्रा तो अभी शुरू ही हुई थी। असली यात्रा का मज़ा तो अब शुरू होने वाला था। नागेश्वर घाट लगभग दो किलोमीटर दूर था। हम सभी पैदल एक साथ उस ओर बढ़ने लगे। हमारे अलावा अन्य श्रद्धालु भी नागेश्वर घाट की ओर जा रहे थे। तमाम गलियों को पार करते हुए हम नागेश्वर घाट पहुँचे। वहाँ संगम के बाद गंगा बह रही थी। चूँकि रात का समय था, तमाम लाइटें जलाई गई थीं, जिनका प्रतिबिंब नदी में बन रहा था। यह दृश्य अत्यंत सुंदर था। मन हुआ कि यहीं डुबकी लगा लें। लेकिन हम सभी धीरे-धीरे नदी के किनारे बने रास्ते पर चलने लगे। मैंने गूगल मैप देखा, तो पता चला कि संगम घाट आठ किलोमीटर दूर है। यह देखकर मेरा मन खिन्न हो उठा, जब पता था कि अरैल घाट पास है, तो हम नागेश्वर घाट क्यों उतरे? लेकिन अब जो किया, सो किया। हम धीरे-धीरे अपने ग्रुप के साथ आगे बढ़ने लगे।

मुझे एक और चीज़ दिखी, वह थी बाइक सेवा। बाइक लिए कुछ लोग सवारी बिठा रहे थे और उचित से अधिक भाड़ा माँग रहे थे। लेकिन हम सभी एक साथ थे, तो हम पैदल ही आगे बढ़ने लगे। मैं बार-बार मैप देखती रही कि हम कब पहुँचेंगे। मैं अंकल से पूछ रही थी, "रात में ही डुबकी लगानी होगी क्या?" अगर ऐसा हुआ, तो हम सुबह का एक भी दृश्य नहीं देख पाएँगे और फ़ोटोज़ भी नहीं ले पाएँगे। मैं जानती थी कि तीर्थ-स्थल पर ऐसा सोचना ठीक नहीं है, लेकिन मन-ही-मन सोचने लगी कि काश सूर्योदय जल्दी हो जाए। कंधे पर बस्ता टाँगे, धीरे-धीरे चल तो रही थी, लेकिन पैर अब दर्द करने लगे थे। हम रास्ते में आए तमाम घाटों को पार करते हुए आगे बढ़ रहे थे। फिर हमें संगम घाट की ओर जाने का बोर्ड दिखाई दिया। मैं बार-बार मैप देख रही थी, इसी उम्मीद में कि शायद कुछ किलोमीटर कम तो हुए होंगे। ऐसा करते-करते हम संगम घाट की ओर बढ़ते चले गए।

महाकुंभ का असली मेला तो अब शुरू होता है। हम एरावत द्वार से अंदर जाने लगे, लेकिन चलते-चलते मेरी हालत खराब हो चुकी थी। जूती की वजह से मेरे पैर में फोका भी पड़ने लगा था। मैं अपनी जूती उतारकर मोज़े पहनकर चलने लगी। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर हम घाट पहुँचने के लिए पुलिस की सहायता भी ले रहे थे। तमाम टेंटों को पार करते हुए हम धीरे-धीरे घाट की ओर बढ़े। असली भीड़ का नज़ारा अब देखने को मिलने लगा। कई लोग घाट के एक-एक शेड में बैठे या सोए हुए थे। जगह-जगह कई शौचालय थे, लेकिन मेरी हिम्मत नहीं हुई कि मैं फ़्रेश हो आऊँ। हम त्रिवेणी संगम घाट के पास पहुँचे और वहाँ से संगम नोज की ओर देखने लगे। एरावत द्वार के पास ही पुलिस ने बताया था कि सेक्टर छह से हम संगम नोज पॉइंट की ओर जा सकते हैं। लेकिन मेरे अलावा शायद सभी ने ध्यान नहीं दिया और हम आगे बढ़ गए। त्रिवेणी घाट से संगम नोज पॉइंट जाने के लिए पूरा यू टर्न लेना पड़ेगा, ऐसा सोचते हुए हम लोग थोड़ी देर रुके। फिर लगा कि जब इतनी दूर आए हैं, तो संगम नोज पॉइंट ही चलते हैं। हालाँकि त्रिवेणी घाट से यह साफ़ नज़र आ रहा था कि संगम नोज पॉइंट पर अत्यधिक भीड़ है। जहाँ हम खड़े थे, वहाँ पीपा पुल नंबर एक था और हमें संगम नोज पॉइंट जाने लिए नंबर छह पीपा पुल लेना था। पहले तो मन हुआ कि यहीं स्नान कर लिया जाए, फिर लगा कि चलते हैं, जो होगा देखा जाएगा। चूँकि हम रात को पहुँचे थे और उस समय नाव चलने का समय भी नहीं था, हम चाहकर भी नाव नहीं ले पाए। पता चला कि वीकेंड पर नाव नहीं चलती। आधी रात में, आठ किलोमीटर की दूरी हमने धीरे-धीरे पैदल चलते हुए पाँच घंटे में पूरी की और घाट पहुँचे। मन में जोश और उत्साह भरकर हम सभी पीपा पुल की ओर बढ़े। नंबर एक से छह नंबर का पीपा पुल दूर तो था, पर हम सभी हिम्मत कर उस दिशा में चलने लगे। हमें पता चला कि संगम नोज जाने को केवल एक ही पुल है और उधर से आने को सात-आठ पुल। हम पीपा पुल की ओर बढ़ तो गए थे, लेकिन इतनी भीड़ देखकर हमें अपने निर्णय पर संदेह होने लगा था। फिर भी हम एक-दूसरे को ढाढ़स बँधाते हुए पीपा पुल पर चढ़े। भीड़

इतनी थी कि लोग चलते-चलते कुछ समय के लिए रुक जाते थे और उस समय मैं सोच रही थी कि अगर धक्का-मुक्की हुई, तो हमारा क्या होगा? लेकिन ईश्वर का धन्यवाद कि ऐसा कुछ नहीं हुआ। भीड़ में हम एक साथ आगे बढ़ते रहे। मेरा और मम्मी का हाथ फ़ेविकोल से चिपका हुआ हाथ बन चुका था। हम लोग धीरे-धीरे पीपा पुल पार करने लगे। मैं गंगा को बहते हुए देख रही थी। बीच-बीच में उभरी हुई ज़मीन भी नज़र आ रही थी, जिससे यह अंदाज़ा लगाया जा सकता था कि नदी सूखी हुई है। लेकिन पानी के बहाव में गति थी। हमने धीरे-धीरे पीपा पुल पार कर लिया। अब बारी थी संगम नोज़ पॉइंट पर जाने की। जब हम त्रिवेणी संगम घाट पर थे, तब संगम नोज पॉइंट एकदम हमारे पैरेलल था और हम पूरी गोलाई की तरह रास्ता पार करते हुए संगम नोज़ पॉइंट की ओर बढ़ रहे थे। चलते-चलते पता चला कि सुबह के पाँच बज चुके हैं। हमने रात के डेढ़ बजे चलना शुरू किया था। भीड़ को पार करते हुए हम संगम नोज़ पॉइंट तक पहुँच गए। अब सभी धीरे-धीरे डुबकी लगाने जा रहे थे। मैं थोड़ा उजाला होने का इंतज़ार कर रही थी। मैं भी गंगा मैया की लहरों में डुबकी लगाने जा रही थी। जैसे ही मैं घाट पर पहुँची ठीक पौने सात बजे सूर्योदय हुआ और सूर्य की पहली किरण धरती पर पड़ी। पाँच मिनट के अंदर तमाम पक्षी आसमान में उड़ने लगे। यह मनोरम दृश्य अप्रतिम था। मैं जब डुबकी लगाकर निकली, तभी सूर्य की किरण नदी पर पड़ी और हमें सूर्य देवता के दर्शन हुए। मैंने सूर्य देवता को अर्घ्य दिया, गंगा मैया की लहरों को छूकर आशीर्वाद लिया, घाट को पूजा और बाहर निकल आई। धीरे-धीरे सूर्य की लालिमा बढ़ने लगी और सूर्य की किरणों से आसमान में बने मनोरम दृश्य को मैं कैमरे में कैद करने लगी। जिस प्रकार सूर्य धरती पर प्रकट हो रहे थे, मुझे हरिवंश राय बच्चन की पंक्तियाँ अपनी आँखों के सामने दिखने लगी -

नव-किरण का रथ सजा है,
कलि-कुसुम से पथ सजा है,
बादलों-से अनुचरों ने स्वर्ण की पोशाक धारी।
आ रही रवि की सवारी।

सूर्य देवता बिल्कुल ऐसे ही दिख रहे थे, जैसे स्वर्ण की पोशाक में किसी की सवारी निकल रही हो। नव किरण पर्यावरण में जिस प्रकार का उन्माद भरता है, वह देखने लायक था। हज़ारों पक्षियों की हलचल से ऐसा लग रहा था, मानो सूर्य देवता के आगमन के लिए आसमान में वे नृत्य कर रहे हों। इन तमाम अनुभवों को महसूस करते मैं भूल गई थी कि मेरे पैर में कितना दर्द हो रहा था। गंगा मैया की गोद में जाने के बाद दर्द गायब हो चुका था। मैंने कई लोगों को चंदन टीका लगाते हुए देखा, तो मैं भी शीतल चंदन को अपने ललाट पर लगवाया और सूर्य देवता और गंगा मैया को प्रणाम करके वापस अपने घर की ओर बढ़ने लगी। चलते-चलते मैं इस सोच में पड़ गई कि अरस्तू का त्रासदी सिद्धांत कितना सटीक है। जब तक हमें कोई दुख न झेलना पड़े, तब तक खुशी का अंदाज़ा हम नहीं लगा पाते। अगर मैं इतनी दूर नहीं चलती, तो गंगा में डुबकी लगाने के बाद जो आनंद आया था, वह शायद नहीं आ पाता और इसी के साथ मेरे जीवन में कैथार्सिस प्रयोग सफल नज़र होता आया। वापस जाते समय हम पीपा पुल नंबर एक से जाने लगे और वहाँ पंछियों को आसमान में और बीच नदी में अपना डेरा जमाए देख अत्यंत सुखद अनुभूति हो रही थी। इस प्रकार हमारा महाकुंभ यात्रा सफल रहा और हम अपने घर की ओर लौट चले।

aasthadeepali909@gmail.com

गिरमिटिया देश - मॉरीशस

डॉ. आरती 'लोकेश'
दुबई, यू.ए.ई.

विश्व हिंदी सचिवालय के मॉरीशस में स्थित होने के कारण यह देश वैश्विक हिंदी के लिए जाना जाता है। यहाँ एक सप्ताह भ्रमण कर मैंने इस देश के स्वरूप को जाना। मॉरीशस जाने की इच्छा मन में बहुत समय से थी। वर्ष 2023 के फ़रवरी माह में महात्मा गांधी संस्थान, मोका (मॉरीशस) द्वारा सम्मान दिए जाने की घोषणा पर मन में ही पूरा कार्यक्रम

तैयार कर लिया था। जैसे कहते हैं कि दाने-दाने पर लिखा है खाने वाले का नाम, वैसे ही भूमि के कण-कण पर लिखा है, आने वाले का नाम। मात्र नाम ही नहीं, दिन-दिनांक और समय भी लिखा है। संस्थान का कार्यक्रम ऑनलाइन हुआ, तो अगले वर्ष रबींद्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल और विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस के संयुक्त तत्त्वावधान में होने वाले 'विश्वरंग' 2024 अंतरराष्ट्रीय महोत्सव में सम्मिलित होने का निमंत्रण प्राप्त हुआ। इसकी सहमति देने के साथ ही इस बहुचर्चित देश में घूम आने की तैयारी शुरू हुई।

त्रिदिवसीय सम्मेलन के साथ तीन दिन और घूमने के मानकर हमने छ: दिन निवास का लेखा-जोखा तैयार किया। भारतीय नागरिकों को मॉरीशस के लिए वीज़ा की आवश्यकता नहीं है, यह हमने पता कर ही लिया था। यात्री हम दो ही थे - मैं और मेरे अर्धश्रेष्ठ यानी पतिश्री। हमने 'विस्तारा' एयरलाइंस की उड़ान की दो टिकटें बुक करा लीं। दुबई से एमिरेट्स एयरलाइंस और मॉरीशस एयरलाइंस भी सीधा उड़ान भरती हैं, किंतु इन दो का ही बोलबाला होने के कारण लगभग $2000 प्रति व्यक्ति किराया हमें फ़िजूलखर्च लगा। $1000 की राशि में अपने देश की मिट्टी को छूते हुए जाना भी एक कारण बना कि हम 2 घंटे मुम्बई हॉल्ट कर दुबई से मॉरीशस पहुँच गए।

सर शिवसागर रामगुलाम अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पर हम उतरे। यह यहाँ का इकलौता अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा है और समुद्र किनारे, ब्लू बे के तट के पास स्थित है। हवाई अड्डा छोटा ही है, इसलिए उसकी औपचारिकताएँ पूरी करने में अधिक समय नहीं लगा। इमिग्रेशन के पूर्व एक डेस्क पर हेल्थ डिक्लेरेशन फ़ॉर्म (ESTA Form) जमा कराना होता है। उसे सरकार की 'सेफ़ मॉरीशस' की वेबसाइट पर भी भरा जा सकता है। हम वह पहले से ही भरकर एक कॉपी साथ लाए थे। बहुत-से अन्य सह-यात्रियों ने वहीं खड़े होकर काउंटर पर वह फ़ॉर्म भरा। इमिग्रेशन पर अफ़सर ने हमसे हमारे रुकने की अवधि, होटल की बुकिंग और वापसी की टिकट आदि की पड़ताल की। ये सारे कागज़ात पहले से ही हमने तैयार कर रखे थे। राष्ट्रीय पक्षी 'डोडो' और मॉरीशस के नक्शे से अंकित मुहर पर इमिग्रेशन अफ़सर ने प्रवेश की आज्ञा के साथ 30 दिन की निवास अनुमति जारी कर दी। अपने पासपोर्ट पर भिन्न-भिन्न देशों की मुहर देख बहुत प्रसन्नता होती ही है, जो इस नई मुहर से पुन: उत्पन्न हो गई।

अपनी अटैचियाँ बेल्ट पर से बटोरकर हम मोबाइल सिम की किओस्क की तलाश में जुट गए। बाहर निकलने के पूर्व स्वागत-कक्ष में एमटेल की सिम 370 मॉरीशियन रुपए में ली, जिसमें एक माह के लिए इंटरनेट का भरपूर डेटा और 120 मिनट की बातचीत की सुविधा थी। इसके बाद हमने किराए की जो गाड़ी ली थी, उसकी प्रतीक्षा की। उसके आने पर हम एयरपोर्ट से बाहर निकले। आधा घंटा कार की कागज़ी कार्यवाही में लगा। तब तक अपना सामान कार की पिछली सीट पर जमा ही दिया था। एयरपोर्ट छोड़ा तो हमने सीधा पहले से आरक्षित होटल की राह ली।

चूँकि देश छोटा है, तो हमने सबसे दूर वाले स्थलों से भ्रमण आरंभ किया। इसी कारण पहले दो दिन की बुकिंग 'ग्रांड बे' में रॉयल रोड पर स्थित होटल 'ओशन विला' में कराई थी। यह हवाई अड्डे से 72 कि.मी. दूर मॉरीशस के उत्तरी कोने में स्थित है। इसमें हमें करीब डेढ़ घंटे का समय लगा। रास्ते में बहुत-से मनोरम दृश्य भी दिखे। कभी सपाट सड़क तो कभी दोनों ओर उथली पहाड़ियों से घिरी हुई तो कभी गन्ने के विशाल खेतों के बीच से गुज़रती हुई हमारी यात्रा रही।

होटल बहुत खूबसूरत था और समुद्र-तट पर बना हुआ था। बहुत कलात्मक रूप से सजा हुआ भी था। इसमें दुमंज़िले विला बने हुए थे। हर विला के बाहर प्राइवेट गार्डन था और केंद्र में बड़ा-सा बगीचा तो था ही। तट पर ही घास के कालीन से ढका प्राइवेट मैदान था। उसके पास ही बड़ा-सा तरण-ताल व उसके साथ खुला जलपान-गृह था। समुद्र-तट पर होटल के झूले, बेंत की बेंच आदि की सजावट भी थी। कुल मिलाकर समुद्र के किनारे बगीचे में टहलते हुए रहने का मधुरिम अहसास होता था।

होटल के कर्मचारी अवश्य कुछ अड़ियल किस्म के थे। हमने अपने पहुँचने का समय पहले ही बताकर चेक-इन समय पूर्व सूचित कर दिया था, किंतु विला की उपलब्धता होते हुए भी चेक-इन का काम नहीं करवाया गया। जब हमने

होटल कैंसिल कर दूसरा ढूँढने की ठानी, तब उन्होंने एक बजे हमें कमरा एलॉट किया। इसमें हमारा बहुत समय व्यर्थ हुआ। जब हम अपने कमरे में पहुँचे, तब उसकी सजावट देख सारा मलाल जाता रहा। तौलिए से बने हुए दो सुंदर हंस पलंग पर बैठे हुए थे। बोगनबेलिया के ताज़े फूलों से सजावट की गई थी।

सामान व्यवस्थित कर, स्नानादि के पश्चात् हम सबसे पहले 'ग्रांड बे बाज़ार' देखने गए। यह होटल से केवल तीन किलोमीटर ही दूर था। यह यहाँ का प्रसिद्ध बाज़ार है। यह टिन की छत वाला झोंपड़ीनुमा छोटी-छोटी दुकानों को स्थान दिए हुए सुंदर बाज़ार है। मुख्य प्रवेश द्वार चीनी ड्रैगन से सजा है। अंदर आते ही हँसोड़ बुद्धा की मूर्तियाँ दोनों ओर खड़ी हुई स्वागत करती हैं। चीनी रीति की सजावट वाला सम्पूर्ण वातावरण बहुत जीवंत था। पर्यटकों के आकर्षण की सारी वस्तुएँ यहाँ उपलब्ध थीं। करघे से बना सामान, हस्तशिल्प की वस्तुएँ, स्थानीय कलाकृतियाँ, कपड़े, आभूषण, बैग, घड़ियाँ, छाते, भाँति-भाँति के स्मृति चिह्न व भित्तिचित्र आदि-आदि। हमने लगभग अंत तक बाज़ार का निरीक्षण किया।

जो मित्र पहले ही मॉरीशस होकर आए हुए थे, उन्होंने यहाँ मिलने वाले बेबी अनानास के बारे में बताया था। ग्रांड बे बाज़ार के बाहर कई ऐसी दुकानें मिलीं। एक दुकान पर हमने डिज़ाइन में कटे हुए मसालेदार बेबी अनानास खाए। उसके बाद केसरी रंग के नारियल को कटवाकर उसका पानी पीया। दुकानदार ने बड़े स्नेह और आग्रह से हमें नारियल की मलाई भी एक दोने में रखकर परोसी। बहुत सात्विक अहसास व आनंद आया।

इसके बाद हम 'ट्रू-ऑ बिश' नामक समुद्र-तट पर गए। यह सागर-तट 19वीं शताब्दी में फ़्रांसीसियों द्वारा विकसित किया गया था। फ्रेंच भाषा में इसका अर्थ होता है - 'हिरण छिद्र'। 18वीं शताब्दी में मछली पकड़ने और शिकार करने के लिए यह स्थान प्रयुक्त होता था, कदाचित इस कारण ही समुद्र-तट का यह नामकरण हुआ होगा। अब यह एक सुंदर शहर में तब्दील हो चुका है।

यहाँ कार खड़ी करने का स्थान व मार्ग बड़ी मुश्किल से नसीब हुआ। एक बार कार से उतरकर तट की ओर पहुँचे, तो एक भव्य मनोरम दृश्य ने हमारा स्वागत किया। मॉरीशस का सबसे सुंदर बीच इसे कहा जाता है। इस तट पर सफ़ेद सुंदर रेत चाँदी-सी चमकती है। तट पर कँटीले ओक वृक्षों की भरमार है। लाल पत्तों से जड़े हुए देशीय बादाम के पेड़ों ने तो इस स्थान की रंगत ही निखार दी थी।

समुद्र-तट पर सभी प्रकार की जल-क्रीड़ाओं के उपकरण किराए पर उपलब्ध थे। नन्ही-मुन्नी और बड़ी-बड़ी कई नावें समुद्र की छाती पर लोट रही थीं। पैडल बोट, वाटर स्कूटर, राफ़्टिंग आदि की व्यवस्था भी थी। अगर विश्राम करना हो या सूर्यस्नान, वह भी किया जा सकता है। सूर्यास्त का दृश्य भी यहाँ बहुत यादगार है।

इसके किनारे बहुत-से रिज़ॉर्ट, होटल, स्पा, शॉपिंग व रेस्टोरेंट आदि का जमावड़ा है। इससे कुछ ही दूरी पर महेश्वरनाथ मंदिर भी है। यह मंदिर 1888 में बनाया गया था। हमने मंदिर के दर्शन की बजाय पोर्ट लुई बाज़ार व चाइना टाउन जाने का विचार किया। यह इस स्थान से 24 किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम दिशा में था। यह निर्णय कुछ ठीक प्रतीत नहीं हुआ। इस समय तक सड़क पर ट्रैफ़िक की मारामारी शुरू हो गई थी। हम नहीं जानते थे कि यहाँ दफ़्तर व बाज़ार शाम साढ़े चार बजे बंद हो जाते हैं। ट्रैफ़िक की जद्दोजहद से दो-चार होकर जब तक चाइना टाउन पहुँचे, वह बंद हो चुका था। फिर हमने पास में ही पोर्ट लुई वाटरफ़्रंट का रुख किया।

सड़क के उस पार से ही तीन मूर्तियों वाला पार्क दिखाई देने लगा। यह स्थान 'ले कोडाँ वाटरफ़्रंट' कहलाता है। इस पर सर अनिरुद्ध जगन्नाथ (मॉरीशस के पूर्व प्रधानमंत्री), सर शिवसागर रामगुलाम (मॉरीशस के प्रथम प्रधान मंत्री) तथा प्रोफ़ेसर बासुदेव विष्णुदयाल (स्वतंत्रता-पूर्व सामाजिक कार्यकर्ता) की प्रतिमाएँ स्थापित हैं। फ़िलहाल इनके पास तक जाना संभव न था। कुछ निर्माण-कार्य के चलते, इन्हें चारों ओर से बाड़ से घेर दिया गया था। इनके पास से निकलते हुए हम 'पोर्ट लुई' पहुँचे।

यह स्थान समुद्र किनारे विकसित अभिजात्य सौंदर्य से भरपूर है। लगभग सभी बड़े पाँच सितारा होटल यहाँ पर हैं। हस्तकला के कारीगरों के आलीशान शोरूम तथा अन्य कई नामी-गिरामी दुकानें यहाँ हैं। इसके ठीक पहले ही पोस्ट

ऑफ़िस है, जिस पर मॉरीशस का झंडा लहरा रहा था। एक पुरातन रीति के निर्मित भवन के बाहर पवन चक्की भी लगी हुई थी।

इस विकसित स्थल पर कई बाज़ार-घर और भूमिगत स्टेशन भी हैं। खाने-पीने के लिए तो यह स्थान स्वर्ग के समान है। आलीशान इमारतों के सामने फैला हिंद महासागर और उसमें डूबते सूरज का नारंगी प्रकाश इस स्थान को सौम्यता में नहला गया। मौसम सुहावना होने से रेस्तराँ के बाहर खुले में बैठकर भोजन या जलपान करने वाले बड़ी संख्या में थे। एक-दो भारतीय भोजनालय भी वहाँ थे। हमने एक दक्षिण भारतीय रेस्तराँ में खाना खाया।

पोर्ट-लुई में वैश्विक धरोहर 'आप्रवासी घाट' और 'स्लेवरी म्यूज़ियम' भी हैं। ये भी शाम को जल्दी ही बंद कर दिए जाते हैं। इसे हम बाद में देखेंगे, ऐसा मन में तय कर लिया था। खाना खाकर चहलकदमी करते हुए हम दूर तक निकल गए। कई स्थान नाव के पालों से सजाए गए थे और कई छतरियों से सुशोभित किए गए थे। रास्ते में कई कसीनो आदि भी पड़े। एक ने हमारा ध्यान विशेष आकर्षित किया। यह नाव के आकार का बना हुआ था, जिसे रथ के समान हाँकने के लिए एक शेर की मूर्ति बनी हुई थी। इसका सिर शेर का तथा पैर घोड़े के थे। 'ले कसीनो' नामक यह स्थान बहुत रम्य था। अँधेरा हो ही चुका था। अत: हम वापस होटल लौट आए। तब तक सड़क पर यातायात कुछ हल्का हुआ था।

होटल पहुँचकर हमने पाया कि नाश्ते-पानी के स्थान पर ज़ोर-शोर से संगीत बज रहा है और नृत्यादि का कार्यक्रम हो रहा है। अच्छी-खासी भीड़ जुटी हुई थी। हमने भी अफ़्रीकी सभ्यता वाले नृत्य-संगीत का आनंद लिया। हम पार्क में कुछ देर टहलने चले गए। रात देर तक संगीत की आवाज़ें आती रहीं।

अगले दिन सुबह-सुबह ही हम नाश्ते से पहले रोमन कैथलिक चर्च 'नोट्र डेम ऑक्सीलिट्रीस चेपल' देखने गए। यहाँ पहुँचने में होटल से 18 मिनट लगे। यह करीब 8 किलोमीटर दूरी पर था। यह मॉरीशस के उत्तरी शीर्ष पर बना एक प्रसिद्ध गिरजाघर है। यह हिंद महासागर में बने कच्छ तट के किनारे स्थित उसकी शोभा को बहुगुणित करता है। पहले बहुत-से जहाज़ यहाँ आकर भटक जाते थे, अत: यह चर्च पूर्वकाल में हुई जहाजी दुर्घटनाओं की याद में बनाया गया है। इसके नाम का उद्गम शब्द 'केप मल्हिरोक्स' से हुआ है, जिसका अर्थ होता है - दुर्भाग्य की शरारत। यह ग्रांड बे के समीप ही केप मल्हिरोक्स नामक स्थान पर बना हुआ है। यहाँ मछली पकड़ने का व्यवसाय भी फल-फूल रहा है।

यहाँ आकर बहुत ताज़गी और आनंद महसूस हुआ। बहुत-से बुज़ुर्ग यहाँ प्रात: सूर्य की किरणों से शरीर में ऊर्जा का संचार करते हुए या विश्राम करते हुए भी मिले। सफ़ाई कर्मचारी अपना कार्य करने में मगन दिखाई दिए। दूर समुद्र में कुछ पठारी टापू भी दिख रहे थे। गूगल पर ढूँढने पर पता चला कि वे 'गनर्स क्यूऑन' टापू समूह हैं। इसमें लगभग तीन छोटे और एक बड़ा टापू है, जो कि तट से 5-6 किलोमीटर दूर हैं।

समुद्र की शांत लहरें सूर्यागमन का जलाभिषेक कर बार-बार उसके चरण पखार रही थीं। लहरों पर खुली घूमती कुछ सुंदर नावें अठखेलियाँ करती बाल-क्रीड़ाएँ कर रही थीं। समुद्र-तट पर बहुत-से काले रंग के प्राकृतिक पत्थर वातावरण की सौम्यता को बढ़ा रहे थे। एक औंधी पड़ी नाव इस तट के नाम को सार्थक करती प्रतीत होती थी। विशाल बादाम के पेड़ से झूला लटक रहा था। हम बहुत देर बारी-बारी उस पर झूलते रहे और बेलौस अंदाज में क्षण व्यतीत करते रहे।

होटल में जलपान के पश्चात् हमने निजी सागर-तट का भी मुआयना किया। यह भी कम आकर्षक न था और बहुत भीड़-भाड़ वाली जगह पर था। चीनी टोपी के आकार की बेंत और सूखी घास-पत्तियों से बनी छतरियों और उसके नीचे बनाई गई बैठने की व्यवस्था जितना मन को लुभाती थी, उतना ही वह दृश्य आँखों को आकर्षित करता था।

इस सुरम्य तट का भरपूर आनंद उठाने के बाद हम यहाँ से सामान बाँधकर होटल हेनेसी पार्क के लिए रवाना हुए। यह तत्कालीन होटल से 40 कि.मी. दूर था और सीधा-सीधा 45 मिनट का रास्ता था। यह होटल मॉरीशस के हृदयस्थल में स्थित था। इसमें चेक-इन कर हम 'शामारैल' के लिए निकल पड़े। यहाँ दो मुख्य दर्शनीय स्थल हैं - शामारैल वाटरफ़ॉल

तथा सतरंगी भूमि।

सत्रहवीं सदी में शामारैल का यह स्थान इसी नाम के एक फ़्रांसीसी व्यक्ति की मिल्कियत में था। उसे यहीं पर झरने और सतरंगी धरती का पता चला था। यहाँ रहते हुए उसने आस-पास के जंगलों की कटाई करवा कर गन्ना, कपास, कॉफ़ी और नीम की खेती शुरू कर दी थी।

सवा घंटा और 44 किलोमीटर दक्षिण दिशा में कार यात्रा कर हम शामारैल के मुख्य द्वार पर पहुँच चुके थे। अंदर कार खड़ी करने का खुला मैदान था। 550 मॉरीशन रुपए (₹1000) प्रति व्यक्ति टिकट ली गई, जिसमें झरना और सतरंगी धरती दोनों शामिल थे। पहले झरना ही देखा जाना था।

पार्किंग स्थल से झरने की दूरी अधिक नहीं थी। बहुत अधिक चलना नहीं पड़ा। एक छज्जे जैसी जगह से झरना दिख जाता है। इस स्थान से झरना दूर ही नज़र आता है और उसके साथ तस्वीरें कम ही बन पाती हैं। वहीं झरने और सतरंगी टीलों से जुड़ी जानकारी के कुछ बोर्ड प्रदर्शित थे। उसी के पास हमें ऊपर जाती हुई सीढ़ियाँ दिखाई दीं। बहुत से युवक उन पर जा रहे थे। उत्सुकतावश हम भी उन पर हो लिये। इस ट्रेल पर दोनों ओर घने पेड़ होने से जंगल से गुज़रने जैसा अहसास होता था। सीढ़ियाँ पार कर हम एक और छज्जे पर पहुँच गए, जहाँ से झरने का निर्बाध दृश्य प्रकट होता था। इस चबूतरे के एक ओर झरना तो दूसरी ओर के पठार पर वृक्षमूल का सौंदर्य भी अलग ही शोभा लिए हुए था। वृक्षों की जड़ें ज़मीन से बाहर निकल एक जाल बनाती हुई धरती पर फैली थीं। सच है, मनुष्य का हस्तक्षेप न हो, तो प्रकृति अपने सर्वोत्तम रूप में विद्यमान होती है।

इस स्थान पर एक और ट्रेल पर्यटक को झरने के नीचे तलैया तक ले जाती है। यह तीन किलोमीटर लम्बी ट्रेल है। झरने की गुप्त घाटी में होते हुए ताल में तैरने का प्रयास भी किया जा सकता है। यहाँ ऊष्णकटिबंधीय वृष्टिवन जैसा अनुभव होता है। सारी ट्रेल पूरी तरह से सुरक्षा पैमानों पर खरी उतरती हैं।

इस संरक्षित पार्क के चारों ओर घना वन है। उसके पेड़ों के तनों पर भी अलग-अलग रंग के चकत्ते दिखाई दिए, जो रंगीली मिट्टी में उगे होने और लवणयुक्त पानी से सींचे जाने के परिणामस्वरूप बने हैं।

शामारैल तक पहुँचने का रास्ता पहाड़ियों से होकर निकलता है। वहाँ से वापस आने में कई व्यूप्वाइंट पर गाड़ी रोककर हमने हिंद महासागर की सुंदर तसवीरें निकालीं। रास्ते भर गन्ने के खेत हमारा साथ देते रहे।

होटल पहुँचकर हम तैयार हुए और विश्वरंग की ओर से आयोजित 'मीट एवं ग्रीट' रात्रिभोज के लिए पोर्ट लुई में स्थित होटल 'ली मेरीडियन' विश्वविद्यालय की वैन द्वारा पहुँचे। सभी प्रवासी साहित्यकारों तथा आयोजकों से मिलना-मिलाना बहुत अच्छा रहा।

अगले दिन 7 अगस्त थी और सुबह से ही 'विश्वरंग' महोत्सव का शुभारंभ होना था। रंग-बिरंगी झाँकी व सांस्कृतिक प्रदर्शन से हुए श्रीगणेश के बाद वार्ताएँ व गोष्ठियों के सत्र पूरा दिवस रहे, तो शाम के समय वापस आकर होटल के पास ही स्थित भारतीय उच्चायोग का बाहर से दौरा किया और 'इंडियन समर रेस्टोरेंट' में भारतीय भोजन का आस्वादन किया। मॉरीशस में इतने भारतीयों के बसे होने के बाद भी भारतीय व्यंजनों के स्वाद में कुछ बदलाव-सा महसूस होता था।

अगले दिन भी दिन के सत्रों में प्रतिभागिता पूरी कर हम दोपहर के समय 'ग्रांड बासें और मंदिर' के दर्शन के लिए कुछ समय निकाल सकें। 'सावान' के क्षेत्र में ग्रांड बासें एक प्रकार से प्राकृतिक तलैया है, जो वास्तव में, प्राचीन आग्नेयगिरि अपक्षय है, जिसे अंग्रेज़ी में वोलेनिक क्रेटर कहते हैं। इस क्रेटर यानी गुहा का निर्माण अरबों वर्ष पूर्व की ज्वालामुखी गतिविधि का परिणाम है। यह समुद्र से 550 मीटर ऊँचाई पर स्थित तालाब है, जिसके चारों ओर हिंदू पौराणिक आस्था के विशाल चिह्न और आध्यात्मिक स्मारक हैं। यह घने हरित वनस्थल से घिरा हुआ है।

ग्रांड बेसिन को 'गंगा तालाब' के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ बसे हिंदुओं के लिए यह अत्यधिक धार्मिक महत्ता का स्थान है। ऐसा माना जाता है कि 'त्रिओले' नाम के गाँव में रहने वाले पंडित झुम्मन गिरि गोसाईं, जो कि मूलत: नेपाल से थे, ने स्वप्न में एक पवित्र तालाब देखा, जिसमें पवित्र गंगा नदी का जल प्रकट हो रहा है। यह वर्ष 1897 की घटना है जब सड़कें

और यातायात आज के समान उन्नत नहीं थे। पंडित जी ऐसी दिव्य झील की तलाश में निकल पड़े। वे खोजते हुए ग्रांड बासें पहुँचे और उन्होंने इसे ऐसा ही पाया जैसा कि उनके स्वप्न में दर्शन हुए थे। यहाँ बसे भारतीय हिंदू पुजारियों ने वर्ष 1972 में अपने साथ लाए गंगाजल से शिवरात्रि पर जलाभिषेक किया, जिसके कारण इसका नामकरण 'गंगा तालाब' हुआ। तालाब की गहराई 18-20 मीटर है।

इस पुण्य झील के चारों ओर कई भव्य मंदिर व विराट देवप्रतिमाएँ हैं। विशालकाय मूर्ति के साथ भगवान शिव जी और माँ दुर्गा के मंदिर हैं। इसके अतिरिक्त एक विशाल मंदिर है, जहाँ से पूरा तालाब और पूरे धार्मिक स्थल के दर्शन संभव हैं। साथ ही हनुमान मंदिर, आदिशेष मंदिर, माँ सरस्वती मंदिर और स्पिरिचुअल पार्क भी हैं। स्पिरिचुअल पार्क में गौशाला भी है। यहाँ का शांत एवं पावन वातावरण ईश्वर में अगाध श्रद्धा को बलवती करता है।

यहाँ आते हुए दूर से ही दिखाई देती भगवान शिव व माँ दुर्गा की प्रतिमाएँ ग्रांड बासें पहुँचने का आभास करा देती हैं। इस बृहद परिसर में कार खड़ी करने की समुचित व्यवस्था है। इसमें प्रवेश पूर्णतया निःशुल्क है, हालाँकि दानपात्र में कुछ डालना अपनी श्रद्धानुसार किया जा सकता है। मंदिर के प्रांगण और परिसर में पादुकाएँ निकालकर भ्रमण करना ही उपयुक्त है।

सर्वप्रथम हमने शिव मंदिर का दौरा किया। त्रिशूलधारी भोले शंकर जी की मुख्य प्रतिमा 108 फुट ऊँची है। गुजरात के वडोदरा में बनी हुई शिव प्रतिमा का यह हू-ब-हू प्रतिरूप है। इसका निर्माण वर्ष 2007 में हुआ है और प्राण-प्रतिष्ठान 2008 के शिवरात्रि के दिवस हुआ है। सड़क के दूसरी ओर इतनी ही ऊँचाई की शेरावाली माता की मूर्ति है। ध्यातव्य है कि अब तक विश्व में शक्तिस्वरूपा माँ दुर्गा की प्रतिमाओं में यह सबसे बड़ी प्रतिमा है, जिसका निर्माण 2011 में हुआ था। योद्धावृत्ति और साहस का प्रतीक माँ दुर्गा सम्पूर्णत: दानराशि से निर्मित की गई हैं। इसके निर्माण में 2000 वर्ग मीटर कंक्रीट और 400 टन लोहे का प्रयोग हुआ है और दुर्गा पूजा और नवरात्रि के उत्सव का यह प्रमुख स्थान बन गया है।

इन दोनों मंदिरों के दर्शन कर हम कार से ही आगे की पार्किंग तक गए। वहाँ नीचे उतर गंगा तालाब के पवित्र जल के छींटों से स्वयं को शुद्ध करते हुए मुख्य मंदिर में दर्शन किए। तालाब में बहुत-से श्रद्धालुओं को धार्मिक अनुष्ठान करते हुए देखना बहुत अच्छा लगा। तालाब से मंदिर तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। जैसे-जैसे सीढ़ियाँ चढ़ते जाते हैं, गंगा तालाब का दृश्य और अधिक मनोहर होता जाता है। मंदिर के अहाते में नवग्रह प्रतिमाएँ भी हैं जहाँ नवग्रह की पूजा-अर्चना की जा सकती है। कुछ देर मंदिर की सीढ़ियों पर शांति से विश्राम कर वापस आ गए। शाम का कार्यक्रम रबींद्रनाथ टैगोर इंस्टीट्यूट में था। उसका पूरा-पूरा लाभ उठाकर होटल आ गए।

तीसरे दिन का कार्यक्रम सचिवालय में हुआ तो समापन समारोह महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट मोका में हुआ। सचिवालय के कार्यक्रम में प्रतिभागिता के अतिरिक्त महासचिव डॉ. माधुरी रामधारी जी को अपनी पुस्तकों का एक सेट भेंट करने का सुअवसर भी हुआ। वे पुस्तकें अब सचिवालय के पुस्तकालय में सुशोभित हैं।

कार्यक्रम के बाद हमने 'बगाटेल मॉल' का भ्रमण किया। अगला और पाँचवाँ दिन होटल हेनेसी पार्क छोड़कर माहेबर्ग जाने का था। निकलने से पहले हमने पोर्ट लुई जाकर 'आप्रवासी घाट' देखने का निश्चय किया। उसी से सटा हुआ 'स्लेवरी म्यूज़ियम' भी देखा।

पोर्ट लुई के बाईं ओर बहुत बड़ी आम पार्किंग से बाहर निकलते ही ये दोनों स्थान आ जाते हैं। अदना-से छिपे-छिपे से बने हुए ये बहुत गंभीर इतिहास की परतों को खोलकर रखते हैं। इस म्यूज़ियम के अंदर क्रिओल, फ्रेंच और अंग्रेज़ी भाषा में इतिहास की तख्तियाँ लगी हुई हैं। अहाते के बीच के मैदान में एक विशाल पेड़ ठूँठ-सा खड़ा हुआ गुलामी की अद्यतन स्थिति का सूचक लगने लगता है। इसी अहाते में कई विज्ञप्ति-पट्टिकाएँ हैं, जिनकी इबारतों से आज़ादी की लकीरों को पहचाना जा सकता है।

जो आज स्लेवरी म्यूज़ियम है, यहाँ लाकर कभी बंधुआ मज़दूरों को गुलाम बनाकर कैद कर लिया जाता था। अपने देश में ऐसा संग्रहालय बनाना, जो इतिहास की कालिमा पर प्रकाश डालता हो, बहुत साहस का कार्य है, जो मॉरीशस ने

कर दिखाया है। यह शब्द जितना छोटा है, उसका अस्तित्व और वज़न अवहनीय भार रखता है। खेतों और अन्य स्थानों पर बेगार कराने के लिए भारत, गयाना, मेडागास्कर व मोज़ाम्बिक से गरीबों को बेहतर ज़िंदगी का झूठा वादा कर यहाँ लाया जाता था।

इस म्यूज़ियम में दास प्रथा से विमुक्ति के लिए काम करने वाले सभी योद्धाओं की दास्ताँ है। नाम और तस्वीरों के साथ संघर्षों के किस्से दर्ज हैं। ऊपर के माले पर कई कमरों में सचित्र जानकारियाँ हृदय को चीर कर रख देती हैं। बहुत-से यादगार व्यक्तित्वों के चित्रों को बाँस की खरपच्चियों पर लगाकर गन्ना खेतों का सा आभास कराया गया है। इसमें विस्तार से जानकारी मौजूद है, परंतु बहुत-से बोर्ड फ्रेंच में होने के कारण पढ़े नहीं जा सके।

पास ही बने हुए आप्रवासी घाट देखने हम पहुँचे, जो पुराने मिलिट्री अस्पताल के पास ही बना हुआ है। वैश्विक धरोहर के रूप में मान्यता प्राप्त आप्रवासी घाट एक संग्रहालय की तरह ही प्रस्तुति देता है। बाद की सरकारों और संसद सदस्य व पत्रकार विक्रमसिंह रामलाला के प्रयासों से इसे संरक्षित किया गया है। अंग्रेज़ सरकार द्वारा इसी घाट पर लगभग पाँच लाख बंधुआ मज़दूर उतारे गए। इन्हें 'इंडेंचर्ड लेबर' कहा गया और इनका मुख्य कार्य गन्ना उगाना तथा चीनी को जहाज़ों तक ढोना था।

पहले-पहल तो इसकी बाहरी चमक ने हमें मुग्ध किया, किंतु अंदर के यथार्थ ने हृदय को मथकर रख दिया। सबसे पहले लकड़ी के गट्ठों और पत्थरों से बँधा हुआ (एक बंधुआ मज़दूर का भान कराता हुआ) एक फट्टा दिखाई दिया, जिसके फ्रेम को गन्ने की गँडेरी वाली आकृति के टुकड़े लटकाकर बनाया गया था। इसमें उन 36 बंधुआ मज़दूरों के नाम दर्ज थे, जो इस घाट पर 1834 में लाए गए थे। पहली पीढ़ी के बंधुआ दासों की तस्वीरें भी लगी हुई थीं। 2 नवम्बर का अवकाश उन्हीं की याद में रखा जाता है और यहीं अधिकारिक स्मरणोत्सव का आयोजन किया जाता है। 2006 में आप्रवासी घाट 'यूनेस्को' मानवता की वैश्विक धरोहर बन गया।

इसी घाट पर बने दफ़्तर में बंधुआ मज़दूरों की फ़ोटो के साथ उनके एलॉटमेंट की जगह का रिकॉर्ड रखा जाता था। फ़ोटो वाला एक पहचान-पत्र बंधक को भी दिया जाता था। यही उनके निवासाज्ञा की टिकट भी होती थी। गोरे मालिक वहाँ आकर अपने लिए कामगार अपनी पसंद से चुनते थे।

यहाँ बंधुआ मज़दूर बनकर आए स्त्री-पुरुषों ने अपनी स्मृतियों, परंपराओं और मूल्यों को सँभाल कर रखा और नई पीढ़ी तक व अन्य आगंतुकों तक पहुँचाया। उन्हीं के समय के बहुत-से चिह्न इसी आप्रवासी घाट पर सुरक्षित रखे गए हैं। इस स्मारक से बाहर निकलकर बने हुए बैरकों के अवशेषों को देख उनके रहन-सहन का अनुमान लगाया जा सकता है और सामने समुद्र पर उन पदचिह्नों को मन की आँखों से देखा ही जा सकता है।

पास ही में इमिग्रेंट्स के लिए बना अस्पताल भी हमने देखा। उपचार के लिए इसमें सात कमरों के अलावा घोड़ा-गाड़ी खड़ी करने की जगह भी बनी हुई है।

यहाँ से बहुत-सी संवेदनाएँ सीने में समेटकर हम माहेबर्ग में रुकने के लिए होटल एडमिरल माहे के लिए निकले और मार्ग में 'राम मंदिर व रामायण सेंटर' होते हुए जाने का फ़ैसला किया। वहाँ पहुँचते हुए हमें घंटा भर लगा। दूरी तो 35 किलोमीटर ही तय करनी थी, किंतु हम रास्ते के सौंदर्य से मुग्ध होते चले आ रहे थे, सो आराम से पहुँचे।

रामायण सेंटर और राम मंदिर रॉयल रोड, यूनियन पार्क में एक ही स्थान पर आमने-सामने बने हुए हैं। ये यहाँ की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में विकसित हुए हैं। मंदिर के द्वार के ठीक सामने हमें गन्ना मिल की चिमनी भी दिखाई दी। इसमें बनने वाली चीनी हमें आप्रवासियों के रक्त से मिश्रित प्रतीत हुई। यह बहुत बड़ी गुनहगार दिखाई दे रही थी।

रामायण सेंटर की अध्यक्षा डॉ. विनोद बाला अरुण को अभी पहुँचने में 10 मिनट बाकी थे, तो हम पहले राम मंदिर के दर्शन को चले। मंदिर का मुख्य प्रवेश द्वारा भारतीय पारंपरिक शैली से बना हुआ है, जिस पर स्वास्तिक, चक्र, पुष्प व देवी-देवताओं की आकृतियाँ उभरी हुई हैं। तीन दरवाज़ों वाले द्वार पर झरोखेदार पाँच बुर्जियाँ बनी हुई हैं। गुलाबी सेंडस्टोन से निर्मित बिल्कुल अयोध्या के राम मंदिर का प्रतिरूप लगता था। हमने इसे बाहर-भीतर सब ओर से देखा। रामायण सेंटर के कर्मचारी ने हमें स्वयं राम मंदिर

दिखाया।

मंदिर दो तल पर बना हुआ है। पहले तल पर बड़ा हॉल है, जो कि श्रद्धालुओं के लिए मुख्य मंदिर भी है। बिल्कुल केंद्र में राम दरबार तथा अन्य देवी-देवताओं के दिव्य दर्शन इसी भूमितल पर हैं। बाईं ओर प्रभु श्री लक्ष्मी नारायण विराजमान हैं, तो दाईं ओर माँ दुर्गा। फूलों से सुशोभित शिवलिंग और नंदी भी स्थापित हैं। रामायण के दृश्यों की पेंटिंग से दीवारों और छत की शोभा बढ़ाई गई है। मंदिर के बाहर भारतीय तिरंगा भी लहराता हुआ मिला।

इसके ऊपर का तल रख-रखाव तथा त्योहार-उत्सव आयोजनादि के लिए प्रयोग किया जाता है। ऊपर से देखने पर एक मुख्य गुम्बद के चारों ओर 7 अन्य गुम्बद इसे भव्य बनाते हैं। परिसर के बीचोंबीच एक गोल चक्करनुमा बगिया के मध्य में हनुमान जी विराजे हैं और बगीचे में एक चौकोर घेरे में पंडित राजेंद्र अरुण की प्रतिमा है, जो रामायण सेंटर के संस्थापक अध्यक्ष रहे हैं। वे रामायण के प्रकाण्ड विद्वान थे और उनके द्वारा रामायण के विभिन्न चरित्रों और पात्रों पर पुस्तकें लिखी गई हैं।

मंदिर एक बगिया के मध्य में स्थापित है। बगिया में तरह-तरह के सुंदर वृक्ष लगे हुए हैं। वहाँ कई मोटे पेट वाले पाम वृक्ष लगे थे। हमारे नाम पूछने पर केयरटेकर ने 'बोटलनेक पाम' बताया अर्थात बोतल के आकार के तने वाले ताड़ के पेड़। कई फूलों वाले वृक्ष व बेलें भी मोहक लग रही थीं। चारों ओर फैली हरियाली और शांत वातावरण ने मन से सारी दुविधाओं का नाश कर दिया।

राम मंदिर के सामने 'रामायण सेंटर' भी सौम्य शिल्प से बना हुआ भवन है। इसमें रामायण पुस्तकालय तो है ही, अध्यक्षीय कार्यालय भी है और प्रमुख अवसरों पर विशिष्ट व्यक्तियों के ठहरने की व्यवस्था भी है। डॉ. विनोद अरुण के साथ हमने रामायण सेंटर का दौरा किया। राम दरबार में मत्था टेक प्रमुदित मन हम 'माहेबर्ग' की ओर बढ़ चले।

मंदिर से 18 किलोमीटर की दूरी पर हमारा अगला पड़ाव 'माहेबर्ग' और होटल 'एडमिरल माहे' मौजूद था। इसके रास्ते पर घने पेड़ों के झुरमुटों ने स्वागत किया। बाँहों में बाँहें डाले सड़क के दोनों ओर के पेड़ों की शाखाएँ एक हरी-भरी छतरी का निर्माण कर रही थीं।

मॉरीशस के दक्षिण-पूर्वी तटीय क्षेत्र पर बने कस्बे माहेबर्ग को पहले राजधानी का दर्जा हासिल था। इसके सौंदर्य की छटा ही निराली थी। 'ला शो' (la chaux) नामक नदी 20 किलोमीटर दूर से बहती हुई माहेबर्ग में आती है और हिंद महासागर से मिल जाती है। हम इस नदी पर बने केवेंडिश पुल से होकर गुज़रे और हमें वैसे ही खूबसूरत दृश्य देखने को मिले, जैसे गूगल पर इस जगह की तस्वीरों में दिखते हैं।

हम सीधा एडमिरल माहे गेस्ट हाऊस में पहुँचे, जो समुद्र के सुरम्य दर्शन के साथ ही वाटरफ्रंट पर बना हुआ था। यह फ्रांस कॉलोनी के प्रसिद्ध एडमिरल के नाम पर बना है। इसे पसंद करने का एक और कारण यह था कि अगले दिन सुबह वापसी की फ़्लाइट थी और हवाई अड्डा यहाँ से 15 मिनट की दूरी पर था। होटल की छत पर शाम गुज़ारने के लिए फ़र्नीचर मौजूद था। वहाँ से वाटरफ्रंट का नज़ारा साफ़ दिखाई देता था।

पास ही प्रसिद्ध माहेबर्ग बाज़ार भी था, जहाँ से हमने कुछ सूवेनिअर खरीदे। यहाँ से दस मिनट की दूरी पर ही 'ब्लू बे' था। तुरंत ही हम उसी ओर निकले। यहाँ तक पहुँचने के दस मिनट के रास्ते में हमें एक घंटा लगा। रास्ते के मोहक तट अपने अनछुए सौंदर्य से हमें बाँध रहे थे।

मार्ग में पड़े 'रेमी ओलिये बीच' और 'प्वाइंट देसनी' बीच' बहुत सुंदर थे। यहाँ के जल साफ़ दिखाई देते थे। इक्का-दुक्का नाव और यदा-कदा आने वाले पर्यटकों का उपकार मानते हुए पंछी निर्भीक कलरव कर रहे थे। प्राकृतिक सुषमा हृदय हर लेने पर उतारू थी।

पास ही मॉरीशस का मिलिट्री कैम्प भी था। हमने आगे बढ़कर ब्लू बे पार्क तक ड्राइव किया। ब्लू बे मरीन पार्क सैलानियों से भरा हुआ था। गंगा घाट के समान यहाँ भी लोग मौजूद थे। पानी के अंदर, पानी के बाहर, तट पर, तट से बाहर, हर जगह भ्रमण पिपासु लोगों का बोलबाला था। जितने मनुष्य, उससे अधिक नावें समुद्र की छाती को बेध रही थीं। हम कुछ देर पेड़ की छाया में उसकी मुँडेर पर बैठकर सुस्ताए। फिर एक रेस्तराँ में कुछ खाया-पीया, फिर पुन: तट पर आए। हमारे कुछ अन्य विश्वरंग के साथी भी वहाँ मिल गए। हमने मिलकर एक काँच के तल वाली जेटी किराए पर

ली। डेढ़ घंटे की सैर में वह हमें बहुत दूर टापू तक ले गया। हवाई अड्डा पास होने से कई बार हवाई जहाज़ हमारे ऊपर से उड़ते हुए दिखाई दिए। एकाध को हमने कैमरे में समेट भी लिया। नाविक कुशल था। उसने रास्ते में काँच के पार पारदर्शी समुद्री जल में बहुत-से रंग-बिरंगे कोरल दिखाए। ये सभी जीवित कोरल थे। उनमें जीव खेल-कूद करते नज़र आ रहे थे। हमें 'ज़िंदगी न मिलेगी दोबारा' वाली फ़ीलिंग हो आई। बहुत आनंद आया। जाने क्यों मन भाव-विभोर हो गया। वापस तट पर आकर हम बहुत देर तक कोरल की ही चर्चा करते रहे।

शाम होते-होते हम उठे और चाय आदि का पान कर पुन: वाटरफ़्रंट पहुँच गए। तब तक वहाँ लगा हुआ रंगीन बाज़ार सिमट चुका था। हमने वाटरफ़्रंट पर दूर तक सैर की। समुद्र-दर्शन के छज्जे तक गए। 'बाटाय डे लें पास' मेमोरियल तक गए। यह स्मारक ग्रांड पोर्ट युद्ध में जान गँवाने वालों की याद में बनाया गया है। माहेबर्ग तट पर बहुत से कैफ़ेटेरिया और पूजास्थल भी थे। यह पिकनिक के लिए भी उपयुक्त जगह है। स्थानीय लोगों की पसंदीदा है और विदेशी पर्यटकों के आकर्षण के लिए भी सम्पूर्ण साजो-सामान से लदी-फदी है। यहाँ से नाव लेकर 'मुश्वार रूज़' नामक टापू पर भी जाया जा सकता है।

दिन ढलने पर हमने 'बोवालों मॉल' का रुख किया। वहाँ भारतीय रेस्टोरेंट 'गुड कोरमा' में शाकाहारी भोजन का स्वाद लिया। जितने दर्शनीय स्थल देखे, वे बहुत चित्ताकर्षक थे, फिर भी जिन्हें न देख पाने का मलाल रहा, वे थे - 'पाँप्लेमूसस गार्डन', 'सिटाडेल फ़ोर्ट', 'ला वैली डे कुलेर', 'रोचेस्टर फ़ॉल्स', 'टमेरिन फ़ॉल्स', 'इल ऑ फ़ॉर द्वीप', 'फ़्लिक ऑ फ़्लैक बीच', 'इल ओ सेफ़र्स' तथा 'ले मॉर्न इल्लयूज़न अंडरवॉटर फ़ॉल'। चलिए, ये स्थान फिर कभी सही... अगले दौरे में

arti.goel@hotmail.com

रोम में ईस्टर सप्ताह

शकुंतला बहादुर
अमेरिका

अँधेरी रात में रेलगाड़ी पटरियों पर बड़ी तेज़ गति से दौड़ रही थी और मुझे पश्चिमी जर्मनी से दूर, इटली के निकट ला रही थी। नींद का आकर्षण मुझे लगातार अपनी ओर खींच रहा था, किन्तु मैं बराबर जागते रहने का प्रयास कर रही थी ताकि मेरा स्टेशन छूट न जाए। अन्त में 'परमा' स्टेशन पहुँच गया, जहाँ मुझे अपनी इटैलियन सखी, शीमा से मिलना था। उसके साथ ही मुझे फ़्लोरेंस जाना था। झमाझम बारिश हो रही थी, मैंने छाता खोला, बैग उठाया और नीचे उतरते हुए शीमा को आवाज़ लगाई। शीमा के न मिलने पर मैं बहुत उदास और भयभीत हो गई। शायद उसे मेरा पत्र नहीं मिला होगा। मेरा उससे परिचय पश्चिमी जर्मनी में जर्मन कोर्स के दौरान हुआ था। जल्दी ही स्टेशन सुनसान हो गया। वहाँ लोग जर्मन या अंग्रेज़ी नहीं समझते थे। बड़ी ही कठिनाई से मैंने काग़ज़ पर 'फ़्लोरेंस' लिखकर गार्ड से वहाँ की ट्रेन पूछी और सवेरे वहाँ पहुँच गई।

जर्मनी में सभी ने मुझे इटली में सावधान रहने की सलाह दी। वहाँ इटैलियन्स द्वारा चोरियों की कई घटनाएँ सुनने को मिली थीं। इसलिए मैं अपने साथ बैग लेकर अकेले ही नगर में म्यूज़ियम और आर्ट गैलरीज़ देखने निकल पड़ी। अगली ट्रेन पकड़ने तक जितना समय था, उसी में घूमकर रोम जाना चाहती थी। शहर बड़ा कलात्मक-सा लगा। एक आर्ट गैलरी से मैंने स्मृति के रूप में एक कलाकृति खरीदी। प्रस्थान हेतु स्टेशन लौट गई और ट्रेन में चढ़ गई। प्यास से मेरा गला सूख रहा था, लेकिन पानी की मेरी बोतल खाली थी। ट्रेन चलने ही वाली थी। उसी डिब्बे में बैठे कुछ इटैलियन्स से मैंने जर्मन में 'वासर' और अंग्रेज़ी में 'वॉटर' कहकर पानी का स्थान पूछा, लेकिन वे समझे नहीं। मैंने गले पर हाथ रखकर पानी की बोतल दिखाकर इशारे से समझाया तो बोले - 'एकुआ'?

मैंने सिर हिला दिया और सोचा - 'एकुआ' क्या होता है ? उस समय यह शब्द भारत में प्रचलित नहीं था। यह संस्मरण 1964 का है। आजकल तो लोग प्रायः 'एकुआ' शब्द गार्ड के कारण जानते हैं। शीघ्र ही वह पानी लेकर आया। मैंने झटपट पानी पिया और मुख के भाव से कृतज्ञता प्रकट की।

अगले दिन प्रातः मैं रोम पहुँच गई। विशाल और भव्य स्टेशन देखकर मैं अचम्भित-सी रह गई। वहाँ बहुत भीड़ थी। मेरे पास केरल के एक क्रिश्चियन फ़ादर और सिस्टर्स का पता था, जिनसे जर्मनी में मेरा परिचय हुआ था और उन्होंने मुझे रोम आने का निमंत्रण दिया था। मैंने उन्हें सूचित भी कर दिया था, लेकिन एक दिन पूर्व ही रोम पहुँच जाने के कारण मुझे स्टेशन पर कोई नहीं मिला। मैंने अपनी डायरी का पता खोलकर कई लोगों से पूछा, पर कोई मदद नहीं मिली। अंततः पुलिस वाले को पता दिखाकर मैं एक बस में चढ़ गई। बस में कंडक्टर और कुछ यात्रियों से पूछा - जर्मन ? इंग्लिश ? लेकिन किसी को समझ में नहीं आया। बाद में एक वृद्ध सज्जन मिले, जो टूटी-फूटी अंग्रेज़ी बोल और समझ सकते थे। इससे मेरा मन कुछ आश्वस्त हुआ। उनके साथ मैं एक स्टॉप पर उतर गई। कई घंटों तक घूमने पर मुझे केरल के एक फ़ादर मिले, जिन्होंने मुझे फ़ादर वलियमंगलम् और सिस्टर डिसिल्वा के होम तक पहुँचाया।

यह ईस्टर सप्ताह था। दुनिया भर से आए श्रद्धालु ईसाई मतावलम्बियों का कुम्भ मेला-सा लगा था। सेंट पीटर्स के भव्य ऐतिहासिक कैथेड्रल में पोप के ईस्टर संदेश को सुनने के लिए जन-समुदाय उमड़ रहा था। सभी लोग 'गुड फ़्राइडे' के आगमन की प्रतीक्षा उत्सुकता से कर रहे थे। इसी बीच मैंने फ़ादर वलियमंगलम् और सिस्टर डिसिल्वा के साथ रोम के अन्य प्रसिद्ध स्थानों को देखा। 'सेंट पॉल' का चर्च भी दर्शनीय था। 'सेंट पीटर्स' का तो कहना ही क्या था - अन्दर की दीवारों और छत में सुन्दर चित्रकारी देखने लायक थी। चारों ओर घूम-घूमकर, सिर ऊपर उठाए मैं मंत्रमुग्ध-सी देखती रही। इस बारीक पच्चीकारी में धार्मिकता का गहरा पुट था। वृत्ताकार विशाल कक्ष कला का अनुपमेय रूप था। वहाँ इतनी शान्ति थी कि चित्त की एकाग्रता और ध्यान लगाने के लिए यह स्थान अत्यन्त उपयुक्त था।

सामने 'मदर मेरी' की गोद में बालरूप 'जिसस' का चित्र लगा था। बाहर के विशाल प्रांगण में ही ईस्टर का समारोह आयोजित होना था।

गुड फ़्राइडे की सुबह जल्दी तैयार होकर हम लोग 'सेंट पीटर्स' पहुँच गए। विशाल खुले प्राँगण में देश-विदेश से आए धर्मनिष्ठ ईसाइयों और अन्य दर्शकों की भीड़ उमड़ रही थी। लोगों के कंधे एक- दूसरे से टकरा रहे थे। कुछ लोग गोद में बच्चों को लिये और कुछ उँगली पकड़े बच्चों के साथ या पीठ पर विशेष बैग में उन्हें लटकाए, आपसी वार्तालाप में मग्न थे। साथ ही पोप पॉल सिक्स्थ के भाषण की प्रतीक्षा कर रहे थे। वहाँ केवल लोगों के सिर दिख रहे थे और चारों ओर मानव स्वर गूँज रहा था। जब भी कोई जर्मन या अंग्रेज़ी बोलता सुनाई देता, तब अनजान विदेशियों के बीच खड़ी मुझे कुछ आश्वस्त-सा कर जाता था। इस विश्व-समारोह में रंग-बिरंगी विविध वेशभूषा धारण किए लोग वातावरण को सहज आकर्षक और रंगीन बना रहे थे। तभी ऊपर लगे स्पीकर की आवाज़ से सर्वत्र शान्ति छा गई। जनसमूह के असंख्य लोगों का अभिवादन करके ध्यान से ईस्टर का संदेश सुनने के लिए उनका आह्वान किया गया था। सभी की दृष्टि 'सेंट पीटर्स' के भव्य भवन की ऊपरी मंज़िल में पोप के आवास की ओर उठ गई थी। उसी समय छज्जे पर खड़े पोप पॉल के दर्शन हुए। सबने एक स्वर में उनका अभिवादन किया और शान्त हो गए। तभी पोप की आवाज़ गूँज उठी। उन्होंने आशीर्वाद देकर, गुड फ़्राइडे के सम्बन्ध में संक्षिप्त विवरण दिया तथा ईसा मसीह और बाइबिल की चर्चा के बाद ईस्टर का सन्देश देते हुए, विश्वशान्ति की कामना की। तदुपरान्त सभा समाप्त हो गई।

ईस्टर का दूसरा उत्सव भी 'सेंट पीटर्स' में ही एक खुले और विशाल क्षेत्र में आयोजित हुआ था। यहाँ एक पक्का, विस्तृत और ऊँचा मंच सुसज्जित किया गया था। सामने बैठने के लिए कुर्सियाँ रखी थीं और लोग लगातार आते जा रहे थे। मंच पर वहाँ के उच्चाधिकारी व्यवस्था को सँवारने-सुधारने में लगे थे। 'सेंट पीटर्स' के पदाधिकारी कार्डिनल, आर्कविशप आदि अपने पदोचित वेशों में रेशमी लम्बे लबादे से गाउन पहने थे। नीले, पीले रंगों के रेशमी गाउन, सुनहरे ज़री के काम से सुसज्जित, राजा महाराजा की राजसी पोशाकों का आभास दे रहे थे। मंच पर ही उनके बैठने की व्यवस्था की गई थी। तभी चार उच्च पदाधिकारी सोने के पत्रजटित, सिंहासन-सी कुर्सी को डंडों पर उठाकर लाए, जिसमें भव्य वेशधारी सिर पर गोल चिपकी टोपी लगाए पोप आसीन थे। कुर्सी से उतरकर पोप ने मंच पर अपना स्थान ग्रहण किया। सभी ने उनका अभिवादन किया। कार्डिनल

आदि कतिपय उच्च पदाधिकारियों के बाद पोप ने भी अपना भाषण दिया।

मैं अपने परिचित फ़ादर और सिस्टर के माध्यम से विशेष प्रवेशाधिकार-पत्र प्राप्त कर चुकी थी, जिससे मैं मंच के अत्यन्त निकट स्थान पा सकी और पोप के दर्शन पास से कर सकी। ऐसा अवसर मिलना वास्तव में भाग्य की बात थी। उत्सव की समाप्ति पर हम लोग घर लौट आए। यह भव्य समारोह मेरे लिए एक अभूतपूर्व अनुभव था। यहाँ का अनुशासन कठोर था।

रोम एक अत्यन्त प्राचीन ऐतिहासिक नगर है। सिंह और मानव की लड़ाई की कथा मैंने बचपन में पढ़ी थी। प्राचीनकाल में किसी जघन्य अपराध के दण्ड स्वरूप मृत्यु-दंड देने की उनकी यह रीति बड़ी ही नृशंस लगी थी। मैंने 'कोलैसियम' भी देखा, जहाँ चारों ओर स्टेडियम की भाँति बनी सीढ़ियों पर बैठकर दर्शक, न्यायाधीश और राजा मृत्यु का भयावह खेल देखते थे। दंडित व्यक्ति को यहाँ लाया जाता था और उसके सामने शेर का पिंजड़ा खोल दिया जाता था। शेर द्वारा आक्रमण के समय, शक्ति रहने तक लहूलुहान व्यक्ति अपने बचाव का प्रयत्न करता था और अन्त में दम तोड़ देता था। यह प्रथा वर्षों से समाप्त हो चुकी है। 'कोलैसियम' का खंडहर देखकर मन वितृष्णा से भर गया था। हमने वह स्थान भी देखा ,जहाँ भूमिगत कब्रिस्तान था। रोमन कैथोलिक मत का विरोध या उल्लंघन करने वालों को पापी घोषित किया जाता था और उन साम्राज्य-विरोधियों की जीवन-लीला समाप्त करके, उनको यहीं दफ़ना दिया गया था। ऊपर का भवन और हरियाली देखकर कोई नहीं जान सकता था कि जहाँ हम चल रहे हैं, उसके नीचे क्या छिपा है। रोमन-साम्राज्य के पतन के उपरांत ही इन रहस्यों का उद्‌घाटन हुआ था। रोमन-साम्राज्य की तरह ही 'रोमन लिपि' भी विश्वप्रसिद्ध है। अंग्रेज़ी और अन्य अधिकांश आधुनिक यूरोपीय भाषाओं को आजकल इसी लिपि में लिखा-पढ़ा जाता है। रोम नगर प्राचीन होते हुए भी, अब पूरी तरह आधुनिकता से जुड़ गया था तथा यान्त्रिक दृष्टि से भी आगे बढ़ा था। विशाल डिपार्टमेंटल स्टोर्स, भव्य और कलात्मक अट्टालिकाएँ, संगमरमर की विशालकाय मूर्त्तियाँ- सब दिखाई देती थीं। रोम की आर्ट गैलरी और संग्रहालय विश्वप्रसिद्ध हैं।

'सेंट पीटर्स' का गिरजाघर 'वैटिकन सिटी स्टेट' में स्थित है, जो संसार का सबसे छोटा राष्ट्र है। यह रोम शहर की सीमा के भीतर स्थित होकर भी एक स्वतंत्र राष्ट्र है। इटली की शासन-व्यवस्था का वहाँ कोई अधिकार नहीं है। वैटिकन की सारी व्यवस्था, शासन और कानून अलग हैं। यहाँ की सर्वोच्च सत्ता पोप के हाथ में रहती है। एक पोप के स्वर्गवास के उपरान्त, वहाँ के उच्चतम पदाधिकारियों की सभा पूर्व पोप द्वारा नामित वरिष्ठतम उत्तराधिकारी को ही पोप के सर्वाधिक सम्मानित पद पर अभिषिक्त करती है। ईसाई मतावलम्बियों की दुनिया में पोप की आज्ञा सर्वमान्य मानी जाती है।

रोम में वे दिन बड़े आनन्ददायक रहे। मेरे जाने का समय हो गया था। घर से सामान उठाकर मैं रेलवे स्टेशन की ओर चली।

सभी मुझे स्टेशन तक छोड़ने आए थे और उन्होंने रोम की सुन्दर-सी कलाकृतियाँ उपहार स्वरूप दीं। जब गाड़ी चल पड़ी, तब उन सभी ने मुझे भावभीनी विदाई देते हुए भारत में कभी पुन: मिलने की आशा व्यक्त की। ट्रेन मुझे 'नाइस' शहर की ओर ले चली। देर तक समुद्र के किनारे जाते हुए सुन्दर दृश्यों का मैंने आनन्द लिया। रास्ते में मैंने ट्रेन से ही 'पीसा' की तिरछी झुकी हुई मीनार भी देखी थी, जो प्रसिद्ध दार्शनिक गैलिलियो के कारण विश्वप्रसिद्ध हो गई थी। पुस्तकों में उसके सम्बन्ध में पढ़ा था, उस दिन आँखों से देख भी लिया था।

'नाइस' फूलों ले सुसज्जित, समुद्र-तट पर बसा, अपने नाम के अनुरूप ही मन को मुग्ध कर गया था। वहाँ से ही मैंने फ़्रांस के 'मार्सेल्ज़' नगर की ट्रेन ली थी, क्योंकि वहीं से मुझे जहाज़ (जलयान) लेकर भारत (बम्बई) जाना था।

रोम की यह ऐतिहासिक यात्रा अविस्मरणीय रहेगी। वहाँ के संस्मरण अभूतपूर्व रहे और सदा हृदयपटल पर अंकित रहेंगे।

अहा रोम! वाह रोम!! कभी न भूलने वाला रोम!!!

कर्मभूमि से जन्मभूमि तक

दिव्या बलजीओं
मॉरीशस

पुत्र की परीक्षा की समाप्ति से मन हल्का हुआ, तो अपनी दिनचर्या से छुटकारा पाकर आठ वर्ष पश्चात् मैं अपनी मातृभूमि भारत में परिजनों एवं मित्रों से मिलने की आशा लिये और आँखों में कुछ पुरानी स्मृतियाँ संजोकर रविवार 28 अक्टूबर, 2018 को प्रातः 6:40 पर एयर-मॉरीशस के विमान से अपने पति और पुत्र के साथ नई दिल्ली पहुँची।

गाज़ियाबाद में अपनी छोटी बहन से स्नेहिल वार्तालाप के बाद मैंने भोजन और विश्राम किया। फिर मंगलवार 30 अक्टूबर को हम नई दिल्ली रेलवे स्टेशन से प्रातः 7:20 की स्वर्ण शताब्दी एक्सप्रेस में अमृतसर वाघा-बॉर्डर समारोह में भाग लेने के लिए रवाना हुए। लगभग 8 बजे हमें पानी की बोतल, जूस और बिस्किट की सेवा प्रदान की गई। 10 बजे सुबह के नाश्ते में हमने शाकाहारी कटलेट, ब्राउन-ब्रेड, कैचप, मक्खन, जैम और मीठी-मीठी ठंड में गरम-गरम कॉफ़ी की चुस्कियों का मज़ा उठाया। पटरी पर अठखेलियाँ करती ट्रेन से हरे-भरे खेत-खलिहान, कच्चे-पक्के मकान, काम करते लोग, फल-फूल से लदे पेड़-पौधे एवं अन्य सुहावने प्राकृतिक दृश्यों का आनंद उठाते हुए हम लगभग 1:30 बजे अमृतसर स्टेशन पहुँचे, जहाँ हमारे घनिष्ठ मित्र श्री एस.एस. भुल्लर चाचा जी (सेवानिवृत्त आईपीएस, फ़िरोज़पुर, पंजाब) ने फूल-मालाओं से हमारा स्वागत किया और हमें आत्मिक प्रसन्नता प्रदान की। उनके साथ हमने पुलिस अधिकारियों के भोजनालय में अमृतसर के प्रसिद्ध एवं स्वादिष्ट छोले-कुल्चे का लुत्फ़ उठाया।

लगभग 3 बजे हम भुल्लर चाचा की निजी गाड़ी से वाघा-बॉर्डर की ओर चल पड़े, जो भारत और पाकिस्तान के बीच थल मार्ग से सीमा पार करने का एकमात्र स्थान है। यहाँ सूर्यास्त से पूर्व प्रतिदिन सायंकाल में बी.एस.एफ़. के जवानों और पाकिस्तानी रेंजर्स के सहयोग से "बीटिंग-रीट्रिट"/झंडा समारोह का आयोजन होता है। हमारा गंतव्य अमृतसर से 32 कि.मी., अटारी गाँव से 3 कि.मी. एवं लाहौर से 22 कि.मी. की दूरी पर स्थित था। ग्रैंड ट्रंक रोड से गुज़रते हुए आसपास बी.एस.एफ. कार्यालय, रॉ कार्यालय, सेना कार्यालय और सेना अभियंता प्रशिक्षण केंद्र का बाह्य अवलोकन करते हुए हम वाघा-बॉर्डर सुरक्षा कार्यालय पहुँचे।

गाड़ी से उतरकर हाथ में भारत का झंडा लिए और देश का भावपूर्ण वंदन करते हुए हमने स्टेडियम के 'स्वर्ण जयंती द्वार' के अंदर प्रवेश किया। भारत माता की जय के नारे लगाते हज़ारों हिंदुस्तानियों की भीड़ देखकर मन हर्षोल्लास से भर उठा। प्रथम पंक्ति की कुर्सी पर बैठकर मेरी उत्सुक आँखें अटारी और लाहौर के बीच, भारत और पाकिस्तान की सीमा में लगे विशाल लोहे के द्वार पर टिक गईं, जहाँ दोनों ओर तैनात जवान अपने-अपने देश के प्रति समर्पण का भाव प्रकट कर रहे थे।

नारों के शोर के बीच रंग-बिरंगे वस्त्रों में बच्चे, बूढ़े और नौजवान हाथ में तिरंगा लिए स्टेडियम के मध्य कतार में तेज़ी से दौड़ते हुए और जोश में नाचते हुए देशभक्ति की भावना का खुलकर प्रदर्शन कर रहे थे। वे हरे-भरे बगीचे में खिलते सुन्दर फूल पर झूमती हुई रंग-बिरंगी तितलियाँ प्रतीत हो रहे थे।

दमदार हुँकार, बिगुल और बैण्ड की ध्वनि के बीच खाकी वर्दी और लाल पगड़ी पहने 14 बी.एस.एफ. जवान शान से दोनों ओर की सीढ़ियों से उतरते हुए अत्यंत आकर्षक लग रहे थे। तालियों की गड़गड़ाहट की गूँज वातावरण को रोमांचक बना रही थी। एक मुख्य जवान भारतीय सीमा के द्वार के पास जाकर खड़ा हुआ और उसने सहकर्मी से परेड आरंभ करने की अनुमति माँगी। दोनों ओर के द्वार खुले और जवान आगे बढ़े, सीमा पर हाथ मिलाकर कार्यक्रम का श्रीगणेश किया गया। फिर सिंक्रोनाइज़ ड्रिल प्रदर्शन आरंभ हुआ। इसमें दोनों पक्ष के कर्मी एक-दूसरे को घूरते, आक्रामक संकेत करते, पैर को कंधे के स्तर तक उठाकर ज़ोर से धरती पर मारते, लंबी तेज़ गति की आवाज़ निकालते, पैर मुद्रांकित करते, मुट्ठी बाँधकर छाती पर हमला करते और फिर दूर हटते। इस प्रकार वे शौर्य एवं शक्ति का परिचय देते हुए देश-

भक्ति की भावना को ज़ोर-शोर से प्रदर्शित कर रहे थे।

सूर्यास्त होते ही दोनों पक्षों के जवान पीछे हटे, ध्वजों को एक साथ झुकाया और ब्रूस हैंडशेक के पश्चात् दोनों ओर के द्वार बंद हो गए। लोगों की भीड़ वंदे मातरम् और हिंदुस्तान ज़िंदाबाद के नारे लगाते लौटने लगी। दोनों देशों की प्रतिद्वंद्विता, भाईचारे और सहयोग के प्रतीकात्मक समारोह का यह आश्चर्यजनक एवं सुखद अनुभव रहा।

इसके बाद हमने चाचा जी के भटिण्डा फ़ॉर्म हाउस की ओर प्रस्थान किया। हाइवे की साफ़, चिकनी सड़क का सीना चीरते, टिमटिमाती रोशनी में चावल के खेतों को देखते हुए हम फ़ॉर्म हाउस पहुँचे। कड़कड़ाती ठंड में मक्के की गरम-गरम रोटी एवं सरसों का साग ग्रहण कर हमने विश्राम किया।

31 अक्टूबर, बुधवार को प्रातः 2:30 बजे ठंड से ठिठुरते और काँपते हुए हम गाड़ी में भटिण्डा से निकले और 4:15 बजे अमृतसर स्वर्ण मंदिर पहुँचे, जो सिखों की विशिष्ट पहचान और विरासत का प्रतीक है। द्वार पर ज़मीन पर बने पानी के छोटे फ़व्वारों से पैर स्वतः धुल गए और हमने मंदिर में प्रवेश किया। ब्रह्म मुहूर्त में चहूँ ओर लगी लाइटों की तेज़ रोशनी में जलाशय के मध्य चमचमाता स्वर्ण मंदिर अनोखी आभा बिखेर रहा था। कुछ लोग बैठकर पाठ कर रहे थे, कुछ सेवा में व्यस्त थे, कुछ जलाशय में स्नान कर रहे थे, कुछ झाड़ू लगा रहे थे, कुछ बरतन धो रहे थे और कुछ सब्ज़ी काट रहे थे। गूँजती हुई गुरुवाणी की स्वर-लहरियाँ मानसिक सुख और शांति प्रदान कर रही थीं। हम उस स्थान पर बैठ गए, जहाँ प्रभातफेरी हेतु पालकी को सजाया जा रहा था। कुछ समय बाद सभी भक्त "बोले सो निहाल सत् श्री अकाल" का जयकार लगाते हुए "श्री गुरु ग्रंथ साहिब" जी के स्वागत के लिए हाथों में पुष्प लेकर खड़े हो गए। ऊपर के कक्ष से जब उन्हें कर्मियों द्वारा लाया गया, तब भक्तों ने सत्कार स्वरूप पुष्पों की वर्षा की। सजी पालकी में उन्हें स्थापित कर भक्तों की कीर्तन गाती टोली के साथ उन्हें स्वर्ण मंदिर गुरुद्वारे (श्री हरमंदिर साहिब) ले जाया गया। हमने जलाशय के चारों ओर फैले छोटे-बड़े तीर्थ-स्थलों को देखा और लिखी गईं घटनाओं को पढ़ते हुए मंदिर की परिक्रमा पूरी की। इसके पश्चात्, मंदिर से जुड़े पुल पर कतार में लग अनुशासित रूप से मंदिर के अंदर माथा टेका और बाहर आकर गरम-गरम हलवे का प्रसाद ग्रहण किया, फिर कुछ देर वहाँ बैठकर विश्राम किया।

शिल्प-सौंदर्य की अनूठी मिसाल, दीवारों पर स्वर्ण पत्तियों की सुन्दर नक्काशी, पैनी कलात्मक शैली की सजावट और चारों दिशाओं में खुलने वाले दरवाज़े, सब मिलकर आध्यात्मिक शांति का संदेश दे रहे थे। भेदभाव से परे, ईश्वर के सभी सच्चे भक्त सेवा में तत्पर थे।

मंदिर के बाह्य परिसर में बने लंगर-हॉल में प्रवेश कर क्रम से नीचे बैठकर हमने गरम-गरम चाय का आनंद लिया और फिर बाहर आ गए। समीप ही सरागडी सराय में विश्राम के पश्चात् 11:30 बजे जलियाँवाला बाग देखने गए, जो 13 अप्रैल, 1919 को हुए जघन्य हत्याकांड का प्रतीक है। सँकरे प्रवेश द्वार से भीतर जाते ही सामने अमर ज्योति का चबूतरा बना था, पास में छोटा लाल पत्थर स्मृति स्वरूप रखा था, जहाँ से गोलीबारी हुई थी। कुछ दूरी पर लौ के रूप में स्मारक था, जिस पर शहीदों के नाम अंकित थे। दूसरी ओर जाली से घिरा शहीदी कुआँ था, जहाँ से लगभग 120 लाशें निकाली गई थीं। पास ही दीवारों पर गोलियों के धुँधले से निशान दिखाई दे रहे थे। शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करने के बाद हमने पास के ढाबे में दोपहर का भोजन किया। अमृतसर बाज़ार का भ्रमण करते हुए हम पहुँचे "पंजाब स्टेट वॉर हीरोज़ मेमोरियल एंड म्यूज़ियम" जो अटारी रोड पर स्थित है। यह देश के लिए शहीद होने वाले जवानों की गाथा को बयाँ करता है। दूर से ही दिखाई देती स्टेनलेस स्टील की 145 फ़ीट ऊँची तलवार स्मृति-चिह्न के रूप में लगाई गई है, जो प्रथम विश्व युद्ध में देश के जवानों द्वारा दुश्मनों को मुँहतोड़ जवाब देने के लिए प्रयोग में लाई गई थी। इस तलवार की मूठ पर चार शेरों के सिर बने हैं और ग्रेनाइट प्लेटफ़ॉर्म पर यह शौर्य का प्रतीक है। प्लेटफ़ॉर्म पर बिछी स्टील की चादर पर 1947 के कश्मीर युद्ध में शहीद सैनिकों के नाम अंकित थे। दाईं ओर युद्ध में उपयोग किए गए टैंक पूर्ण विवरण के साथ शोभायमान थे, जैसे - टैंक पैटन टैंक, एम-47 (द्वितीय विश्व युद्ध में), टैंक शरमन, एम-4 (भारत-पाकिस्तान युद्ध, 1965-71), टैंक सेंचुरियन एम-7 (भारत-पाकिस्तान युद्ध, 1965-71), एयर क्राफ़्ट, मिग-23 बी.एन (कारगिल ऑपरेशन, 1999)

और आई एन एस, विक्रांत का मॉडल (भारतीय नौसेना का प्रथम एयरक्राफ़्ट कैरियर)। समय के अभाव के कारण अन्य आकर्षक एवं महत्त्वपूर्ण हिस्सों को न देख पाने के कारण हम भारी मन से शाम को स्वर्ण शताब्दी एक्सप्रेस से रवाना हुए।

1 नवम्बर, गुरुवार को प्रातः 5:30 बजे हम नई दिल्ली पहुँचे। 4 नवम्बर, रविवार को दोपहर 2 बजे नई दिल्ली से इंदौर (म. प्र.) पहुँचते ही पिताश्री की कमी का एहसास हुआ और आँखें नम हो गईं। माताश्री, बहन-बहनोई, भाइयों-भाभियों एवं बच्चों से मिलकर खुशी के आँसू छलक पड़े। सबके साथ धनतेरस, दीपावली, नरक चौदस, भाई दूज एवं अन्नकूट के त्यौहार हमने हँसी-खुशी और उत्साह के साथ मनाया।

17 नवम्बर, शनिवार को 3 बजे हम दुष्यंत कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय में पूर्व निर्धारित कार्यक्रम में शामिल होने के लिए इंदौर से भोपाल पहुँचे। इसका आयोजन विश्व हिंदी सम्मेलन में मॉरीशस आए हिंदी साहित्यकार श्री रामराव वामनकर (सेवानिवृत्त अपर कलेक्टर) द्वारा किया गया था, जिसमें मैंने "मॉरीशस में हिंदी साहित्यिक परिदृश्य और पारंपरिक परिवेश" विषय पर व्याख्यान प्रस्तुत किया।

भवन में अनेक स्थानीय साहित्यकारों की उपस्थिति में मेरा सम्मान श्रीफल, टेबल घड़ी, दुष्यंत कुमार जी की कविता की प्रति एवं पुष्प द्वारा किया गया। इसके पश्चात् मैंने संग्रहालय की भित्ति पत्रिका "बयान" पर चन्द्रसेन विराट के कविता-पत्र का अनावरण किया। फिर निदेशक राजुरकर राज जी के साथ संग्रहालय में सुरक्षित फणीश्वरनाथ रेणु, दुष्यंत कुमार, शरद जोशी, नरेश मेहता, पं. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन, डॉ. हरिवंशराय बच्चन, प. मोहलनाल द्विवेदी, रामधारी सिंह दिनकर आदि साहित्कारों की अनमोल धरोहर स्वरूप पत्र, बहुमूल्य वस्तुएँ एवं हथेलियों के निशान का अवलोकन कर आश्चर्यचकित हो गई। संग्रहालय में मॉरीशस के अभिमन्यु अनत, हेमराज सुन्दर आदि की धरोहर भी सुरक्षित थी। इसके अतिरिक्त, श्रीमद् भागवत् (सन् 1827), महाघट स्थापना विधि (सन् 1900), योग चिंतामणि - वामपंथियों की तंत्र साधना (सन् 1743) एवं श्री गृहणावली (लगभग ढाई हज़ार वर्षों की सूर्य व चन्द्र ग्रहण का विवरण, सन् 1872) की पाण्डुलिपियाँ भी उपलब्ध थीं। दुष्यंत कुमार जी का कोट, पासपोर्ट, एयर टिकट, घड़ी, पासबुक, बन्दक का लाइसेंस और पुरस्कार पदक सम्मान सहित सुरक्षित रखे गए थे।

निर्धारित विषय पर मैंने लगभग 1 घंटे का व्याख्यान दिया। इसके पश्चात् उपस्थित साहित्यकारों ने मॉरीशस की जीवन-शैली, खान-पान, परम्परा, धार्मिक भावना, राजनीति आदि पर अनेक प्रश्न किए, जिनका उत्तर इस कर्मभूमि की पुत्रवधू के नाते देते हुए मुझे गर्व का अनुभव हुआ। अध्यक्षीय वक्तव्य में श्रीमती ममता तिवारी जी ने मेरे व्याख्यान की सराहना की और अंत में अध्यक्ष श्री अशोक निर्मल जी ने कृतज्ञता-ज्ञापन किया। समापन के पश्चात्, मेरी हथेलियों का भी चित्र खींचा गया एवं संदेश लिखवाया गया।

25 नवम्बर को प्रातः 6 बजे हम इंदौर से नई दिल्ली पहुँचे। दोपहर के भोजन के पश्चात् युवा उत्कर्ष साहित्यिक मंच द्वारा आयोजित 'पंचम अखिल भारतीय साहित्य महोत्सव' में कवि डॉ. रामकुमार चतुर्वेदी (हरिशंकर परसाई सम्मान से सम्मानित) के आमंत्रण पर वहाँ पहुँचे। द्वितीय सत्र के विशिष्ट अतिथि के रूप में मेरा सम्मान एक शॉल, एक पौधा और एक शील्ड द्वारा किया गया। मंच पर श्री गुरमीत बेदी (वरिष्ठ साहित्यकार, चंडीगढ़), डॉ. अशोक मैत्रेय (वरिष्ठ साहित्यकार, हापुड़), डॉ. हरिसुमन विष्ट (उपन्यासकार, नोएडा), श्री उलूप श्रीवास्तव (लखनऊ) एवं अन्य साहित्यकारों के साथ आसीन होना मेरे लिए सौभाग्य की बात थी। विशेष रूप से अपनी जन्मभूमि में कर्मभूमि की कवयित्री के रूप में मेरा विशेष स्वागत हुआ। इसके बाद कविताओं का दंगल आरंभ हुआ। मुझे भी अवसर दिया गया और मैंने मॉरीशस का परिचय कविता के माध्यम से प्रस्तुत किया, जिसकी 'गागर में सागर' कहकर प्रशंसा की गयी।

कार्यक्रम के समापन के पश्चात् वापसी में हम 'अक्षरधाम' देखने गए। स्वामीनारायण मंदिर एक अनोखा सांस्कृतिक तीर्थ है। गुलाबी पत्थर और सफ़ेद संगमरमर से बना मुख्य मंदिर, नक्काशीदार स्तम्भों, गुंबदों और लगभग 20,000 मूर्तियों से सजाया गया है, जिसकी भव्यता एवं दिव्यता पारंपरिक स्थापत्य शैली एवं आधुनिक तकनीक के मिश्रण

को दर्शा रही थी। थोड़ा अंधेरा होने के कारण अन्य ज्ञानवर्धक प्रदर्शन का आनंद नहीं ले पाए, लेकिन वॉटर शो का प्रदर्शन देखा। यह आश्चर्यजनक शो 24 मिनट का था, जिसमें केन उपनिषद् से संबंधित कहानी के माध्यम से हमारी संस्कृति का परिचय कराया गया। वैदिक प्रार्थना से शो का श्रीगणेश हुआ और खेल-खेल में प्रश्न-उत्तर के माध्यम से वरुण, अग्नि, वायु, सूर्य व इन्द्र देवता के अहंकार को तोड़ते प्रेम-स्नेह का आध्यात्मिक संदेश दिया गया। सुन्दर रंगीन फव्वारों के साथ सभी घटनाओं का लेज़र तकनीक द्वारा चित्रण हमें मंत्रमुग्ध कर गया। यमुना के तट पर मनमोहक सजावट से युक्त मंदिर के अद्‌भुत दृश्य आँखों में सँजोए हम घर लौटे।

भारत आस्था, श्रद्धा और विश्वास का एक प्रमुख केन्द्र माना जाता है। चप्पे-चप्पे पर अद्‌भुत आकर्षण है। इसी आस्था एवं आकर्षण से वशीभूत होकर हम 27 नवम्बर, मंगलवार को प्रातः 5 बजे वृंदावन ठाकुर जी के दर्शन के लिए चल पड़े। गाड़ी से उतरकर पतली-सँकरी गलियों से होते हुए राधे-राधे रटते मंदिर के समीप पहुँचे, जहाँ बच्चों ने चंदन से माथे एवं गाल पर राधे-राधे नाम अंकित कर दिया। भक्तों की भीड़ के बीच हमने मंदिर के प्रांगण में प्रवेश किया। लगभग 7.45 पर गर्भगृह से पर्दा हटाया गया और श्री बाँके बिहारी की सुन्दर श्यामवर्णी प्रतिमा के मनोहारी दर्शन से रोम-रोम आनंदित हो उठा। मान्यता है कि इनके दर्शन से राधा-कृष्ण के दर्शन का लाभ मिलता है। मंदिर का पर्दा हर दो मिनट के अंतराल पर खोला और बंद किया जाता है।

वहाँ से लगभग आधा कि.मी. पैदल चलते हुए बंदरों से बचते हुए हमने निधिवन परिसर में प्रवेश किया, जहाँ वृक्ष की डालियाँ नीचे की ओर झुकी और आपस में गुँथी हुई थीं। पूरा निधिवन इन छोटे-छोटे, जोड़े वाले वृक्षों से आच्छादित था, जो हर तरफ़ श्री राधा-कृष्ण की उपस्थिति का एहसास करवा रहा था। अंदर रंगमहल देखा। फिर हमने बंसीचोर राधा-रानी के मंदिर के दर्शन किए। अन्य मंदिरों के दर्शन के बाद हम अगले पड़ाव की ओर बढ़े।

अंतिम पड़ाव था आगरा का ताजमहल। पार्किंग में गाड़ी रखकर हम टाँगे से प्रवेश द्वार तक पहुँचे। टिकट लेकर सुरक्षा जाँच पूर्ण कर जैसे ही कुछ दूर चले, सामने था सुन्दर संगमरमर का विश्व धरोहर मकबरा, मुगल वास्तुकला का उत्कृष्ट नमूना, जिसका निर्माण मुगल सम्राट शाहजहाँ ने अपनी पत्नी मुमताज़ की याद में करवाया था। इसकी महीन नक्काशी, जालीदार मेहरा, जड़ाऊ पच्चीकारी आयतें आश्चर्यचकित कर देती थीं। अनूठे प्रेम के इस प्रतीक के आसपास लाल बालू के पत्थर से बनी इमारतें भी अत्यंत आकर्षक थे। थकान के बावजूद नई ऊर्जा के संचार का अनुभव करते हुए हम रात्रि में घर वापस आ गए।

जीवन को समीप से देखने का सबसे सरल माध्यम यात्रा है। यात्रा का अनुभव शब्दों की सीमाओं में बाँधना कठिन है। इस गौरवशाली यात्रा से प्राप्त अनुभवों और मीठी स्मृतियों को मनोमस्तिष्क में संजोकर 29 नवम्बर, गुरुवार को हमने मॉरीशस में पुनः कदम रखा।

आखिरी सफ़र, काठमांडू का

हाइंस वरनर वेस्लर
स्वीडन

लार्स स्वीडन का एक शांत स्वभाव का व्यक्ति था, जो शान्ति से स्टॉकहोम के पास एक छोटे से शहर में रहता था। वह जीव-विज्ञान का शिक्षक था। उसने जीव-विज्ञान की खूब पढ़ाई की है। कभी-कभी स्कूल के बच्चे उस पर हँसते हैं। उसे अजीब समझते हैं, फिर भी एक तरह से आदर से देखते हैं। जानवरों की ज़िंदगी के बारे में उसे अच्छी तरह बोलना आता है और अपनी जानकारी से वह बच्चों को प्रभावित भी करता है। स्कूल में न बच्चे, न दूसरे अध्यापक उससे किसी तरह की दुश्मनी रखते हैं। वैसे, दोस्ती भी ठीक से नहीं रखते। लोग समझते हैं कि वह अपने-आप में मस्त है और ज्यादा लोगों से दोस्ती रखने की न क्षमता रखता है, न इच्छा। अकेलापन ज़रूर महसूस करता होगा, लेकिन आजकल स्वीडन में कौन

महसूस नहीं करता।

लार्स कई बार भारत जा चुका है। आजकल हर कोई जाता है, इसमें कोई खास बात नहीं है। उदयपुर, जयपुर, ताजमहल, खजुराहो - इस तरह की जगहों को वह जानता है और उसे आश्रम जाने की भी आदत पड़ गई है। इनके दोस्त हैं, जो ऋषिकेश जाते हैं। आश्रम में मैडिटेशन और सेवा भी करते हैं। गंगाजी में राफ़्टिंग करने के शौकीन भी हैं। इनके साथ जाने का कई बार मौका हुआ है। पर पहले का जोश शांत-सा हो गया है। फिर भी भारत-यात्रा की आदत तो बन ही गई है, इसलिए साल में एक बार भारत का भ्रमण किए बिना साल पूरा नहीं होता। स्वीडन में जब बहुत सर्दी होती है और जब स्कूल की छुट्टियाँ होती हैं, तब भारत जाने का सही समय होता है। बड़े दिन से पहले की उड़ान लेकर तीन-चार हफ़्तों तक यात्रा का सुख पाना, फिर वापस स्वीडन लौटना।

अब वह दिल्ली में खड़ा था, एक ऐसी जगह, जहाँ हर ओर ज़िंदगी का शोर था। हवा में भारीपन था, रफ़्तार तेज़ थी, लेकिन एक ऊर्जा थी, जिसने उसे अपनी गिरफ़्त में ले लिया था। लार्स यहाँ एक अलग सफ़र पर निकला था – दिल्ली से काठमांडू तक की बस यात्रा कर रहा था। वह नए लोगों से मिलने और नए नज़ारे देखने के इरादे से यात्रा कर रहा था।

एक साफ़ सुबह थी, जब उसने अपना पुराना, घिसा-पिटा बैग कंधे पर लटकाया और बस में चढ़ गया। उसके हाथ में एक छोटी-सी थर्मस बोतल थी, जिसमें कॉफ़ी और एक नोटबुक थी, जिसमें वह अपने अनुभव लिखना चाहता था। वह जान-बूझकर बस से जाता था, ताकि सब कुछ देख सके। हवाई जहाज़ से वापसी करने का इरादा था। धूल-भरी सड़कों पर हिचकोले खाती हुई बस दिल्ली से धीरे-धीरे गाँव की ओर बढ़ने लगी थी। शहर की भीड़-भाड़ खुली ज़मीनों और पहाड़ियों में बदल गई, और स्मॉग भी साफ़ हवा में बिखरने लगा।

कुछ घंटों के सफ़र के बाद उसके सहयात्री उससे परिचित होने लगे। उसके बगल में एक बुज़ुर्ग व्यक्ति बैठे थे, जिनका नाम मोहन था। उनके चेहरे पर हल्की मुस्कान थी और वे शांत स्वभाव के लग रहे थे। बातचीत के दौरान लार्स को पता चला कि मोहन उत्तर प्रदेश के गाँव में पले-बढ़े थे और गोरखपुर में अपने परिवार से मिलने जा रहे थे। उन्होंने अपनी जवानी के दिनों के बारे में बात की, जब पेड़ ज्यादा घने हुआ करते थे और नदियाँ साफ़ बहा करती थीं।

"देश बदल रहा है।" मोहन ने कहा और उसने एक छोटी-सी घाटी की ओर इशारा किया, जिसे वे बस से पार कर रहे थे। वहाँ एक गहरी परत थी – प्लास्टिक की थैलियाँ, बोतलें और कचरे के ढेर, जो हवा के झोंकों के साथ झाड़ियों में फँसे हुए थे। "पहले यहाँ मछली पकड़ने और नहाने के सबसे अच्छे स्थान थे। बच्चे किनारे पर खेलते थे, लेकिन आज... सब बदल गया है।"

लार्स ने चुपचाप उस दृश्य को देखा। स्वीडन में उसकी अपनी नदियाँ शायद इतनी प्रदूषित नहीं थीं, पर वहाँ भी उसने समुद्र और प्रकृति को प्लास्टिक के कचरे से जूझते देखा था। यहाँ तक कि स्वीडन के उन जंगलों में भी, जिन्हें उसने हमेशा स्वच्छ और सुरक्षित माना था, अब इंसानी कचरे के निशान मिलने लगे थे। उसे दुख और चिंता का मिला-जुला अहसास हो रहा था, लेकिन साथ ही यह जानने की उत्सुकता भी थी कि लोग इन बदलावों के साथ कैसे जी रहे थे। गाँवों में बस रुकी, जहाँ लोग सड़कों के किनारे अपनी सब्जियाँ और फल बेच रहे थे। उसने औरतों को पानी के भारी मटके ढोते हुए और आदमियों को तंबुओं के नीचे रोटियों का आटा गूँथते हुए देखा।

एक गाँव में, एक युवा महिला बस में चढ़ी और लार्स के बगल में बैठ गई। उसका नाम आशा था और उसकी आँखें चमकदार और उत्सुक थीं। उसने बताया कि वह एक सामाजिक कार्यकर्ता है और दूरदराज के इलाकों में पर्यावरण जागरूकता और शिक्षा के लिए काम करती है। "हर कोई सोचता है कि समाधान बड़े कदमों में हैं, लेकिन छोटे कदम भी बड़ा असर डाल सकते हैं", उसने कहा। "कई लोग नदी में कचरा फेंकते हैं, बिना यह समझे कि वे क्या नष्ट कर रहे हैं।"

जैसे-जैसे बस आगे बढ़ती गई, लार्स को और भी कहानियाँ सुनने को मिलीं। हर यात्री देश के एक अलग हिस्से का प्रतिनिधित्व करता प्रतीत हो रहा था। एक आदमी ने अपने कारखाने की नौकरी के बारे में बताया और उस औद्योगिक कचरे का जिक्र किया, जो सीधे नदी में डाला जाता था। एक

बुजुर्ग महिला ने अपने गाँव के बारे में बताया, जो गर्मियों में नियमित रूप से जल संकट का सामना करता था, क्योंकि नदियाँ सूखने लगी थीं। हर किसी के पास कहने को कुछ था और हर कोई एक बड़ी पहेली का एक हिस्सा लगता था।

कुछ दिनों के बाद उन्होंने नेपाल की सीमा पार की और नज़ारा बदलने लगा। पहाड़ियाँ ऊँची होने लगीं, हरियाली घनी होती गई और बस टेढ़ी-मेढ़ी सड़कों पर धीरे-धीरे ऊपर चढ़ने लगी। दूर-दूर तक फैले हिमालय के बर्फ़ीले शिखर अद्‌भुत दिख रहे थे।

सड़क के पास ही एक छोटे-से गाँव में बस ने कुछ देर के लिए ब्रेक लिया। यात्री इधर-उधर फल खरीदने या थोड़ी चहलकदमी करने के लिए उतर गए। लार्स ने सोचा, क्यों न एक छोटे-से टीले पर चढ़ा जाए, जो उसे एक बेहतर नज़ारा दिखा सकता था। वह एक ऊँचाई पर पहुँचा, तो उसने नीचे घाटी को देखा, जो कोहरे से ढकी हुई थी। उसने ऊपर बर्फ़ से ढके हुए हिमालय के शिखर को भी देखा। कुछ पल के लिए वह प्रकृति के साथ एक जुड़ाव महसूस करने लगा। पेड़ों से होकर गुज़रने वाली हवा उसे इन पहाड़ों की कहानियाँ सुनाने लगी।

"मनुष्य अक्सर भूल जाता है कि वह इस भूमि का केवल एक हिस्सा है", उसने अचानक पास ही से एक आवाज़ सुनी। वह एक बुज़ुर्ग साधु की आवाज़ थी, जो वहीं से नज़ारा देख रहे थे। साधु ने एक शांत मुस्कान के साथ कहा - "ये पर्वत मज़बूत हैं, लेकिन ये भी अजय नहीं हैं। यहाँ जो अटल लगता है, वह भी नष्ट हो सकता है।"

साधु के शब्द लार्स के मन में गूँजने लगे और वह चिन्तन में मग्न होकर काठमांडू की ओर बढ़ता रहा। रास्ते और भी तंग होते गए। उसने देखा कि पर्वतीय गाँवों में जीवन सरल था और लोग सीधे-सादे थे। यहाँ कचरा कम दिखाई देता था, लेकिन कभी-कभी प्लास्टिक की बोतलें छोटे नालों में बहती या पेड़ों के तनों से उलझी हुई दिखती थीं।

अंततः वह काठमांडू पहुँच गया, एक ऐसी नगरी जो परंपरा और आधुनिकता का मिश्रण थी। यह एक जीवंत और रंगीन शहर था, लेकिन यहाँ भी मानवीय प्रभावों के निशान थे। बागमती नदी, जो शहर के बीच से बहती थी, कभी एक पवित्र स्थान थी, लेकिन अब वहाँ मछलियों से ज्यादा कचरा बहता था और उसकी गंध पवित्रता का अहसास नहीं कराती थी।

लार्स ने शहर की खोजबीन की। वह मंदिरों में गया और भक्तों को प्रार्थना करते देखा। यह देखकर वह प्रभावित हुआ कि लोगों ने तमाम चुनौतियों के बावजूद अपनी परंपराओं से जुड़ाव बनाए रखा था। एक शाम उसने एक दुकानदार से मुलाकात की, जो गर्व से कह रहा था कि उसने अपनी दुकान से प्लास्टिक की थैलियाँ हटा दी हैं। "यह एक छोटा कदम है, हम में से हर कोई कुछ-न-कुछ कर सकता है", उसने लार्स को चाय पेश करते हुए कहा। "अगर हम इस धरती का ख्याल रखेंगे, तो धरती भी हमारा ख्याल रखेगी।"

लार्स ने काठमांडू में कुछ दिन और बिताए, फिर वह वापसी की यात्रा पर निकल पड़ा। इस यात्रा ने उसे भीतर से बदल दिया था। उसने यह समझा कि लोग प्रकृति से कितने गहरे जुड़े हुए हैं और प्रकृति का संतुलन कितना नाज़ुक है। यात्रा के दौरान उसने जो बातें और कहानियाँ सुनी थीं और प्रकृति के जिन विभिन्न पहलुओं को देखा था, उनसे मनुष्य और प्रकृति के संबंध की उनकी समझ गहरी हुई।

अंततः जब वह वापस दिल्ली पहुँचा और शहर का शोर और स्मॉग उसने फिर से महसूस किया, तब वह ठिठक गया। काठमांडू की यात्रा ने उसकी आँखें खोल दी थीं। प्रकृति के संरक्षण के प्रति उसने अपने कर्तव्य का बोध किया। लेकिन उसने सोचा - छोटा आदमी हूँ, कुछ भी नहीं हूँ... अकेला इस दुनिया का क्रम कैसे बदलूँ... इसके अलावा मैं दुनिया के इस हिस्से में विदेशी हूँ। लेकिन... ज़िम्मेदारी दूसरों की नहीं, मेरी है। ... ज़िम्मेदार... मैं हूँ। मैं और हर कोई, जो यात्रा पर है, वह प्रकृति के संरक्षण का ज़िम्मेदार है। लार्स ने अपने आप से वादा किया... प्रकृति बिगड़ रही है, इसकी रक्षा के लिए मैं अपने जीवन का बलिदान करूँगा। यह वादा है।

heizwerner.wessler@lingfil.uu.se

खुजली है भई खुजली है

डॉ. पवनेश ठकुराठी
उत्तराखंड, भारत

बहुत दिनों बाद हमारा मन हुआ कि आज क्यों न खन्ना साहब के साथ पार्क में टहलने निकल जाएँ। यही सोचकर हम शाम के पाँच बजे खन्ना साहब के घर की ओर चल दिए। दूर से जब हमने उनके घर की ओर देखा, तो पाया कि खन्ना साहब अपने तिमंज़िला मकान की छत पर अंडरशर्ट और जाँघिया पहने नारद की तरह टहल रहे हैं। मानो वह छत नहीं, बल्कि देवलोक का कोई हिस्सा हो। हम गली में ही ठिठक गए और हमने आवाज़ लगाई - "खन्ना साहब!"

खन्ना साहब तक हमारी आवाज़ पहुँची ही नहीं। वह बगल की सड़क से गुज़रते वाहनों के शोर में ठीक उसी तरह दब गई, जैसे इंसान के पैरों तले अंगूर का कोई दाना दब जाता है। हमने दोनों हाथ ऊपर उठाकर झंडे की तरह हवा में हिलाए और फिर से आवाज़ लगाई - "खन्ना साहब!" इस बार शायद हमारी आवाज़ उन तक पहुँच गई, क्योंकि जैसे ही हमने उन्हें पुकारा, वे उसी पल ठिठक गए। ...लेकिन यह क्या! खन्ना साहब हमारी ओर देखने के बजाय अपने ही बदन की ओर देखकर खुजलाने लगे थे। वे कभी पीठ की ओर खुजलाते, तो कभी कमर से नीचे की ओर! इसका सीधा मतलब था कि खन्ना साहब को हमारी आवाज़ सुनाई नहीं दी थी, बल्कि वे खुजलाने के लिए ठिठके थे।

अब हम हार मान चुके थे। शहर के इस शोरगुल में खन्ना जी तक मेरी आवाज़ का पहुँचना उतना ही कठिन था, जितना सरकार की योजनाओं तक गाँव के किसी गरीब आदमी का पहुँचना। इसलिए अब हमने निश्चय किया कि क्यों न छत पर जाकर ही खन्ना साहब से मिला जाए और पूछा जाए खन्ना साहब आपका स्वास्थ्य ठीक-ठाक है? कहीं आपको खुजली की बीमारी तो नहीं हो गई? पार्क की हवा खाएँगे, तो अच्छा महसूस करेंगे!

यही सोचते-सोचते हम उनके मकान का गेट खोलकर सीढ़ियों से ऊपर चढ़ने लगे। हम सीढ़ियों के ऊपरी हिस्से में पहुँचे ही थे कि खन्ना साहब ने हमें देख लिया - "अरे, आइए-आइए डॉक्टर साहब आइए! वेलकम है, आपका वेलकम। आइए!" ऐसा कहकर खन्ना जी ने छत पर रखी कुर्सी मेरी ओर सरका दी। हम धम्म से उस कुर्सी पर बैठ गए, जैसे वह कोई मामूली कुर्सी नहीं, बल्कि राजनेताओं वाली कुर्सी हो!

हमारे विराजने के बाद खन्ना साहब भीतर गए और अपने लिए भी एक कुर्सी ले आए और उस पर बैठकर बोले - "और सुनाइए डॉ. साहब! आज आखिर कैसे दर्शन दे दिए आपने इस गरीबखाने में?" खन्ना साहब हमसे पुछ रहे थे। वे हमारी ओर देख रहे थे, लेकिन उनका बायाँ हाथ जाँघियों पर था और वे उँगलियों से खुजलाए जा रहे थे। आखिर हमसे रहा नहीं गया और हमने उनके प्रश्नों के उत्तर दिए बिना ही अपने सवाल गोली की तरह उनकी ओर दाग दिए - "खन्ना साहब! आप बार-बार खुजलाए जा रहे हैं। आखिर क्या बात है? कहीं आपको खुजली की बीमारी तो नहीं हो गई? आखिर कब से आपको खुजली की शिकायत होने लगी?"

"अमा, बस भी करो यार! खुजली ही तो है। तुम तो ऐसे घबरा रहे हो, जैसे कोरोना वायरस हो!" यह कहते हुए खन्ना साहब ने जांघिये से हाथ हटा लिया।

"खन्ना साहब, खुजली संक्रामक भी तो होती है ना!"

"हाँ बिल्कुल होती है, लेकिन आप घबराएँ नहीं। खुजली हमको ही नहीं, सबको होती है! आपको भी हुई होगी कभी।" उन्होंने कहा।

"हैं! क्या बात कर रहे हैं?"

"बिल्कुल सही कह रहे हैं, जनाब हम। खुजली कोई व्यक्तिगत समस्या नहीं, बल्कि एक अंतरराष्ट्रीय समस्या है।"

"मतलब?" हम खन्ना साहब की बात समझ नहीं पाए।

"मतलब यही कि खुजली आपको या हमको ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया के लोगों को होती है। हर धर्म, जाति, क्षेत्र और व्यवसाय के लोगों को होती है। केवल मनुष्यों को ही नहीं, बल्कि जानवरों, पशु-पक्षियों, कीड़े-मकोड़ों तक को खुजली होती है। अब आप ही बताइए, खुजली आखिर किसे नहीं होती?"

"हाँ, आप कह तो एकदम ठीक रहे हैं।" मैंने उनकी बात

का समर्थन किया।

"हाँ, इसीलिए तो कह रहा हूँ कि खुजली एक वैश्विक समस्या है। यह देश-विदेश, भीतर-बाहर, यत्र-तत्र-सर्वत्र व्याप्त है। अब आप ही बताइए, जब अमेरिका को खुजली लगती है, तो वह क्या करता है?" उन्होंने पूछा।

"क्या करता है?" मेरे मुँह से उत्तर के बजाय प्रश्न ही फूट पड़ा।

"अरे डॉ. साहब, यही कि दूसरे देशों के मामलों में हस्तक्षेप! अमेरिका को खुजली होने पर वह यही करता है। देशों के व्यक्तिगत मामलों में हस्तक्षेप कर अपनी खुजली दूर करता है। चीन को देख लो! जब उसे खुजली लगती है, तो भारत की सीमाओं का बेवजह अतिक्रमण करने लगता है। उसकी खुजली की वजह से गलवान घाटी में देखो क्या हुआ! वह तो अच्छा हुआ भारतीय फ़ौज ने उसकी खुजली की दवा कर दी। इतने पर भी उसे चैन नहीं आ रहा है। पाक को देख लो! खुजली के कारण ही तो वह कश्मीर में अशान्ति फैलाने के लिए अपने खुजली दूत भेजता है। वह तो भला हो भारत के फ़ौजी डॉक्टरों का, जो खुजली समेत दूतों का कायाकल्प कर देते हैं।" खन्ना साहब ने एक ही साँस में लंबा-चौड़ा व्याख्यान दे डाला।

"अच्छा...!" मैं अब खन्ना जी की बातों का मतलब समझने लगा था।

"हाँ, और नहीं तो क्या! आजकल देशों में अपनी खुजली दूर करने के लिए एक रिवाज़-सा चल पड़ा है। डॉ. साहब, आप बता सकते हैं, वह रिवाज़ क्या है?"

"ऊँ...!" मैं सोचने लगा।

"चलिए रहने दीजिए। मैं बताता हूँ। वह रिवाज़ है परमाणु परीक्षण! सब देश एक-दूसरे से आगे निकलने के लिए अधिक-से-अधिक परमाणु परीक्षण करने पर आमादा हैं। किसी को यह मतलब नहीं कि यह परमाणु परीक्षण दुनिया के विनाश के उपक्रम हैं। सब अपनी-अपनी खुजली मिटाना चाहते हैं। अरे, खुजली मिटानी ही है, तो बेरोज़गारों को रोज़गार देकर मिटाओ, किसानों को आर्थिक सुरक्षा देकर मिटाओ, जनहित के कार्यों में पैसा लगाओ, निर्धनों के लिए योजनाएँ बनाओ, विश्वशांति और मानवता के लिए कुछ करो। नहीं, हम परमाणु परीक्षण करेंगे! मानवता को खतरे में डालेंगे! तो डालिए। किसने रोका है!" खन्ना साहब उत्तेजित-से हो पड़े।

"हाँ भाई साहब। एकदम सही फ़रमाया आपने। यह परमाणु परीक्षणों की होड़ तो एक दिन संसार को ले डूबेगी। फिर मिटाते रहो खुजली! क्या कहें, किससे कहें," मैंने चिंता व्यक्त की।

"किसी से नहीं डॉ. साहब! हमारी तरह बोलकर, भड़ास निकालकर मन को शांति दिलाइए। हाँ, तो मैं कह रहा था कि खुजली एक सर्वव्यापी व्याधि है। क्या आप जानते हैं कि जब जन नेताओं और अफ़सरों को खुजली लगती है, तो वे क्या करते हैं?" उन्होंने पुनः पीठ की तरह हाथ बढ़ाया और वे खुजलाने लगे।

"ऊँ... खुजलाते होंगे।" मैंने कहा।

"कैसे? मेरी तरह?"

"हाँ।" मैंने सिर हिलाया।

"नहीं जी, बिल्कुल नहीं। जब नेताओं और अफ़सरों को खुजली लगती है, तब वे भ्रष्टाचार करते हैं। यही उनकी दवा है। जब तक मोटी रकम, मोटा माल उनके हाथ न लग जाए, तब तक उन्हें चैन नहीं आता। नेताओं और अफ़सरों को तो छोड़िए जनाब, छोटे-से-छोटा बाबू भी अपनी खुजली रिश्वतखोरी की दवा से ही मिटाता है। हमारे ऑफ़िस में एक थे, बाबू सज्जन लाल। नाम था सज्जन लाल, लेकिन गुण थे दुर्जनलाल के। दिन भर जैसे आग सेंकते बिल्ले की तरह कुर्सी पर ऊँघते रहते। कोई भी काम ऐसा काम नहीं था, जो उन्होंने रिश्वत लिए बिना किया हो। मुझे तो लगता है इस बाबू जाति को ही सबसे ज्यादा खुजली की बीमारी लगती होगी।" उन्होंने पुनः विस्तार से अपनी बात रखी।

"हाँ, एकदम सही कहा खन्ना साहब आपने! यह बाबू जाति तो जन्म से ही अंग्रेज़ों की बनी हुई थी।" मेरा इशारा मैकाले की तरफ़ था।

"क्या बात है! सौ फ़ीसदी सच! कुल मिलाकर मेरा कहने का मतलब है कि खुजली संसार के सभी लोगों को होती है, फिर चाहे वह उच्च वर्ग का हो, मध्यम वर्ग का हो या फिर निम्न वर्ग का। अब आप भी देखते होंगे, जब आम आदमी

को खुजली लगती है, तो वह दूसरों के घरों के आगे कूड़ा फेंककर अपनी खुजली मिटाता है।

खुजली केवल आधुनिक युग में ही नहीं, बल्कि पुराने समय में भी हर जगह व्याप्त थी। सतयुग में रावण को इतनी खुजली लगी कि भगवान श्रीराम को उसकी खुजली दूर करनी पड़ी। द्वापर युग में कंस की खुजली भगवान श्रीकृष्ण ने दूर की। मेरा कहने का मतलब है कि खुजली सर्वव्यापी तो है ही, साथ ही, सार्वकालिक और सार्वभौमिक भी है। इसीलिए तो मैं कहना चाहता हूँ कि दुनिया भर के देशों को मिलकर वर्ष में एक बार अंतरराष्ट्रीय खुजली महोत्सव का आयोजन करना चाहिए।" उन्होंने एकदम नया विचार प्रस्तुत किया।

"क्या बात कर रहे हैं भाई साहब! वाह, क्या आइडिया दिया है! अंतरराष्ट्रीय खुजली महोत्सव! वाह! अद्वितीय आइडिया!" मेर पास उनकी तारीफ़ करने के सिवा कोई और चारा नहीं था।

"हाँ, इस महोत्सव में सभी देशों के प्रतिनिधि एक-दूसरे को जी भर खुजलाते और अपनी-अपनी खुजली दूर करते। अंतरराष्ट्रीय खुजली महोत्सव के अलावा भी मेरे पास एक और शानदार विचार है। पर्यावरण दिवस, मज़दूर दिवस, किसान दिवस, सेना दिवस, हिंदी दिवस, अलाना दिवस, फलाना दिवस की तरह ही क्यों न साल में एक दिन खुजली दिवस भी मनाया जाए। इस दिवस का फ़ायदा यह होगा कि पूरी दुनिया के लोगों को अपनी-अपनी खुजली दूर करने का मौका मिलता। लोग एक-दूसरे को जी भरके खुजलाते। फ़ोटोग्राफ़र फ़ोटो खींचते! अखबारों में खुजली दिवस और खुजली महोत्सव की खबरें छाई रहतीं।" उन्होंने एक और नया विचार सामने रख दिया।

"लेकिन खन्ना साहब, इससे तो लोगों की खुजली और बढ़ जाएगी।" मैंने चिंता जताई।

"अरे भाई, मैं उस खुजली की नहीं, इस खुजली की बात कर रहा हूँ।" ऐसा कहकर खन्ना साहब हँसने और खुजलाने की क्रियाएँ साथ-साथ करने लगे।

उसी समय हमारे मोबाइल की घंटी बजी। फ़ोन श्रीमती जी का था। हमने चारों ओर नज़र घुमाई। धरती अंधेरे की चादर ओढ़ चुकी थी। हमने खन्ना साहब से कहा - "अच्छा भाई साहब, अब इजाज़त दीजिए। हो सके तो इस खुजली का जल्द-से-जल्द इलाज करवाइए, ताकि शाम को नित्य टहलने निकल सकें।" इसके बाद हम खन्ना साहब से विदा लेकर तेज़ी से अपने घर की ओर लौट आए।

जब तक हम फ़्रेश होकर तैयार होते, तब तक श्रीमती जी डाइनिंग टेबल पर भोजन परोस चुकी थीं। मेरे कुर्सी पर बैठते ही उन्होंने रिमोट से टीवी ऑन कर दिया। संयोग से, पता नहीं मुझे उसी समय कहाँ से खुजली लग गई और मैं खुजलाने लगा। श्रीमती जी से रहा नहीं गया और उन्होंने जुबान खोल ही दी – "आपको भी बस डिनर के समय ही खुजली लगती है!"

"क्यों नहीं लगेगी फिर खुजली! आखिर खुजली मास्टर जो ठहरा मैं।" मैंने श्रीमती जी को छेड़ने के इरादे से कहा।

श्रीमती जी आँखें मूँदते-मूँदते मुझे घूरने लगीं। सामने टीवी में ईच गार्ड का विज्ञापन आ रहा था - "खुजली है भई खुजली है। खुजली है भई खुजली है। ये इधर भी होता है, ये उधर भी होता है ...!"

pawant2015@gmail.com

गिरवी बाबू, बहती हुई गंगा और गणतंत्र

मलय जैन

भोपाल, भारत

यूँ तो मौसम कड़ाके वाली ठंड का था, लेकिन सुबह होते-होते मोहल्ले का माहौल गरम हो गया था। हुआ यूँ कि गिरवी बाबू दो रोज़ बाद गाँव से लौटे थे। गेट खोलकर भीतर घुसे, तो देखा कि दरवाज़े का कुन्दा उखड़ा पड़ा था और नीचे पड़ा ताला उन्हें मुँह चिढ़ा रहा था। अपने ही घर का ताला टूटा देख उनका खून खौल उठा। एकाएक कानून-व्यवस्था पर से भरोसा उठ गया। उनके लिए केवल अपना भरोसा उठना पर्याप्त न था, सोई हुई जनता को उठाकर, कानून-व्यवस्था पर से उनका भी भरोसा उठाना आवश्यक था। सो टूटा ताला देखते ही वे ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगे। पहले आसपास के

लोग इकट्ठा हुए, फिर उन्होंने सारा मोहल्ला सिर पर उठा लिया। उनके तेवर देख ऐसा लग रहा था, मानो थोड़ी देर में सारा शहर ही सिर पर उठा लेंगे।

आप सोच रहे होंगे, 'गिरवी बाबू', यह भला कैसा नाम हुआ! है न? चलिए, बता ही देते हैं। दरअसल, माँ-बाप ने बड़े लाड़ से इनका नाम गिरधर गोपाल रखा था। मगर जैसे हमारे देश में कर्म के आधार पर प्रायः नामकरण हो जाता है न, वैसे ही इन्हें कब गिरधर गोपाल से गिरवी गोपाल और गिरवी गोपाल से गिरवी बाबू बुलाया जाने लगा, पता नहीं। वे लोगों से ज़मीन गिरवी रखवाकर उधार देते थे और सूद वसूलते थे। वसूली में इतने कठोर थे कि लोगों को बरतन और कपड़े तक बेचने पड़ जाते थे। बाद में इलाके पर और ज्यादा असर जमाने के लिए उन्होंने राजनीति में भी कदम रख दिया। इससे उनका रुतबा बढ़ गया और शहर व आसपास के इलाकों में उनका दबदबा भी कायम हो गया।

हाँ, ताला टूटा होने से यह तो तय हो चुका था कि चोरी हुई है, मगर गिरवी बाबू छोटा-मोटा नहीं सोचते थे। ऊँचे लोग, ऊँची पसंद वाले थे। चोरी को चोरी ही बताया जाए, तो बात बड़ी हल्की हो जाती है। उसी चोरी को डकैती बताया जाए, तो मामला गंभीर हो जाता है और उनकी प्रतिष्ठा की ठसक भी बढ़ती है। उन्होंने तत्क्षण "डकैती पड़ गई, डकैती पड़ गई" चिल्ला-चिल्लाकर सारा मोहल्ला एकत्र कर लिया। सुबह-सुबह ऐसा शोर कि लोग खटिया से कूद पड़े, चारपाइयों से लुढ़क पड़े। लोग रजाई छोड़, मुँह में दातून और हाथ में लोटा पकड़े जल्दी-जल्दी गिरवी बाबू के घर की ओर दौड़ पड़े। जिज्ञासु भीड़ गेट और जहाँ-जहाँ से संभव था, वहाँ से घुसकर उनके पोर्च, बगिया और पिछवाड़े तक फैल गई और आखिरकार उस दरवाज़े के पास रुक गई, जिसका ताला टूटा हुआ था।

साफ़-साफ़ समझ आ रहा था कि मामला नकब्ज़नी का ही है। मगर साहब, जितने मुँह उतनी बातें। जितने हाथ, उतने जासूस नाथ। सब सबूत खोद निकालने को तत्पर। हर कोई चाह रहा था, दरवाज़े के उखाड़ फेंके गए कुंडे और कुन्ने पर टूटे पड़े ताले को एक दफ़ा अपने हाथों से छू ही ले। क्या पता, उसे ही कोई सुराग हाथ लग जाए और कौन जाने, उसी सुराग से मामले का पर्दाफ़ाश हो जाए। कुछ ही देर में मोहल्ले भर ने छूकर, उलट-पुलटकर और कुछ न तो सूँघकर यह तस्दीक कर ली कि ताला वास्तव में तोड़ा गया है और इसका सबूत यह है कि ताले के मुँह पर, पीठ पर, इधर और उधर तोड़े जाने के साफ़-साफ़ निशान हैं।

यों चोरी खुद के घर में हुई थी, मगर ऐसे मौके रोज़ नहीं आते। गिरवी बाबू का उत्साह देखते बन रहा था। जबसे उन्हें डकैती वाली बात सूझी थी, तब से तो जोश और भी बयाँ करने लायक था। पड़ोसी धर्म का निर्वहन करते वह पड़ोस से लेकर मुहल्ले तक के लोगों को उस कमरे में, बल्कि यह कहें, ऐन उन अलमारियों तक घुसा लाए, जिनमें रकम रखी थी।

मज़े की बात यह थी कि अलमारियाँ तोड़ी नहीं गई थीं, क्योंकि उनमें चाबियाँ लगी छोड़, घर से चले जाने का एहसान गिरवी बाबू पहले ही कर गये थे। लोगों ने कहा - 'यार देखो, अपने गिरवी बाबू कितने समझदार हैं, जो चाबियाँ साथ नहीं ले गये, बल्कि लगी ही छोड़ गए।' कुछ ने संतोष प्रकट कर कहा - 'रकम जो गई सो गई, अलमारियाँ टूटने से बच गईं, यह बड़ी गनीमत रही।' कुछ ने तो यह तक कहा कि बाहर ताले में भी चाबी लगी छोड़ जाते, तो ज्यादा गनीमत होती। ताला भी खामख्वाह टूटने से बच जाता और दरवाज़े का कुंडा भी। पैसा-कौड़ी का क्या है, वह तो आता-जाता रहता है। मौका-ए-वारदात बड़ा दर्शनीय बन पड़ा था। इससे यह समझ आता था कि चोर तो जो भरकर ले गए, ले गए, लोग कितनी उत्सुकता और मज़े के साथ उस पूरे दृश्य को आँखों में भरकर ले जाना चाहते थे।

अलमारियों के पल्ले और लॉकर खुले पड़े थे। ढेर सारे कपड़े-लत्ते, कागज़-पत्ते और तमाम अल्लम-गल्लम सामान यहाँ-वहाँ बिखरा पड़ा था और हाँ, गिरवी बाबू का रायता फैलाने वाली एक वस्तु भी इन्हीं अटरम-सटरम आइटमों के बीच पड़ी मुँह चिढ़ा रही थी। जिस वस्तु विशेष से इस वक्त रायता फैले, उस पर पड़ोस के दो चपल बालकों की तेज़ नज़रें टिकी हुई थीं। इन बालकों की मूँछें अभी भीगी नहीं थीं, मगर जासूसी वाली नसें खूब ज़ोर पकड़ चुकी थीं।

पहला बालक अत्यंत बुद्धिमान था। उसे समझते देर नहीं लगी कि यह वही वस्तु है, जिसके लिए केली किलोलिनी,

विद्युत प्रवाहिनी, प्रेम पुंगवी सन्नी लियोनी प्रतिदिन बड़ी मादक अदाओं से टीवी पर आती हैं और 'अभी न जाओ छोड़कर, ये दिल अभी भरा नहीं' कहकर, न जाने किस मंशा से घर में ही रुके रहने का आत्मीय अनुरोध समूचे देश से करती हैं। दूसरा बालक विज्ञान का छात्र था। नकल से उत्तीर्ण होता था, मगर अक्ल का प्रयोग उसमें भी करता था। भौतिक विज्ञान के चाल बराबर दूरी बटे समय, यानी 'एस इज़िकवल टू डी अपॉन टी' का सिद्धांत उसे खूब ज्ञात था। लिहाज़ा समय के लिए उसने वस्तु पर अंकित निर्माण की तिथि यानी 'मैन्युफ़ेक्चरिंग डेट', गिरवी बाबू की पत्नी की अवसान तिथि यानी 'एक्सपायरी डेट' को गणना में शामिल किया। चाल के लिए गिरवी बाबू के चाल-चलन की श्रुति कथाओं का स्मरण किया और इनके आधार पर झट यह गणना कर ली कि उनकी पत्नी का एक्सपायरी डेट तीन साल पहले की है, जबकि वस्तु की मैन्युफ़ेक्चरिंग डेट हाल की। अतः यहाँ मामला एलिमेंट्री फिज़िक्स का नहीं, बल्कि गिरवी बाबू की किसी नई फिज़िकल केमिस्ट्री का है। इस निष्कर्ष पर पहुँचते ही उसकी मुस्कान तिरछी और तेज़ हो गई और दोनों बालकों ने आँखों-ही-आँखों में कुछ इशारा कर पुनः मुस्कुराना प्रारंभ कर दिया। गिरवी बाबू उसकी मुस्कुराहट को भाँप चुके थे और क्षण-मात्र को झेंप भी गए थे, मगर चूँकि दिमाग के तेज़ चलने में उनका नंबर नेक्स्ट टू चाचा चौधरी था, अतः उन्होंने जल्दी से अपनी एक टाँग विशेष को लंबी कर चीर-हरण करने वाली उस वस्तु विशेष को अलमारी विशेष के नीचे ठेल दिया।

मौका-ए-वारदात पर मोहल्ले भर के जो जेबी जासूस और चंद-करमचंद भीतर आ गए थे, उन्होंने जितने सबूत हो सकते थे, उन्हें सूँघकर, छूकर और भरपूर छेड़कर वारदात की तस्दीक कर ली थी। फिर खुश होकर कहा था - "अहा, इसे कहते हैं सबूत, अब देखना, चोर कैसे पकड़ में आते हैं।"

गिरवी बाबू ने जब देख लिया कि अब मोहल्ला क्या, आसपास की झुग्गी-बस्तियों में भी ऐसा कोई नाकारा नहीं बचा, जो इतनी बड़ी वारदात के बाद भी घर में टाँग फैलाकर सो रहा हो, बल्कि जो सो रहे थे, उन्हें भी भक्तगण द्वारा टाँगा टोली कर या गिरेबान से लटकाकर लाया गया है और गवाहों की एक पूरी फ़ौज उनकी जेब में है, तो उन्होंने कुरते की जेब से फ़ोन निकाला। समय आ गया था कि अब वह पुलिस को बताएँ कि वे क्या चीज़ हैं।

यों जानते वह भी थे कि सौ नंबर घुमाएँगे और 10 मिनट में पुलिस उनके पास आ जाएगी और जितनी जल्दी पुलिस आएगी, चोरों की घेराबंदी भी आसान हो जाएगी, लेकिन जो व्यापार मंडलों, सामाजिक संगठनों, राजनीतिक दलदलों, धार्मिक समितियों और न जाने कहाँ-कहाँ के फ़ोटो में समाई थीं। लिहाज़ा आईजी से नीचे वारदात की इत्तिला देना बिलो स्टैन्डर्ड वाली बात हो जाती। सो उन्होंने, दो सौ किलोमीटर दूर बैठे आईजी साहब को फ़ोन घुमाने के पहले भीड़ में बकायदे इसका ऐलान भी कर दिया कि वे वारदात की इत्तिला सबसे पहले रेंज आईजी साहब को देंगे। मोहल्ले भर के सामने सीधे आला अफ़सरों को फ़ोन लगाने और कानून-व्यवस्था को गरियाने का एक अलग ही आनंद है। तीनों लोकों में चरचराटा बढ़ता है। लिहाज़ा उन्होंने अजीमोशान अकड़ के साथ फ़ोन लगाया। कानून-व्यवस्था की स्थिति को भरपूर कोसते हुए चीख-चीखकर अपनी बरसों की ईमानदारी और खून-पसीने की कमाई डकैती में लूट जाने पर छाती भी इतनी पीट ली कि थोड़े और पीटते तो शायद कुरता फट जाता।

जिस स्यापे के साथ वह अपनी कमाई को ईमानदारी और खून-पसीने की बता रहे थे, वहाँ मौजूद कुछ जाहिल लोग कनखियों में मुस्कराने लगे थे। मोहल्ले की चपला अय्यारिनें भी खूब बता सकती थीं कि इस कमाई में उनकी बहू का मायके से पैसा-ज़ेवर लाते-लाते कितना खून बहा था और धनी का समधी खून के कितने आँसू रो चुका था।

आई जी साहब पर फ़ोन का फौरी प्रभाव पड़ा। डिप्टी साहब, बड़े दरोगा जी, छोटे दरोगा जी और वह सारा फ़ौज-फाटा, जिसने रात भर ड्यूटी के बाद घर पहुँचकर दो घड़ी पलक झपकाने की गरज़ से वरदी खोली ही थी, वापस जूते केस मौका-ए-वारदात पर आ पहुँचा।

गिरवी बाबू, जहाँ इतने फ़ौज-फाटे को देख अपार आत्म-सन्तुष्टि का अनुभव कर रहे थे, वहीं ऊपर से बताते भी जा रहे थे कि कैसे उनकी पाई-पाई जोड़ी रकम लुट गई। उन्हें यह बताने में गजब का उत्साह आ रहा था कि चोर

किस ओर की दीवार फाँदकर घुसे होंगे। किन खिड़कियों से झाँककर टोह ली होगी और कैसे आला-ए-नकाब लगाकर दरवाज़े का ताला तोड़ा होगा। पुलिस उनका उत्साह देखकर दंग थी और यकीन मानिए, चोर भी सामने होता तो दंग रह जाता, बल्कि वह ऐसे गुरु के चरण पकड़ चिरौरी ही करता - "हे गुरुदेव, चौर्य-कर्म के सारे गुर और नवाचार हम अब आप ही से सीखेंगे।"

यों मौका-मुआयना करते ही पुलिस के अफ़सरों ने भी सिर पीट लिया था। जहाँ चोरों के पैरों के निशान मिलने थे, वहाँ मोहल्ले भर से आ जुटे, चपल अय्यारों के चप्पल-जूतों के निशान मुँह चिढ़ा रहे थे। फ़िंगर प्रिंट एक्सपर्ट ने अलमारियों से उँगलियों के निशान लेने के लिए काला पाउडर छिड़का, मगर वहाँ उँगली तो छोड़िए, हाथ-हथेलियों के इतने निशान दिख रहे थे, जितने नई बहू के ससुराल में आने पर भी नहीं लगवाए जाते होंगे। अब उम्मीद केवल कुत्ते पर थी, सो कुत्ता भी बुला लिया गया, जिसके बाद भीड़ को और आनन्द आने लगा। आदमी के तो रोज़ देखते हैं, आज कुत्ते के चमत्कार भी देख लें।

कुत्ता सूँघने की कला में अच्छे अच्छों का बाप था, मगर बाप की भी सीमाएँ होती हैं, सो बाप, माफ़ कीजिए, कुत्ते ने मौका-ए-वारदात पर कदम रखते ही सूँघ लिया कि यहाँ गन्धों के इतने प्रलेवर तैर रहे हैं कि अब सूँघना और चोर का पता लगा लेना उसके बाप के भी बस की बात नहीं, सो वह केवल अलमारी में थुथनी घुसाकर गई रकम की टोह लेने लगा। अपनी छठी इन्द्रिय के दम पर वह समझ गया था, कि धनी भी कम चोर नहीं है और जो कुछ गया है, वह भी चोरी और कपट से ही जोड़ा हुआ था। गिरवी बाबू भी उसकी ओर ऐसी ही शंका से देख रहे थे कि कुत्ते के रंग-ढंग ठीक नहीं दिख रहे। बल्कि एक बार कुत्ते से आँखें मिलते ही वे सकपका गये, ऐसा न हो कुत्ता उन्हीं पर डपट बैठे।

अब मौके पर सिवाय गिरवी बाबू की दुर्गंध और भीड़ की मचाई गन्ध के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं था, जिसके दम पर वह कम-से-कम बाहर निकलकर चार छह गलियों, झुग्गी-बस्तियों की तरफ़ दौड़े, सो वह मुँह लटकाकर बाहर बरामदे में आकर बैठ गया और उन लोगों की मूर्खतापूर्ण बातों का आनन्द लेने लगा, जो उसकी शान में कही जा रही थीं।

गिरवी बाबू ने अचानक याद दिलाया कि उन्होंने सीसीटीवी कैमरे भी लगवा रखे हैं। यह जान दरोगा जी की बाँछें खिल उठीं, मगर उन्होंने ज्यों ही बाहर लगे कैमरों की दशा एवं दिशा का पुलिसावलोकन किया, उनकी बाँछें' जैसे थे' वाली स्थिति में लौट गईं और पहले से ज्यादा मुरझा गईं।

दरअसल, बाहर लगे पहले कैमरे की गरदन गिरवी बाबू की नाक के माफ़िक इतनी ऊँची हो गई थी कि उसकी जद में इनके घर का इंच भर कोना नज़र नहीं आ रहा था। हाँ, सामने वाले की छत पर सूखते कच्छे, बनियान या पेटिकोट का रंग काला है अथवा सफ़ेद यह बड़ा साफ़ देखा जा सकता था।

दूसरा कैमरा ज़रूर गिरवी बाबू के घर की चौहद्दी में था, मगर उसकी गरदन टूटकर यों लटकी थी कि उसकी जद में पीछे रखा खाली डस्टबिन आता था। उसके चारों ओर फैले कचरे के ढेर के आधार पर यह साफ़-साफ़ समझा जा सकता था कि गिरवी बाबू डस्टबिन की साफ़-सफ़ाई को लेकर कितने सजग हैं, क्योंकि कचरा डस्टबिन को बचाते हुए बाकी सभी जगह बड़े इत्मीनान से फेंका जाता था और पीछे की गैलरी भले कूड़ेदान में तब्दील हो गई थी, मगर डस्टबिन एकदम चकाचक थी। गनीमत यह थी कि दो कैमरे अंदर बैठक में भी लगे पाए गए और उनमें भी गनीमत यह थी कि कैमरे पड़ोसी के ड्राइंगरूम या बेडरूम के नहीं, गिरवी बाबू के अपने ड्राइंगरूम के दिखा रहे थे।

इन कैमरों के फुटेज़ देखने का सिलसिला शुरू हुआ। इसका फौरी असर यह हुआ कि सारा मोहल्ला अपनी-अपनी आँखों के गटे निकालकर स्क्रीन पर चिपका देने के लिए जितना पास घुस सकता था, ऐसे घुस आया, जैसे तीन दशक पहले की रामायण, महाभारत या कृषि दर्शन का प्रसारण होने जा रहा हो। जिनके दीदे वहाँ तक नहीं पहुँच पा रहे थे, उन्होंने भी अपनी नाक लम्बी कर ऐसे फँसा दी कि अब वहाँ तमाम तरह की नाकों और आँखों का कोलाज़ दिखाई देने लगा था। सभी को कैमरे देखकर पूरी तरह यकीन था कि अगले दृश्य में ही चोर पहचान लिया जाएगा। अचानक एक आकृति को देख गिरवी बाबू उत्तेजित हो चिल्लाए - "यही है चोर, यही है"। सूँघने को आतुर नाकें और गटों के गुच्छे और

पास आ गये।

फ़ुटेज रीप्ले किया गया। पॉज़ करते ही लोग पहचानकर कह उठे, ये तो अपने गिरवी बाबू ही हैं, क्योंकि उनकी ढीली लंगोट के ऊपर जो पैजामा नज़र आ रहा है, वैसा बारहमासी पैजामा केवल गिरवी बाबू का ही हो सकता है। कोई यह भी दावा कर कह पड़ा कि आज का नंगा-से-नंगा चोर लंगोट कैसी भी पहनता हो, ऐसा वाहियात पैजामा तो हरगिज़ नहीं पहनता।

दरोगा जी ने बाहर वाले कैमरों की दिशा देख ली थी और भीतर के कैमरे की दशा भी भाँप गए थे। कैमरा तीन रोज़ पहले से ही बंद पड़ा था, लेकिन गिरवी बाबू के पैजामे को लेकर मौजूदा गवाहों के बयानात के आधार पर दरोगा जी द्वारा भी ताईद कर दी गई कि गिरवी बाबू, फ़ुटेज़ में जो नज़र आ रहा है, वह इतने बड़े सबूत की बिनाह पर सिर्फ़ आप ही हो सकते हैं। लोगों ने भी सहमति में सिर हिलाया और कहा कि जो भी हो, एक पैजामे को छोड़ दें तो चोरों से उनका हुलिया कितना मिलता है।

उधर दूसरे एंगल पर लगे कैमरे को चालू हालत में देख उम्मीद फिर उछाल मार गई। मगर माथा पीटने का सबब यह हुआ कि फ़ुटेज में जो नज़र आ रहा था, वह आप ही टूटा-फूटा था और इसमें दृश्य उतना ही साफ़ था, जितना गिरवी बाबू को अपना मोटा चश्मा निकाल देने के बाद नज़र आता था। ऐसी विकट दशा के बाद भी कैमरे में दो सीन पकड़ लिए गए। एक सीन में जो नज़र आ रहा था, उसके हिसाहब से वह चोर ही था, क्योंकि उसने मुँह बाँध रखा था। दूसरे सीन में जो दिख रहा था, उसका चेहरा इतना धुँधला था कि खुद चोर भी न पहचान पाए। मगर लोगों ने दावे के साथ उसे भी चोर ही बताया, क्योंकि वह उसके साथ था, जिसने मुँह बाँध रखा था।

जिन लोगों ने अपनी नाक यहाँ फँसा रखी थी, उन्हें गज़ब का विश्वास था कि अब पुलिस पकड़ ही लेगी चोर को। उनके हिसाहब से पुलिस की फ़ॉरेंसिक लैब में ऐसा चमत्कारी सॉफ़्टवेयर अवश्य होता है, जो चोर के मुँह पर बँधे गमछे के पीछे भी झाँककर बता सकता है कि ये तो कोई और नहीं, उनकी नाक के नीचे रहने वाला फलानासिंह ही है। दूसरे चोर को लेकर तो और ही गज़ब विश्वास था लोगों को। उन्हें पूरा यकीन था कि पुलिस के पास हल्दी-चन्दन का वह चमत्कारी उबटन होता है, जिसके लगाते ही ऐसे घनघोर धुँधलाते चेहरे पर भी वह ग्लो आ जाए कि चोर का हँसता हुआ नूरानी चेहरा अपने आप सामने आ जाए। बल्कि लोग कह उठें, हाय दइया! यह तो अपने मोहल्ले वाले हमारे वाले ठिकानेसिंह ही निकले!

किस्सा यह है कि चोरी हुए कई घण्टे बीत चुके थे। गिरवी बाबू अपने कद और रुतबे के हिसाहब से लोकल पुलिस को तुरंत सूचना न देकर पहले ही चोरों की घेराबंदी की नसबंदी कर चुके थे, तिस पर भीड़ की स्वयं तफ़्तीश कर डालने की सदेच्छा और हर सबूत के साथ उंगलीकरण प्रकिया के फलस्वरूप मौके से सबूत के रूप में मिलने जा रहे उंगली पंजों के निशान भी मिट गए। कुत्ते ने गन्ध खोजने में मिली नाकामयाबी पर अपने कपड़े इसलिए नहीं फाड़ पाए, क्योंकि वह कपड़े नहीं पहनता था। हालाँकि बचे-खुचे बाल भीड़ की मूर्खता देख उसने नोंच ही लिए थे। सीसीटीवी का हाल सामने था।

अब आते हैं गिरवी बाबू पर। गिरवी बाबू आधा गिलास खाली देखने वाले निराश मानस नहीं थे। एक सोमरस का खाली गिलास छोड़ दो, तो मौके के हिसाहब से शून्य में भी संभावनाएँ निकाल लेने वाले थे, गिरवी बाबू। इसी का नतीजा था कि उन्हें इस वारदात में गिलास आधा क्या, पूरा भरा दिखाई दे रहा था। बहती गंगा के ऐसे मौके बारबार नहीं आते दोस्त। बात निकली है तो दूर तलक तो जाए। हालाँकि उन्हें पता था, बीते दिनों पुलिस ने बड़े-बड़े तीर मारे हैं। दो बड़े गिरोह पकड़े हैं। चोरियाँ बरामद की हैं और दो-एक अंधे कत्ल भी सुलझाए हैं। लेकिन यहाँ तो वारदात खुद उनके साथ हुई है और पुलिस के हाथ में चोर क्या, चोर की दाढ़ी का तिनका तक न था। इतनी बड़ी बात दूर निकलने के पहले आई गई, हो गई तो बात में बात वाली बात कहाँ रह जाती। ऐसा विचारकर उन्होंने ऐलान प्रारंभ किया कि शहर में कानून-व्यवस्था की स्थिति बड़ी खराब है और यह तब तक नहीं सुधरेगी, जब तक वह सारा बाज़ार सारे काम धंधे और सारा शहर बन्द नहीं करा लेंगे। उनके इस पावन अभियान में योगदान देने वे सारे लोग खुद-ब-खुद जुट गये, जो कभी-न-कभी, किसी-न-किसी पेंच में हवालात की हवा खा चुके थे। इनका दृढ़ विश्वास था कि कानून-व्यवस्था तभी दुरुस्त होगी,

जब तक वे दो चार गुमटियाँ या हाथठेले नहीं पलटा लेंगे, दो चार की कनपटी के नीचे चनकट बजाकर उसके बारह नहीं बजा देंगे।

बहरहाल, कुल जमा दृश्य यह हुआ कि घण्टाघर पर ऐन गांधी जी की प्रतिमा के नीचे गिरवी बाबू ने सैकड़ों लोग इकट्ठा कर लिए। अब मामला केवल उनके घर तक सीमित नहीं रहा। एक-एक कर और भी मुद्दे जुड़ते गए। इनमें साल भर पहले नगर सेठ की भागी हुई लड़की का पता न लगा पाना, हेलमेट न पहनने पर अकारण चालान काटना जैसे मुद्दे ही नहीं, ऐसे बहुत-से मुद्दों को भी शामिल कर लिया गया, जिनके आधार पर अब पुलिस ही नहीं, समूची सरकार को कोसा जा सकता था। गलियों में घूमते सुअरों की बढ़ती संख्या पर नियंत्रण न करना, बिल न भरने वालों की बिजली काट देना, सारा दिन पानी बहाने वालों से टैक्स लेने से लेकर बैंकों के कर्जे माफ़ न करने जैसे तमाम मुद्दे मिलकर विरोध का एक मुकम्मल जमावड़ा खड़ा हो गया वहाँ। नारे लगते ही बाज़ार में सन्नाटा छा गया। साफ़ संदेश था कि जो भी इनके रास्ते में आएगा, उसे परम्परा के अनुसार सबक सिखाया जाएगा।

लफ़ंगों की फ़ौज मौके की ताक में थी। उन्हें गणतंत्र में विरोध का यह तरीका बिल्कुल नहीं सुहाता कि आए और केवल जो हमसे टकराएगा, चूर-चूर हो जाएगा या इंकलाब ज़िंदाबाद की विल्ला चोंट कर वापस चले गए। बहती गंगा में हाथ धो लेने की मंशा में ये भी गिरवी बाबू से कम उत्साहित थोड़े थे। पुलिस, जिसे चोरी की तफ़्तीश में लगने का मौका मिलता, तो शायद अब तक चोर का पता लगा भी लेती, अब कानून-व्यवस्था बिगड़ने न पाए, इस जतन में आ लगी थी और खड़ी-खड़ी गिरवी बाबू को कोस रही थी।

कुछ और उदास आँखें भी थीं, जो इस तमाशे को देख गिरवी बाबू और उनके पड़ोसियों को कोस रही थीं। ये आँखें आए दिन बंद के ऐसे तमाशों की आदी हो चुकी थीं। कभी महँगाई बढ़े तो बंद, रोज़गार घटे तो बंद, कभी कोई अफ़वाह उड़ जाये तो बंद और कभी कोई मुद्दा न मिले तो अमेरिका के किसी शहर या यूरोप के देहात में घटी किसी घटना को लेकर बंद। इनकी मायूस आँखें भले बंद की आदी हो गई थीं, मगर कमबख्त पेट आदी नहीं हो पाया था।

जानते हैं किसकी थीं ये उदास आँखें? एक जोड़ आँखें थीं, उस चाटवाले की, जिसका ठेला अभी-अभी पलट दिया गया था। आमरण अनशन जैसे उत्सवों के मंच पर दिखने वाले वीरों की टोली ने उसके सारे समोसे पेल लिए थे। वह कोने में धँसा, घुटनों में सर दिये, कभी अपने पलटे हुए ठेले को देख रहा था, कभी बहती गंगा में लूटे गए और फिर बेशर्मी से ठूँसे जा रहे समोसों को। कभी नीचे फैली आलू टिक्कियों पर पिल गई सुअरों की पूरी टोली को। कभी चोरी पर यूँ गुंडई के लिए उकसा रहे डकैत गिरवी बाबू को। इसके अलावा कई-कई जोड़ धँसी हुई आँखें उन धँसे पेट वाले मज़दूरों - हम्मालों की थीं, जिन्हें अपनी औरत-बच्चों समेत आज भूखे ही गुज़ारा करना था।

एकाएक इन्हीं में से एक हम्माल ने हाथ में पत्थर उठा लिया। दिमाग फिर गया लगता था उस बावले का। सूखी हड्डियों के दम पर वह मन-दो-मन वज़नी बोरा तो उठा सकता था, मगर खाली हाथ घर लौटने और पत्नी-बच्चों की टूटी उम्मीदों का बोझा उससे न उठाया जाता। उसके हावभाव ठीक नहीं दिख रहे थे। हाथ में लिया पत्थर क्या पता, गिरवी बाबू की खोपड़ी पर देगा या खुद की खोपड़ी पर, यह कहते कि 'चोरों की जगह उसे ही बंद कर दो, बस शहर बंद खत्म कर दो।' वह चीख-चीखकर कहना चाह रहा था - 'गणतंत्र यों बहती गंगा में गिरवी रखने को थोड़े है गिरवी बाबू।'

पत्थर उठा लेने के बाद उसकी आँखें बड़ी-बड़ी होकर बाहर को निकल आईं, चेहरे की सारी नसें तन गईं, सूखे ठठेरे-सी काया, कमान-सी खिंच आई, मगर जाने क्या बात थी, गले से आवाज़ नहीं निकली। सो दृश्य कुछ ऐसा खिंचा कि 'इंकलाब ज़िंदाबाद' का नारा लगाते लोगों ने इस नए तमाशे पर ठहाके लगाना शुरू कर दिया। गिरवी बाबू तो गिरवी बाबू थे। आज तक अपनी आत्मा के अलावा और कुछ गिरवी रखा भी न था, इसलिए उन्हें इस तमाशे में बहती गंगा का गिलास पूरा भरा नज़र आने लगा। वे आतुर हो उठे कि कब यह बावला पत्थर फेंके और कब बोरों में जमा किए उनके ईंट-पत्थरों को पंख लगें। कब नारा लगाते ये लड़के अपनी वाली पर उतरे और कब वह बगल की पतली गली पकड़कर दूर निकल जाएँ।

maloyjain@gmail.com

नारायण की वेदना

धर्मेन्द्र कुमार सिंह
भारत

सदा की भाँति क्षीर सागर में नाग शैय्या पर लेटे हुए विष्णु भगवान का पैर दबाते हुए लक्ष्मीजी ने पूछा - "भगवन आपको सबसे अधिक प्रिय कौन है?" उन्होंने सोचा, प्रभु मेरा ही नाम लेंगे। मगर नारायण कहीं दूर शून्य में निहारते हुए बोले - "मानव लोक के आर्यावर्त में गंगा-यमुना क्षेत्र मुझे सबसे प्यारा है। अवधपुरी की मिट्टी में मैं राम बनकर खेला-कूदा हूँ। ब्रजभूमि की अमराइयों में कितने माखन चुराकर खाए, कितनी रास लीलाएँ रचाईं। यही नहीं, मेरे इष्टदेव भोले विश्वनाथ जी भी वहीं काशी में निवास करते हैं। हम दोनों वहीं के हैं।"

"ऐसी क्या खास बात है, इस मिट्टी में?", लक्ष्मी जी ने पूछा।

नारायण ने कहना जारी रखा - "देवी, यह भूमि अत्यंत ही लुभावनी है। यहाँ मैंने रामराज्य स्थापित किया था। चारों तरफ़ शांति और प्रेम का वातावरण था। तुलसीदास एवं सूरदास ने हमारा वर्णन करके लोगों को धार्मिक बना दिया।"

लक्ष्मी जी ने प्रश्न किया - "अब वहाँ किसका राज है?"

"यह तो मुझे नहीं पता, सैकड़ों वर्ष पूर्व मैंने अपने संवाददाता नारद मुनि को दीर्घ अवकाश पर भेज दिया था। उनके पास सुनाने के लिए कुछ नया समाचार नहीं होता था।"

लक्ष्मी जी बोलीं - "मगर प्रभु, यह तो ठीक बात नहीं है। आपको अपने लोगों की खोज-खबर लेनी चाहिए। आप अपने संवाददाता को एक बार पुनः बुलाइए।"

"शायद आप ठीक कहती हैं नारायणी", कहते हुए प्रभु ने नारद मुनि को तरंगों के माध्यम से एक आकस्मिक संदेश प्रेषित किया।

तभी दूर क्षितिज पर कोई आकृति नज़र आई। पास आने पर वह आकृति मुश्किल से पहचानी जा रही थी। मुखारविंद तो नारद का था, मगर वेशभूषा अत्यंत विचित्र। सिर के लंबे बाल कट चुके थे। शर्ट और पतलून पहन रखे थे। हाथ में मंजीरा और वीणा की जगह नोटबुक और कलम पकड़ रखी थी। कानों पर हेडफ़ोन लगे हुए थे।

विष्णु ने कहा - "नारद मुनि यह आपने क्या हाल बना रखा है? रंगमंच पर पाताल-लोक के किसी विचित्र प्राणी का अभिनय कर रहे थे क्या? सिर के ऊपर लौह धातु की छतरी उल्टी क्यों धारण की हुई है?"

नारद ने 'नारायण, नारायण' की जगह कहा - "एक्सक्लूसिव, एक्सक्लूसिव। हे 'देवलोक' के 'चेयरमैन एंड मैनेजिंग डायरेक्टर', मुझे आपकी कंपनी से 'वीआरएस' चाहिए। मेरे पास इस समय दस सैटेलाइट चैनलों के लिए एक्सक्लूसिव रिपोर्टें भेजने का ऑफ़र है। मैं इतिहास का सबसे पुराना रिपोर्टर हूँ। आप तुरंत 'वीआरएस' के साथ पिछले पाँच हज़ार वर्षों का वेतन भी मेरे बैंक अकाउंट में ट्रांस्फ़र कीजिए। मेरे सिर के ऊपर लौह धातु की छतरी नहीं, डिश एंटीना लगा है, उपग्रह से डायरेक्ट एक्सक्लूसिव तस्वीरें भेजने के लिए। नमक-मिर्च-मसाला लगाकर समाचार सुनाने का मेरा पुराना फ़ॉर्मूला सभी रिपोर्टरों ने चुराकर खूब पैसा कमा लिया और मैं हज़ारों वर्षों से लॉन्ग लीव पर बैठा मक्खी मार रहा हूँ।

विष्णुजी भौंचक्के होकर उठ बैठे। लक्ष्मीजी का हाथ अपने पैरों से हटाते हुए कहा – "नारद जी आप यह क्या अनाप-शनाप प्रलाप कर रहे हैं? हमारी अवधपुरी और ब्रजभूमि का क्या समाचार है? यह बताइए वहाँ के लोग तो अत्यंत ही बलशाली होंगे। गंगा की अमृत धारा पीकर तो लोग चट्टान की तरह बलिष्ठ एवं निडर होंगे।"

नारद जी बोले - "आपका न्यूज़ नेटवर्क सही नहीं चल रहा है। यह लीजिए, मैं आपको गंगा की एक्सक्लूसिव कवरेज दिखलाता हूँ।"

यह कहकर नारद जी ने अपना लैपटॉप निकाला। वाई-फ़ाई से कनेक्ट करके 'गंगा' सर्च मारा, तो एक गंदा नाला बहता हुआ नज़र आया, जिसमें बहुत सारे सुअर लोट रहे थे। कुछ भैंसें बाहर किनारे पर खड़ी थीं, मगर अंदर घुसने की हिम्मत नहीं कर रही थी।

नारद जी ने कहा - "यही है आपका अमृत गंगा। अब

भैंस भी इसका पानी नहीं पी रही है। 'आरओ' भी इसको साफ़ नहीं कर पाएगा।"

विष्णुजी ने अपना सुदर्शन चक्र नीचे रखते हुए बेचैनी से पहलू बदला - "मुनिवर, तो क्या वहाँ के लोग गंगाजल पीकर बलिष्ठ एवं पराक्रमी नहीं हुए? हमारे मार्गदर्शन से तो उन्होंने समग्र विश्व में कीर्तिमान स्थापित किया होगा?"

नारद जी बोले – वहाँ के लोगों को 'भइया' बोला जाता है।"

विष्णुजी अत्यंत प्रसन्न होकर बोले - 'भइया' तो ज्येष्ठ भ्राता का अपभ्रंश है और क्या-क्या सम्मान मिलता है उनको?"

नारद जी उग्र होकर बोले - "प्रभु! 'भइया' एक गाली के समान है। उनको मारकर भगाया जा रहा है। यूपी का होना जैसे गुनाह है।"

पालनहार प्रभु ने पूछा - "यूपी का वृहद् अर्थ क्या है मुनिवर?"

"यूपी का मतलब है - उत्तर प्रदेश। कुछ लोग प्यार से 'उल्टा-पुल्टा प्रदेश' भी बोलते हैं।"

महात्मा बुद्ध और महावीर, जो वहीं नीचे जल-समाधि में लीन थे, सतह के ऊपर नज़र आए और बोले - "हमने समाज की कुरीतियों को दूर करने के लिए नए सम्प्रदाय 'बौद्ध' और 'जैन' चलाए। हमारे स्थान कपिलवस्तु व पाटलिपुत्र अवश्य ही समृद्ध होंगे।"

लक्ष्मीजी ने उनका साथ दिया - "हाँ, मैं भी वहीं मिथिला की हूँ। जब वहाँ लोग खेत में हल चलाते हैं, तब मेरी जैसी देवियाँ निकलती हैं। वहाँ तो सभी लोग देवी-देवताओं की तरह सुसंस्कृत एवं सज्जन होंगे?"

तभी एक अश्वारोही सागर की लहरों के ऊपर आया। पास आने पर दिखा, वह भारतवर्ष के महानतम सम्राट आशोक थे। अभिवादन के पश्चात् उन्होंने सुर मिलाया - "महामहिम, मगध का साम्राज्य तो मैंने ही सुदूर कलिंग तक पहुँचाया था। नालंदा विश्वविद्यालय सरीखे उच्च शिक्षा केन्द्र तभी विकसित थे, जब पाश्चात्य देशों में प्राथमिक पाठशालाएँ भी नहीं थीं। अब तो वहाँ के लोग समग्र भूमंडल के मूर्धन्य विद्वान होंगे।"

नारद जी बोले - "उस स्थान को आजकल बिहार कहा जाता है। सबसे ज्यादा गरीबी, अशिक्षा और भ्रष्टाचार वहीं है। पूरे भारत में सबसे ज्यादा अनपढ़ तथा क्रिमिनल वहीं पर हैं।"

सारे देवता सुनकर सन्नाटे में आ गए। किसी से कुछ बोला नहीं जा रहा था। तब नारद जी ने पुनः कहना प्रारंभ किया - "आप सभी देवताओं ने यूपी और बिहार में अवतार लेकर वहाँ आपने सबका उद्धार किया। वहाँ के लोग धन्य हो चुके हैं। अब आप देवताओं को किसी दूसरे देश में अवतार लेना चाहिए।"

लम्बी निस्तब्धता के बाद विष्णु जी ने कहा - "हमारे देवलोक की नवजात देवकन्या भी आर्यभूमि भारत से बाहर नहीं जा सकती, इतना प्रेम है सबको उस मिट्टी से। आपका यह प्रस्ताव अस्वीकार्य है।"

इस पर नारदमुनि बोले - "आपकी 'देवलोक लिमिटेड' के फ़ुल टाइम डायरेक्टर एवं फ़िफ़्टी परसेंट पार्टनर मिस्टर शंकर भोलेनाथ बहुत पहले ही दूसरे देश की सिटिज़नशिप ले चुके हैं।"

"अपनी जिह्वा को विराम दीजिए मुनिवर! कहीं ऐसा न हो, कि मुझे आपके प्राण लेने पर ब्रह्म-हत्या का महापाप लगे", नारायण ने भीषण गर्जना की।

नारद ने पैंतरा बदला - "लेकिन सच तो झूठ नहीं हो सकता।"

"नारद-जी सत्य कह रहे हैं, नाथ", लक्ष्मीजी ने अपनी जानकारी सामने रखी।

लक्ष्मी जी आगे बोली - "मैं यह भी देख रही हूँ कि भक्तगण जो चाहे खा-पीकर ऐश कर रहे हैं। भांग, गांजा, सुट्टा यहाँ तक कि मदिरापान भी कर रहे हैं। कलयुग में ऐसे भक्तों की संख्या बढ़ती जा रही है।"

विष्णु जी का मुखमंडल पीड़ा से रक्तिम हो चला। उन्होंने मन-ही-मन कुछ निश्चित किया और वे मुखरित हुए - "महर्षि, मुझे एक ऐसे राष्ट्र का नाम बताइए, जो सर्वशक्तिशाली हो। मैं वहाँ की नागरिकता लूँगा।

नारद जी, जिन्होंने अपने दस टीवी चैनेलों को सीधे प्रसारण से इस पूरे घटना-क्रम को दिखाकर सिद्ध कर दिया था कि अभी भी वे विश्व के सर्वश्रेष्ठ रिपोर्टर हैं, बोले - "ठीक

है, मैं अमेरिकन एम्बेसी में आपके वीज़ा का एप्लिकेशन डाल देता हूँ। आप इंटरव्यू के लिए तैयार हो जाइए। इसके पहले आपको एक महीने का 'रैपिडेक्स इंग्लिश स्पीकिंग' क्रैश कोर्स ज्वाइन करना होगा। संस्कृत और हिंदी वहाँ नहीं चलेगी।"

विष्णु जी तुरंत तैयार हो गए। एक महीने के क्रैश कोर्स के बाद वे नारद को साथ लेकर इंटरव्यू के लिए पहुँचे।

अमेरिकन ने प्रश्न किया - "व्हाट इज़ योर नेम?

विष्णु जी ने उत्तर दिया - "विष्णु, नारायण, वेंकटेश, बालाजी, गोविंदा, श्री-हरि, मुरारी, गोवर्धन, गोपाला, बाँके-बिहारी, रामचंद्र...

अमेरिकन बोला - "व्हाट इज़ दिस मैन?" तुम्हारा किटना नाम है? हमको लगटा है टुम कोई टेररिस्ट है, जो नाम बदल-बदलकर डिफ़रेंट कंट्री में जाता है।"

नारद जी ने बात संभाली - "नो योर हाइनेस! ये सब इनके निकनेम हैं। नारायण जी तो 'देवलोक लिमिटेड' के 'सीएमडी' हैं।"

अमेरिकन ने कहा - "ओके। तुम्हारे पास 'चैम्बर ऑफ़ कामर्स' से सर्टिफ़ाइड कंपनी का 'रेजिस्ट्रेशन सर्टिफ़िकेट' कहाँ है? और टुम्हारा उमर किटना है? नंबर थ्री के बाद टुमने किटना ज़ीरो लगा दिया है? कंप्यूटर का ज़ीरो बटन खराब है क्या? डबा दिया तो छापता ही चला गया।"

विष्णु जी बोले - "पुत्र मेरी आयु इससे भी कई गुना अधिक है। मेरा न कोई आदि है, न अंत।"

अमेरिकन ने कहा - "टुम हमारा टाइम वेस्ट करने को इधर आया है? टुमने अपने कॉलिज के कॉलम में दो टीचर के नाम लिखे हैं - वशिष्ठ और विश्वामित्र। ये दोनों किस कॉलिज के प्रोफ़ेसर हैं? अपनी एलुम्नि लिस्ट में 'सुदामा' का नाम लिखा है। ये अभी कहाँ एम्प्लॉयड है?"

विष्णु जी मौन रहे। नारद जी ने थोड़ी हिम्मत बटोरी और आखिरी अस्त्र छोड़ा - "इट इज़ नॉट लाइक दैट सर। मिस्टर विष्णु बहुत बड़ी कंपनी के मालिक हैं और अपना सारा बिज़नेस अमेरिका में ट्रांसफ़र करेंगे। वहाँ लोगों को एम्प्लॉयमेंट मिलेगा। इकोनॉमिक रिसेसन से आपका हेल्प करेंगे।"

अमेरिकन कुछ सीरियस हुआ। अगर अमेरिका का अपना इंटेरेस्ट है, तो सब नियम-कानून ताक पर। बोला - "ठीक है हम टुमको वीज़ा देगा, मगर अपना बैंक बैलेन्स दिखाओ। अपना एसेट वैल्यूएशन सर्टिफ़िकेट दिखाओ।"

नारद जी ने हिम्मत नहीं हारी - "सर इनके पास नंबर टू का एसेट है। आप हमारे साथ चलिए। इंडियन ओशन में इनका पूरा किंगडम है।"

अमेरिकन विष्णु जी के साथ जाने के लिए सहमत हो गया। विष्णु जी ने इन्द्रदेव को संदेश भेजकर स्वर्ग-लोक का 'अति विशिष्ट अतिथि महल' खाली करवा लिया, इसे खाली करवाने में नारद जी ने साथ दिया।

अवकाश के दिन रविवार को विष्णुजी का पुष्पक विमान अमेरिकन राजदूत को लेकर स्वर्ग-लोक के लिए रवाना हो गया।

dksinghdk@gmail.com

फ़ेसबुकिया सेलिब्रिटीज़

रीता कौशल
ऑस्ट्रेलिया

आज उसने फिर अपनी प्रोफ़ाइल पिक्चर बदल दी। साथ ही, कुछ टेढ़ा-मेढ़ा मुँह बनाकर, विभिन्न कोणों से ली गई सेल्फ़ी भी अपनी टाइमलाइन पर पोस्ट कर दीं। जब से वह एक स्वयंसेवी संस्था का अध्यक्ष बना है, तब से आत्म-प्रशंसा का भाव उसे बुरी तरह से वशीभूत कर रखा है। हमने उसकी प्रोफ़ाइल पिक्चर सहित, टेढ़े-मेढ़े मुँह वाली कुछ टाइमलाइन पिक्चर्स को लाइक किया और फ़ेसबुक से लॉगआउट कर दिया।

घर का काम निपटाकर दोपहर में थोड़ा पीठ सीधी करने लेटी, तो हाथ यकायक साइड टेबल पर रखे स्मार्टफ़ोन पर चला गया। सुबह सोचा था कि आज पूरे दिन उसे नहीं छूऊँगी और फ़ेसबुक पर तो कम-से-कम एक हफ़्ते तक

नहीं जाऊँगी, पर ऐसा जान पड़ता है कि जैसे टाइप वन डायबिटीज़ का मरीज़ इन्सुलिन के इंजेक्शन के बिना जीवित नहीं रह सकता, वैसे ही डिजिटल युग का मानव सोशल मीडिया पर जाए बिना कुछ घंटे तक जीवित नहीं रह सकता।

और यह क्या देखते हैं हम! उसने अब अपनी कवर पिक्चर बदल दी थी। इस कवर पिक्चर में वह समुद्र-तट पर खड़ा कोल्डड्रिंक पी रहा था। जिस हाथ में कोल्डड्रिंक था, उसे बगल में खड़ी उसकी पत्नी ने जकड़ रखा था। वह बड़ी हसरत के साथ कोल्डड्रिंक को ताक रही थी। ऐसा लग रहा था कि उनके बीच वही एक कोल्डड्रिंक का टिन था और वह उसे गटकने को बेताब था, वहीं उसकी पत्नी उसे उसके हाथ से छीनकर जल्दी से सुड़क लेना चाहती थी।

मन तो नहीं था, पर फिर भी हमने इस पिक्चर को भी लाइक कर दिया। जान-पहचान का मामला जो था...लाइक्स देना भी तो सामाजिकता निभाने का हिस्सा होता है न! इसमें लोगों का सेलिब्रिटी काम्प्लेक्स भी तृप्त हो जाता है और अपनी गाँठ से भी कुछ नहीं जाता। कुल मिलाकर न हींग लगे, न फिटकरी और रंग चोखा ही चोखा!

यह रोज़ का सिलसिला था। दोपहर में हम जब भी थोड़ा झपकी लेने के लिए लेटते, तो कोई अदृश्य शक्ति हमें स्मार्टफ़ोन की तरफ़ खींच ले जाती...और हमारी आँखें कुछ देर के लिए बंद होने की जगह उसकी स्क्रीन की ब्राइटनेस के कारण चौड़ी-चौड़ी होकर खुल जातीं। जब से यह नामुराद स्मार्ट फ़ोन आया था, 500 पृष्ठों का एक क्लासिक उपन्यास साइड टेबल पर पड़ा अपनी किस्मत पर सिसक रहा था... उस पर धूल की मोटी परत जम गई थी। इस कमबख्त स्मार्टफ़ोन के चक्कर में पड़कर ऐसे उपन्यास पढ़ना पंचवर्षीय योजना बनकर रह गया था। एक वक्त था, जब इतनी मोटी पुस्तकें एक हफ़्ते में ही घोंटकर पी ली जाती थीं। अब तो पढ़ने-लिखने की बातें इतिहास बनकर रह गई हैं।

हमें लगता है, दिमाग की भी एक अनुकूलन क्षमता होती है। प्रिंटेड अखबार या किताब देखकर तो अब दिमागी बुखार होने लगता था। वहीं स्मार्ट फ़ोन देखकर दिमाग में सौ वाट का लट् झन्ना जाता और फ़ेसबुक पर लॉग इन करते ही पच्चीस वाट की अतिरिक्त चमक जाने किस लोक से आकर दिमाग के हर तंतु को चौंधिया देती।

अब एक और फ़ेसबुकिये की गाथा सुनिए। अगर आप को हमने यह गाथा न सुनाई, तो यह जन्म-जन्मान्तर के लिए अधूरी ही छूट जाएगी। या यूँ कहिए, इस फ़ेसबुकिये के साथ अन्याय हो जाएगा और इसका पाप हमें लगेगा, सो अलग। यह मोहतरमा दिन में चौबीस बार अपने फ़ोटो पोस्ट करने के कारण सनसनी में रहती थीं। अच्छा है कि दिन में भी चौबीस ही घंटे होते हैं। ऐसा जान पड़ता है यह उनका 'गिनीज़ बुक ऑफ़ द वर्ल्ड रिकॉर्ड' में नाम दर्ज कराने का कोई तरीका रहा होगा।

हुआ यह कि एक बार इस मोहतरमा ने एक फ़ोटो पोस्ट की और विवरण में लिखा 'फ़ीलिंग लव्ड विथ माय प्रिंस चार्मिंग'। एक रात पहले ही हमें उनके घर से आते मारधाड़, गाली-गलौज़ के स्वरों का श्रोता होने का त्रास झेलना पड़ा था...और दूसरी सुबह ही सजी-धजी, मुस्कुराती तस्वीर...! हमें अनायास ही कुछ वर्ष पूर्व अपने घर में काम करने वाली बाई का स्मरण हो आया। वह एक दिन अपने शराबी पति से पिटकर झर-झर आँसू बहाती आती और उसके अगले दिन अगर उसका पति उसे सिनेमा दिखा लाता, तो मुस्कुराती-गुनगुनाती-इठलाती आती। कुछ फ़ेसबुकिया हैप्पीनेस का सत्य भी यही होता है।

एक और साहब हैं। वे जब भी कहीं मिलते हैं, तब इस बात का बखान किए बिना नहीं रह पाते कि उनके पाँच हज़ार फ़ेसबुक फ़्रेंड्स हैं। उनसे मिलने के बाद मन में एक अजब-सी कुंठा उत्पन्न हो जाती है, क्योंकि हमारे तो कुल मिलाकर अस्सी फ़ेसबुक फ़्रेंड्स ही हैं। उनके सामने खड़े होने में हमें गंगू तेली जैसी फ़ीलिंग आती है। हमें उनके और अपने फ़ेसबुक फ़्रेंड्स की संख्या का फ़ासला भारत की जनता में व्याप्त आर्थिक विषमता से भी ज्यादा वीभत्स जान पड़ता था।

इस फ़ासले को पाटने के लिए हमें कुछ ठोस कदम उठाने की आवश्यकता थी... क्योंकि हम चाहकर भी इस समस्या से अपना ध्यान नहीं हटा पा रहे थे। इस फ़ासले के चलते हमें अपना जीवन निरर्थक-सा लगने लगा था। मन में तीक्ष्ण वेदना उठती और ऐसा अहसास होता कि आज के दौर में इस संसार का सबसे तुच्छ प्राणी वही है, जिसके फ़ेसबुक

फ़्रेंड्स और उसकी पोस्ट पर आने वाले लाइक्स व कमेंट्स नगण्य होते हैं।

ज़माने को देखते हुए हमारा कुंठित होना गलत भी तो न था। चंद्रयान के ज़माने में हम बैलगाड़ी में चल रहे थे। हम वक्त की रफ़्तार से तालमेल बैठाने में असमर्थ सिद्ध हो रहे थे। इस असमर्थता के नकारात्मक प्रभाव के चलते हमारा आत्मविश्वास शतखंड हो चुका था। एक दिन हमने फ़ेसबुक एप पर उँगली रखकर कसम खाई कि इस एप के अगले अपडेट तक हम इस समस्या का निदान करके रहेंगे।

अब सोते-जागते हम यही तिकड़म भिड़ाते रहते कि फ़ेसबुक मित्रों की संख्या कैसे बढ़ाई जाय। हमारा छोटा- सा परिवार था...हमारा बचपन किताबी कीड़े की तरह बीता था, इसलिए हमें मित्र बनाने की फ़ुर्सत ही न मिली। बचपन में हमें इस बात का अंदाज़ा कदापि न था कि आगामी दशकों में फ़ेसबुक जैसी कोई संक्रामक चीज़ प्रकट होकर लोगों के बीच फ़ेसबुकिया दोस्ती का वायरस छोड़ देगी...और यह वायरस अपने संक्रमण के प्रभाव से कृष्ण-सुदामा जैसी दोस्ती के उदाहरण का नामोनिशान तक मिटा देगा। इस फ़ेसबुकिया दोस्ती से उत्पन्न महामारी के चलते फ़ेसबुक मित्रों की संख्या ही मान-प्रतिष्ठा की सबसे बड़ी सूचक बन जाएगी।

अपनी कुंठा से उबरने के लिए, अब हमने रिश्तेदारों के रिश्तेदार, दोस्तों के दोस्त और वे सब साधारण-असाधारण व्यक्ति, जिनसे हमारा परिचय डॉक्टर की क्लीनिक, राशन की लाइन, पब्लिक टॉयलेट आदि में...जहाँ और जैसे भी हालात में होता, हम खोज-खोजकर सबको फ़्रेंड रिक्वेस्ट भेजने लगे। हमें लगता था कि इसमें कोई बुराई या झिझक वाली बात भी नहीं थी, क्योंकि जो सब करते हैं, वही अब हम भी कर रहे थे। हमें पूर्ण विश्वास था कि पाँच-पाँच हज़ार मित्र संख्या वाले सभी लोग यही फंडा अपनाते होंगे, वरना ऐसे दाँव-पेंचों के बिना इतनी बड़ी 'फ़ेसबुक मित्र सेना' का गठन तो संभव ही नहीं। अगर आपको पता न हो, तो हम आपको बता देते हैं कि विज्ञान की भाषा में इस प्रक्रिया को 'अनुकूलन क्षमता' कहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अब इस तरह के दाँव-पेंच सीखकर हमारी भी सोशल मीडिया के दौर में निर्वाह करने की 'अनुकूलन क्षमता' बढ़ती जा रही थी।

हमारे शोध से ज्ञात हुआ है कि फ़ेसबुक का सबसे ज्यादा फ़ायदा रचनाकारों की बिरादरी ही उठाती है। इस बिरादरी में एक उप-बिरादरी ऐसी भी है, जो फ़ेसबुक को अपनी 'पर्सनल डायरी' समझती है। इस उप-बिरादरी के कुछ-न-कुछ प्राणी आपके सर्किल में भी होंगे। आपके सर्किल में हों या न हों, हमारे में तो हैं। ऐसा पाया गया है कि इस उप-बिरादरी के प्राणी बहुत ही संतोषी प्रवृति के होते हैं और स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में अपनी रचनाओं के प्रकाशित न होने का कोई दुख नहीं मानते। ये फ़ेसबुक पर अपनी रचनाएँ पोस्ट करके अपने मन को तसल्ली देने में निपुण होते हैं। माँ सरस्वती के आशीर्वाद से फ़ेसबुक की विशेषता यह है कि यह किसी को छोटा या बड़ा नहीं समझती। इसकी उपलब्धता सबके लिए समान है और सभी को समान मंच प्रदान करती है।

एक अस्सी साल की हमारी आंटी जी भी इसी उप-बिरादरी से हैं। वे हर समय फ़ेसबुक पर अपनी कविताएँ पोस्ट करती रहती हैं। वे न सिर्फ़ कविताएँ फ़ेसबुक पर पोस्ट करती हैं, बल्कि उन्होंने बाकायदा बड़ा ही आकर्षक तखल्लुस भी अपना रखा है - 'वैरागिनी'। एक दिन हमने वैरागिनी जी को सुझाव दिया - "आंटी जी आप अपनी कविताएँ किसी अच्छी पत्र-पत्रिका में छपवाने की कोशिश क्यों नहीं करती हैं? अगर रचना अच्छी है, तो कहीं भी छपती है, चाहे लेखक नया हो या पुराना।"

आंटी बोलीं - "यह तो ठीक है, बेटा, पर हमने सुना है कि अच्छे पब्लिकेशन हाउस में रचनाएँ छपने में सालों लग जाते हैं।"

"सो तो है आंटी!" हमने गहरी साँस छोड़ आह भरी, भुक्तभोगी जो ठहरे!

"बेटा मैं तो पहले ही अस्सी साल की हूँ...अब ऐसे छपने का क्या फ़ायदा कि मैं कभी उसे छपा हुआ देख भी न पाऊँ। इससे बढ़िया तो यह फ़ेसबुक है - सुबह-सवेरे नहा-धोकर दो-चार कविताएँ पोस्ट कर देते हैं और रात तक दो-तीन लाइक्स आ ही जाते हैं। अगर न आएँ, तो हम खुद ही अपनी पोस्ट लाइक कर लेते हैं। जो लाइक दे उसका भी भला...जो न दे उसका भी भला।" आंटी के इस 'दर्शन' पर हम मोहित हुए बिना न रह सके। उनमें परम संतोष था। हम सोचने लगे

कि शायद सोशल मीडिया युग की 'सन्यास अवस्था' के यही लक्षण होते होंगे और इस अवस्था को प्राप्त कर लेने के बाद लोग अपनी पोस्ट पर लाइक्स मिलने या न मिलने की खुशी-गम से बेअसर हो जाते होंगे।

जैसा हमने आपको पहले भी बताया था कि हमारा डॉक्टर की क्लीनिक, राशन की लाइन, पब्लिक टॉयलेट, किराने की दुकान आदि में जहाँ, जैसे भी, जिससे भी परिचय होता, हम खोज-खोजकर सबको फ़ेसबुक फ्रेंड बनाने लगे थे। अब हम भी फूले न समाते थे कि हमारे फ़ेसबुक मित्रों की संख्या लगभग 5000 के करीब पहुँच चुकी थी। हमें अपनी इस मित्र संख्या पर कुछ-कुछ वैसा ही गुमान था जैसा लंकापति को अपनी सोने की लंका पर था। हम इस उपलब्धि की खुमारी में सिर से पाँव तक डूबे हुए थे। अतः हमारा इसके 'साइड इफ़ेक्टस' की तरफ़ अभी लेशमात्र भी ध्यान नहीं गया था, जो हमें जल्दी ही झेलने पड़े थे।

जो फ़ेसबुक फ़ीड हम पहले पाँच से दस मिनट में चलते-फिरते देख लेते थे, वह अब द्रोपदी के चीर-सी अंतहीन हो गई थी और उसे स्क्रॉल करते-करते हम दुशासन से पस्त हो जाते। कई बार तो हम अपनी लम्बी फ़ीड में ऐसे खो जाते कि चूल्हे पर चढ़ी हमारी दाल-सब्ज़ी जलकर कोयले में बदल जाती।

फ़ेसबुकिया जंगल में भटकते हमें अपनी ही सुध नहीं रही। फ़ेसबुक ने हमें उनके करीब ला दिया था, जिनसे हमारा कोई सरोकार नहीं था या जो मीलों दूर बैठे थे, किन्तु हमें अपने करीब रहने वाले को अपनों से दूर कर दिया। इस आभासी जंगल में भटकते-भटकते हमने अपनी रचनात्मकता, सृजनात्मकता सब गँवा दी। हमारे मौके-बेमौके, यत्र-तत्र-सर्वत्र फ़ेसबुक पर समय बिताने के कारण परिवार-जनों की भृकुटियाँ स्थायी रूप से तनी रहने लगीं। गृह युद्ध की आशंका के बादल घुमड़-घुमड़कर गरजने लगे थे। इन बादलों के किसी भी समय बरस कर हमारी गृहस्थी को बहा ले जाने की भीषण संभावना थी और समय रहते हमारा चेत जाना ही 'सर्वजन हिताय' का एकमात्र रास्ता था। हमें फ़ेसबुक और घर-परिवार में से किसी एक को चुनने का नोटिस मिल चुका था।

मौजूदा स्थिति पर गम्भीरता से चिंतन-मनन करने के बाद धीरे-धीरे हमारा फ़ेसबुकिया बुखार उतरने लगा। काफ़ी सोच-विचार के बाद हमने एक दिन अपना फ़ेसबुक अकाउंट डिलीट कर दिया। शुरुआत में इसके बिना हमें वैसा ही कष्ट हुआ, जैसा नशेड़ी को नशे की तलब के समय होता है। इतने कमज़ोर भी नहीं थे कि जीवन-भर किसी लत के गुलाम बने रहें और धुन के भी हम पक्के थे। धीरे-धीरे मन को मज़बूत करना सीख लिया और अपने भीतर पनपते फ़ेसबुकिया सेलिब्रिटी कॉम्प्लेक्स पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली। आपकी जानकारी के लिए, आज हम इस फ़ेसबुक नाम की आफ़त के बिना कहीं अधिक सुखी जीवन यापन कर रहे हैं।

rita210711@gmail.com

नया प्राणी

जिष्णु होरीसरन
मॉरीशस

बहुत लम्बा रास्ता तय किया है नए प्राणी ने। पहले वह शरीर ढकने के लिए सस्ते कपड़े पहनता था, अब अंग-प्रदर्शन के लिए फटी महँगी जीन्स और उदर के ऊपर वाली ब्लाउज़ उसे पसंद है।

वह पहले कोयले से दाँत साफ़ करने वालों का मज़ाक उड़ाता था, अब वह खुद कोयले से बने दंत-मंजन का इस्तेमाल करता है और आईने में अपने काले दाँत दिखाते हुए खुद का मज़ाक उड़ाता है। काले से याद आया, अब वह काले रंग का शौकीन हो गया है - काला चश्मा, काली जैकेट, काले जूते, काला दिल, काला धन आदि। पहले वह एशियन शौचालय का मज़ाक उड़ाता था, पर अब यूरोपियन शौचालय में उकड़ूँ बैठता है।

पशु हिंसा पर कार्यक्रम देखकर वह खेद प्रकट करता है। दुखी पशुओं के फ़ोटो और वीडियो को लाइक और कमेंट करता है। ऑनलाइन पेटीशन पर अपने हस्ताक्षर और कमेंट भी देता है। और खेद के साथ चिकन बर्गर खा लेता है। वह

कभी वेगन, कभी वेज, तो कभी प्योर वेज भी बन सकता है। सिगरेट पर लगे काले फ़ेफड़ों के फ़ोटो देखकर भी वह सिगरेट पी सकता है। इतनी काबिलियत है उसमें।

मुखौटे उसे बहुत पसंद हैं। उसके पास बहुत सारे मुखौटे हैं। रोज़ एक नया मुखौटा पहनता है। कभी-कभी तो एक ही दिन में कई रूपों में ढल जाता है। पड़ोसी के साथ क्रोध, दोस्त के साथ गद्दारी, रिश्तेदार से दुश्मनी और सहकर्मी के सामने चापलूसी करता है। वह ओक्टोपस से भी ज्यादा रंग-रूप बदल सकता है।

उसकी सेहत का क्या कहना! चेहरे की बेरंगी निखारने के लिए वह फल खाने लगा है और खाने में जी.एम.ओ. का सेवन करता है। बाहर का मीठा-नमकीन भी खा जाता है और जिम में एक ही जगह दौड़ता रहता है। खाने की तुलना में वह दवाइयों पर ज्यादा खर्च करता है। नया प्राणी हेल्थ कॉन्शस बन गया है।

सेविंग्स में भी वह काफ़ी माहिर हो गया है। रेस्टोरेंट में टिप्स देता है और रास्ते पर सब्ज़ी वाली से दाम कम करवाता है। एक रुपया बचाने के लिए ईंधन जलाकर सुपरमार्केट में घंटों लाइन में खड़ा रह सकता है।

नए प्राणी का समय बहुत अनमोल है। समय की बचत करना वह सीख गया है। अब वह अपने दोस्तों को उनके जन्मदिन पर सिर्फ़ 'HB' मैसेज या कमेंट करता है। फ़ास्ट-फूड की तरह उसका जीवन भी बहुत फ़ास्ट हो गया है।

नए प्राणी को अधिक दिमाग लगाने की भी ज़रूरत नहीं पड़ती, इसके लिए उसका मोबाइल ही काफ़ी है। कुछ भी चाहिए होता है, तो बस कमांड देता है और वह हाज़िर हो जाता है। हँसना, रोना, खेलना सब मोबाइल पर ही होता है। यहाँ तक कि नए प्राणी का पूरा दिन भी मोबाइल पर ही गुज़रता है। जिसपर मन आता है, उसी को दिन-रात निहारता रहता है?

नया प्राणी बूढ़े को बस में खड़े रहते देख सकता है, उसमें इतनी सहनशक्ति है। किसी को मार खाते देख सकता है, कुछ पल खड़े होकर तमाशा भी देख सकता है। कहीं थोड़ा-बहुत कूड़ा फेंक दिया, तो क्या बुरा किया ? बस यह ध्यान रहे कि किसी ने देखा तो नहीं! केवल नया प्राणी ही पेड़ काटकर, उससे कागज़ बनाकर, उस पर पेड़ बचाओ लिखने में सक्षम है। वह नए ग्रह पर जाकर उसमें उपनिवेशन करके, उसमें जान फूँक सकता है और उसे बंजर भी बना सकता है।

माँ को आश्रम में छोड़कर उसकी मृत्यु पर फूट-फूटकर रो सकता है। अपने देश से गद्दारी कर सकता है, दूसरों के सपने घोंट सकता है और अपनों को तबाह कर सकता है। इतना सक्षम है, यह नया प्राणी।

jishnuhoreesorun@gmail.com

ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय

डॉ. शिप्रा शिल्पी सक्सेना
कोलोन, जर्मनी

ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे आपहु शीतल होय।

15वीं सदी में जब कबीरदास ने यह दोहा लिखा था, तब शायद उन्होंने सोचा नहीं था कि मिठास से भरे जिन शब्दों की वे बात कर रहे हैं, 21वीं सदी तक आते-आते ऐसे शब्द लगभग विलुप्त हो जाएँगे। शब्द इतने जटिल हो जाएँगे कि पूरे ब्रह्मांड में उसे समझाने वाला कोई नहीं मिलेगा। वाणी इतनी निर्लज्ज हो जाएगी कि द्रौपदी की लाज बचाने वाला कृष्ण का चीर भी उसे ढक नहीं सकेगा। यहाँ तक कि सभ्य संस्कारों की सीमाओं को तोड़ते हुए 21वीं सदी के अभद्र शब्द ब्रह्मांड में फैलेंगे और हमें फिर से बर्बरता के युग की याद दिलाएँगे, जहाँ शोर ही संवाद बन जाएगा।

गूगल वाली दुनिया भी अब उस भाषा के रहस्य को नहीं समझ पा रही है, जिसे समझाने का बीड़ा कबीरदास ने उठाया था। आर्यभट्ट के शून्य की खोज करना आसान है, लेकिन आज के समय की नई शब्दावली के अर्थ को समझ पाना बीरबल की खिचड़ी का रहस्य समझने से भी ज्यादा कठिन है। दुनिया चाँद पर पहुँच गई है, पर AI ने इंसानी दिमाग की

बत्ती बुझा दी है और डिजिटल युग में इंसान मशीन बन गया है। मशीन को सर्विसिंग, तेल और बिजली चाहिए, लेकिन वाणी की मिठास इसका हिस्सा नहीं है।

'मशीनी इंसान' अपने ही रिश्तों को अश्लीलता के ज़हर में लपेटकर शब्दों के बाण चला रहा है। उनके तरकश में मान-भेदी, संस्कार-भेदी और अंग-भेदी शब्दों की भरमार है। आधुनिकता के नाम पर वे इसे खुलेआम चला रहे हैं और लोग भी चटखारे ले-लेकर सभ्य भाषा की हत्या का आनंद ले रहे हैं।

सोशल मीडिया पर बदहवास, बौखलाए हुए और पथभ्रष्ट नवयुवक अपने ही रिश्तों की धज्जियाँ उड़ा रहे हैं, तब हम ही उन्हें मिलियन व्यूज़ देकर मालामाल कर रहे हैं। उनके अश्लील और बेसिर-पैर वाले चुटकुलों पर बेशर्मी से हँसकर उनका हौसला बढ़ा रहे हैं। जिस बेटे ने अपनी माँ और बहन की इज़्ज़त सरेआम तार-तार की थी, अब वह ब्लॉग्स बनाकर बड़े-बड़े शो में अपने 'हाईलोजन संघर्षों' की गाथा सुना रहा है। इन महान् कपूतों की झूठी शान में थोड़ी बट्टा लगाना है और न कि उनके शब्द-भेदी बाणों की शय्या पर अपने ज़मीर को लिटाना है।

कबीरदास सकपकाकर बोले - "यह कौन-सी भाषा है, जो मेरे दोहे के परखच्चे उड़ा रही है? किसी को 'अनगढ़' तो हम भी कहते थे, पर 'LOL' क्या बला है?" उन्होंने भारतेंदु जी को फ़ोन लगाया और पूछा - "क्या आप 'LOL' शब्द जानते हैं?" भारतेंदु जी ने कहा - "निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल, मेरी भाषा में ऐसा कोई शब्द नहीं है। 'LOL' कुछ विचित्र लगता है, शायद मंगल ग्रह की भाषा है।" कबीरदास बोले - "घट-घट में जब राम को खोजा, तो 'LOL' शब्द का अर्थ भी खोज लेंगे।" सोचा, चलो वर्तमान में चलते हैं। कल ही विज्ञापन आया था - महाकुंभ लगा है, ज्ञानियों का थाल सजा है, इस शब्द को जानने वाला कोई-न-कोई मिल जाएगा और 'LOL' का राज़ भी खुल जाएगा। महाकुंभ में कबीरदास को देखते ही एक सिक्सपैक वाला युवा, जो गूगल जैसी विद्याधारी था, बोला - "क्या तुम ही ।।TN बाबा हो? मैं एयर इंजीनियर हूँ, पंचर बनाता हूँ। Hey buddy, व्हाट्सअप?"

कबीरदास सकपकाकर बोले - 'वत्स ! यह कौन-सी भाषा है? हम इसे समझ ही नहीं पा रहे हैं।' युवक मुँह बनाकर बोला - "'LOL' हिंदी शब्द ही है, ड्यूड।" कबीर ने कहा – "बार-बार 'LOL' कहते हो, यह कोई मखौल है क्या?" युवक ने कहा - "चिल-पिल मैन! हम 'जेंज़ी' हैं, ज्यादा बोलेंगे तो 'Ls' हो जाएँगे, इसलिए 'LOL' कहकर स्माइली भेज देते हैं, मुस्कुराने का कष्ट भी नहीं करते हैं।" कबीरदास चौंककर बोले - "हे राम! हँसने के लिए भी शब्द होते हैं। हे परमानंद, यह कैसी तेरी माया है?" कबीरदास को जैसे-जैसे नए युग की नई भाषा की जानकारी मिल रही थी, वैसे-वैसे निराशा से उनका हृदय डूब रहा था। उन्होंने मन-ही-मन सोचा - "यह तो एक युवा है। मैं एक पीढ़ी ऊपर जाऊँगा। जब युवा के माता-पिता से मिलूँगा, तब उनकी वाणी में ज़रूर शीतलता की अनुभूति करूँगा। युवा के माता-पिता अपना आपा खोने की कोशिश नहीं करेंगे।"

कबीरदास युवक के साथ उसके घर गया। घर में प्रवेश करते ही युवक ने ज़ोर से आवाज़ लगाई - 'ममी!', कबीरदास घबराकर बोले - " 'ममी' तो मरे हुए शरीर को कहते हैं, क्या इस युग में 'ममी' को घर में रखते हैं? तभी एक सुंदर काया वाली नारी साक्षात् प्रकट हुई। उन्हें देख वाणी की शीतलता के सपने को ब्रेक लग गई। कबीर ने कहा - "यह 'ममी' है? बेटा, पिताजी को बुलाओ।" युवक ज़ोर से चिल्लाया - "डेड!" यह सुनकर कबीरदास का हृदय थम-सा हो गया। उन्होंने कहा - "हाय-हाय! इस उम्र में पिता की मृत्यु हो गई। माता के लिए वैधव्य कितना दुखद होगा।"

युवक बोला – 'OMG !! जैसा आप सोच रहे हैं, वैसा नहीं है, पिता जी ज़िंदा हैं।' कबीरदास ने सोचा अब किसी को क्या समझाना? नई पीढ़ी इमोजी, 'OMG', 'LOL' से काम चला रही है। भाषा के बिना वेद, पुराण, संहिताएँ न उनसे पढ़े जाएँगे, नाहीं समझे जाएँगे। किसी युवा के लिए पूरा वाक्य बोलना भी सज़ा की तरह होगा। उसके पास शब्दों का अकाल है। अभद्र भाषा का भण्डार है। संवाद स्थापित न कर पाने वाली युवा पीढ़ी, 'HMRJ' अर्थात् हाथ मलते रह जाएगी।

hindishala2021@gmail.com

तृतीय अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन

डॉ. काजल पाण्डे
पुणे, भारत

भाषाई एकता को सशक्त करने और हिंदी भाषा को बढ़ावा देने के उद्देश्य से, भारत सरकार के गृह मंत्रालय ने 14 और 15 सितंबर, 2023 को भारत में महाराष्ट्र राज्य के पुणे शहर में, शिव छत्रपति शिवाजी महाराज खेल परिसर, बालेवाड़ी में तृतीय अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन आयोजित किया। केंद्रीय गृह मंत्रालय की सचिव अंशुली आर्य ने इस संदर्भ में कहा - "यह सम्मेलन वर्ष 2021 में वाराणसी में और वर्ष 2022 में सूरत में आयोजित किया गया था।"

इस सम्मेलन में राजभाषा विभाग ने कई चर्चाएँ आयोजित कीं, जिनमें कई प्रमुख मंत्रियों और सांसदों ने भाग लिया। सम्मेलन में विकसित भारत का भाषाई परिदृश्य, हिंदी और कृत्रिम बुद्धिमत्ता, हिंदी के विकास में मीडिया की भूमिका, हिंदी में रोज़गार के बढ़ते अवसर, अन्य भारतीय भाषाओं के साथ हिंदी को सशक्त बनाना, भारतीय सिनेमा और हिंदी आदि विषयों पर चर्चा की गई। इसमें हिंदी के विद्वानों ने भाग लिया। सम्मेलन के दौरान 3 लाख 51 हज़ार शब्दों के शब्दकोश 'हिंदी शब्दसिंधु' और एक ई-ऑफ़िस ऐप का लोकार्पण किया गया।

केंद्रीय स्वास्थ्य राज्यमंत्री सुश्री डॉ. भारती प्रवीण पवार ने कहा - 'हिंदी के व्यवहार को आगे बढ़ाने के लिए इस प्रकार के सम्मेलन होना बहुत आवश्यक है। जी-20 की बैठकों में भी हिंदी में संभाषण होता है। स्वास्थ्य विभाग में एमबीबीएस कोर्सों को भी हिंदी भाषा से जोड़ा गया है। हिंदी सभी को साथ लेकर चलती है। इसमें मिठास है। यह हृदय की भाषा है। सभी को दैनिक व्यवहार में इसका उपयोग करना चाहिए। कहा जा सकता है - एक भाषा श्रेष्ठ भाषा।'

इस आयोजन में सम्मिलित होते हुए सुश्री रुबिका लियाकत, उपाध्यक्ष, भारत 24 ने कहा – 'हिंदी ने तो पहले ही सबको अपना रखा है, ऑक्सफ़ार्ड के शब्दकोश में हिंदी के शब्द हैं।' उन्होंने श्री विश्वनाथ त्रिपाठी की एक पंक्ति भी उद्धृत की - 'हिंदी बाज़ार की भाषा बने, बाज़ारू नहीं।'

इस अवसर पर फ़िल्म अभिनेता श्री आशुतोष राणा भी उपस्थित थे। उन्होंने कहा – 'कुछ लोग बोलते हैं तो हिंदी को गरिमा प्रदान करते हैं, पर मेरा यह मानना है कि हिंदी ने मुझे गरिमा प्रदान की है। लोग मुझे कहते हैं कि आपने कंठ में हिंदी भाषा को धारण किया है, तो हिंदी प्रमुख हो गई है। पर मैं यह कहता हूँ कि हिंदी पहले से ही प्रमुख थी, पर यह मेरा सौभाग्य है कि वह मेरे कंठ का आभूषण है। हिंदी चिंता का विषय न होकर चिंतन का विषय है। यह चिंतन में स्थान ले चुकी है। मेरा यह मानना है कि हिंदी मेरे स्वप्नों की भाषा, मेरे अपनों की भाषा, व्यवसाय की भाषा, राज की भाषा, राष्ट्र की भाषा है। भाषा कभी भी विवाद का विषय नहीं रही, हमारे लिए भाषा हमेशा से संवाद का विषय रही है। भारत की संस्कृति है कि हम दूसरे की माँ को भी माँ बोलते हैं और अपनी माँ को भी माँ का ही दर्जा देते हैं - चाहे मातृभूमि हो, चाहे मातृभाषा हो। राज के साथ-साथ हिंदी को काज की भी भाषा होना चाहिए। अंग्रेज़ी और चाइनीज़ के बाद हिंदी तीसरी भाषा के रूप में व्यवहार, प्रचार और परिष्कार का भी विषय बनेगी।

राज्यसभा सांसद और राजभाषा उपसमिति के संयोजक श्री रामचंद्र जांगरा जी ने कहा कि वर्ष 1949 में संविधान में यह संकल्प लिया गया था कि 15 वर्षों में हिंदी को राजभाषा के रूप में लागू किया जाएगा। लेकिन यह खेद का विषय है कि 75 वर्षों में भी यह संकल्प पूरा न हो पाया। वर्ष 2014 के बाद माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी के आने से ही हिंदी को विश्व स्तर पर पहचान मिली और स्थान प्राप्त हुआ। जी-20 में भी भारत का गौरव हिंदी भाषा है। हिंदी बोलना, पढ़ना और सीखना गर्व का प्रतीक है। एक कहावत भी है "बदला जाए दृष्टिकोण तो इंसान बदल सकता है, कुछ भी नहीं असंभव होता है जब संकल्प किए जाते हैं और संकल्पों को जब साहस से सुदृढ़ चरण दिए जाते हैं"। जिस प्रकार माननीय गृहमंत्री ने इसको तल्लीनता से लिया है, उससे हिंदी का गौरव

लौट आया है। रोज़गार के लिए जहाँ तक बात है - अमेरिका सरकार अगले वर्ष के सितंबर माह तक 1 लाख स्कूलों में हिंदी भाषा को प्राथमिक भाषा के रूप में लागू कर रही है, जिससे हिंदी पढ़ाने वाले अध्यापकों को रोज़गार मिलेगा।

उन्होंने आगे लोकप्रिय उद्धरणों का भी उल्लेख किया कि "अंग्रेज़ चले गए तो अंग्रेज़ी भी चली जानी चाहिए थी।" इसी प्रकार महात्मा गांधी जी ने भी कहा था कि "मैं तो आज़ादी से पहले हिंदी को प्राथमिकता देता हूँ, आज़ादी दो दिन बाद मिल जाए तो चलेगा, पर हिंदी लागू हो जानी चाहिए।"

वर्ष 2019 के बाद, श्री अमित शाह के नेतृत्व से राजभाषा समिति में अधिक गति आई है। हिंदी हर विभाग में प्रशासन के काम में प्रयुक्त हो रही है। संसदीय राजभाषा समिति के प्रतिवेदन (खंड-9) के बाद की सिफ़ारिशों के बाद खंड 10,11 और 12 की सिफ़ारिशों पर माननीय राष्ट्रपति जी की संस्तुति आना अभी शेष है। खंड 12 में विषय का सरलीकरण किया गया है, क्योंकि कुछ शब्द विभिन्न भाषाओं से हिंदी में प्रयुक्त होते हैं, इसलिए उन्हें भी हिंदी शब्दावली में समाहित किया जाना चाहिए। डिजीटाइज़ेशन हुआ है। 'हिंदी शब्द सिंधु' में 3,51,000 आम बोलचाल के शब्दों को समाहित किया गया है, जैसे - रेल, पार्क, अपील आदि।

सम्मेलन में उपस्थित डॉ. धनेश द्विवेदी, उपसंपादक, राजभाषा विभाग ने बताया कि माननीय प्रधानमंत्री जी भाषा और तकनीक में सामंजस्य बैठाते हुए मार्गदर्शन कर रहे हैं। भाषा तकनीक से ही समृद्ध होगी। आज के परिदृश्य में कंठस्थ जैसे टूल आए हैं। हिंदी शब्द सिंधु जैसा एक सशक्त ऑनलाइन शब्दकोश बनाया गया है, जिसमें सभी विषयों के साथ सभी क्षेत्रों के शब्दों को समाहित किया गया है और अन्य भारतीय भाषाओं के प्रचलित शब्दों को भी इसमें समाहित करने पर काम चल रहा है। देश के बड़े-बड़े विद्वानों की टीमें इसके लिए काम कर रही हैं, जैसे बैंकिंग के क्षेत्र के लिए आरबीआई, साहित्यिक शब्दों के लिए केंद्रीय हिंदी निदेशालय जैसे संस्थान काम कर रहे हैं।

माननीय केंद्रीय गृह राज्यमंत्री श्री अजय कुमार मिश्रा जी ने बताया कि वर्ष 2021 से पहले इस प्रकार का कोई सम्मेलन नहीं हुआ। चूँकि हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ सांस्कृतिक, साहित्यिक, सांस्कारिक रूप से एवं परंपराओं से देश की अभिव्यक्ति का माध्यम होती हैं, इसलिए वर्ष 2014 के बाद से माननीय प्रधानमंत्री श्री मोदी जी के सतत प्रयासों से हमारा देश आकर्षण का केंद्र बना है। उनका मानना है कि सभी भाषाएँ आगे बढ़ें। आपस में भाषाओं का समन्वय हो और विश्व में उनको मान्यता मिले।

उन्होंने आगे कहा कि विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस हिंदी के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। वह देश के अंदर और देश के बाहर हिंदी का प्रचार-प्रसार करता है और उसकी समीक्षा करता है। यह राजभाषा और भारतीय भाषाओं के लिए बहुत अच्छा समय है। संसद से लेकर प्रत्येक मंच पर प्रधानमंत्री और गृहमंत्री हिंदी का प्रयोग धड़ल्ले से करते हैं। सम्मेलनों में भारतीय भाषाओं का उपयोग करते हैं। हीन भावना को समाप्त करने का समय आ गया है। हमारी अपनी भाषाएँ सशक्त हैं, ताकतवर हैं और हमको यह मान लेना चाहिए कि राष्ट्र के विकास में और अंतरराष्ट्रीय वातावरण में हिंदी में काम करना चाहिए।

इन सम्मेलनों का प्राथमिक उद्देश्य हिंदी भाषा के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करना रहा है। प्रधानमंत्री और गृहमंत्री के नेतृत्व में सरकार हिंदी और क्षेत्रीय दोनों भाषाओं का सक्रिय रूप से समर्थन कर रही है, क्योंकि सभी भाषाओं का सम्मान करते हुए अपनी राजभाषा हिंदी को आगे बढ़ाना ही हमारा लक्ष्य है।

kajaldelhi2001@gmail.com

भारत के स्वतंत्रता-दिवस के अवसर पर अमेरिका में फैली गंगा-जमुनी की खुशबू!

विनीता तिवारी
अमेरिका

भारत के 77वें स्वतंत्रता-दिवस के उपलक्ष्य में, रविवार 20 अगस्त को अलीगढ़ अलमनाय एसोसिएशन, वाशिंगटन डी. सी. द्वारा 15वाँ स्थानीय मुशायरा एवं कवि-सम्मेलन अरलिंग्टन लाइब्रेरी के ऑडिटोरियम में आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम में भारत के अलग-अलग प्रांतों और भाषाओं से जुड़े स्थानीय कवियों और शायरों ने काव्य-पाठ किया। इस कार्यक्रम में भारत की गंगा-जमुनी संस्कृति की खुशबू महसूस हुई, जिसने सभी श्रोताओं और वक्ताओं को अपनी मातृभूमि भारत और अपनी मातृभाषा हिंदी की महक से सराबोर कर दिया।

अलीगढ़ अलमनाय एसोसिएशन, वाशिंगटन डी.सी द्वारा आयोजित इस कवि-सम्मेलन एवं मुशायरे में लगभग बीस स्थानीय कवि-कवयित्रियों ने भाग लिया। दोपहर 12:30 से 1:00 बजे तक का समय श्रोताओं और वक्ताओं के आपसी मेल-मिलाप और चाय-नाश्ते के लिए रखा गया था। तत्पश्चात् एक बजे कविताओं, गीतों और नज़्मों-गज़लों के इस सुंदर कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ, जो कि लगभग सायं पाँच बजे तक जारी रहा। इस कार्यक्रम के आयोजन में ग्लोबल ऑर्गनाइज़ेशन ऑव पीपल ऑव इंडियन ऑरिजिन (गोपिओ), वाशिंगटन डी. सी., जो कि गोपिओ नामक वैश्विक संस्थान की एक स्थानीय शाखा है, की भी सहभागिता रही। गोपिओ की इस शाखा का प्रतिनिधित्व डॉ. रेणुका मिश्रा ने किया।

कार्यक्रम की शुरुआत अलीगढ़ एसोसिएशन का संक्षिप्त परिचय और इसके उद्देश्य से हुई। संस्था की वर्तमान अध्यक्ष सुश्री आयशा खान के वक्तव्यों से ज्ञात हुआ कि 1975 में इस संस्था की स्थापना अलीगढ़ विश्वविद्यालय से जुड़े ज़रूरतमंद एवं मेधावी छात्रों को शिक्षा हेतु आर्थिक सहायता प्रदान कराने के उद्देश्य से की गई थी। इसके साथ ही एक उद्देश्य अमेरिका में साउथ एशियन कम्युनिटी को भाषा, कला और संस्कृति के माध्यम से जोड़ने का भी रहा, जिसे ध्यान में रखते हुए मुशायरे और कवि-सम्मेलन का आयोजन आरम्भ किया गया, जो कि कालान्तर में आज़ादी का त्योहार मनाने की एक साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधि के रूप में अत्यंत सफल प्रयास सिद्ध हुआ। सुश्री आयशा खान के शुरुआती भाषण के पश्चात् गोपिओ डी सी संस्था का प्रतिनिधित्व कर रही डॉ. रेणुका मिश्रा द्वारा समारोह में आए सभी श्रोताओं एवं वक्ताओं के स्वागत में चंद शब्द कहे गए। साथ ही, पिछले 14 वर्षों से इस कार्यक्रम के आयोजन में गोपिओ के सहयोग और सहभागिता की संक्षिप्त जानकारी दी गयी।

चाय-नाश्ते के दौरान मिली अतिरिक्त जानकारी के अनुसार, प्रारंभिक वर्षों में यह मुशायरा स्थानीय न होकर राष्ट्रीय स्तर का हुआ करता था। कारण यह था कि सत्तर के दशक में हिंदी-उर्दू के इतने शायर डी. सी. मेट्रो एरिया में उपलब्ध ही नहीं थे। अत: अमेरिका के कोने-कोने से बेहतरीन साहित्यकारों को इकट्ठा कर एक सालाना मुशायरा और कवि-सम्मेलन आयोजित किया जाने लगा। इस संस्था की स्थापना किसी विशेष धर्म, सम्प्रदाय या जाति विशेष को ध्यान में रखकर नहीं की गई थी। इसलिए इस मुशायरे और कवि सम्मेलन को यौमे आज़ादी या स्वतंत्रता-दिवस के उपलक्ष्य में रखना तय किया गया। अगस्त-सितम्बर के महीने वाशिंगटन मैट्रो एरिया में इस तरह के साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्यक्रमों को आयोजित करने के लिए आदर्श माने जाते थे।

इस वर्ष आयोजित मुशायरे और कवि-सम्मेलन को स्वतंत्रता-दिवस के साथ-साथ इस संस्था की नींव से जुड़े, उर्दू नज़्मों के जाने-माने हस्ताक्षर डॉ. अब्दुल्ला की पत्नी डॉ. सोफ़िया अब्दुल्ला की स्मृति के रूप में भी आयोजित किया गया था, जिनका निधन इसी वर्ष 15 अगस्त को हुआ था। डॉ. सोफ़िया अब्दुल्ला AAA-DC के संस्थापकों में से एक थी और संस्था के कार्यक्रमों को अपना बहुमूल्य समय और ऊर्जा देते रहने के कारण सबकी प्रिय थी।

डी.सी मैट्रो में होने वाले इस सालाना मुशायरे एवं कवि-सम्मेलन में शामिल होना सभी स्थानीय रचनाकारों के लिए सदैव गरिमा का विषय रहता है। इस वर्ष हुए गीत-गज़लों के इस खूबसूरत कार्यक्रम में हिंदी-उर्दू और पंजाबी भाषाओं में

लिखने वाले सभी नामचीन स्थानीय साहित्यकारों को शामिल किया गया था। उर्दू गज़लों के बाद हिंदी की कविता और इन रचनाओं में पंजाबी, हैदराबादी एवं अन्य प्रांतीय भाषाओं का समावेश भारत की आत्मा में रची-बसी गंगा-जमुनी संस्कृति को जीवन्त करने वाला था।

कार्यक्रम का संचालन पिछले वर्ष की भाँति इस वर्ष भी जनाब अफ़ज़ल उस्मानी के कुशल नेतृत्व से सम्पन्न हुआ। जनाब अफ़ज़ल उस्मानी द्वारा रचनाकारों को उनके व्यक्तित्व के आधार पर किसी शायर की कही चंद पंक्तियों से आमंत्रित करना, उनके गहरे साहित्यिक ज्ञान का परिचायक था। इस वर्ष कार्यक्रम में पढ़ने वाले कवियों-शायरों में जो नाम शामिल किए गए थे, वे हैं - डॉ. अब्दुल्ला अब्दुल्ला, मोहम्मद अकबर, सुकेश चोपड़ा, दिलेर देओल, विशाखा ठाकर, मरघूब आलम, गुलशन मधुर, मधु माहेश्वरी, अशोक नारायण, किरण नाथ, सरवार इक़बाल, अज़ीज़ क़ुरैशी, यूसुफ़ राहत, अब्दुर रहमान सिद्दीक़ी, अनीस चौधरी, आस्था नवल, वंदना सिंह, नरेंद्र टंडन, विनीता तिवारी और प्रीति गोविंदराज। कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री गुलशन मधुर जी, श्री अशोक नारायण जी, जनाब अज़ीज़ क़ुरैशी एवं जनाब अब्दुर रहमान सिद्दीक़ी जी ने की। भारत के दूतावास से पधारे सांस्कृतिक विभाग के मिनिस्टर श्री जगमोहन जी के साथ सेक्रेटरी सुश्री अदिति वालुंज जी भी शामिल रहीं। दोनों की गरिमामयी उपस्थिति से न सिर्फ़ कार्यक्रम को लाभ हुआ, बल्कि वे स्वयं भी सभी के कलामों एवं कविताओं का पूरे समय आनन्द उठाते नज़र आए। पढ़ने वालों की रचनाओं में देशप्रेम, आज़ादी का जश्न, आम इंसान के जीवन की समस्याएँ और डॉ. अब्दुल्ला की पत्नी से जुड़ी स्मृतियों का एक मिला-जुला भाव माहौल में थोड़ी हँसी-खुशी तो थोड़ी नमी भी बनाए हुए था।

कार्यक्रम के अंत में अलीगढ़ अलमनाय संस्था के निर्वाचित अध्यक्ष जनाब असलम आज़ाद द्वारा सभी कवियों-शायरों, स्वयंसेवकों एवं श्रोताओं को सफल कार्यक्रम की बधाई दी गई और उनके सहयोग के लिए आभार प्रकट किया गया। इसके साथ ही अरलिंग्टन पुस्तकालय का भी पर्याप्त जगह एवं समस्त सुविधाएँ उपलब्ध कराने हेतु धन्यवाद किया गया।

वाशिंगटन मैट्रो क्षेत्र में प्रतिवर्ष होनेवाला यह मुशायरा एवं कवि-सम्मेलन भारत की सांस्कृतिक और साहित्यिक विरासत को सहेजे रखने के लिए महत्त्वपूर्ण है। इस कार्यक्रम की बढ़ती हुई लोकप्रियता का अनुमान कार्यक्रम से जुड़ने की इच्छुक स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों की संख्या से लगाया जा सकता है। इस वर्ष इस कार्यक्रम को सहयोग देने के लिए शामिल हुई कुछ नई संस्थाओं के नाम इस तरह हैं - हैदराबादी एसोसिएशन वाशिंगटन मैट्रो एरिया(HAWMA), एसोसिएशन ऑव इंडियन मुस्लिम्स (AIMS) एवं अमेरिकन सोसाइटी ऑव साइंस, इंजीनियरिंग एंड टेक्नॉलजी (ASSET)।

इसके साथ ही इस कार्यक्रम को प्रारम्भिक वर्षों से भारतीय दूतावास का भी सहयोग मिलता रहा है। कार्यक्रम को प्राप्त यह स्थानीय सहयोग न सिर्फ़ कार्यक्रम के आयोजकों, वक्ताओं और श्रोताओं के लिए, अपितु अमेरिका में बसे समस्त हिन्दुस्तानी परिवारों के लिए गौरव का विषय है।

भारतीय साहित्य और संस्कृति को अपने भीतर समेटे यह वार्षिक आयोजन विदेशी धरती पर दो पीढ़ियों के बीच भाषा और कला के माध्यम से एक सेतु का कार्य करता रहा है। मुशायरे व कवि-सम्मेलन का यह मिला-जुला कार्यक्रम आने वाली पीढ़ियों को गीत-गज़ल कहने-सुनने की हमारी पुरातन परंपरा का परिचय देता है। भारतीय भाषाओं के संवर्धन में और उभरते स्थानीय साहित्यकारों को एक प्रतिष्ठित मंच देने में इस कार्यक्रम का योगदान रहता है। बहुत-से स्थानीय साहित्यकारों की पुस्तकों का इस मंच पर पिछले कई सालों से लोकार्पण होता रहा है। इन रचनाकारों में से कुछ के नाम इस प्रकार हैं - डॉ. सत्यपाल आनन्द, डॉ. अब्दुल्ला अब्दुल्ला, डॉ. के. मोहन, श्री अनादि नाइक, श्रीमती दलेर देओल आशना, श्री धनन्जय कुमार, श्री सुरेन्द्र देओल, डॉ. सलमान अख़्तर, श्री राज कुमार क़ैस, डॉ. आस्था नवल, श्रीमती रश्मि सानन एवं प्रोफ़ेसर गोपीचंद नारंग।

कुल मिलाकर अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन डी सी में प्रति वर्ष होने वाला यह कार्यक्रम कविता की अलग-अलग विधाओं और भाषा संस्कृति की भिन्न खुशबूओं को बिखेरता हुआ एक गुलदस्ता-सा प्रतीत होता है।

tiwarivinita31@gmail.com

मौत का तांडव

आकाश आर्यनाईक
न्यू ग्रोव, मॉरीशस

ओडिशा के बालासोर में शुक्रवार शाम को हुआ भयावह रेल हादसा मन को शोकाकुल कर देने वाला था। इस भीषण ट्रेन दुर्घटना में अब तक 296 लोगों की मौत हो चुकी है और 1200 लोग घायल हैं। बालासोर का यह ट्रेन हादसा इतिहास के बेहद दर्दनाक हादसों की सूची में सम्मिलित हो गया है। यह हादसा शुक्रवार 2 जून, 2023 को शाम करीब सात बजे हुआ। तीन ट्रेनों के आपस में टकराने की घटना ने पूरे देश को हिला दिया। यह हादसा कोरोमंडल एक्सप्रेस ट्रेन के एक मालगाड़ी को पीछे से टक्कर मारने की वजह से हुआ। रेलवे की तकनीकी भाषा में इसे हेड ऑन कॉलिज़न कहते हैं।

इस दुर्घटना में कोरोमंडल एक्सप्रेस के 12 डिब्बे पटरी से उतर गए। इनमें से कुछ डिब्बे दूसरी पटरी पर चले गए। दूसरी पटरी पर ठीक उसी वक्त बेंगलुरु से आ रही यशवंतपुर-हावड़ा एक्सप्रेस गुज़र रही थी। पटरी से उतरने के बाद कोरोमंडल एक्सप्रेस के जो डिब्बे दूसरी पटरी पर गए थे, वे वहाँ से गुज़र रही यशवंतपुर-हावड़ा एक्सप्रेस से जा टकराई। यह हादसा रेलवे के साउथ इस्टर्न ज़ोन के खड़गपुर डिवीज़न में ब्राडगेज नेटवर्क पर हुआ।

पहले हावड़ा-बंगलुरु ट्रेन के कई कोच पटरी से उतरे और दूसरे ट्रैक पर शालीमार-चेन्नई सेंट्रल कोरोमंडल एक्सप्रेस से टकरा गए। इसके बाद कोरोमंडल ट्रेन के कोच भी बेपटरी हो गए और बगल से गुज़र रही मालगाड़ी से टकरा गए। वहीं के एक निवासी ने बताया - "हमें ज़ोर से आवाज़ आई। हम घर से बाहर निकल आए, तो देखा कि बाहर यह दुर्घटना हुई। मालगाड़ी के ऊपर ट्रेन चढ़ गई। बहुत से लोग घायल हुए, कई लोगों की मौत हो गई। एक छोटा बच्चा यहाँ पर रो रहा था। उसके माता-पिता की मौत हो चुकी थी। रोते-रोते उस बच्चे की भी मौत हो गई। बहुत-से लोग पानी माँग रहे थे। मैंने जितना संभव था लोगों को पानी दिया। हमारे गाँव से लोग यहाँ आकर मदद करने लगे।"

एक निवासी ने बताया कि जो भयानक दृश्य था, उसे देखकर हमारा दिमाग काम नहीं कर रहा था। एक चश्मदीद ने बताया - "हमने लोगों को डिब्बे से बाहर निकालने में मदद की। यह काम करीब रात भर चलता रहा।" हावड़ा से चेन्नई जा रही कोरोमंडल एक्सप्रेस में सवार एक घायल यात्री ने बताया कि उन्हें ज़ोर से झटका लगा और ट्रेन पटरी से उतरकर पलट गई। ट्रेन के आखिरी एसी कोच - नंबर एच 1 में होने के कारण उनकी जान बच गई। उन्होंने घायल लोगों की मदद की और पुलिस और रेलवे हेल्पलाइन को फ़ोन किया।

अन्य यात्री ने बताया - "आधे से पौन घंटे के बाद मैं ट्रेन से बाहर निकला, तो देखकर अचंभे में पड़ गया। कोई भी सामान नहीं मिला। जो लोग बाहर गंभीर हालत में थे, उन्हें पहले इलाज के लिए ले जाया गया। उसके बाद हमें ले जाया गया। जो यात्री मारे गए थे, वे विशेषकर यशवंतपुर एक्सप्रेस के आखिरी तीन डिब्बे में थे, जो सामान्य डिब्बे थे और उनमें लगभग 250-300 लोग सवार थे। हमने खून से लथपथ लोगों को देखा... हमने उन्हें अपने कोच से पानी और चादरें दीं। मैंने पटरी पर 200 से 250 यात्रियों के शव बिखरे देखे। यह एक ऐसा दृश्य था, जिसे मैं कभी नहीं भूलूँगा। ईश्वर उन परिवारों की मदद करें।"

बिहार के मधेपुरा ज़िले से भी एक यात्री कोरोमंडल एक्सप्रेस में सवार था। उसने बताया कि घटना के बाद वह बेहोश हो गया था और आधे घंटे के बाद उसे प्राइवेट गाड़ी से अस्पताल पहुँचाया गया। एक यात्री ने कहा कि इस हादसे में उसे कोई नुकसान नहीं हुआ, लेकिन दुर्घटना के समय की चीख-पुकार उसके कानों में गूँजती रही। यह यात्री दुर्घटना के समय इस बात से अनजान था कि इस दुर्घटना में तीन ट्रेन शामिल हैं। उसने कहा - "लगभग साढ़े छह बजे, हमने भारी गड़गड़ाहट और फिर तेज़ झटके की आवाज़ सुनी, जो आपातकालीन ब्रेक की तरह लग रहा था। हमें एहसास हुआ कि कोई दुर्घटना हुई है। हमें अपनी सुरक्षा के लिए कोच से उतरना पड़ा। कोच का दरवाज़ा खोला, तो देखा कि हमारी ट्रेन के सामने दूसरी लाइन पर तीन डिब्बे पटरी से उतर गए

थे।

आपातकालीन सेवा कर्मियों को घटनास्थल पर पहुँचने में एक घंटे का समय लगा, लेकिन जैसे ही उन्होंने काम संभाला, उन्होंने ज़रूरतमंदों की बहुत मदद की। ज़मीन पर, पटरियों पर, हर जगह खून था। कुछ लोगों की बाँह कट गई थी। जगह-जगह लाशें पड़ी थीं।" क्षतिग्रस्त डिब्बे एक के ऊपर एक ऐसे चढ़ गए थे, जैसे कि तीन चार मंज़िला इमारत हो।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने ओडिशा के बालासोर ज़िले में हुई ट्रेन दुर्घटना पर दुख व्यक्त किया। उन्होंने केंद्रीय रेल मंत्री से बात की और स्थिति का जायज़ा लिया। ओडिशा में ट्रेन हादसे पर दुनिया के नेताओं ने शोक संदेश भेजे। उनके सहानुभूतिपूर्ण शब्दों ने शोक-संतप्त परिवारों को शक्ति दी। रेलवे के स्थानीय अधिकारियों, पुलिसकर्मियों, अग्निशमन सेवकों, स्वयंसेवकों और अन्य लोगों की टीमों ने बिना थके, बचाव कार्यों को सम्पन्न किया। मोदी जी ने कहा कि विपरीत परिस्थितियों में हमारे देश के लोगों द्वारा दिखाया गया साहस और करुणा वास्तव में प्रेरणादायक है। जैसे ही ओडिशा में ट्रेन दुर्घटना हुई, लोग बचाव कार्यों के लिए मदद करने में जुट गए। कई लोग रक्तदान करने के लिए कतार में खड़े हुए।

मृतकों के परिजनों के लिए रेल मंत्रालय ने मुआवजे का ऐलान किया। केंद्रीय रेलमंत्री ने मृतकों के परिजनों को 10 लाख रुपए, गंभीर रूप से घायल लोगों के लिए 2 लाख रुपए और मामूली चोटों वाले लोगों के लिए 50,000 रुपए की अनुग्रह राशि देने की घोषणा की। विशेष राहत आयुक्त कार्यालय ने बताया कि बालासोर कलेक्टर को भी ज़रूरी व्यवस्था करने के लिए तत्पर रहने का आदेश दिया गया।

खड़गपुर डिविज़न ने बताया कि रविवार, 4 जून को 103 ट्रेनें रद्द की गयीं और 55 ट्रेनों का रास्ता बदला गया है। इसके अलावा 5 ट्रेनों को कम दूरी तक चलाया गया।

घायलों का अलग-अलग अस्पतालों में इलाज चला। इसके साथ ही पटरियों की मरम्मत का काम किया गया। शनिवार की पूरी रात सैकड़ों लोग मरम्मत के काम में लगे रहे। खुद रेल मंत्री ने घटना-स्थल पर मरम्मत-कार्यों का जायज़ा लिया।

रविवार की सुबह समाचार एजेंसी एएनआई से बात करते हुए रेलमंत्री ने कहा कि हादसे की जाँच पूरी हो गई है और दुर्घटना का मुख्य कारण गलत सिग्नल पाया गया। सिग्नल व दूरसंचार (एस एंड टी) विभाग में कई स्तरों पर चूक को चिह्नित किया गया। 2 जून का हादसा रेल दुर्घटना के इतिहास में अंकित रहेगा।

devildream853@gmail.com

दिवाली उत्सव - लंदन ठुमकदा

इंदु बरोट
यू.के, यूरोप

अक्टूबर का महीना अर्थात् पतझड़, उस पर इन्द्रदेव की मेहरबानी। रिमझिम वर्षा के कारण पेड़-पौधों की रंगीन हुई पत्तियाँ इधर-उधर ज़मीन पर गिरी थीं और सतरंगी चादर-सी प्रतीत हो रही थीं। बारिश की परवाह न करते हुए दिवाली मेला देखने तथा अपने भारतीय जानकारों से मिलने का उत्साह लिए सैकड़ों भारतवंशी ट्रेफ़लगर स्क्वेयर पहुँचे। यहाँ उन्हें भारतीय संस्कृति की सुंदरता देखने का एक नया अनुभव प्राप्त हुआ।

लंदन के मध्य में स्थित 'ट्रेफ़लगर स्क्वेयर', वास्तव में, लंदन का दिल कहा जाता है। आज यह एक छोटा भारत बना हुआ दिख रहा था। यहाँ हज़ारों लोगों की भीड़ उमड़ी हुई थी, लेकिन कोई ठेलम-ठेल नहीं, कोई हंगामा नहीं। चारों ओर उत्सव की उमंग, नृत्य की तरंग और भारतीय पकवानों की सुगंध थी। यहाँ का वातावरण लोगों को आकर्षित कर रहा था। बारिश के बावजूद रंग-बिरंगे परिधानों में सजे लोग कार्यक्रम देख रहे थे, बिल्कुल अनुशासन में; शायद यह अनुशासन ही इस कार्यक्रम की सफलता की कुँजी है।

एक ओर दुर्गापूजा का पंडाल सजा हुआ था, जहाँ बंगाल

संस्कृति देखने को मिल रही थी। सभी नारियाँ सिंदूर खेल रही थीं तथा 'डोला रे डोला' नृत्य पर थिरक रही थीं। दूसरी ओर पूरे जोश के साथ ऑर्केस्ट्रा की धुन पर गरबा के नृत्य पर थिरकता समूह था, यहाँ भी कोई धक्कम-धक्का नहीं। सब अपने नृत्य में लीन थे। सब परंपरागत रूप से नृत्य कर रहे थे। कहीं घूमर, तो कहीं कत्थक, कहीं भरतनाट्यम, तो कहीं आसामी नृत्य देखने को मिल रहे थे।

भारत की सभी संस्कृतियों का समावेश दर्शनीय था। मैं इन संस्कृतियों का उत्साहपूर्ण आनंद उठा रही थी। 200 से ज्यादा परफ़ॉर्मर रंग-बिरंगे परिधान में नृत्य का प्रदर्शन कर भारतवंशियों और विदेशियों को मंत्र-मुग्ध कर रहे थे। लोग असमंजस में थे कि पहले घूमर देखें या गरबा देखें या भरतनाट्यम देखें।

एक स्थान पर सिखाया जा रहा था कि साड़ी और पगड़ी कैसे बाँधी जाती है। इसे भारतीय मूल के लोग और विदेशी बड़ी तन्मयता से सीखने का प्रयास कर रहे थे। मैं भी कुछ देर खड़े होकर साड़ी पहनना सीख आई। चारों ओर अलग-अलग स्टॉल और बीच में भारतीय लोकसंस्कृति की सुंदरता दिख रही था।

बारिश की फुहारों का कोई असर नहीं हो रहा था। हर व्यक्ति बारिश को अनदेखा कर दिवाली मेले का आनंद ले रहा था।

थोड़ा आगे एक कार्यशाला चल रही है। यहाँ प्राणायाम, कुंडलिनी-जागरण, दर्शन आदि सिखाए जा रहे थे। अंग्रेज़ भी तन्मयता से ज़मीन पर बैठकर सीख रहे थे। कुछ दूरी पर कठपुतली शो हो रहा था। कठपुतलियों को सुन्दरता से ठुमकाया जा रहा था। इसके अतिरिक्त हास्य-प्रदर्शन हो रहा था, जिसमें काफ़ी भीड़ एकत्रित थी। भारतीय मूल के लोग हिंदी भाषा में अंग्रेज़ी चुटकुले सुना रहे थे। वहीं अंग्रेज़ टूटी-फूटी हिंदी बोलकर भारतीयों की नकल कर रहे थे और सभी को हँसा रहे थे।

आगे कुकरी थिएटर में एक भारतीय नारी, भारतीय व्यंजन बनाना सिखा रही थीं। वे प्राचीन भारतीय पाक विद्या को प्रदर्शित कर रही थीं। चकली, खाखरा, जलेबी, लड्डू जैसे भाँति-भाँति के पकवान तैयार करना सिखा रही थीं। आगे मेहंदी स्टॉल में फ़्री में मेहंदी लगायी जा रही थी। एक लंबी लाइन थी और चाहे भारतीय मूल के हों या विदेशी, सभी मेहंदी लगाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। इसके अलावा, कुछ स्वयंसेवक लाइन में लगे लोगों को 2 पारले बिस्किट के साथ चाय दे रहे थे। विदेशी महिलाएँ अपने गोरे-गोरे हाथों में मेहंदी लगवाकर बड़ी खुशी से कह रही थी कि क्रिसमस पर दुबारा मेहंदी लगाएँगीं। लाल मेहंदी उनके हाथों की खुबसूरती में चार चाँद लगा रही थी।

फ़ूड स्टॉल में भारतीय समुदाय के साथ विदेशी भी पानीपुरी, चाट, समोसा, दालपुरी आदि चटखारे लेकर खा रहे थे। भारतीय पकवान और मिठाई की सुगंध हवा में फैल रही थी, जो विविध पकवानों का स्वाद लेने के लिए प्रेरित कर रही थी। एक अंग्रेज़ दर्शक दिवाली के इस अनुभव को अविश्वसनीय बता रहा था, तो दूसरा अंग्रेज़ व्यक्ति पगड़ी बँधवाकर गरबा का नृत्य कर रहा था और भारतीय संस्कृति से जुड़ने पर गर्व कर रहा था।

बारिश के थमने से रंग-बिरंगे छाते बंद हो चुके थे और लोग बड़ी खुशी से इधर-उधर घूम रहे थे। हर आदमी कार्यक्रम देखने, खाना खाने, योग सीखने और नृत्य करने में व्यस्त था। हिंदू, सिख, जैन सभी समुदाय के लोग अपनी विरासत का जश्न मनाने के लिए इस जगह पर एकत्रित होकर 'वसुधैव कुटुम्बकम' का प्रमाण दे रहे थे।

मंत्री हो या कोई बड़ा अफ़सर, उद्योगपति हो अथवा कोई आम आदमी, यहाँ सभी एक समान दिख रहे थे। प्रसिद्ध व्यक्तियों के साथ लोग सेल्फ़ी ले रहे थे। कोई दुर्व्यवहार नहीं था, भेदभाव नहीं था। किसी को हीन भावना का अहसास नहीं हो रहा था।

मंच पर रामलीला की प्रस्तुति देखने के लिए भीड़ उमड़ रही थी। राम-सीता की कहानी सुनाई जा रही थी। बच्चे-बुज़ुर्ग सभी तन्मयता के साथ सुन देख रहे थे। राम का वन में जाने और शबरी द्वारा फल दिए जाने के दृश्य दिखाए जा रहे थे। बीच-बीच में 'जय श्री राम' के नारे हो रहे थे। इतना सुंदर दृश्य। सभी दर्शक पंक्तिबद्ध बैठे थे। पूरा दिन इधर-उधर घूमते, खाते-पीते और नाच-गान देखते हुए अँधेरा होने लगा। लंदन में पाँच-छः बजे ऐसा अँधेरा होने लगता है, जैसे नौ

बज गए हों। अँधेरा था, लेकिन भीड़ के कारण उत्साह ज्यादा था, रोशनी का त्यौहार जो था। कुछ ही देर में जैसे ही सारी लाइटें ऑन हुई एक जादुई वातावरण बन गया, जो अँधेरे पर प्रकाश की जीत का प्रतीक था। हर देश के लोग दिवाली मेले का आनंद लेते हुए दिख रहे थे। शुद्ध-अशुद्ध उच्चारण के बॉलीवुड गीत गाते हुए अंग्रेज़ उत्साहित थे।

भारी भीड़ होने के बावजूद भी कोई अप्रिय घटना या कोई भगदड़ नहीं हुई। किसी भी वजह से किसी अन्य को परेशानी का सामना नहीं करना पड़ा। हर आदमी एक-दूसरे की सहायता करने के लिए आतुर दिख रहा था। कुछ नागरिक सहायता पाकर और कुछ देकर अपनी ज़िम्मेदारी निभाते हुए दिख रहे थे, जो विविधता में एकता का प्रतीक था।

आठ बजे समापन का आगाज़ हुआ, धीरे-धीरे भीड़ कम होने लगी। भारतीय संस्कृति के अद्‌भुत रंगों की झलक ने सबको प्रभावित किया।

indu.barot@yahoo.in

भारतीय नृत्यकला

डॉ. के. एन. एल. वी. कृष्णवेणी
विशाखपट्टनम, भारत

नृत्य मानवीय अभिव्यक्तियों का एक रसमय प्रदर्शन है। नृत्य का आविर्भाव बहुत प्राचीन समय से ही हुआ है और यह मानव जीवन का अभिन्न अंग रहा है। मानव जन्मतः नृत्य से परिचित है। बालक जन्म लेते ही रोते हुए अपने हाथ-पैर मारते हुए अपना अस्तित्व प्रकट करता है। बचपन में शब्दों के पूर्व, वह अपने अंगों द्वारा अपनी इच्छाएँ और आवश्यकताएँ प्रकट करता है। कहा जाता है कि इन आंगिक क्रियाओं से नृत्य की उत्पत्ति हुई है। देवी-देवताओं, दैत्यों, दानवों-मनुष्यों एवं पशु-पक्षियों सबको नृत्य अत्यंत प्रिय है।

नृत्य का अधिक संयोजित इतिहास महाकाव्यों, पुराणों, नाटकों एवं कविताओं द्वारा दर्शाया जाता है। संस्कृत नाटक का विकास मुखरित शब्दों, मुद्राओं, संगीत तथा शैलीगत गतिविधियों आदि के सम्मिश्रण से हुआ है। 12वीं से 19वीं सदी तक संगीतात्मक खेल या संगीत-नाटक विकसित हुए। संगीतात्मक खेलों से ही वर्तमान नृत्य-रूपों का उदय हुआ।

प्राचीन यूनानी दार्शनिक अरस्तु ने नृत्य को 'लयात्मक गति' कहा है। वैसे ही, अंग्रेज़ी बैले के पंडित जॉन वीवर ने 1721 में एक लेख में तर्क दिया कि नृत्य एक परिष्कृत, नियमित गति है, जो सुंदर मुद्राओं से रचित है। इसमें शरीर एवं अंगों की सौम्य मुद्राएँ और उनके अंश भी हैं। 19वीं शताब्दी के नृत्य इतिहासकार गस्तों वीली ने भी नृत्य में लालित्य, समन्वय और सौंदर्य जैसी विशेषताओं पर बल दिया। उपर्युक्त दृष्टिकोणों से स्पष्ट होता है कि नृत्य मात्र मनोरंजन न होकर प्राचीन समय से प्रचलित एक गंभीर कला है।

अमृत मंथन के पश्चात् जब राक्षसों को अमरत्व प्राप्त होने का संकट उत्पन्न हुआ, तब भगवान विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण कर अपने लास्ययुक्त नृत्य के द्वारा ही तीनों लोकों को राक्षसों से मुक्ति दिलाई थी। ऐसे ही एक बार भगवान शंकर भस्मासुर की तपस्या से प्रसन्न हो गए। भस्मासुर द्वारा अमरता का वर माँगने पर महादेव ने बताया कि जन्म लेने पर अमरता असंभव है। अतः कोई और वर माँगो। तब उसने भगवान शिव से ऐसा वर माँगा, कि वह जिसके सिर पर अपना हाथ रखेगा, वह तुरंत भस्म हो जाए। भगवान शिव 'तथास्तु' करके निकलने वाले थे कि मूर्ख राक्षस वर की परीक्षा करने के लिए स्वयं भगवान शिव के सिर पर हाथ रखने के लिए तैयार हो गया। ऐसी स्थिति में, एक बार फिर तीनों लोकों में संकट पड़ गया। अंततः भगवान विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण कर अपने मोहक सौंदर्यपूर्ण नृत्य से उसे अपनी ओर आकृष्ट किया और उसकी मृत्यु का कारण बने। विष्णु पर्व में वासुदेव के अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर, भद्र नामक नट द्वारा अपने अभिनय से ऋषियों को प्रसन्न करने का उल्लेख है। इसी नट के साथ प्रद्म्न, सांब आदि वज्रनाभपुर में जाकर अपने कुशल अभिनय से वहाँ दैत्यों का मनोरंजन करते थे। आगे 'रामायण' और 'कौबेर रंभाभिसार' में अभिनय का विशद वर्णन मिलता है।

भगवान विष्णु के अवतारों में कृष्ण अवतार को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, जिसमें भगवान की मूर्ति स्वयं नृत्य की भंगिमा में प्रस्तुत होती है। इसी कारण वे 'नटवर' कृष्ण कहलाए। वैसे ही, भगवान शंकर को नटराज कहा गया। कई पौराणिक ग्रंथों में भगवान शिव और माता पार्वती के नृत्य का उल्लेख है। कहा जाता है कि जब शिव-पार्वती नृत्य करते हैं, तब ब्रह्मा एवं विष्णु के साथ अन्य देवी-देवता उस अलौकिक आनंद का रसास्वादन करते हैं। भगवान शिव के पंचकृत्य से संबंधित नृत्य को सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति एवं संहार का प्रतीक माना जाता है। भारतीय संस्कृति एवं धर्म के इतिहास में, कई ऐसे प्रमाण मिलते हैं, जिससे नृत्य-कला की श्रेष्ठता सर्वमान्य प्रतीत होती है।

यजुर्वेद में भी नृत्य-संबंधी सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। नृत्य को उस युग में व्यायाम के रूप में माना गया था। हरिवंश पुराण, श्रीमद्भागवत् महापुराण, शिवपुराण एवं कूर्मपुराण में नृत्य संबंधी घटनाओं का उल्लेख है तथा रामायण और महाभारत में भी समय–समय पर नृत्य पाया

गया है।

स्वर्ग में इंद्र सभा में इंद्र के समक्ष अप्सराओं के नृत्य-प्रदर्शन सर्वविदित हैं। विश्वामित्र-मेनका का प्रसंग भी कुछ इस प्रकार है। तपस्वियों के तप को भंग करने में अप्सराओं द्वारा नृत्य-प्रदर्शन की कई कहानियाँ पुराणों से प्राप्त होते हैं।

सामवेद, यद्यपि अन्य वेदों से छोटा है, परंतु एक तरह से यह सभी वेदों का सार रूप है। सामवेद ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग की त्रिवेणी है। ऋषियों ने विशिष्ट मंत्रों का संकलन करके गायन की पद्धति विकसित की। आधुनिक विद्वान भी इस तथ्य को स्वीकार करने लगे हैं कि समस्त स्वर, ताल, लय, छंद-गति, स्वर-चिकित्सा, राग-नृत्य-मुद्रा, भाव आदि सामवेद से ही निकले हैं। इससे स्पष्ट होता है कि भारत में आरंभ से ही नृत्यकला को धर्म से जोड़ा गया है।

नृत्य का प्राचीनतम ग्रंथ भरतमुनि का 'नाट्य शास्त्र' है। हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो की खुदाइयों से प्राप्त मूर्तियों से नृत्य-कला से आदिकाल के मानव का संबंध दृष्टिगत होता है। ऋग्वेद के अनेक श्लोकों में नृत्य शब्द का प्रयोग हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि नृत्यकला का प्रचार–प्रसार आदिकाल से हुआ।

वस्तुतः, नृत्य में संगीत और नाटक सम्मिलित रहते हैं। नाट्य-शास्त्र के अनुसार, नृत्य और संगीत नाटक के अभिन्न अंग हैं। नाट्य-कला में इसके सभी मौलिक अंश सम्मिलित हैं और कलाकार स्वयं नर्तक तथा गायक होता है। प्रस्तुतकर्ता स्वयं तीनों कार्यों को संयोजित करता है। समय के साथ-साथ नृत्य एक स्वतंत्र तथा विशिष्ट कला के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

नृत्य में तीन पहलुओं पर विचार किया जाता है - नाट्य, नत्य और नृत्त। नाट्य में नाटकीय तत्व होता है। कथकली नृत्य-नाटक में इस पहलू को विशेष रूप से व्यवहार में लाया जाता है। नृत्य मौलिक अभिव्यक्ति है और यह एक विषय या विचार का प्रतिपादन करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है। 'नृत्त' शुद्ध नृत्य है, जहाँ शरीर की गतिविधियाँ न तो किसी भाव का वर्णन करती हैं और न ही वे किसी अर्थ को प्रतिपादित करती हैं। नृत्य और नाट्य को प्रभावकारी ढंग से प्रस्तुत करने के लिए एक नर्तकी को श्रृंगार, हास्य, करुणा, वीर, रौद्र, भय, वीभत्य, अद्‌भुत और शांत आदि नव रसों का संचार करने में प्रवीण होना चाहिए।

भरत और नंदीकेश्वर जैसे प्रमुख ग्रंथकारों ने नृत्य को कला के रूप में विवेचित किया है और मानव शरीर का उपयोग अभिव्यक्ति के वाहन के रूप में उल्लिखित किया है। नृत्य में शरीर के प्रमुख अंगों में सिर, धड़, ऊपरी और निचले अंगों और उपांगों में ढोड़ी से लेकर भवों तक चेहरे के सभी भागों तथा अन्य छोटे जोड़ों द्वारा भंगिमाएँ पहचानी जाती हैं।

नाट्य के दो अतिरिक्त पहलू - प्रस्तुतीकरण और शैली हैं। प्रस्तुतीकरण के दो प्रकार हैं - नाट्यधर्मी (जो रंगमंच का औपचारिक प्रस्तुतीकरण है) और लोकधर्मी (जिसे यर्थाथवादी, प्रकृतिवादी या प्रादेशिक रूप में समझा जाता है।) शैली या वृत्ति को चार भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है - कैसकी (जो लास्य पहलू के संचार में अधिक अनुरूप तथा दक्ष गीतिकाव्य से युक्त है) अरबती (जो ओजस्वी तथा पुरुषोचित है; सतवती, जिससे रासों का चित्रण किया जाता है) तथा भारती (जिसमें शाब्दिक अभिव्यक्ति और संवाद का विशेष महत्त्व है।)

शताब्दियों के विकास के साथ भारत में नृत्यकला देश के विभिन्न भागों में विकसित हुआ। इनकी अपनी पृथक शैली ने उस विशेष प्रदेश की संस्कृति को ग्रहण किया; प्रत्येक ने अपनी विशिष्टता प्राप्त की। अत: 'नृत्य कला' की अनेक प्रमुख शैलियाँ बनीं, जिन्हें हम आज भरतनाट्यम, कथकली, कुचीपुड़ी, कथक, मणिपुरी ओर ओडिसी के रूप में जानते हैं।

नाट्यशास्त्र के अनुसार, नर्तक चार प्रकार के अभिनयों के माध्यम से नृत्य प्रस्तुत करता है। वे हैं - आंगिक (शरीर के विभिन्न अंगों के शैलीपूर्ण संचालन के माध्यम से भावना की प्रस्तुति), वाचिक (बोली, गीत, स्वर की तारता और स्वर शैली), आहार्य (वेशभूषा और श्रृंगार) एवं सात्विक (संपूर्ण मनोवैज्ञानिक संसाधनों की प्रस्तुति है।) कलाकार के पास शैलीकृत भंगिमाओं का जटिल भंडार होता है। नृत्य प्रदर्शन के लिए पारंपरिक तौर पर मुद्राएँ निर्धारित हैं। सिर के लिए 13, भौंह के लिए 7, नाक के लिए 6, गालों के लिए 6, ठोड़ी के लिए 7, गर्दन के लिए 9, वक्ष के लिए 5 व आँखों के लिए 36, पैरों व निम्न अंगों के लिए 32 मुद्राएँ हैं, जिनमें

से 16 भूमि पर तथा 16 वायु के लिए निर्धारित हैं। पाँव की विभिन्न गतियाँ हैं, जैसे - इठलाना, ठुमकना, तिरछे चलना, ताल आदि सावधानी से की जाती हैं। एक हाथ की 24 मुद्राएँ (असंयुक्त हस्त) और दोनों हाथों की 13 मुद्राएँ (संयुक्त हस्त) एक हस्त मुद्रा के एक–दूसरे से बिल्कुल भिन्न 30 अर्थ हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, एक हाथ की पताका मुद्रा, जिसमें सभी अंगुलियों को आगे बढ़ाकर, मुड़े हुए अंगूठे के साथ मिलाकर, गर्मी, वर्षा, भीड़, रात्रि, वन, घोड़ा या पक्षियों की उड़ान को दिखाया जा सकता है। पताका मुद्रा में ही तीसरी अंगुली मोड़ने से त्रिपताका बनता है, जिसका अर्थ, मुकुट, वृक्ष-विवाह, अग्नि-द्वार या राजा भी हो सकता है। कर्कट या केंकड़ा में दोनों हाथों का उपयोग कर अंगुलियों को जोड़कर मधुमक्खी का छत्ता, जम्हाई या शंख दिखाया जा सकता है। इस तरह अलग–अलग अर्थों के लिए हाथ की क्रिया या मुद्रा भिन्न होती है।

भारत जैसे विशाल उपमहाद्वीप में जिस प्रकार कोस–कोस पर पानी बदलती है, वैसे ही नृत्यों की विभिन्न शैलियाँ हैं। प्रत्येक शैली किसी विशिष्ट समय व वातावरण से प्रभावित है। भरतनाट्यम, कथकली, कत्थक, ओडिसी, मणिपुरी, मोहिनीअट्टम, कुचिपुड़ी आदि प्रमुख भारतीय नृत्य शैलियाँ हैं।

किसी एकल नृत्य-नाटिका में अभिनय करते हुए कोई कलाकार चेहरे के भाव, मुद्राएँ और स्वभाव परिवर्तित करते हुए क्रमशः दो या तीन प्रमुख चरित्रों का अभिनय करता है। भगवान कृष्ण, उनकी ईर्ष्यालु पत्नी सत्यभामा और उनकी सौम्य पत्नी रुक्मिणी को एक ही व्यक्ति अभिनीत कर सकता है। नृत्य का सौंदर्यात्मक आनंद इस बात पर निर्भर करता है, कि कोई कलाकार किसी विशिष्ट भाव को व्यक्त करने एवं रस जगाने में कितना सफल है। शाब्दिक रूप में, रस का अर्थ 'स्वाद' या 'महक' है और यह आनंदातिरेक या मनोदशा है, जिसका अनुभव दर्शक किसी नृत्य-प्रदर्शन को देखकर करता है।

नृत्य में दो प्रकार के भाव हैं। एक तांडव, जो शिव के रौद्र पौरुष, दूसरा लास्य, जो शिव की पत्नी पार्वती के लयात्मक लावण्य का प्रतिनिधित्व करता है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से जन्मे भरतनाट्यम में लास्य की प्रधानता है और इसका उदय दक्षिणी भारत के तमिलनाडु राज्य में हुआ है। कथकली केरल में जन्मी तांडव भाव की मूकाभिनय नृत्य-नाटिका है, जिसमें उच्च शिरोवस्त्र एवं चेहरे का विस्तृत श्रृंगार किया जाता है। कथक लास्य तथा तांडव का मिश्रण है। क्लिष्ट पदताल एवं लयात्मक रचनाओं की गणितीय परिशुद्धता इसकी विशेषता है और यह नृत्य उत्तर में फला-फूला। अपनी झूमती तथा विसर्पित मुद्राओं से युक्त मणिपुरी में लास्य की विशेषताएँ हैं और यह मणिपुर का नृत्य है। आंध्र प्रदेश की कुचिपुड़ी के स्वरूप और प्रकृति में कुछ विशेषताएँ भरतनाट्यम से मिलती–जुलती हैं। ओडिसी अपने आप में एक अलग शैली है। इसका नृत्य व्याकरण मूलतः त्रिभंग से विकसित हुआ है। इस प्रकार, भारत में कई प्रकार की नृत्य-शैलियाँ प्रचलित हैं।

अन्य शास्त्रीय अथवा अर्द्धशास्त्रीय पारंपरिक नृत्य-शैलियों में भागवत मेला, मोहिनी अट्टम तथा कुरवंचि शामिल हैं। मोहिनीअट्टम हिंदू पौराणिक कथाओं में वर्णित शिव को मोहनेवाली मोहनी की किंवदंती पर आधारित है। यह भरतनाट्यम तथा कथकली के तथ्यों पर आधारित है। कुरवंचि तमिलनाडु में प्रचलित गीति-सौंदर्य से युक्त नृत्य-नाटिका है।

भारतीय संस्कृति में जितनी विविधता पाई जाती है, उतनी विभिन्नता नृत्य में भी परिलक्षित होती है। नृत्य के विधि-विधान के अनुसार, इन्हें तीन भागों में बाँटा जा सकता है - शास्त्रीय नृत्य, लोकनृत्य तथा आधुनिक या समसामयिक नृत्य। शास्त्रीय नृत्य शैलियाँ सर्वाधिक संरक्षित, प्रचलित तथा प्राचीनतम हैं। मंदिर, राजसी दरबार और गुरु-शिष्य परंपरा ने इस कला को जीवित तथा अपरिवर्तित रखा है।

भारतीय संस्कृति में शास्त्रीय नृत्य की तरह लोकनृत्य भी बहुत प्रचलित है। लोकनृत्यों के अंतर्गत, अनंत प्रकार के स्वरूप और ताल हैं। इनमें धर्म, व्यवसाय और जाति के आधार पर अंतर पाया जाता है। मध्य और पूर्वी भारत की जनजातियाँ सभी अवसरों पर नृत्य करती हैं। जीवन-चक्र और ऋतुओं के वार्षिक चक्र के लिए अलग–अलग नृत्य हैं। नृत्य दैनिक जीवन और धार्मिक अनुष्ठानों का अंग है। बदलती जीवन शैलियों के कारण नृत्यों की प्रासंगिकता विशिष्ट अवसरों से

भी आगे पहुँच गई। लोकनृत्य ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यमान है और ग्रामीण समुदायों के दैनिक कामकाज एवं रीति-रिवाज़ों की अभिव्यक्ति है। यहाँ आदिवासी और ग्रामीण क्षेत्रों के नृत्य में प्रादेशिक विविधताएँ हैं, जो मौसम के हर्षपूर्ण समारोहों, फ़सल और बच्चे के जन्म के अवसर से संबंधित हैं। पवित्र आत्माओं के आह्वान और दुष्ट आत्माओं को शांत करने के लिए भी नृत्य किए जाते हैं। आज यहाँ आधुनिक प्रयोगात्मक नृत्य के लिए भी एक संपूर्ण नव-निकाय है। लोकनृत्य ग्रामीण वातावरण के साथ स्थानीय माहौल से प्रभावित होता है। अतः, लोकनृत्य एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न होते हैं।

शास्त्रीय नृत्य परंपराओं और लोकनृत्य के अतिरिक्त, भारत में कई समकालीन (आधुनिक) नृत्य रूप भी विद्यमान हैं। एक सामान्य धारणा है कि आधुनिक नृत्य पश्चिमी नृत्यों का ही विस्तार है, किन्तु ऐसी धारणा सच नहीं है। भारतीय आधुनिक नृत्य अपने-आप में एक शैली है, हालाँकि उन्हें भारत के शास्त्रीय नृत्यों जैसी मान्यता नहीं मिली है। आधुनिक भारतीय नृत्य 20वीं शताब्दी की देन है और भारत की नई विषयवस्तुओं तथा आवेगों को व्यक्त करती है। जहाँ शास्त्रीय नृत्यों का एक नियमित और संहिताबद्ध तरीका होता है, वहीं आधुनिक नृत्य मुख्य रूप से कल्पना पर आधारित होते हैं। आधुनिक भारतीय नृत्य का एक रोचक इतिहास है, जहाँ उदय शंकर को आधुनिक भारतीय नृत्य का जनक माना जाता है। भारत में अन्य प्रसिद्ध आधुनिक नर्तकियों में शांति बर्धन, शोभना जयसिंह, अमला शंकर, डॉ. मंजूश्री चाकी-सरकार, रंजबती सरकार आदि उपस्थित हैं। सिनेमा क्षेत्र के विकास के साथ, आधुनिक नृत्य के विविध रीतियों का उद्गम हो रहा है और विशेष रूप से जन सामान्य से प्रभावित हो रहे हैं।

आजकल प्रत्येक उत्सव या सार्वजनिक आयोजन में इन नृत्यों का प्रदर्शन सामान्य बात है। कुछ लोगों का यह मानना है कि बढ़ते पश्चिमीकरण के कारण भारत के प्राचीन नृत्य रूपों के अस्तित्व पर संकट पड़ रहा है, क्योंकि यह लोगों के बीच अपनी अपील खो रहा है। हालाँकि, ऐसी आशंकाएँ निराधार हैं, क्योंकि शास्त्रीय नृत्य रूपों की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है और यह लोकप्रियता-वृद्धि अन्य देशों में भी दृष्टिगोचर है। इन सबके बावजूद, भारत में शास्त्रीय नृत्य-शैलियों को दो बड़ी बाधाओं का सामना करना पड़ता है। सबसे पहली और सबसे बड़ी बाधा है, समय की कमी और दर्शकों का ध्यान कम होता जाना। तकनीक पर बढ़ती निर्भरता और तेज़ रफ़्तार वाली ज़िंदगी के साथ दूसरी बाधा है, वित्तपोषण। आयोजकों का कहना है कि किसी भी शास्त्रीय संगीत समारोह को बड़ी संख्या में दर्शकों तक पहुँचाने के लिए निवेश बढ़ाना होगा।

भारतीय शास्त्रीय परंपराओं के मूल तत्व सशक्त हैं और शास्त्रीय नृत्य-शैलियों द्वारा दिखाया गया लचीलापन इसे बदलते समय के अनुसार खुद को अपनाने और निपुण बनाने की अनुमति देता है। हालाँकि, सरकार और अन्य संबंधित हितधारकों को वित्तपोषण से संबंधित चुनौतियों का समाधान करना चाहिए, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि भारतीय शास्त्रीय नृत्य परंपराओं को कोई खतरा न हो। शायद, सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह सुनिश्चित करने के लिए ध्यान रखा जाना चाहिए कि भारत में लोकनृत्य की परंपराओं के अस्तित्व को सुनिश्चित करने के लिए संबंधित हितधारकों द्वारा उचित उपायों के माध्यम से समर्थन दिया जाए।

अत्यंत प्राचीन, व्यापक तथा प्रतिष्ठित भारतीय नृत्य-परंपरा आधुनिक काल में अश्लीलता के कारण अपनी विशिष्टता खो रही है। आधुनिक सभ्यता का रंग डालकर बड़े घरों के लोग हमारी संस्कृति और परंपरा पर दाग लगा रहे हैं। किन्तु संतोषजनक बात यह है कि ऐसी स्थिति में भी बिजू महाराज, यामिनी कृष्णमूर्ती, श्री तथा श्रीमती राज रेड्डी जैसे महान् नृत्यकारों ने हमारी परंपरा को बनाए रखने तथा आगे की पीढ़ी तक ले जाने में सफल प्रयास किया है और आज भी कई नृत्यकार इस दिशा में समर्पित हैं। ऐसे महान् नृत्यकारों को कोटि-कोटि वंदना समर्पित हैं।

knlvkveni@vizagsteel.com,
knlvkv@gmail.com, knlvkv@yahoo.com

हिंदी के वैश्विक विस्तार में सिनेमा का योगदान

डॉ. विनय कुमार शर्मा
लखनऊ, भारत

आज हिंदी फ़िल्में वैश्विक गाँव के निर्माण में योगदान दे रही हैं। फ़िल्मों के प्रति मानव की रुचि कोई नई नहीं है। चलचित्र या फ़िल्मों का संसार बड़ा अनोखा होता है। तभी तो कबीर कहते हैं - लिखा लिखी की बात नहीं, देखा-देखी की बात। साहित्य की तरह फ़िल्में समाज का आईना होती हैं। यह ऐसा शक्तिशाली माध्यम है, जिससे सामाजिक परिवर्तन लाया जा सकता है, साथ ही इससे भाषा की लोकप्रियता भी बढ़ती है। हिंदी की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है। विदेशों में हिंदी की लोकप्रियता हिंदी फ़िल्मों से जुड़ी है।

हिंदी फ़िल्मों की शुरुआत ढुँढ़ीराज गोविन्द फालके (दादा साहब फालके) द्वारा बनाई गई 'राजा हरिश्चन्द्र' फ़िल्म से हुई, जिसका प्रदर्शन 3 मई 1913 को हुआ। सन् 1931 में बम्बई के मेजिस्टिक सिनेमा में पहली ध्वनि फ़िल्म प्रदर्शित हुई, जिसका निर्माण इंपीरियल फ़िल्म कंपनी ने किया था और इसके निर्देशक आर्देशिर ईरानी थे। जैसे ही सवाक् फिल्मों का चलन हुआ, वैसे ही मूक फिल्में बंद हो गईं। इस प्रकार हिंदी फ़िल्में जन-संचार का सशक्त माध्यम बन गईं। चौथे दशक में हिंदी फ़िल्में जबरदस्त प्रभाव लेकर अवतरित हुईं और पाँचवे दशक में भारत में पहली बार सन् 1952 में अंतरराष्ट्रीय फ़िल्म समारोह आयोजित हुआ। तभी भारतीय सिनेमा की पहचान और महत्ता विश्व स्तर पर स्थापित हुई।

सन् 1953 में सत्यजीत रे ने पाथेर पांचाली बनाई, जिसे देश-विदेश में पुरस्कृत किया गया। यह फ़िल्म मानवीय संवेदनाओं को झकझोकरने में सफल हुई। पाँचवें-छठे दशक में फ़िल्म जगत् में कई ऐसे फ़िल्मकार हुए, जिनकी फ़िल्मों ने न केवल भारत में, बल्कि विदेशों में भी धूम मचा दी और पहली बार हिंदी गाने ऐसे लोग भी गुनगुनाने लगे, जो हिंदी भाषा नहीं जानते थे। विमल राय की 'मदर इंडिया' एक ऐसी फ़िल्म थी, जिसने साहित्यकार प्रेमचंद के साहित्य में चित्रित गाँव और वहाँ की समस्याओं का स्मरण करा दिया। यह पहली भारतीय हिंदी फ़िल्म थी, जिसे विश्व स्तर पर सराहा गया और ऑस्कर पुरस्कार हेतु नामांकित किया गया। इसी समय राजकपूर की 'आवारा', 'बूटपॉलिश', 'जागते रहो', 'श्री 420' जैसी फ़िल्में आईं, जिन्हें संगीत एवं फ़िल्मांकन के कारण विश्वस्तर पर सराहा गया। इन फ़िल्मों से विदेशों में हिंदी भाषा लोकप्रिय हुई। इसी का परिणाम था कि राजकपूर को सोवियत संघ द्वारा सम्मानित किया गया। वहाँ उनके सम्मान में भीड़ का सैलाब उमड़ पड़ा और सबके होठों पर 'मेरा जूता है जापानी' गीत की पंक्तियाँ थीं। इसी समय वी. शांताराम की 'दो आँखें बारह हाथ और गुरूदत्त की 'प्यासा' जैसी फ़िल्मों ने न केवल भारतीय दर्शकों पर, बल्कि अन्तरराष्ट्रीय दर्शकों पर भी गहरा प्रभाव डाला। 'सुजाता', 'बैजू बावरा', 'मुगले आजम', 'संगम', 'गाइड', 'आँखे' 'गंगा-जमुना" जैसी फिल्में समसामयिक और ऐतिहासिक विषयों पर आधारित थीं।

आठवें दशक में 'हाथी मेरे साथी', 'उपकार', 'पूरब-पश्चिम', 'मेरा गाँव मेरा देश', 'रोटी कपड़ा और मकान', 'पाकीजा', 'अभिमान', 'शोले', 'दीवार' जैसी फ़िल्मों के माध्यम से हिंदी फ़िल्म उद्योग का विकास हुआ। इन फ़िल्मों ने बॉलीवुड को हॉलीवुड के बाद विश्व स्तर पर पहचान दिलाई। विश्व स्तर पर हिंदी फ़िल्मों की लोकप्रियता का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि आज अमिताभ बच्चन और शाहरूख खान जैसे कलाकारों से विश्व का कोना-कोना परिचित है। इसी प्रकार धीर-धीरे अनेकानेक फ़िल्में बनाकर आज की स्थिति में भारत विश्व का सर्वाधिक फ़िल्म निर्माण करने वाला देश बन चुका है। फ़िल्में अब केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं रही, बल्कि जनसंचार और हिंदी के विकास का भी सशक्त आधार बन गई हैं। कई बड़े-बड़े देश अपना व्यापार भारत जैसे विशाल देश में स्थापित कर रहे हैं और अपनी कंपनियों में कर्मचारियों को हिंदी सीखने के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं। आज हिंदी, यू.के. में बोलने वालों की संख्या के आधार पर दूसरी सबसे बड़ी भाषा बन चुकी है, क्योंकि पूरे एशिया, जिसमें श्रीलंका भी आता है, में हिंदी को

संपर्क भाषा के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में बॉलीवुड की फ़िल्में हॉलीवुड की फ़िल्मों से अधिक मशहूर हो रही हैं और करीब-करीब दुनिया के आधे हिस्से में पहुँच चुकी हैं, जैसे मिडिल ईस्ट, अफ़्रीका, रूस और सुदूर पूर्वी देशों में। आज बांग्लादेश, ब्राज़ील, ज़र्मनी, बोत्सवाना, नेपाल, फ़िलिपीन्स, न्यूज़ीलैंड, सिंगापुर, साउथ अफ़्रीका, यूगांड़ा, यूनाइटेड किंगडम, यू.एस.ए., यमन आदि अनेक देशों के लोग हिंदी बोल और समझ रहे हैं, तो इसका मुख्य कारण निश्चित ही हिंदी फ़िल्में हैं।

हम सब जानते हैं कि मनुष्य ने भाषा का जन्म संप्रेषण के लिए किया और उसे स्थायित्व प्रदान करने के लिए साहित्य का रूप दिया। साहित्य कई विधाओं में विकसित हुआ, लेकिन सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से नाटक सबसे प्रभावशाली माना गया, जो आज सिनेमा के रूप में सामने आया।

कलकत्ता विश्वविद्यालय में काव्य की सम्प्रेषणीयता' विषय पर अज्ञेय जी के व्याख्यान के बाद छात्रों ने उनसे पूछा - 'क्या कारण है कि रामचरित मानस सुदूर गाँवों में गाया जाता है, जबकि आप सरीखे महान लेखकों का लेखन बुद्धिजीवियों और छात्रों तक ही सीमित है?

इसका जवाब 'अज्ञेय' जी ने यह दिया था - 'मानस एक लीला-काव्य है। उसमें सिनेमाई लोकरंजकता भी है। भविष्य में जब साहित्य और सिनेमा परस्पर मिल जाएँगे, तब साहित्य आम आदमी तक पहुँच जाएगा।

याद कीजिए 'रामायण', 'महाभारत', की फ़िल्मों ने अंग्रेज़ी माध्यम से पढ़े-लिखे बच्चों को हमारी विरासत से जोड़ा और उन्हें 'रामा' को 'राम' और 'दशरथा' को 'दशरथ' कहना सिखाया। अब उपनिषदों पर भी हिंदी बालचित्र बन रहे हैं और निर्माताओं का दावा है कि ये चित्र बच्चों के साथ-साथ अनपढ़ और निरक्षर जनता को भी लुभाएँगे।

एक विशेष तथ्य यह भी है कि गैर-हिंदी प्रदेशों और विदेशों में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में सिनेमा की अद्वितीय भूमिका रही है। इसके कुछ तथ्य इस प्रकार हैं -

'मैंने प्यार किया', 'हम आपके हैं कौन', 'दिलवाले दुल्हनिया ले जाएँगे' आदि फ़िल्मों ने तो ऐसा तहलका मचाया कि दक्षिण भारतीय सिनेमा को हॉल मिलने बन्द हो गए। यों भी दक्षिण भारत में अभिनेताओं के प्रति अद्‌भुत श्रद्धा-भाव है। अभिनेता-अभिनेत्रियों के तीन मंज़िले 'कटआउट' तो वहाँ साधारण सी बात है। इन घटनाओं से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी सिनेमा ने लोगों के प्रति प्रेम बढ़ाया और विरोध कम करने में मदद की।

दक्षिण ही नहीं, सुदूर उत्तर पूर्वी इलाके 'मणिपुर', 'नागालैंड, 'अरूणाचल प्रदेश', 'मिजोरम' आदि में भी यदि आप किसी से हिंदी में बात करना चाहें, तो यह असंभव है। पर हिंदी सिनेमा और गानों में ऐसा मनमोहक अनुभव होता है कि पता ही नहीं चलता उनकी सुबह कब शाम में तब्दील हो जाती है। आज आप किसी भी भाषा की पत्रिका देखें, उसमें आधे से ज्यादा पन्ने सिनेमा से जुड़े मिलेंगे।'

अब प्रस्तुत हैं विदेश के कुछ अनुभव -

कैनेडा के 'वैनक्यूवर' शहर के महाविद्यालय के छात्रों (पुराने प्रवासियों की नयी पीढ़ी) ने उन्मुक्त कंठ से स्वीकार किया कि उन्होंने अपने माता-पिता की हिंदी सीखने की इच्छा को ठुकरा दिया था, लेकिन हिंदी सिनेमा ने उन्हें इतना लुभाया कि उन्होंने हिंदी सीखने की ठान ली।

'डरबन' (दक्षिणी अफ़्रीका) और 'जोहान्सबर्ग' में हिंदी संबोधनों के अलावा भारतीय मूल का कोई भी युवा हिंदी नहीं समझता, लेकिन हिंदी सिनेमा से उनका प्यार तब दिखता है, जब भारतीय कलाकारों के शो के टिकट बड़ी जल्दी बिक जाते हैं और लोग दूसरे शहरों से बड़ी संख्या में 'डबरन' आते हैं। अस्सी हज़ार आदमियों से खचाखच भरा वहाँ का स्टेडियम 'भारत हमारी माँ है', 'भारत देश स्वर्ग से महान् है' के नारों से गूँज रहा था और उसी के बीच डरबन विश्वविद्यालय के हिंदी विभागध्यक्ष डॉ. सीताराम रामभजन कहते है कि यहाँ युवाओं में हिंदी सीखने के प्रति खास ललक हिंदी सिनेमा की वजह से ही है।

'मॉरीशस' में तो खैर हिंदी और भोजपुरी बोली जाती है, पर हिंदी सिनेमा का जादू 'ट्रिनिदाद' तक में देखने को मिलता है। वहाँ के लोग नोबेल पुरस्कार से पुरस्कृत अपने बाशिंदे वी. एस. नायपॉल को चाहे न जानें, पर शाहरूख खान और ऐश्वर्या राय पर मुग्ध हैं। यदि ब्रायन लारा (विश्व का सर्वश्रेष्ठ क्रिकेट खिलाड़ी) और अमिताभ बच्चन एक साथ खड़े हों, तो भीड़

बच्चन जी की ओर ही जाएगी।

अफ़गानी लोग 'बच्चन, शाहरूख खान आदि पर मुग्ध हैं, पर 'कन्धार' को वे नहीं जानते। 'मैडम टूसो (लन्दन) का प्रख्यात 'वैक्स म्यूज़ियम' विश्व के यशस्वी व्यक्तियों (सेलिब्रिटी) की कोटि में हिंदी फ़िल्मों के अभिनेताओं और अभिनेत्रियों की मोम से बनी प्रतिमाओं की संख्या बढ़ा रहा है।

हिंदी सिनेमा ने हमें हिंदी भाषा एवं संस्कृति के विकास का ऐतिहासिक दस्तावेज़ उपलब्ध कराया है। तीन दशक पहले 'विडम्बना' जैसे शब्दों का प्रयोग सिनेमा (अदालत) में होता था, जबकि आज 'मुन्नाभाई' की मिलावटी हिंदी का बोलबाला है। पाँच दशक पहले की 'अछूत कन्या' में माँ बेटी से कहती है - अशोक के ब्याह को महीना भर रहा है और मैं ज्वर के कारण ब्याह में हाथ नहीं बँटा पा रही हूँ।....तुम उसकी माँ से मेरी तरफ़ से माफ़ी माँग लेना।' इस उक्ति से हमें उस समय के पारस्परिक लगाव, सामाजिकता और कर्तव्य बोध वाली संस्कृति का परिचय मिलता है।

अंग्रेज़ी के इस आतंकवादी मारक शस्त्र का सामना करने की शक्ति यदि किसी में है, तो वह हिंदी सिनेमा में है, क्योंकि यही लोकमानस ही भाषा की जड़ों को हरा करने वाला रसायन है। चूँकि बोलियाँ और लोकभाषाएँ ज़मीन से जुड़ी होती हैं, अपनी ताकत वहीं से ग्रहण करती हैं। आज जनभाषा हिंदी को 'सिनेमा' गंगा की तरह अपने में समेट कर इसे सरल, प्रवाही और समझने योग्य बना रहा है। ज्ञान को कर्म में क्रियान्वित करने के लिए एक वाहन की आवश्यकता होती है। दिलचस्प बात यह है कि हिंदी के ज्ञान को व्यवहार में लाने का सर्वश्रेष्ठ वाहन 'सिनेमा' है।

dr.vinaysharma123@gmail.com

हम कौन थे, क्या हो गए और क्या होंगे अभी

डॉ. मीनू नन्दा
पंजाब, भारत

परिवर्तन संसार का शाश्वत नियम है। काल-चक्र के परिवर्तन से अनेक वस्तुएँ संसार-रूपी रंगमंच पर अवतरित होती हैं और अनेक विलुप्त हो जाती हैं। जो उपयोगी है, संसार उसे ग्रहण करता है और जो अनुपयोगी है, संसार उसका त्याग करता है। यही नियम भाषा पर भी लागू होता रहा है। वर्तमान भाषायी परिदृश्य इस तथ्य को प्रमाणित करता है।

आज अनेक नए शब्द भाषा में स्थान ग्रहण कर रहे हैं, केवल बोलचाल में ही नहीं, बल्कि लेखन का भी अभिन्न हिस्सा बनते जा रहे हैं। पिज़्ज़ा हट या बर्गर पिज़्ज़ा जैसे शब्द अब सामान्य व्यवहार में आ चुके हैं।

संचार माध्यमों के अत्यधिक विकास से देशकाल की दूरियाँ तो अवश्य घटी हैं, किंतु 'विश्व-ग्राम' में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव अपेक्षित रूप में विकसित नहीं हो पाया है। मिश्रित होती संस्कृतियों के इस दौर में भाषाएँ भी मिश्रित होती दिखाई दे रही हैं। मिक्स-रिमिक्स का ऐसा युग आ गया है कि इंस्टेंट नूडल्स और इंस्टेंट रिश्तों की भाँति भाषा और लिपि का इंस्टेंट होना ही जैसे वर्तमान युग का मुहावरा बन गया है।

'यूज़ एंड थ्रो' तथा 'क्रश एंड ग्रो' के इस दौर में सफलता प्राप्त करने के लिए कोई भी किसी भी हद तक जाने को तैयार है। भाषा को भी बाज़ार की माँग से जोड़कर बाज़ारवाद के दबाव में अजीबोगरीब रूपों में मिक्सिंग-रिमिक्सिंग के साथ उपभोक्ता के सम्मुख परोसा जा रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति में विज्ञापनबाज़ी का लक्ष्य भाषा को बचाना नहीं, बल्कि माल बेचना है। "ये दिल माँगे मोर" जैसे नारों के माध्यम से उपभोक्ता को रिझाना ही मुख्य उद्देश्य बन गया है।

वस्तुओं की माँग और आपूर्ति की भाँति भाषा को भी केवल इसी एक सिद्धांत पर चलाया जा रहा है और विडंबना यह है कि इसे भाषा का विकास कहा जा रहा है। वास्तव में, ऐसे हालातों में भाषा पर कुठाराघात हो रहा है और हम जानकर भी अनजान बने हुए हैं। भाषा की इस दुर्दशा को स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि हम भाषा खो रहे हैं। सबसे पहले इसका नुकसान होता है विराम चिह्नों का, फिर सहायक क्रियाओं का और कभी-कभी तो वर्तनी (Spelling)

तक सुरक्षित नहीं रहती। व्याकरण अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करता है।

सूचना-क्रांति के परिणामस्वरूप हर पल की दौड़ और प्रतिस्पर्धा में लेखन में पूर्ण विराम का प्रयोग लगभग समाप्ति की ओर है। पूर्ण विराम के नए और अनुपयुक्त प्रतिस्थापन धड़ल्ले से प्रयुक्त किए जा रहे हैं। हाल ही में न्यूयॉर्क स्टेट यूनिवर्सिटी में किए गए एक अध्ययन के अनुसार पूर्ण विराम का प्रयोग अपने दिल की भावनाओं को प्रकट करने का गलत तरीका है। ("Using a full stop is a bad way to convey heartfelt emotions.)" इस अध्ययन की रिपोर्टिंग करते हुए द वाशिंगटन पोस्ट ने पूर्ण विराम के प्रयोग को 'मनोवैज्ञानिक संघर्ष' ("Psychological warfare") तक कह दिया।

अपने अस्तित्व को बचाने के लिए केवल 'पूर्ण विराम' ही नहीं छटपटा रहा, बल्कि 'लिपि' पर भी संकट के बादल मंडरा रहे हैं। हिंदी को देवनागरी के स्थान पर रोमन लिपि में लिखने के सुझाव ज़ोर पकड़ रहे हैं। लघु संदेशों (SMS) और इंस्टेंट मैसेजिंग ऐप्स में भाषायी असंगतियों के पीछे एक कारण यह भी है कि आजकल जब आप किसी को संदेश लिख रहे होते हैं, तब ऐप आपको यह दिखा देता है कि सामने वाला व्यक्ति अभी 'टाइप कर रहा है' - इससे आपको जल्दी शब्द समाप्त करके भेजने का अतिरिक्त दबाव महसूस होता है। दूसरा कारण यह है कि हम हमेशा एक साथ कई काम कर रहे होते हैं (Multitasking), इसलिए संदेश लिखने का तरीका और भाषा इसी दबाव के अनुसार बदल रही है।

इसका दुष्परिणाम यह हो रहा है कि भाषा केवल सूचना-संप्रेषण का माध्यम बनती जा रही है। संस्कृति को प्रतिबिंबित करने वाले शब्द और उनके गहन अर्थ लुप्तप्राय होते जा रहे हैं। वर्तमान भाषायी परिदृश्य में 'नई वाली हिंदी' सुर्खियों में है। 'बनारस टॉकीज़', 'दिल्ली दरबार', 'मुसाफ़िर Café', 'मसाला चाय' जैसी कृतियाँ 'नई वाली हिंदी' के लोकप्रिय उदाहरण बन चुकी हैं।

अंग्रेज़ी का वर्चस्व हिंदी और अन्य मातृभाषाओं पर संकट को और गहरा कर रहा है। अंग्रेज़ी को उच्चता, कुलीनता और सामाजिक प्रतिष्ठा से जोड़कर देखा जा रहा है। वास्तविक स्थिति यह है कि -"इस भाषा के कड़े क्रम में, क्षेत्रीय भाषा या मातृभाषा सबसे नीचे आती है और इसे शिक्षा के प्राथमिक माध्यम के रूप में कमतर माना जाता है। वहीं अंग्रेज़ी फिर से शीर्ष स्थान पर है।"

विडंबना यह है कि हम 21 फ़रवरी को अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस और 14 सितंबर को हिंदी दिवस मनाते हैं, परंतु हमारे मन-मस्तिष्क में यह चेतावनी गूँजती ही नहीं कि यूनेस्को की संकटग्रस्त भाषाओं की सूची में भारत सबसे आगे है।"(India tops the UNESCO list of languages in danger.")

भाषाएँ कोई स्मारक या भवन नहीं हैं, जिन्हें राष्ट्रीय या विश्व धरोहर घोषित कर सुरक्षित कर लिया जाए। वे जीवंत अस्मिताएँ हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति के इस दौर में उनसे जीवंत लगाव आवश्यक है। सरकारी घोषणाएँ पर्याप्त नहीं हैं। किसी भाषा के विकास-विस्तार के लिए सरकार कितना भी धन खर्च कर दे, जब तक उसके प्रयोक्ता उसमें निहित ज्ञान, अनुभव, विचार और अभिव्यक्ति का निरंतर प्रयोग करते हुए नवोन्मेष नहीं करेंगे, तब तक वह भाषा अग्रणी नहीं बन सकती।

भाषायी संकट का एक बड़ा कारण गलत, भ्रष्ट और दुष्कर अनुवाद भी है। संघ लोक सेवा आयोग (UPSC) की परीक्षाओं में पूछे गए प्रश्नों के विवादास्पद हिंदी अनुवाद इसका उदाहरण हैं। इस संदर्भ में वेद प्रताप वैदिक जी का कथन उल्लेखनीय है -"वे जो सवाल हिंदी में पूछे जाते हैं, हिंदी न होकर अंग्रेज़ी का भ्रष्ट अनुवाद होते हैं। 'स्टील प्लांट' का अनुवाद 'लोहे का पौधा' और 'वॉचडॉग' का 'कुकुर दृष्टि' कितना हास्यास्पद है।"

संचार माध्यमों के विस्तार से भाषा के नए तेवर और नए अंदाज़ सामने आए हैं। चौबीसों घंटे और सातों दिन चलने वाले मीडिया की प्रतिस्पर्धा में आकर्षक शीर्षक गढ़े जा रहे हैं –"मोदी ऑक्सीजन से चल रही भाजपा की साँसें", "रुपया आई.सी.यू. में", "संसद से स्टूडियो तक इलेक्शन एक्सप्रेस"आदि। इसी प्रकार विज्ञापनों में समांतर संरचना का प्रयोग भाषा को प्रभावशाली बनाता है -"Connection बचत का, Connection ज़िंदगी का" संक्षेपाक्षरी भाषा का प्रयोग समय की माँग है, किंतु अति प्रयोग भाषा की सहजता को

प्रभावित कर सकता है।

आज भाषा का प्रयोग करने वालों की संख्या बढ़ रही है, किंतु भाषा से प्रेम करने वालों की संख्या घट रही है। डिजिटल युग में नई पीढ़ी को भाषा से जोड़ना हमारी सांस्कृतिक ज़िम्मेदारी है। यदि हम अपनी भाषाओं को जीवित रखना चाहते हैं, तो उन्हें अपने दैनिक जीवन, चिंतन और सृजन का स्वाभाविक अंग बनाना होगा। यही हमारी भाषायी पहचान और सांस्कृतिक निरंतरता का भविष्य है।

dr.meenunanda@gmail.com

उपन्यासकार देवदत्त पाटील : जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व

डॉ. सौ. आनंदी सचिन शिंदे
लाईशैडैम, नीदरलैंड

भारत देश में महाराष्ट्र का विशेष स्थान रहा है। भारत की आर्थिक राजधानी मुंबई महाराष्ट्र की राजधानी है। यहाँ मराठी भाषा का साहित्य अत्यंत समृद्ध है। मराठी साहित्य का इतिहास बहुत पुराना है। संत नामदेव, ज्ञानदेव, एकनाथ, तुकाराम, चोखा मेला, मुक्ताई जैसे अनेक संतों ने अपनी वाणी से मराठी साहित्य को समृद्ध किया। संत साहित्य के अतिरिक्त मराठी में लघु कहानी से लेकर उपन्यास तक और कविता से लेकर गीत तक और 'रामायण' जैसे 'महाकाव्य' की रचना हुई है। दलित साहित्य की नींव भी पहले मराठी साहित्य में ही रखी गई। बीसवीं शताब्दी में मराठी में अनेक साहित्यकारों ने अपने साहित्य से पाठकों को अभिभूत किया। उन्हीं में से एक आंचलिक उपन्यासकार देवदत्त पाटील हैं।

मराठी साहित्य में कई आंचलिक साहित्यकार लोकमान्य तथा लोकप्रिय रहे हैं। 'लोकमान्य' शब्द का अर्थ है - "लोगों द्वारा स्वीकृत" या "जनता द्वारा सम्मानित"। 'लोकप्रिय' शब्द का वास्तविक अर्थ है - जो बहुत लोगों द्वारा पसंद किया जाता है या जो लोगों के बीच प्रसिद्ध है।" मराठी साहित्यकारों में 'देवदत्त पाटील' ऐसे ही लोकमान्य तथा लोकप्रिय आंचलिक उपन्यासकार रहे हैं। उन्हें लोग मानते हैं और पंसद भी करते हैं।

देवदत्त पाटील का जन्म 1 अगस्त 1947 को महाराष्ट्र के कोल्हापुर ज़िले के 'शिरोल' तहसील में कृष्णा नदी के तट पर स्थित 'उमलवाड' गाँव में एक साधारण किसान के परिवार में हुआ था। उनका वास्तविक नाम 'देवगोंडा' आण्णा पाटील था। लेकिन उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में 'देवदत्त' नाम से प्रवेश किया। इसलिए वे 'उपन्यासकार देवदत्त पाटील' नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके पिता का नाम आण्णा बापू पाटील था। वे पेशे से प्राथमिक विद्यालय के अध्यापक थे, जो अपने ही गाँव 'उमलवाड' में खेती के साथ-साथ नौकरी भी किया करते थे। उनकी माता का नाम गंगाबाई था, जिन्हें लोग 'आक्काबाई' नाम से भी बुलाते थे। वह घर-गृहस्थी सँभालती थी और अपने बच्चों के भविष्य के प्रति बहुत ही सतर्क थी। उनके परिवार की मातृभाषा कन्नड थी। वे मराठी भाषा भी अच्छी तरह से बोलते थे। देवदत्त जी का बचपन आर्थिक समस्याओं से गुज़रा। पैसे कमाने के लिए उन्हें बचपन से ही मेहनत करनी पड़ी। उनका कथन है - "मैं कृष्णा नदी के तट पर स्थित कोल्हापुर ज़िले के 'उमलवाड' ग्राम में, भैंसों को चराने वाला, फूटपाथ पर बैठकर अमरूद बेचनेवाला, ईंट की भट्टी पर ईंट, मिट्टी और बालू ढोने का काम करनेवाला गँवार था।" उन्हें दोस्तों के साथ कुश्ती लड़ने का शौक था। इसलिए वे अपना ज्यादा समय गाँव के अखाड़े में बिताते थे। लेकिन 'कुश्ती' को उन्होंने अपना साध्य नहीं बनाया। कुश्ती तथा व्यायाम से उन्होंने शरीरिक-बल ज़रूर प्राप्त किया। वे शरीर से पहलवान और मन से कोमल थे। उनका स्वभाव शांत और संवेदनशील था। उनका बचपन बहुत कष्टमय रहा, लेकिन उन्होंने उसके बारे में किसी से शिकायत नहीं की। छोटी-छोटी बातों में भी वे खुशियाँ तलाशते रहे।

उनकी प्राथमिक शिक्षा 'उमलवाड' गाँव के 'कुमार विद्या मंदिर उमलवाड' में और माध्यमिक शिक्षा गाँव के पास कस्बानुमा शहर 'जयसिंगपुर हाईस्कूल, जयसिंगपुर' में हुई।

माध्यमिक शिक्षा के बाद उन्होंने 'सिटी हाईस्कूल, सांगली' से अपनी प्री-डिग्री की शिक्षा दूरस्थ शिक्षा द्वारा पूरी की। अपनी महाविद्यालयीन शिक्षा पूरी करने के लिए 'सांगली महाविद्यालय, सांगली' (आज का श्रीमती कस्तुरबाबाई वालचंद महाविद्यालय सांगली) में वे सन् 1967 में दाखिल हुए। देवदत्त अपने परिवार में बुद्धिमान और होशियार माने जाते थे। विज्ञान शाखा में उनकी दिलचस्पी न होने के कारण उन्होंने 'कला' विभाग में प्रवेश लिया और 'अंग्रेज़ी' में बी.ए. की शिक्षा पूरी की। सांगली में पोस्ट ग्रेज्युएट शिक्षा की सुविधा उपलब्ध न होने के कारण उन्होंने सतारा के 'संतगाडगे महाराज महाविद्यालय' में प्रवेश लिया और वहाँ के प्रो. बै. पी. जी. पाटील के मार्गदर्शन में अपनी एम्.ए. की पढ़ाई पूरी की। सन् 1972 में 'सांगली' ज़िले के 'ऊरूण-इस्लामपुर' शहर के 'कर्मवीर भाऊराव पाटील महाविद्यालय' में वे 'अधिव्याख्याता' के पद पर नियुक्त हुए। इसी भूमि को अपनी कर्मभूमि बनाकर सन् 1972 से सन् 2002 तक तकरीबन 32 साल तक वे सेवा करते रहे। नौकरी के दौरान ही वे मराठी साहित्य के लोकप्रिय उपन्यासकार बन गए। साहित्य-साधना के लिए उन्होंने अपनी नौकरी के छः साल बाकी होने के बावजूद 1/01/2002 में स्वेच्छा से अवकाश ग्रहण किया।

देवदत्त पाटीलजी ने कवठेपिरान के रामचंद्र देसाई की बेटी 'राजाक्का' से 7 जुलाई सन् 1972 में विवाह किया। शादी के बाद उन्होंने अपनी पत्नी का नाम 'राजमति' रखा। उन्हें वे प्यार से 'राजी' नाम से बुलाते थे। गृहस्थ जीवन में देवदत्त की पत्नी 'राजमति' का स्थान महत्त्वपूर्ण है। वह अल्पशिक्षित थी और अपने पति में ही सभी रिश्ते-नाते देखती थी। देवदत्त के प्रति हमेशा आदर की भावना रखती थी। उनकी हर बात को मानना वह अपना कर्तव्य समझती थी। पत्नी 'राजमति' की त्याग-वृत्ति के संदर्भ में डॉ. चंद्रकुमार नलगे लिखते हैं - "राजमति भाभी जी ने गृहस्थी की ज़िम्मेदारी बड़े मन से अपने ऊपर ले ली।" देवदत्त और राजमति ने तीन संतानों को जन्म दिया। उनकी बड़ी बेटी का नाम 'कादंबरी' है। बेटे का नाम 'शांतनू' और छोटी बेटी का नाम 'श्वेतांबरी' है।

देवदत्त का पहला उपन्यास 'बानू' कम समय में घर-घर तक पहुँच गया। इस उपन्यास के आधार पर 'ज़ख्मी शेरनी' फ़िल्म का निर्माण हुआ। साहित्य के क्षेत्र में उनका पहला कदम इतना प्रभावपूर्ण रहा कि आगे जाकर तकरीबन पच्चीस साल तक वे इस क्षेत्र के प्रमुख हस्ताक्षर रहे।"

देवदत्त जी ने मराठी भाषा में तकरीबन चवालीस उपन्यास लिखे, जिनमें 'बानू', 'संघर्ष', 'फेरा', 'सिध्दनाग', 'व्याध', 'वारस', 'सौदा', 'अधर्म', 'मैना', 'बळजोरी', 'गुलाब', 'शर्थ', 'उमाळा-जिव्हाळा', 'निर्वंश', 'अकल्पित', 'लेडी सरपंच', 'पुनर्जन्म' आदि उपन्यास पूर्णतः आंचलिक हैं और 'गर्भागार', 'वंचना', 'कलंक', 'नातं जन्मजन्मांतरीच', 'नागचाफा', 'परिवर्तन', 'रानभूल', 'पिंडावारचे कावळे', 'बिलंदर' और 'इभ्रत', ये दस उपन्यास अंशतः आँचलिक हैं। उन्होंने मानसिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि विषयों को लेकर उपन्यास लिखे हैं। उनके उपन्यासों के विषय भले ही अलग-अलग हों, किंतु कथावस्तु से अंचल का यथार्थ स्वर गहराई के साथ उभरकर परिलक्षित होता है।

देवदत्त पाटील के उपन्यासों में ग्रामांचल के सामान्य मज़दूर से लेकर किसान तक, ग्राम-सदस्य से लेकर सरपंच तक और कस्बे के नगराध्यक्ष, ज़मींदार, मुखिया आदि पात्र चित्रित हैं। पश्चिम महाराष्ट्र के सांगली, सतारा और कोल्हापुर ज़िले में स्थित वारणा, पंचगंगा और कृष्णा नदी के तट पर छोटी-मोटी पहाड़ियों से घिरे गाँवों का भी चित्रण है। गाँव की राजनीति, जातीयता, आर्थिक विपन्नता, अकाल-बारिश, अंधश्रध्दा तथा शैक्षिक और प्राकृतिक समस्याएँ यूँ चित्रित हैं कि पाठक को उपन्यास पढ़ते समय महसूस होता है कि वह खुद उस गाँव में उपस्थित है।

उपन्यासों की भाषा में गाँव के मुहावरे, लोकोक्तियाँ, कहावतें, गालियाँ तथा अंग्रेज़ी और कन्नड भाषा के शब्दों का प्रयोग सहजता से किया गया है। वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, रहस्यात्मक, हास्य-व्यंग्यात्मक आदि शैलियों में ग्रामांचल का चित्र प्रस्तुत होता है।

देवदत्त पाटील के कुछ अप्रकाशित उपन्यास भी हैं, जैसे - 'नरवीर', 'दैव', 'पाषणपालवी'। इस संदर्भ में उनकी पत्नी का कथन है - "वे 'नरवीर', 'दैव', 'पाषाणपालवी' नाम के तीन उपन्यास लिख रहे थे। लेकिन उनकी अकस्मात मृत्यु हो जाने के कारण यह काम अधूरा रहा। उन्होंने प्रस्तुत उपन्यासों

का ढाँचा अपनी 'डायरी' में तैयार किया था। उनकी मृत्यु के पश्चात् कुछ छात्रों और परिचितों ने उनके साहित्य पर अनुसंधान करने की इच्छा से उनकी सारी सामग्रियाँ मेरे पास से ले ली हैं और जो अभी तक नहीं लौटाई हैं। उनका अता-पता मुझे ठीक तरह से पता न होने के कारण मैं ढूँढ भी नहीं सकती।"

साहित्य के साथ-साथ देवदत्त पाटील ने सामाजिक क्षेत्र में भी अपना योगदान दिया है। नवोदित लेखकों को प्रेरित करने के लिए उन्होंने सन् 1982 में इस्लामपुर में 'जागर कला साहित्य मंडल' की स्थापना की, जिसके वे संस्थापक अध्यक्ष रहे। सन् 1985 में लोकशाहीर लावणी सम्राट 'पठ्ठेबापूराव' की जयंती पहली बार उनके द्वारा ही महाराष्ट्र में मनाई गई। सन् 1985 में वे 'दक्षिण महाराष्ट्र साहित्य सभा' के अध्यक्ष रहे। जनवरी सन् 1985 से इस्लामपुर में 'ओळख' (पहचान) साप्ताहिक पत्रिका का संपादन करते रहे। सन् 1985 में वे 'आचार्य जावडेकर स्मृति व्याखानमाला, इस्लामपुर' के अध्यक्ष रहे।

देवदत्त पाटील की मृत्यु बहुत ही दर्दनाक हुई। मृत्यु के 10 साल पूर्व उन्हें 'मधुमेह' (Diabetes) की बीमारी लग गई थी। साहित्य-क्षेत्र में उन्हें जितना सम्मान मिलना चाहिए था उतना सम्मान नहीं मिला। धूर्त 'समीक्षकों' ने उनके उपन्यास साहित्य को 'रंजनपरक' साहित्य का नाम दे दिया -"सर जी के साहित्य की जितनी कद्र होनी चाहिए थी, उतनी नहीं हो सकी। 'रंजन-परक साहित्य' के रूप में उनके साहित्य को देखा गया। पाठकों ने उनके साहित्य को सराहा, लेकिन समीक्षकों ने उनके साहित्य को हाशिए पर रख दिया। इस बात का शूल दिल में लेकर वे जिंदगी भर जीते रहे। कभी-कभी यह बात उनके होठों पर भी आ जाती थी। शायद इसी शूल के कारण सर जी की शराब की लत बढ़ती गयी। यही दर्द उन्हें खोखला बनाता रहा। सर जिंदगी भर बेफ़िक्र रहे, उन्होंने दवाइयों के प्रति कभी ध्यान नहीं दिया।"

दिनांक 20 फ़रवरी 2002 को देवदत्त पाटील रात का खाना खाने के बाद अपने बंगले के ऊपरवाले कमरे में सोने चले गए। उन्हें रात भर लेखन में व्यस्त रहने की आदत थी। उस दिन भी वे काफ़ी देर तक लिखते रहे। निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता, लेकिन तकरीबन भोर के समय शरीर के दाहिने बाजू पर उन्हें 'लकवा' मार गया। दाहिना अंग निष्क्रिय होने के बावजूद वे घसीटते हुए धीरे-धीरे दरवाज़े तक पहुँच गए। ठीक तरह से बोल भी न सकनेवाले देवदत्त ने अपनी पत्नी को आवाज़ देने की कोशिश की, लेकिन वे नाकामयाब रहे। सुबह जब उनकी पत्नी कपड़े सूखाने के लिए ऊपर गैलरी में आयी तब उन्होंने अपने पति को आवाज़ दी। लेकिन कोई जवाब नहीं मिला। आश्चर्य से उन्होंने दरवाज़े को धक्का दिया, तो पाया कि देवदत्त दरवाज़े के पास पड़े-पड़े सिसक रहे हैं। उनका दाहिना अंग अचेत था। वे बोल भी नहीं पा रहे थे। उनकी आँखों से आँसू निकल रहे थे। तुरंत उनकी पत्नी ने उन्हें परिवार के अन्य सदस्यों की मदद से सांगली के डॉ. विक्रम जाधव के अस्पताल में भर्ती किया। वहाँ के डॉक्टर उनका पंद्रह दिनों तक इलाज करते रहे। लेकिन उनके प्रयासों को सफलता नहीं मिली। देवदत्त को जब पता चला कि उनकी दाहिनी बाजू निष्काम हुई है तब वे शरीर और मन से कमज़ोर हो गए। उनके शरीर के दोनों गुर्दे नाकाम हो गए। परिणामतः वे कोमा में चले गए और 07 मार्च 2002 के सुबह 8.30 बजे उनकी मृत्यु हो गई। एक 'अच्छे', 'सच्चे' तथा प्रतिभाशाली रचनाकार से मराठी साहित्य संसार अनाथ हो गया।

anandi23sachin@gmail.com

ब्रिटेन का बदलता परिदृश्य

मधु कुमारी चौरसिया
इंग्लैंड

ब्रिटेन में हर महाद्वीप, हर देश और हर भाषा के नागरिक रहते हैं। लंदन के मेट्रो में केवल एक शाम बिताने पर दुनिया भर की हज़ार से अधिक भाषाएँ बोलनेवाले लोग मिल सकते हैं। ब्रिटेन का दौरा करने वालों की संख्या किसी अन्य देश के मुकाबले सबसे अधिक है। विशेष रूप से क्रिसमस और नए साल के अवसर पर बड़ी संख्या में लोग यहाँ घूमने आते हैं। लंदन की आतिशबाज़ी विश्वप्रसिद्ध है। हज़ारों की संख्या में खड़े होकर लोग रात के 12 बजे की प्रतीक्षा करते हैं, जिसके बाद लगातार 10 मिनट तक लंदन के ऐतिहासिक स्थल 'लंदन आई' से आतिशबाज़ी की झलक देखने को मिलती है। लंदन की सड़कों पर रात भर चहल-पहल देखी जा सकती है। इसे दुनिया भर के टीवी चैनलों पर प्रसारित भी किया जाता है।

लंदन की सड़कों पर पूरे साल विभिन्न देशों के लोग देखने को मिलते हैं। पर्यटन, व्यवसाय या उच्च शिक्षा के कारण यहाँ आनेवाले लोगों की संख्या बढ़ रही है। न केवल हिंदी फ़िल्मों में, बल्कि अन्य भाषाओं की फ़िल्मों में भी ब्रिटेन को हमेशा अत्यंत अनोखे तरीके से प्रस्तुत किया जाता है। ऐसे में आम जनता के मन में लंदन और इंग्लैंड को लेकर एक अलग उत्साह देखने को मिलता है। इस शहर में जो एक बार आता है, उसके दिल में इस शहर की मीठी-सी यादें हमेशा के लिए रच-बस जाती हैं। भारतीय बड़ी मात्रा में इस देश की ओर पलायन कर रहे हैं। अब यहाँ भी होली, छठ, दुर्गा पूजा, दिवाली आदि त्यौहार बड़े धूमधाम से मनाए जाते हैं। भारतीय व्यंजन इंग्लैंड के मूल निवासियों को भी खूब लुभाते हैं। यहाँ के रेलवे स्टेशन पर और कई सामाजिक स्थलों में हिंदी में कई अक्षर लिखे हुए नज़र आ जाएँगे।

ब्रिटेन हमेशा से सपनों का शहर रहा है। यहाँ आने का सपना हर कोई अपने मन में एक बार अवश्य पिरोता है। यहाँ के खूबसूरत दृश्य लोगों को लुभाते हैं। मौसम की बात की जाए, तो वे अत्यंत आनंददायक होते हैं। विशेष तौर पर वसंत और पतझड़ की छटा मन को मोह लेती है। पतझड़ में लाल, पीले, भूरे और नारंगी पत्ते आँखों को सुकून देते हैं और वसंत में चारों ओर फूलों की रंगीली चादर बिछ जाती है। 9 महीने यहाँ लगातार सर्दी का आलम होता है। सर्दियों में लंबी रातें होती हैं और दिन छोटे होते जाते हैं। गर्मियों में दिन बड़े और रातें छोटी होती हैं। सर्दियों के मौसम में थोड़ी नकारात्मक ऊर्जा का एहसास होता है, क्योंकि लंबे वक्त तक अंधियारा कई बार मन को विचलित कर जाता है। यदि आप कामकाजी नहीं हैं और इस देश में नए हैं, तब आपको इसका आभास अधिक होता है।

जब कोई कामकाजी भारतीय विदेश जाता है, तब वह अपने साथ पूरा परिवार समेटकर लाता है। लेकिन इंग्लैंड के हाई प्रोफ़ाइल माहौल में घुलना एक परिवार के लिए थोड़ा चुनौतीपूर्ण होता है। यहाँ भारत से अधिकतर मध्यवर्गीय परिवार के लोग आते हैं। ऐसे में उनके लिए चुनौतियाँ कम नहीं होतीं। यहाँ का अंग्रेज़ी उच्चारण उनके लिए पहली चुनौती होती है। दूसरी चुनौती यहाँ के समाज के अनुरूप ढलने में आती है। इधर समय पर काम करने का तरीका लोगों को लुभाता है तथा स्थानीय लोग समय के बहुत पक्के होते हैं। भारतीय जहाँ भी जाते हैं, अपने संस्कार और जीवन के मूल्यों को साथ लेकर चलते हैं। कई बार उन्हें कुछ परेशानियों का भी सामना करना पड़ता है। जैसे उनके लिए यहाँ के परिवेश में मित्र बनाना कठिन होता है। लेकिन धीरे-धीरे ब्रितानी भारतीय संस्कारों और परंपराओं को सम्मान देने लगे हैं। बीते कुछ वर्षों में ब्रिटेन के परिवेश में काफ़ी परिवर्तन भी देखने को मिल रहा है। अब यहाँ भी हिंदी गानों की धुन सुनाई देती है। कई रेडियो कार्यक्रम हिंदी में आयोजित किए जा रहे हैं। कुछ हिंदी रेडियो चैनल और टीवी कार्यक्रम भी उपलब्ध हैं।

ब्रिटेन के मूल नागरिकों का भारत के प्रति दृष्टिकोण बदल रहा है। भारत की अर्थव्यवस्था ने पूरी दुनिया की निगाहें अपनी ओर आकर्षित की है। बदलते परिवेश ने भारत को दुनिया के नक्शे पर अग्रिम पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया

है। जब भारतीय मूल के ब्रिटिश प्रधानमंत्री ऋषि सुनक सत्ता में विराजमान हुए, तब भारतीयों को चाहनेवालों और उनसे घृणा करनेवालों की मात्रा भी बढ़ने लगी। जिस देश ने भारत पर सदियों तक राज किया, वहाँ के प्रधानमंत्री का भारतीय होना, कई ब्रितानी नागरिकों के लिए हैरानी का विषय था। लेकिन ऋषि ने अपनी योग्यता का लोहा मनवाया और सत्ता को अत्यंत सहज रूप से सँभाला।

ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था में, भारत से आए मेहनती श्रमिकों और पेशेवरों का योगदान नकारा नहीं जा सकता। यहाँ की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा भारतीय समुदाय के कामकाजी वर्ग का रहा है, जो उच्च आमदनी वाले पद सम्भालते हैं और यहाँ की टैक्स प्रणाली में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इग्लैंड में हुए ब्रैजिट (ब्रिटेन और यूरोप अलगाव) के बाद कामकाज के सिलसिले में यूके में भारी अभाव महसूस किया गया, जिसके बाद भारत ही नहीं पूरी दुनिया से लोगों का पलायन हुआ। होंगकोंग में हुए राजनैतिक उथल-पुथल के बाद होंगकोंग से भी बड़ी संख्या में लोगों ने ब्रिटेन का रुख किया। रूस-यूक्रेन युद्ध के दौरान भी यूक्रेन निवासियों का इस देश में बड़ी संख्या में प्रवेश दर्ज किया गया।

2021 की जनगणना के अनुसार ब्रिटेन में भारतीय मूल के लोगों की संख्या 1,864,318 दर्ज की गई है। 19वीं सदी के दौरान ईस्ट इंडिया कंपनी हज़ारों की संख्या में भारतीय लस्करों, श्रमिकों और विद्वानों को कामकाज के सिलसिले में ब्रिटेन ले आई। उसके बाद से यह संख्या लगातार बढ़ती रही। ब्रिटेन में 6 में से 1 व्यक्ति विदेशी मूल का है, जो कि किसी भी देश की आबादी के लिए एक गंभीर विषय है। हालाँकि भारतीय मेहनती होते हैं और वे जहाँ जाते हैं अपनी मेहनत का लोहा मनवाते हैं। यूनाइटेड किंगडम की अर्थव्यवस्था में ही नहीं, बल्कि यहाँ के साहित्य, कला, व्यवसाय, व्यापार आदि क्षेत्रों में भारतीयों की महत्त्वपूर्ण भूमिका दृष्टिगोचर है।

यूनाइटेड किंगडम में भारतीय व्यंजन अत्यधिक लोकप्रिय है। पूरे ब्रिटेन में लगभग 9 हज़ार से अधिक रेस्टोरेंट हैं। दो मिलियन से भी ज्यादा ब्रितानी नागरिक हर सप्ताह यूके में स्थित भारतीय रेस्तराँ में खाना खाने जाते हैं। इसके अलावा 3 मिलियन से अधिक लोग सप्ताह के दौरान घर पर कम-से-कम एक बार भारतीय व्यंजन बनाना पसंद करते हैं। हिन्दुस्तानी कॉफ़ी हाउस इंग्लैंड में भारतीय मूल का पहला रेस्टोरेंट था जो 1810 में खुला था? वहीं करी नामक रेस्टोरेंट ने 1940 और 1950 के दशक में लोकप्रियता प्राप्त की थी।

ऋषि सुनक से पूरी दुनिया परिचित है। दिवाली के अवसर पर उन्होंने 10 डउन स्ट्रीट स्थित, अपने निवास पर दीप जलाकर पूरे परिवार के साथ दिवाली मनाई, जिसे ब्रितानियों ने खूब सराहा। असल में, डेविड ऑक्टरलोनी डाइस सोम्ब्रे संसद में सीट जीतनेवाले भारतीय मूल के पहले ब्रिटिश राजनेता थे? उन्हें 1841 में सुदबरी निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने के लिए चुना गया था। लेकिन चुनाव में रिश्वतखोरी के आरोपों की वजह से 1842 में उन्हें पद से हटना पड़ा था। दादाभाई नौरोजी ब्रिटिश संसद में सीट जीतनेवाले दूसरे ब्रिटिश भारतीय राजनीतिज्ञ थे। उन्हें 1892 में फ़िन्सबरी के लिए एक लिबरल सांसद के रूप में चुना गया था। ब्रिटिश संसद में अब भारतीय मूल के कई सांसद मौजूद हैं। इंग्लैंड के कई शहरों में पुरुष ही नहीं भारतीय मूल की महिलाएँ भी काउन्सलर की अहम भूमिका निभा रही हैं। सोफ़िया दलीप सिंह ब्रिटेन में भारतीय मूल की पहली मताधिकर्ता थीं। इससे पहले महिलाओं को मतदान का अधिकार नहीं था।

इंग्लैंड में भारतीयों को भेदभाव का भी सामना करना पड़ता है। कार्यस्थल पर और सार्वजनिक स्थानों में उनके साथ भेदभाव की भी खबरें आती हैं। 1960 के दशक में इसकी शुरुआत हुई और 1970-1980 के दशक में यह चरम पर थीं। यूके में रहनेवाले और अन्य नस्लीय अल्पसंख्यक समूह नस्लवादी हिंसा के शिकार हुए थे। वे अक्सर शारीरिक हिंसा का भी शिकार होते थे। हालाँकि अब यहाँ का समाज दुनिया के कोने-कोने से आए नागरिकों का सम्मान करता है और उन्हें भी आगे बढ़ने का मौका दे रहा है।

यूके सरकार के आधिकारिक आँकड़ों के अनुसार, ब्रिटिश भारतीय छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन का औसतम स्तर काफ़ी अच्छा माना जाता है। यहाँ के विश्वविद्यालयों में भारतीय ही नहीं दुनियाभर के मेधावी छात्रों का नामांकन किया जाता है। ऑक्सफ़ॉर्ड यूनिवर्सिटी और केंब्रिज यूनिवर्सिटी को दुनिया के श्रेष्ठ विश्वविद्यालयों की सूची में स्थान प्राप्त है।

भारतीय उच्चायोग लंदन समय-समय पर भारतीय समुदाय के लोगों को एकजुट करने में अहम भूमिका निभा रहा है। कुल मिलाकर देखा जाए, तो इंग्लैंड एक ऐसा देश है, जहाँ रहना या आकर वहाँ का हो जाना अत्यंत स्वाभाविक लगता है। कई परिवार यहाँ सदियों से रह रहे हैं और उनकी तीसरी या चौथी पीढ़ी अब पल रही है।

दीवाली समारोह के दौरान एक आयोजन में डॉ योजना कात्यायन (काल्पनिक नाम) ने बताया कि उनके दादा यहाँ सदियों पहले आकर बस गए थे। वे व्यवसाय के सिलसिले में आए और स्थायी रूप से यहीं बस गए। अब कात्यायन की चौथी पीढ़ी यहाँ के स्वास्थ्य व्यवस्था (चिकित्सा) में अपनी अहम भूमिका निभा रही है। यहाँ के परिवेश में पल रहे उनके बच्चे भारत की परंपराओं और संस्कारों को आज भी नहीं भूले हैं और भारत को हमेशा अपने दिल के अहम कोने में सहेजे हुए हैं।

ब्रिटेन में भारतीय प्रवासियों का इतिहास पुराना है, जो भारत और इंग्लैंड को गहराई से एक-दूसरे से जोड़ता है। भारतीय प्रवासी मानव संसाधनों और अर्थव्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, जो न केवल यूके में, बल्कि भारत की अर्थव्यवस्था में भी अहम योगदान दे रहे हैं।

यूके में सभी धर्मों के लोग अपनी पसंद के अनुसार अपने धर्म का पालन कर सकते हैं। ब्रिटेन में कई प्रसिद्ध हिन्दू मंदिरों की स्थापना की गई है, जहाँ भक्त आते हैं और प्रार्थना करते हैं। यहाँ गुरुद्वारे, चर्च और मस्जिद भी हैं। सभी धर्म के लोग अपने त्यौहार और धार्मिक आयोजन अपनी आस्था के अनुरूप मनाते हैं। यह बदलाव ब्रिटेन को एक समृद्ध देश की श्रेणी में स्थान प्रदान करता है।

madhu.chrs@gmail.com

मॉरीशस ब्रोडकॉस्टिंग कार्पोरेशन द्वारा हिंदी भाषा का प्रयोग

याचना मिश्र जांगी
मॉरीशस

भारत की सीमाएँ पार करके हिंदी भाषा आज दुनिया के कई देशों तक पहुँच चुकी है। दुनिया भर में 5 सौ चौरासी मिलियन से अधिक लोग हिंदी समझते तथा बोलते हैं, जिनमें से लाखों लोग हिंदी लिखने में सक्षम हैं। मॉरीशस उन्हीं देशों में से एक है। मॉरीशस को 'छोटा भारत' कहा जाता है और सही मायने में यह छोटा भारत ही है, जहाँ हर चौराहे में हिंदी बोलने तथा समझने वाले मिल जाते हैं। शुद्ध हिंदी या टूटी-फूटी हिंदी, गलतियों के साथ ही सही, लेकिन हिंदी बोलने वाले तो मिल ही जाते हैं।

हिंदी को घर-घर पहुँचाने में टेलीविजन और रेडियो अत्यंत महत्त्वपूर्ण साधन हैं। जब इंटरनेट का बोलबाला नहीं था, तब मॉरीशस में एम.बी.सी ने हिंदी को घर-घर पहुँचाने का काम किया और आज भी यह प्रयास जारी है। मॉरीशस ब्रोडकास्टिंग कार्पोरेशन की स्थापना सन् उन्नीस सौ चौसठ में हुई थी, जब मॉरीशस में स्वतंत्रता के लिए संघर्ष जारी था। उन्नीस सौ अड़सठ में मॉरीशस स्वतंत्र हुआ, तो गतिविधियों का सीधा प्रसारण टेलीविजन और रेडियो पर हुआ। उस समय अधिकांश संवाद भोजपुरी और क्रिओल भाषा में ही होते थे। आज भी मॉरीशस में हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई धर्म के लोग हिंदी के शब्द तो समझ ही लेते हैं। हिंदी के गीत उन्हें ज़ुबानी याद हैं।

मॉरीशस ब्रोडकास्टिंग कार्पोरेशन मोका क्षेत्र में स्थित है, जिसका एक स्टेशन रॉड्रिग्स टापू में भी कार्यरत है। एम.बी.सी के चैनलों पर कई भाषाओं में कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है, जिनमें भोजपुरी, हिंदी, उर्दू, तेलुगु, फ्रेंच, अंग्रेज़ी, मराठी, चीनी और क्रिओल भी शामिल है। दुर्भाग्यवश इंटरनेट के प्रयोग के बढ़ जाने के बाद लोग टेलीविजन कम देखने लगे हैं। फिर भी, एम.बी.सी पर प्रसारित समाचार के बहुत दर्शक हैं। पाठशाला में छात्रों से कहा जाता है कि उन्हें समाचार देखकर किसी घटना पर कुछ लिखना है या उसके बारे में चर्चा करनी है।

एम.बी.सी पर प्रसारित हिंदुस्तानी समाचार बुलेटिन

लोगों को ज्यादा पसंद है। हिंदी में होने के कारण वृद्ध भी समाचार सुनना पसंद करते हैं। बड़े-बुज़ुर्ग भोजपुरी चैनल भी देखते हैं, जिसपर शाम 6 बजे समाचार बुलेटिन प्रसारित किया जाता है। हिंदुस्तानी समाचार बुलेटिन हिंदी भाषा के प्रचार में अपनी भूमिका निभाता आया है। विश्वविद्यालयीय और माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी भी एम.बी.सी के हिंदी समाचार बुलेटिन पर शोध-कार्य करते हैं और निबंध लिखते हैं।

एम.बी.सी पर कई हिन्दुस्तानी चैनल उपलब्ध हैं, जैसे दूरदर्शन इंडिया और NDTV। इसके अतिरिक्त हिंदी फ़िल्में और प्रसिद्ध धारावाहिक भी दिखाए जाते हैं। 'अनुपमा', 'डांस इंडिया डांस' आदि इनमें से लोकप्रिय हैं। हाल में ही एम.बी.सी ने अपने पत्रकारों और कैमरा टीम को चार धाम यात्रा पर भारत भेजा है। पिछले पाँच-छः वर्षों से इस धार्मिक यात्रा का दस्तावेज़ीकरण कर इसका प्रसारण किया जा रहा है। अब ज्यादा-से-ज्यादा लोग इस यात्रा में दिलचस्पी दिखाने लगे हैं। अन्य संगठनों द्वारा भी इस प्रकार की यात्रा का आयोजन किया जाने लगा है, जिनका प्रसारण एम.बी.सी पर किया जाता है।

भारत की आज़ादी के अमृत महोत्सव के अवसर पर स्थानीय रेडियो पर 'दर्शन' कार्यक्रम चला, जिसमें हर सप्ताह एक प्रसिद्ध हिंदी विद्वान से संवाद किया जाता था। इसमें कई श्रोताओं ने रुचि भी दिखाई।

एम.बी.सी. ने हिंदी भाषा को महत्त्व देने की अपनी ज़िम्मेदारी से कभी मुँह नहीं मोड़ा। सभी रिपोर्टों का अनुवाद हिंदी और भोजपुरी में करके प्रसारित किया जाता है, ताकि भाषा को बढ़ावा मिले। कोविद 19 महामारी के दौरान जब देश में प्रतिबंध लगाया गया था और स्कूल, कॉलिज तथा विश्वविद्यालय बंद थे, तब एम.बी.सी ने शिक्षा मंत्रालय द्वारा प्रस्तावित हिंदी भाषा की कक्षाओं पर आधारित कार्यक्रम प्रसारित किए थे, जिससे हिंदी की पढ़ाई चलती रहे।

आज 30 या 40 साल की उम्र वालों को याद है कि वे बचपन में वे टेलीविजन पर हिंदी में मोगली देखते थे। हर गुरुवार को एम.बी.सी के पहले चैनल पर हिंदी फ़िल्म दिखाई जाती थी और उस दिन घरों में विशेष पकवान बनते थे। अभी भी लोगों को याद है कि मंगलवार के दिन टेलीविजन पर पुरानी फ़िल्में आती थी। इन फ़िल्मों तथा उनके गीतों के माध्यम से लोग अपने हिंदी-ज्ञान को सुदृढ़ करते थे। हास्यपूर्ण विज्ञप्तियों के माध्यम से भी वे रोचक शब्द ग्रहण करते हैं।

मॉरीशस में गर्मी के मौसम में तूफ़ानों का आना-जाना लगा रहता है। ऐसे में लोग रेडियो पर तूफ़ान चेतावनी सुनते हैं। हिंदी भाषा में तूफ़ान चेतावनी बुलेटिन का पहला वाक्य - "मॉरीशस में दर्जे एक की तूफ़ान चेतावनी जारी है" हर समुदाय के लोगों को कंठस्थ है। गाँवों में लोग मुख्य रूप से 'रेडियो मॉरीशस' सुनते हैं। इसे वे 'ए.एम' कहते हैं। सुबह साढ़े छः बजे के बाद हिंदी में प्रसारित होने वाले शोक समाचार के बहुत श्रोता हैं। जिस प्रकार तूफ़ान चेतावनी की धुन सबको याद है, उसी प्रकार शोक समाचार की धुन और उसके वाक्य भी सबको स्मरण है। रेडियो मॉरीशस पर 'ज्ञान-विज्ञान' और 'आप की चर्चा' जैसे हिंदी कार्यक्रम भी प्रसारित किए जाते हैं जो धर्म, संस्कृति, स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि, न्याय, कानून आदि पर आधारित होते हैं। 'ताल एफ़.एम.' चैनल पर भी ऐसे कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है। 'बेस्ट एफ़.एम' पर भी दिन भर हिंदी गाने चलते हैं। हर एक घंटे के बाद 2 से 3 मिनट का संक्षिप्त समाचार और शोक समाचार प्रसारित किया जाता है। रेडियो प्रस्तुतकर्ताओं की हिंदी भाषा में अंग्रेज़ी शब्दों का मिश्रण अवश्य होता है, ताकि सभी दर्शकों को समझने में आसानी हो, लेकिन सारे गीत हिंदी के ही होते हैं।

भारत से जब भी कलाकार मॉरीशस आते हैं, तब एम.बी.सी. पर उनके साथ विशेष कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं। हाल में, श्रेया घोषाल और हंसराज रघुवंशी के साथ ऐसे ही कार्यक्रम प्रसारित किए गए और अक्टूबर महीने के अंत में अर्जित सिंह की मॉरीशस यात्रा के अंतर्गत भी विशेष कार्यक्रमों का प्रसारण किया गया।

सुबह के समय जब ज्यादातर लोग स्कूल, कॉलिज, विश्वविद्यालय और दफ़्तर के लिए घर से निकलते हैं या फिर शाम को घर लौट रहे होते हैं तब 'रश आवर' (Rush Hour) कार्यक्रम 'बेस्ट एफ़.एम' पर चलता है। इसमें हिंदी के नए गीत और कई खेल प्रतियोगिताएँ होती हैं। विजेताओं को

विशेष उपहार दिए जाते हैं, जो प्रायोजकों द्वारा भेंट की जाती हैं जैसे वीनर्स सुपरमार्केट का वाउचर या किसी रेस्टोरेंट में भोजन करने का अवसर। लोग प्रतिदिन इन प्रतियोगिताओं में भाग लेते हैं। जिन शब्दों के बारे में उन्हें ज्ञात नहीं होता, वे गूगल में जल्दी से देखकर प्रश्नों के उत्तर देते हैं। हाल में एक खेल प्रतियोगिता के दौरान 'जैतून' का दाम पूछा गया, तो कई लोगों ने उत्तर दिया। वास्तव में, 'जैतून' आम बोलचाल में प्रयुक्त होने वाला शब्द नहीं है। सही उत्तर देने वालों ने अवश्य ही इस शब्द का अर्थ ढूँढकर उत्तर दिए होंगे।

मॉरीशस में हिंदी भाषा को बढ़ावा देने में एम.बी.सी का योगदान सराहनीय है। हिंदी के छोटे-बड़े कार्यक्रमों को लोग चाव से देखते हैं। आपात स्थितियों में वे टेलीविजन पर हिंदी समाचार देखते हैं। कुछ कार्यक्रमों पर आलोचनाएँ अवश्य होती हैं, किंतु उसी प्रक्रिया में लोग अनजाने में हिंदी के नए शब्द सीख लेते हैं और भाषा से जुड़ जाते हैं।

yatchnamishra1@gmail.com

थाईलैंड की भगवान बुद्ध से संबंधित किंवदंतियाँ

किंत्तिपोंग बुनकर्ड
बैंकॉक, थाईलैंड

थाईलैंड दक्षिण पूर्व एशिया के मध्य में स्थित है। मुख्य रूप से देखा जाए, तो थाईलैंड के समाज और संस्कृति में बौद्ध-धर्म की प्रधानता मिलती है। इसलिए इसे बौद्ध-धर्म का देश माना जाता है। पुरातात्विक साक्ष्यों से पता चला है कि भारत से आए व्यापारियों और ब्राह्मणों तथा बौद्ध भिक्षुओं द्वारा भारतीय संस्कृति इस भूमि पर पहुँची। परिणामस्वरूप, थाईलैंड के ऐतिहासिक युग की शुरुआत से ही भारतीय सभ्यता का प्रभाव दिखाई देता है। थाईलैंड के पुराने राज्यों के राजाओं ने बौद्ध-धर्म को अपना लिया तथा अपने जनों में भी प्रचार-प्रसार करने को प्रोत्साहित किया। धीरे-धीरे बौद्ध-धर्म व्यापक रूप से जनों की आस्था का केंद्र बन गया। देश की सभी गतिविधियों में बौद्ध-धर्म की भूमिका नज़र आती है। हालाँकि वर्तमान स्थिति में थाईलैंड के संविधान में औपचारिक रूप से यह अंकित नहीं है कि बौद्ध-धर्म राष्ट्रीय धर्म बने, लेकिन व्यावहारिक रूप से बौद्ध-धर्म थाईलैंड का प्रमुख धर्म माना जाता है। संविधान के अनुसार यह विषय निश्चित है कि थाईलैंड के प्रमुख राजा को स्वयं बौद्ध अनुयायी बनना और बौद्ध अनुयायी होते हुए भी सभी धर्मों का उपकार अवश्य करना है।

ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार कहा जाए, तो यह बात स्पष्ट है कि भगवान गौतम बुद्ध थाईलैंड की भूमि पर कभी आए नहीं। भगवान बुद्ध का समय यानी लगभग दो हज़ार छः सौ वर्ष पहले थाईलैंड का प्रागैतिहासिक काल था। भारतीय सभ्यता के संपर्क से ऐतिहासिक युग के छोटे-बड़े राज्यों का विकास हुआ। 7वीं शताब्दी के द्वारवती नामक राज्य से थाईलैंड का ऐतिहासिक युग लगभग शुरू हुआ। इस काल से ही बौद्ध-धर्म का प्रभाव प्रचुर मात्रा में देखने को मिलता है। थाईलैंड के सभी भौगोलिक प्रांतों में द्वारवती युग के ऐतिहासिक प्रमाण जैसे भगवान बुद्ध की मूर्तियाँ, पुराने बौद्ध विहार के खंडहर, शिलालेख आदि देखने को मिलते हैं। इन सभी ऐतिहासिक वस्तुओं का समय 7वीं शताब्दी से अधिक पुराना नहीं है, यानी भगवान बुद्ध के काल से 1200 वर्ष बाद की वस्तुएँ हैं।

यद्यपि प्रामाणिक तथ्यों के अनुसार भगवान बुद्ध थाईलैंड की भूमि पर कभी नहीं आए तथापि देशी लोगों की मान्यताओं से अलग विषय बने। प्रादेशिक किंवदंतियों को देखें तो कुछ भिन्नता मिलेगी। थाईलैंड के कई प्रांतों में भगवान बुद्ध से जुड़ी हुई किंवदंतियाँ मिलती हैं। थाई बौद्ध अनुयायी श्रद्धापूर्वक मानते हैं कि भगवान बुद्ध उन पवित्र स्थानों पर स्वयं पधारे जो आज पूजा के स्थान बन गए हैं। भगवान बुद्ध की कृपा से उन पूजा-स्थलों की अपनी-अपनी कथाएँ बतायी गयी हैं। उदाहरण के लिए इस लेख में चार किंवदंतियाँ प्रस्तुत की गई हैं ।

1. चमत्कारी बुद्धपद

मध्य थाईलैंड के सरपुरी जिले में स्थित पवित्र बुद्धपद एक बौद्ध विहार है, जो सबसे पूजनीय स्थानों में से एक है। भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के वर्षों बाद उनका स्मरण और पूजा करने के लिए बौद्ध अनुयायियों द्वारा कई वस्तुएँ बनवायी गयी हैं। चित्र और मूर्ति के अतिरिक्त बुद्धपद भी बनवाया गया है। बुद्धपद यानी भगवान बुद्ध के पदचिह्न अधिकतर पत्थरों पर अंकित किये गए हैं। लेकिन कुछ ऐसे स्थान भी हैं, जिनके बारे में विश्वास है कि भगवान बुद्ध ने स्वयं पधारकर अपने पदचिह्न लगवाये थे। विद्वानों के अनुसार यह मान्यता लंका द्वीप (श्री लंका) से शुरू हुई। लंका द्वीप के पुराने ग्रंथों में लिखित है कि भगवान बुद्ध के असली पदचिह्न पाँच स्थानों पर विराजे हैं। इन पाँच स्थानों के नाम हैं - सुवर्णमालिक गिरी, सुमनकूट गिरी, योनक नगर, नर्मदा नदी का बलुआ किनारा और सुवर्णपर्वत। सुवर्णपर्वत को छोड़कर पहले चार स्थान भारत और लंका में विद्यमान हैं। सुवर्णपर्वत थाईलैंड के सरपुरी जिले में स्थित है, जिसे सच्चबंधगिरी के नाम से भी जाना जाता है। यह स्थान थाई भाषा में सामान्य रूप से "वटफ्राफुथबाथ" कहलाता है, अर्थात् बुद्धपद बौद्ध विहार।

सरपुरी जिले के वटफ्राफुथबाथ थाईलैंड की राजधानी बैंकॉक से 140 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। शिला पर अंकित इस बुद्धपद की चौड़ाई 21 इंच, लंबाई 5 फ़िट और गहराई 11 इंच है। अयुथ्या राज्य के राजासोंगथम (सन् 1620 - 1628) के शासन काल में संयोग से इस बुद्धपद को खोजा गया। राजा सोंगथम के शासन काल में सुमनकूटगिरी पर विद्यमान बुद्धपद की पूजा करने के लिए भिक्षुगण श्री लंका चले। तत्कालीन श्री लंका नरेश राजा देवानम्पियतिस्स ने भिक्षुगणों को सूचना दी कि अयुथ्या राज्य में भी राजधानी की उत्तर दिशा में सुवर्णपर्वत पर बुद्धपद विराजे हैं। साथ ही, एक औपचारिक राजपत्र लिखवाकर राजा सोंगथम को भिजवाया। राजा सोंगथम ने सूचना प्राप्त करते ही अपने सेवकों को आदेश दिया कि पूरे राज्य में बुद्धपद की खोज आरंभ किया जाए ।

उस समय बुन नामक एक शिकारी था। वह एक सत्यवादी था। उसका दृढ़ संकल्प था कि यदि काले रंग वाले पशु को बाण मारने की इच्छा हो, परंतु लाल रंग वाले पशु सामने निकल आए, तो उसे न मारा जाए। मादा पशु को बाण मारने की इच्छा हो, पर नर पशु सामने निकल आए, तो उसे भी न मारा जाए। एक दिन उसने एक हिरन को मारा। माँस धोने के लिए उसने पानी चाहा। एक ऋषि नहाने के लिए नदी की ओर जा रहे थे। शिकारी ने ऋषि से अनुरोध किया कि नदी के प्रवाह को विपरीत दिशा में पर्वत की ओर लाए। ऋषि ने कहा कि युवावस्था से अब तक दिन-रात कठोर तपस्या करते हुए भी मैंने नदी के प्रवाह को पर्वत की ओर कभी नहीं किया। अगर स्नान करता हूँ, तो सदा नदी के किनारे पर ही करता हूँ। नदी को विपरीत दिशा में करना असंभव है। बुन शिकारी ने इतना ज़ोर दिया कि ऋषि को नदी की दिशा बदलनी पड़ी। नदी का प्रवाह तुरंत पर्वत पर चढ़कर बुन शिकारी तक चला। बुन शिकारी ने पत्थरों से एक कुंड बना दिया, जो माँस धोने के काम आएगा। यह कुंड आज तक विद्यमान है, जिसे "बॉ फ्रानबुन" के नाम से जाना जाता है।

एक दिन बुन शिकारी ने किसी हिरन को मार दिया। हिरन बाण से घायल होकर अपने प्राण बचाने के लिए पर्वत पर भाग गया। अचानक बुन शिकारी ने देखा कि वह घायल हिरन पूरा ठीक हो गया। यह बड़ा चमत्कार था, कोई घायल शीघ्र ही स्वस्थ कैसे हो गया। बुन शिकारी ध्यान से देखते हुए जाँचने लगा। देखते-देखते उसने पाया कि पर्वत की एक चट्टान पर छोटा-सा कुंड है, जिसमें थोड़ा पानी जमा हुआ है। हिरण ने इसी कुंड का पानी पी लिया और वह ठीक हो गया। बुन शिकारी पानी पीने लगा और उसने अपने शरीर पर पोंछ लगा लिया। अचानक उसका त्वचा-रोग पूरा का पूरा गायब हो गया। उसने सभी पानी निकालकर कुंड को सुखा दिया। कुंड के तले पर चक्र की आकृति प्रकट हुई। उसने सोचा कि यह किसी मामूली आदमी की आकृति होगी। इसलिए उसने किसी को नहीं बताया। जब राजा सोंगथम के सेवक गण इस इलाके में आए और लोगों से पूछने लगे, तब बुन शिकारी ने अपनी कहानी सुनाई। वह उन्हें कुंड दिखाने ले गया। तब उसे पता चला कि यही वह पवित्र स्थान है, जहाँ भगवान बुद्ध ने स्वयं अपने पदचिह्न लगाए। शीघ्र ही, राजा

सोंगथम को शुभ समाचार पहुँचाया गया। राजा सोंगथम अत्यंत हर्षित हुए। उन्होंने बुद्धपद के ऊपर विचित्र मण्डप का निर्माण करवाया और बुन शिकारी को इनाम देते हुए उसे एक स्थानीय अधिकारी के रूप में नियुक्त करवाया।

2. पवित्र बुद्धछाया

सरपुरी जिले के क्षेत्र में एक और पवित्र स्थान आता है, जो थाई भाषा में "फ्राफुथछाई" के नाम से सुप्रसिद्ध है। फ्राफुथछाई शब्द वरबुद्धछाया का थाई रूपांतरण है, जिसका अभिप्राय है भगवान बुद्ध की छाया। यह खड़ी चट्टान पर ऊँचा बिम्ब है, जिसकी आकृति खड़े हुए भगवान बुद्ध की छाया जैसी लगती है। आज यह स्थान फ्राफुथछाई बौद्ध विहार के क्षेत्र में स्थित है। ऐसा माना जाता है कि बुद्धपद की तरह इस स्थान की खोज अयुथ्या राज्य के राजा सोंगथम (सन् 1620 - 1628) के शासन काल में की गयी थी।

इस पूजनीय स्थान की कथा किंवदंती के रूप में बतायी गयी है कि किसी समय भगवान बुद्ध यहाँ पर पधारे थे। उस काल में इस स्थान का नाम घाटकगिरी से जाना जाता था। घाटकगिरी पर पधारने का उद्देश्य था कि घाटक नामक शिकारी को धर्मोपदेश देना। यह शिकारी कौन है? उसने पहले क्या- क्या किया है और भगवान बुद्ध को उसे धर्मोपदेश देना क्यों आना पड़ा? इन सब प्रश्नों के कोई उत्तर नहीं हैं। ये बातें आज तक अज्ञात हैं। छीटी-सी यह कथा बस इतनी है कि घाटक शिकारी ने भगवान बुद्ध का धर्मोपदेश सुनकर सारे दुखों से विमुक्त होते हुए अर्हन्तावस्था की प्राप्ति की। घाटक शिकारी दीक्षित होकर भिक्षु बन गया। इस भिक्षु ने भगवान बुद्ध से विनम्रतापूर्वक प्रार्थना की कि वे उन्हें ऐसी कोई वस्तु दें, जिससे भगवान बुद्ध की पूजा की जा सके। कृपालु भगवान बुद्ध ने स्वीकार किया। उन्होंने चमत्कार से अपनी छाया को चट्टान पर प्रतिबिंबित करके निशान बनाया। बुद्धछाया के प्रति थाई के बौद्ध अनुयायियों की बड़ी श्रद्धा है। आज भी दूर-दूर से श्रद्धालु गण पूजा और दर्शन करने के लिए यहाँ आते हैं।

3. फ्राथात फनोम

"फ्राथात फनोम" पूर्वोत्तर थाईलैंड का अत्यधिक पूजनीय स्थान है। यह सुन्दर भवन "नखोन फनोम" ज़िले के "फ्राथात फनोम वर महाविहार" में स्थित है। खोंग नदी के किनारे पर नखोन फनोम ज़िला राजधानी बैंकॉक से लगभग 800 कि.मी. दूर है। "फ्राथात" थाई भाषा में "वर धातु" का रूपांतरण है, जिसका तात्पर्य है - भगवान बुद्ध की अस्थियाँ। और "फनोम" उस प्रांत की प्रादेशिक भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है - पहाड़। पूर्वोत्तर थाईलैंड की संस्कृति के अनुसार भगवान बुद्ध की अस्थियाँ रखने के स्थानों को 'फ्राथात' कहा जाता है। इसलिए इस भूभाग में बहुत सारे बौद्ध विहार पाये जाते हैं, जिनके नाम 'फ्राथात' शब्द से जुड़ा हुआ है, जैसे 'फ्राथात फनोम', 'फ्राथात रेनू', 'फ्राथात खामकैन' आदि।

'फ्राथात फनोम' एक स्तूप के रूप में जाना जाता है, जिसमें भगवान बुद्ध के उरस्थल की अस्थियाँ प्रतिष्ठित की गयी हैं। स्थानीय किंवदंती के अनुसार भगवान बुद्ध के काल में यह स्थान "फूकमफ्रा" या "डॉयकमफ्रा" के नाम से जाना जाता था। यह स्थान खोंग नदी के बायें तट पर स्थित "नखोनसीखोतबून" राज्य में आता है। वर्तमान में नखोनसीखोतबून राज्य 'लाओस' देश के क्षेत्र में स्थित माना जाता है। दोनों थाईलैंड और लाओस देशों में 17वीं शताब्दी के सुविख्यात 'उरंगनिदान' नामक ग्रंथ के अनुसार इस प्रकार की कथा आती है -

महापरिनिर्वाण से थोड़े समय पूर्व भगवान बुद्ध ने एक दिन स्थविर आनंद के साथ आकाश की यात्रा करते हुए फूकमफ्रा पर आगमन किया। यहाँ पर वे एक रात्रि ठहरे। उस समय देवपुत्र विश्वकर्मा उनकी सेवा करने के लिए उपस्थित हुए। भोर होने पर खोंग नदी के पार जाकर वे 'नखोनसीखोतबून' शहर में भिक्षा लेने गए। फिर भोजन करने फूकमफ्रा लौट आए। उस समय "फयाइन" (इंद्रदेव) भगवान बुद्ध के दर्शन करने आए और उसने भगवान से फूकमफ्रा पधारने का उद्देश्य पूछा। भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया कि भद्रकल्प के सभी बुद्धों की परम्परा ऐसी रही है कि महापरिनिर्वाण के पश्चात् बुद्ध की अस्थियों को शिष्यगणों द्वारा यहाँ पर प्रतिष्ठित किया गया। ककुसन्ध बुद्ध, कोनागमन बुद्ध और कस्सप बुद्ध, जिनका महापरिनिर्वाण हुआ, इन तीनों की अस्थियाँ यहीं फूकमफ्रा पर रखी गयी थीं। महापरिनिर्वाण के पश्चात् मेरे शिष्य स्थविर कस्सप मेरी अस्थियाँ भी यहाँ प्रतिष्ठित

करवाने आएगा। इतना कहकर वे राजा फयासुवनफिंखार और उसकी रानी को धर्मोपदेश देने नगर नोंगहानलुअंग गए। उस नगर में उन्होंने कृपा से अपने पदचिह्न भी लगा दिए, ताकि भक्तजन भगवान की पूजा कर सके। उसके बाद वे श्रावस्ती के जेतवन महाविहार वापस गए और कुछ समय पश्चात् कुशीनगर में उनका महापरिनिर्वाण हुआ।

कुशीनगर के तत्कालीन मल्ल राजाओं ने भगवान बुद्ध के देह-संस्कार समारोह की तैयारी की। देह-संस्कार के दौरान बहुत कोशिश की, लेकिन तब तक आग न जल पायी, जब तक स्थविर कस्सप न पहुँचे। स्थविर कस्सप की उपस्थिति में ही देह-संस्कार समारोह शुरू हो पाया। भिक्षु गणों को लेकर स्थविर कस्सप ने भगवान बुद्ध के शरीर का तीन बार परिक्रमण किया और मन में विनती की कि जो अस्थियाँ मेरे द्वारा फूकमफ्रा पर प्रतिष्ठित की जाएगी, अब मेरी हथेलियों में उपस्थित हो जाएँ। अचानक भगवान बुद्ध के उरस्थल की अस्थियाँ स्थविर कस्सप की हथेलियों में प्रकट हुईं। उन्होंने बड़े सम्मान से अस्थियों को अच्छे वस्त्र में बाँधकर रखा। उसके बाद भगवान बुद्ध का शरीर अपने-आप अग्नि में जल गया। देह-संस्कार के पश्चात् स्थविर कस्सप 500 भिक्षुओं के साथ आकाश की यात्रा करते हुए राजा फयासुवनफिंखार को सूचना देने नगर नोंगहानलुअंग पधारे। राजा फयासुवनफिंखार ने भगवान बुद्ध के उरस्थल की अस्थियों की स्थापना के लिए अपने मित्रों के साथ एक स्तूप का निर्माण करवाया। राजाओं और लोगों ने भगवान बुद्ध की पूजा करने के लिए आभूषणों तथा कीमती वस्तुओं को इसी स्तूप में रखवाया। बुद्धवचन के अनुसार स्थविर कस्सप के कर-कमलों द्वारा भगवान बुद्ध के उरस्थल की अस्थियाँ प्रतिष्ठित की गयीं। इस स्तूप का बाद में फ्राथातफनोम नाम पड़ा। कालांतर में इसका बहुत बार पुनर्निर्माण किया गया। सन् 1976 में घनघोर बारिश तथा तूफ़ान के कारण यह पूरा ध्वंस हो गया था। 3 वर्ष बाद सन् 1979 में फ्राथातफनोम की पुन:स्थापना की गयी थी। आज तक दर्शनीय और पूजनीय फ्राथातफनोम का भवन खोंग नदी के किनारे सुशोभित है। यह थाईलैंड और लाओस देशों के निवासियों की धार्मिक एकता का केंद्र है।

4. फ्राथात छेंगछुम

बैंकॉक से 650 कि.मी. की दूरी पर स्थित सकोननखोन एक शांतिपूर्ण शहर है। इस शहर में वतफ्राथातछेंगछुम प्रमुख बौद्ध विहार है। इसी बौद्ध विहार में फ्राथात फनोम की भाँति मुख्य स्तूप के रूप में फ्राथात छेंगछुम स्थापित है। लेकिन इस स्तूप में भगवान बुद्ध की अस्थियाँ रखने के बजाय उनके पदचिह्न अर्थात् बुद्धपद पूजनीय है। यहाँ पर न केवल भगवान गौतम बुद्ध के पदचिह्न लगे बल्कि इस भद्रकल्प के चारों बुद्ध के पदचिह्न लगे हुए हैं। स्थानीय किंवदंती इस प्रकार है -

जब राजा फयासुवनफिंखार को सूचना हुई कि भगवान बुद्ध स्थविर आनंद के साथ जेतवन महाविहार से खोंग नदी की ओर यात्रा करते हुए अपने नगर में आ रहे थे, तब दोनों राजा-रानी भगवान बुद्ध से भेंट करने निकले। भगवान बुद्ध की इच्छा थी कि राजा फयासुवनफिंखार की श्रद्धा बढ़ जाए। भगवान बुद्ध के चमत्कार से उनके श्रीमुख से तीन चमकते रत्न एक साथ निकले। राजा फयासुवनफिंखार यह देखकर अत्यंत हर्षित हुए। भगवान बुद्ध के प्रति उनकी श्रद्धा अधिक बढ़ गयी। राजा आनंदविभोर होकर साधु-साधु कहते रहे। भगवान बुद्ध बोले – यह स्थल सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिक पवित्र है, क्योंकि भद्रकल्प के सभी चारों बुद्ध अर्थात् ककुसन्ध बुद्ध, कोनागमन बुद्ध, कस्सप बुद्ध और गौतम बुद्ध के बुद्धपद इसी स्थान पर स्थापित हैं। यह पूज्यस्थल देवों और मनुष्यों के लिए सदा अति पूजनीय रहेगा। राजा फयासुवनफिंखार यह सुनकर हर्षित हुए। राजा ने अपना सुवर्ण मुकुट उतारकर बुद्धपद की पूजा के लिए श्रद्धा भाव से समर्पित किया और उसपर स्तूप की स्थापना की। इस स्तूप का कालांतर में फ्राथात छेंगछुम नाम पड़ा।

आज यह मान्यता है कि फ्राथात छेंगछुम की पूजा करने से महान् पुण्य प्राप्त किया जा सकता है। उसकी एक ही बार पूजा करना या वंदना करना चारों बुद्धों की एक साथ पूजा करने के समान है।

kittipongboonkerd@gmail.com

संतुलन ही असली साधना है

डॉ. पूनम सिंह
भारत

हिंदी साहित्य में कुँवर नारायण का अतिविशिष्ट स्थान रहा है। उनकी काव्य-दृष्टि मानव-नियति की चिंता पर केंद्रीभूत है। विविध विश्व संस्कृतियों में व्याप्त सामाजिक विषमता और नैतिक जड़ता को कुँवर नारायण अपनी कविताओं में प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करते हैं। यह एक सुखद संयोग है कि उनसे कुछ बातचीत करने के लिए उनके सान्निध्य में होने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ है।

कुँवर जी, हिंदी कविता के क्षेत्र में आपका लम्बा अनुभव रहा है। अपनी सृजन-यात्रा के कुछ प्रारम्भिक पड़ावों के बारे में बताइए।

मेरे साहित्यिक जीवन के लगभग साठ वर्ष लखनऊ में बीते हैं। लखनऊ का जीवन शैक्षिक और साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध रहा है। उसमें खुलापन रहा है, जो मुझे अच्छा लगता है। अगर हमें साहित्य में काम करना है, तो उसके लिए बहुलतावादी दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है, जिसे 'एक्लेक्टिक ऐटिट्यूड' कहा जाता है। उसके बिना हम ठीक से साहित्य के विभिन्न पक्षों को ग्रहण नहीं कर पाएँगे।

मुझे प्रोफ़ेसर राधा कुमुद मुखर्जी की एक पुस्तक पढ़ने को मिली - 'Men and Thought in Ancient India'। तब से मेरे मन में यह बात बैठ गई कि इतिहास को सांस्कृतिक दृष्टि से देखा जाए, तो उसके अर्थ बिल्कुल अलग होंगे और केवल आक्रमणों और लड़ाइयों का इतिहास पढ़ा जाए, तो इसका प्रभाव दूसरा पड़ता है।

मेरे साहित्यिक जीवन की शुरुआत लगभग 1943 के आसपास से मानी जा सकती है, जब 'तार सप्तक' प्रकाशित हुआ। 'तीसरा सप्तक' में अज्ञेय ने मुझे भी शामिल किया।

यूरोप प्रवास के साहित्यिक या सांस्कृतिक अनुभव किस तरह से आपकी रचनाओं में अभिव्यक्त हुए?

विश्व युद्ध के बाद यूरोप, काफ़ी तहस-नहस अवस्था में था। वहीं मैंने युद्ध की त्रासदी को निकट से अनुभव किया। पोलैंड तथा अन्य देश, जो विध्वंस की चपेट में आ गए थे, ने अपने-आपको पुनः खड़ा किया। मनुष्य में निहित 'सर्वाइवल' की शक्ति ने मुझे बहुत प्रभावित किया।

उस समय विश्व-स्तर के किन कवि-लेखकों से आपका संपर्क हुआ?

पोलैंड में मेरी मुलाकात नाज़िम हिकमत और पाब्लो नेरुदा से हुई और वहाँ बहुत-से नए लेखकों से परिचय हुआ। लेकिन एक नाम अभी याद आता है, पोलिश लेखक एंतोनी स्वोनिमस्की का, जो वहाँ साहित्यकारों के 'स्कामान्दर ग्रुप' के प्रमुख सदस्य थे। खास बात यह थी कि एक ओर तो उन सबके मन में युद्ध की त्रासदी थी, तो दूसरी ओर यह उत्कंठा थी कि कैसे ऐसा संसार बनाया जाए, जो न्यायप्रिय हो, जहाँ पर युद्ध और वीभत्स घटनाएँ न हों और विश्व-मैत्री का वातावरण निर्मित हो। वहीं एक और लेखक येर्ज़े लाऊ और उनकी पत्नी मेरी लाऊ से काफ़ी बात होती थी।

अज्ञेय से आपका संबंध कैसा रहा? साहित्य में उनके योगदान को आप किस रूप में देखते हैं? साथ ही, मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह, विजयदेव नारायण साही और रघुवीर सहाय के संबंध में भी बताइए।

'चिन्ता', 'शेखर : एक जीवनी' और 'इत्यलम्' के प्रकाशन के बाद ही अज्ञेय से मेरी मुलाकात हुई और उन्हें निकट से जानने का अवसर मिला। अज्ञेय ने 'प्रयोगवाद' की ओर ध्यान आकृष्ट किया। लेकिन मुख्य बात यह थी कि 'आधुनिकता' की ओर सबका ध्यान गया। भारतीय आधुनिकता को रूप देने में अज्ञेय का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा।

शमशेर जी से मेरी मुलाकात ज्यादा नहीं हुई। मुक्तिबोध से मैं कभी नहीं मिला, लेकिन जब मेरा संग्रह 'परिवेश : हम-तुम' निकला, तब उन्होंने उस पर बहुत सुंदर समीक्षा लिखी।

विजयदेव नारायण साही और रघुवीर सहाय मेरे प्रिय साथी कवियों में रहे हैं। रघुवीर सहाय मेरे सहपाठी थे।

आपने मुक्तिबोध का उल्लेख किया। उनकी आलोचनात्मक ऊर्जा बहुत विशिष्ट थी, चाहे वह नवोदित

लेखक हो या कोई स्थापित लेखक, सभी पर बहुत गहरे अध्ययन-चिंतन के बाद वे समीक्षा लिखते थे और उसे साहित्यिक विमर्श में लेकर आते थे। इसके मद्देनज़र अगर आज की हिंदी आलोचना की हम बात करें, तो वह आपको कहाँ और किस स्तर पर खड़ी दिखाई देती है?

मुक्तिबोध की अपनी प्रतिबद्धता थी, लेकिन वे एक कृति के गुणात्मक पक्षों को कभी नज़रअंदाज़ नहीं करते थे। चाहे वे प्रसाद पर लिख रहे हों या मुझ पर, या किसी और पर, उनमें विश्लेषणात्मक शक्ति या 'स्कॉलरली डिसिप्लिन' अद्‌भुत थी। आज जो समीक्षाएँ लिखी जा रही हैं, मुझे लगता है कि सामान्यतः उनमें अकैडमिक डिसिप्लिन कुछ शिथिल है। यह भी प्रतीत होता है कि समीक्षा के कुछ गिने-चुने 'पद' हैं, जिनकी जकड़ में मानो हिंदी की पूरी समीक्षा चली गई हो। उस तरह का मौलिक चिंतन नहीं मिल पाता है, जैसा कि नेमिचन्द्र जैन के लेखन में मिलेगा, उनकी पुस्तक 'अधूरे साक्षात्कार' में। हालाँकि इधर कुछ नए लोग लिख रहे हैं, जिनकी समीक्षा मुझे पसंद आ रही है।

अपनी कविताओं में आप 'इतिहास' को एक महत्त्वपूर्ण अवयव के रूप में क्यों महसूस करते हैं?

मुझे इतिहास अत्यंत महत्त्वपूर्ण लगता है। एक व्यक्ति ने (या बहुत-से व्यक्तियों ने) जो काम किया, या जो घटनाएँ घटीं, उनका पूरा दस्तावेज़ हमारे सामने खुलता है। उससे हमें उसके मनोविज्ञान, चरित्र, रचनाशीलता और अन्य पक्ष, जैसे - नृशंसता, हिंसा आदि का दिग्दर्शन प्राप्त होता है। जब इतना बड़ा कैन्वस हमारे सामने रहता है, तब स्वयं लेखन के भी कई आयाम खुलते हैं।

आपकी कविताओं में विशेषकर 'कोई दूसरा नहीं' संग्रह में यह बात उभरकर सामने आई कि एक कवि होने के नाते आपने 'मॉडर्न सेंसिबिलिटि' के नैतिक आयाम को महत्त्व दिया है। क्या यह पहले उपस्थित नहीं था?

पहले भी था और अब भी है। आदमी के अन्दर जो नैतिक बोध है, वह स्वार्थ, लालच, शत्रुता आदि कारणों से दब जाता है। हमारा विश्वास है कि साहित्य का काम इस तरह की कुत्सित भावनाओं को 'कंडेम' करना है और स्वस्थ वृत्तियों को पूरी तरह से 'प्रोटेक्ट' करना है। कुछ इस प्रकार कि वह मनुष्य की मानसिकता को परिवर्तित करे।

आपकी कविता में विचार और संवेदना का अंतःसंबंध अत्यंत गहरा है। इसको आप किस रूप में देखते हैं? क्या विचार और संवेदना दो अलग पार्श्व हैं?

मैं इनको बिल्कुल अंतर्गुंफित मानता हूँ। जैसे जीवन में विचार और संवेदना, दोनों आवश्यक हैं, वैसे लेखन में भी विचार और संवेदना अलग-अलग नहीं होते। हम एक विचार को आत्मसात कर लेते हैं, तो वही संवेदना का रूप धारण करता है। हम इन दोनों को जान-बूझकर नहीं जोड़ते हैं। ये अपने-आप ही मिल जाते हैं।

आपने अपने पहले संग्रह 'चक्रव्यूह' में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की बात की है। तब से आज तक आधी से अधिक सदी बीत चुकी है। आज पूरा परिदृश्य बदल गया है। वैज्ञानिकता के अलावा तमाम अन्य विचारधाराएँ और शब्दावलियाँ आ गयी हैं। इन सबके साथ हिंदी कविता को अंतःसंघर्ष करते हुए आप किस रूप में देखते हैं?

हिंदी कविता को मैं उसी तरह से देखता हूँ, जैसे जीवन को एक वैश्विक आयाम प्राप्त करता हुआ देखता हूँ। एक समय था, जब जीवन घोर रूप से स्थानिक था। अब ऐसा समय आ गया है कि व्यक्ति चौबीस घंटे में दुनिया के किसी भी कोने में पहुँच सकता है। दुनिया बहुत बड़ी है, लेकिन यह दुनिया असाध्य नहीं है। भौगोलिक ही नहीं, पूरा वैचारिक विश्व भी हमारे समीप आ गया है। इस नज़दीकी को एक तरह की 'हार्दिकता' कहना मुझे ठीक लगता है, जो कविता के माध्यम से भी प्रकट हो सकती है और होती है।

आपके दो महत्त्वपूर्ण खंडकाव्यों 'आत्मजयी' और 'वाजश्रवा के बहाने' में आपने जीवन को दो तरह से देखना चाहा है - एक, मृत्यु के निकट आया हुआ जीवन और दूसरा, मृत्यु की तरफ़ से जीवन को देखना। दोनों कृतियाँ एक-दूसरे को पूर्ण करती हुई दिखाई देती हैं और एक अद्‌भुत ढंग से पिता-पुत्र के संबंधों की व्याख्या प्रस्तुत करती हैं।

ठीक बात है। मैं अतिवाद के विरुद्ध हूँ। 'वाजश्रवा के बहाने' के पूर्वकथन में दोनों दृष्टियों में जो विभाजन है, उसकी ओर मैंने संकेत किया है। उनमें एक अति है। जैसे नचिकेता,

भौतिकता को अस्वीकार करता है, यह उसकी एक अति है। वाजश्रवा आधुनिकता को पूरी तरह अस्वीकार करता है, यह दूसरी अति है। लेकिन 'वाजश्रवा के बहाने' में यह प्रयास किया है कि दोनों के बीच समझौते की एक ज़मीन बने। दोनों के बीच एक सुखद समझौता संभव है। वहाँ पर जीवन में सुख, शांति और एक विशालता का अनुभव होता है, जहाँ हम संतुलन ढूँढ लेते हैं।

मेरा जो नया काव्य 'कुमारजीव' है, उसमें मैंने इसी विषय को लिया है और बताने का प्रयास किया है कि वास्तविक खोज तो यही है। अति में नहीं, हमें कहीं मध्यम मार्ग में आना है।' बुद्ध के साथ 'मध्यम मार्ग' की अवधारणा जुड़ी हुई है। इस संतुलन को मैं बहुत महत्त्व देता हूँ। यही संतुलन की वास्तविक साधना है। जिसने इसे अपनाया, उसने शान्ति पाई है।

आपकी रचनाओं में मिथकों का बहुत प्रयोग दिखाई पड़ता है और पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि आपके लिए मिथक सिर्फ़ मिथक नहीं, कविता के आवश्यक अवयव के रूप में एक विचारधारा भी है।

नहीं, विचारधारा नहीं है। मेरे लिए मिथक एक भाषा है, जिससे हम दूसरों के साथ सम्प्रेषण कर सकते हैं। हालाँकि इसमें खतरे भी हैं। इसका दुरुपयोग हो, तो बाबरी मस्जिद जैसी दुर्घटनाएँ हो सकती हैं और सदुपयोग हो, तो यह मनुष्य को एक सार्थक जीवन जीने की प्रेरणा दे सकती है।

पर्यावरण की चिंता के साथ-साथ आपने भाषा की ध्वस्त पारिस्थितिकी की बात भी उठाई है। लेकिन जिस प्रकार से आपने प्रकृति को बचाने की बात की, वैसे मरती हुई भाषा का संरक्षण किस प्रकार किया जाए?

यदि विस्तार से सोचें, तो कोई भाषा एक स्तर पर नहीं, कई स्तरों पर जीवित रहती है। कई स्तरों पर वह विकसित होती है और बची रहती है। शास्त्रीय स्तर पर, काव्य के स्तर पर और बोलचाल के स्तर पर भी बची रहती है। भाषा में परिवर्तन सबसे पहले हम लोगों की व्यवहार की भाषा में आता है। वह स्टैण्डर्ड नहीं है। धीरे-धीरे भाषा स्थिर होने लगती है। उसका अपना एक स्वरूप बनता है, उसका अपना एक क्लैसिसिज़्म (classicism) बनता है। इस रूप में यह एक स्वस्थ संकेत है कि हिंदी कई स्तरों पर विकसित हो रही है। आज हमारे पास जो हिंदी आई है, उसमें संस्कृत के साथ उर्दू, अरबी, फ़ारसी आदि शामिल हैं। इन सब के मिश्रण से एक भाषा बनी, जो आज हमें इतनी स्वाभाविक लगती है।

आपने एक 'क्लासिक टेम्परामेंट' और वैचारिक गहनता के साथ काव्य में मानव और मानवीयता को विभिन्न रूपों में परिभाषित और आख्यायित किया है। साथ ही, आपने अपनी काव्य-भाषा को भी लगातार गढ़ा है, तोड़ा है और पुनःसृजित किया है। इस क्रमबद्ध बदलाव ने आज लिख रही चौथी पीढ़ी के बीच भी आपको लगातार प्रासंगिक बनाए रखा है, जो कि अपने-आप में एक उपलब्धि है। आपके लिए यह कैसे संभव हो पाया?

मैंने कभी भी एक तरह के विचार का अनुयायी भाव से समर्थन नहीं किया है। इस बात की पूरी कोशिश की, कि दृष्टिकोण खुला रहे। अनेक विषयों से प्रेरणा ली। यह भी लगा कि बहुत-से ऐसे विषय, जिन्हें आम तौर पर हम 'अकाव्यात्मक' समझते हैं, उनमें भी बहुत सुंदर कविता संभव हो सकती है। तो इस तरह से पढ़ते और लिखते हुए हम अपनी दृष्टि को विकसित और संशोधित करते रहे।

आज हिंदी कविता जिस स्थान पर है, एक वरिष्ठ कवि होने के नाते उसकी समग्र उपलब्धियों को आप किस तरह आँकते हैं?

हिंदी साहित्य के भविष्य को बहुत ही आशापरक ढंग से देखता हूँ।

धन्यवाद आपका।

drpoonamsingh42@gmail.com

हिंदी सेविका पूजा अनिल के साथ साक्षात्कार

अनुराग शर्मा
पिट्सबर्ग, अमेरिका

उदयपुर में जन्मी पूजा अनिल प्राणी-विज्ञान में स्नातकोत्तर हैं। वे हिंदी गुरुकुल स्पेन की संस्थापक हैं तथा साल 2008 से स्पेन की राजधानी मद्रिद में हिंदी की कक्षा चलाती हैं। इनकी रचनाएँ अनेक प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं तथा गीत संगीतबद्ध किए गए हैं। वे हिंदी एवं स्पेनिश में कविताएँ लिखती हैं, परस्पर अनुवाद करती हैं, पॉडकास्ट बनाती हैं और विभिन्न ऑनलाइन हिंदी वेबिनार और गतिविधियों में सम्मिलित हुई हैं।

गद्य और पद्य में आपकी प्रिय विधा क्या है और क्यों?

कहानी लिखना मुझे अति प्रिय है। कई बार तो कविता में भी कहानी की झलक आ जाती है। नाटक लिखने का श्रेय हवामहल प्रसारण को जाता है। मैंने नाटक कम लिखे हैं, लेकिन भविष्य में नाटक लेखन करने का विचार है।

आप लेखन से कैसे जुड़ीं?

मेरे पिताजी साहित्यप्रेमी थे, वे बचपन से ही हमें पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते थे। घर में ही साहित्यिक कृतियाँ विपुलता से उपलब्ध थीं। उनके सानिध्य में पढ़ने के साथ लिखना भी प्रारम्भ किया था। मुझे याद है, एक बार स्कूल में हिंदी अध्यापिका ने कोई प्रादेशिक कहानी लाने का निर्देश दिया, तब पिताजी की सहायता से एक सिंधी लोककथा, अपनी भाषा में लिखकर मैं स्कूल ले गई थी और वह कहानी बहुत पसंद की गई थी। इसके अलावा मुझे पत्र-लेखन में विशेष रुचि थी, जिससे मुझे लिखने का उत्साह मिला।

भारत की तुलना में विदेश में रहकर हिंदी का प्रचार-प्रसार करना कितना कठिन है?

जहाँ हिंदी बोली नहीं जाती, वहाँ हिंदी का प्रसार करने के लिए अधिक प्रयास करने पड़ते हैं। 2018 में मैंने भारतीय राजदूतावास से स्पेन में हिंदी काव्य-गोष्ठी आयोजित करने की बात की थी और स्पेन निवासी हिंदी लेखकों के बारे में जानकारी प्राप्त करना चाहा। मुझे केवल एक ही हिंदी अध्यापिका का नाम प्राप्त हुआ, जो आई.सी.सी.आर. की ओर से वायादोलिद विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाने आई थीं। मैं वहाँ जाकर उनसे मिली, परंतु वे कोई सहायता न कर पाईं। अंततः 2020 में मैं स्पेन में हिंदी लेखकों को फ़ेसबुक पर खोज सकी। दुख की बात है कि स्पेन में भारतीय प्रवासियों में आज तक केवल चार हिंदी लेखक मिले हैं।

मुद्रित लेखन के अलावा आपने रेडियो नाटक लिखे हैं और कहानियों को स्वर दिया है। इनके अलावा कुछ और?

मैंने स्पेन में हिंदी गुरुकुल की स्थापना की है, जहाँ पर स्पेनिश भाषियों के लिए हिंदी-शिक्षण की व्यवस्था है। वहीं से मैंने देश की कुछ प्रबुद्ध हस्तियों का साक्षात्कार लिया। मैं साहित्यिक गोष्ठियाँ आयोजित करती हूँ, कविताओं के पॉडकास्ट बनाती हूँ और गीत भी लिखती हूँ। मैं एक करुणा-रेकी मास्टर हूँ तथा देश विदेश में लोगों को रेकी-हीलिंग के लाभ पहुँचाती हूँ। हिंदी दिवस के अवसर पर मेड्रिड में स्थित भारतीय राजदूतावास के आग्रह पर स्पेनिश भाषियों से एक हिंदी नाटक का मंचन भी करवाया। मैंने स्पेन में हाई फ़ैशन डिज़ाइनिंग का कोर्स भी किया है, अतः अक्सर अपने और परिवार के लिए कपड़े भी बनाती हूँ।

इस दीवार पर जो इतने सुंदर चित्र लगे हैं, क्या आपके हैं? क्या आप पेंटिंग भी करती हैं?

जी, कोविड काल का सदुपयोग करते हुए मैंने चित्रकला सीखी और कुछ चित्र बना पाई हूँ। मैं मण्डला, पेंसिल स्केच, वॉटर कलर तथा ऑइल पेस्टल में चित्र बनाती हूँ। पति ने कहा कि इन चित्रों को किसी फ़ोल्डर में बंद रखने से बेहतर होगा अपने घर की दीवारों पर सजाया जाए। उन्होंने इन पेंटिंग्स को स्वयं फ़्रेम करके दीवार पर लगाया। मुझे लगता है कि अधिकतर कलाकार एक साथ विभिन्न कलाओं में प्रयोग करते रहते हैं, जैसे लेखन के साथ संगीत अथवा चित्रकला।

इतना सब कैसे कर लेती हैं? समय प्रबंधन की कोई टिप?

मुझे नहीं लगता कि जितना मुझे करना चाहिए, मैं उतना कर पाती हूँ। बल्कि यह कहूँगी कि रोज़मर्रा के कार्यों में से

समय चुराकर अपने रचनात्मक कार्यों को अंजाम देने का प्रयास करती हूँ। मैं एक पूर्णकालिक गृहस्थ हूँ। घर-परिवार की ज़िम्मेदारियों के साथ हिंदी कक्षाएँ चलाने एवं अन्य रचनात्मक कामों के लिए समय-प्रबंधन करना मेरे लिए बड़ा ही जटिल है। इस दृष्टि से डायरी, कैलेंडर, अलार्म मेरे मददगार साथी हैं। दिन के शोर-शराबे में परिवार को समय देती हूँ। रात में जब वातावरण शांत रहता है, तब लिखती-पढ़ती हूँ और पेंटिंग करती हूँ। दिन के चौबीस घंटे मुझे कम पड़ते हैं। सोचती हूँ दिन इतना छोटा क्यों बनाया गया?

आपके लेखन में घर-परिवार की क्या भूमिका है? क्या आपके परिजन आपका लिखा पढ़ते हैं? यदि हाँ, तो उनकी क्या प्रतिक्रियाएँ होती हैं?

परिजनों के साथ और सहयोग से ही बहुत कुछ कर पाई हूँ। कहानियों को सँवारने में मैंने कई बार पति की मदद ली है। लिखी जाने वाली कहानी की परिस्थिति उन्हें बताकर उनसे पूछती हूँ कि इसका हल उनके दृष्टिकोण से क्या हो सकता है? और वे कई बार एकदम नया दृष्टिकोण रख देते हैं, जिससे मुझे कहानी पर काम करने की अलग ही दिशा मिलती है। वैसे पति और बच्चों को अपना लिखा हुआ पढ़कर सुनाना पड़ता है, जिसे वे उत्साह से सुनते हैं। भारत में रहने वाली मेरी बहन मेरा लिखा हुआ सब कुछ पढ़ती है।

गीतांजलि श्री का नाम हाल में वैश्विक स्तर पर चर्चित हुआ, लेकिन कुछ समय पहले तक भारत और हिंदी जगत् में उनकी कोई चर्चा नहीं थी। हिंदी में लेखन की भरमार है, किंतु विश्वस्तरीय लेखन में अव्वल तो बहुत कम है, और जो है भी, उसकी हिंदी के क्षेत्र में बात भी नहीं होती। ऐसा क्यों?

हिंदी के क्षेत्र में किसी दूसरे को आगे बढ़ता देख प्रसन्न होने की वृत्ति कम दिखाई देती है। यह दुखद है कि किसी हिंदी लेखक की उपलब्धियों की चर्चा केवल उसके मित्र वर्ग द्वारा ही की जाती है। संभवतः सभी एक-दूसरे से प्रतिद्वंद्विता के कारण किसी अन्य को प्रतिष्ठा पाते देख, ईर्ष्या से उस पर बात करना ही गवारा नहीं करते हैं। अलग-थलग दल बनाकर विभिन्न 'वाद' चलाए जाते हैं, जो शायद ही किसी साहित्य या लेखक के हित में हो।

बीबीसी की हिंदी वेबसाइट हो या एयर इंडिया का इनफ़्लाइट हिंदी इंटरफ़ेस, सबमें हिंदी के प्रति जिस तरह घोर लापरवाही और अधकचरापन दिखता है, इसे कोई अन्य भाषा कतई नहीं स्वीकारती। ऐसा क्यों है, और इसे कैसे सुधारा जाए?

हिंदी भाषा के प्रति लापरवाही हिंदी के लिए घातक सिद्ध हो रही है। आजकल यह सुनने को मिला है कि उनके बच्चों के स्कूल में हिंदी में बात करने पर प्रतिबंध है। भारत में रहते हुए किसी भी स्कूल में हिंदी पर प्रतिबंध कोई कैसे सहन कर सकता है? स्पेन के एक प्रांत कातालूनीया में कास्तेयानो (राष्ट्रीय भाषा) पर हाल ही में प्रतिबंध लगाया गया एवं केवल कातालान (प्रांतीय भाषा) में ही शिक्षा दिए जाने का एकतरफ़ा निर्णय लिया गया। बच्चों के माता-पिता को यह निर्णय उनके समग्र विकास के विरुद्ध प्रतीत हुआ और वे सड़कों पर निकल आए कि उनके बच्चों को कातालान के साथ-साथ कास्तेयानो में भी शिक्षा दी जाए, जैसे पहले से देते आए हैं। यदि हमारे देश में इतनी भी जागरूकता न होगी, तो हम हिंदी के प्रति इस अधकचरेपन रवैये से कभी मुक्त नहीं हो पाएँगे।

आपने अभी कास्तेयानो और कातालान का उल्लेख किया। क्या ये स्पेनिश भाषा के स्थानीय नाम हैं?

जिसे हम अंग्रेज़ी में स्पेनिश कहते हैं, उस भाषा को, उसे बोलने वाले को और उसकी उपभाषाओं को 'हिस्पानो' कहा जाता है। हिंदी की तरह ही 'हिस्पानो' में भी कई उपभाषाएँ हैं। मुख्य 'हिस्पानो' भाषा का नाम 'कस्तेयानो' (Castellano) है। बार्सेलोना क्षेत्र की हिस्पानो को 'कातालान' (catalán) कहते हैं। 'पाइस वास्को' (País Vasco) क्षेत्र की 'हिस्पानो' को 'वास्को' (Vasco) या 'बास्क' (Basque) कहते हैं तथा गालिसिया (Galicia) के क्षेत्रीय स्वरूप को 'गायेगो' कहते हैं।

कस्तेयानो हिस्पानो का अंतरराष्ट्रीय मानक स्वरूप है, जिसे आप मूल व प्रमुख हिस्पानो भाषा मान सकते हैं।

आपने अत्यंत उपयोगी जानकारी दी है। मुझे लगता है कि हिंदी के क्षेत्र में इस जानकारी का पूर्णाभाव है। यहाँ तक कि हिंदी में प्रकाशित होने वाले हिस्पानो के अनुवाद भी सामान्यतः अंग्रेज़ी अनुवादों के अनुवाद होते हैं। साहित्य अकादेमी, विश्व हिंदी सचिवालय, हिंदी

निदेशालय और केंद्रीय हिंदी संस्थान जैसे संस्थानों को आंग्लेतर-अभारतीय भाषाओं के विभाग बनाने चाहिए और आप सरीखे विद्वानों की मदद से अंग्रेज़ी के परे, इन भाषाओं से सीधा संवाद करना चाहिए। इसपर आपका क्या विचार है?

बहुत उत्तम सुझाव है आपका। मैं इसमें अपना पूरा सहयोग देना चाहूँगी। आज जबकि अंग्रेज़ी की मदद से अनुवाद-कार्य किए जाते हैं, तब बहुत कुछ ढंग से संप्रेषित नहीं हो पाता है। सीधे अनुवाद से उन अभारतीय भाषाओं के विद्वान वैश्विक साहित्य का एक अलग रूप प्रस्तुत करने में सक्षम होंगे। ध्यान रहे कि भाषाएँ संवाद का सबसे सशक्त सेतु हैं। यदि हिंदी संस्थाएँ अंग्रेज़ी से इतर अन्य वैश्विक भाषाओं पर कार्य करें, तो न केवल हमारे देश में, बल्कि विदेश में रहने वाले भारतीयों के मन में भी भाषा के प्रति संवेदनशीलता बढ़ेगी। जब आप 'एक' भाषा को लेकर सजग रहते हैं, तब यही प्रवृत्ति बाकी सभी भाषाओं के प्रति स्वयंमेव पनपने लगती है। हमें हिंदी के प्रति अधिक उदार होने की आवश्यकता है, अपने ही देश में उसके प्रति कठोर व्यवहार देखकर ठेस लगती है। अन्य भाषाओं के साथ अच्छा संवाद उपजेगा, तो अंग्रेज़ी से इतर अन्य अभारतीय भाषाएँ सीखने हेतु देश की जनता प्रेरित होगी।

आजकल जहाँ अनेक हिंदी लेखक अंग्रेज़ी के सामने हीन-भावना से ग्रस्त दिखते हैं, आप हिंदी और हिस्पानो के बीच सेतु बनाते हुए इन दोनों में सृजन कार्य कर रही हैं। अपने हिस्पानो-संबंधी अनुभव के बारे में कृपया कुछ साझा करें।

मुझे कभी भी हिंदी में बात करने में हीनता नहीं हुई। किसी भी नई भाषा के साथ धीरे-धीरे मित्रता होती जाती है, हिस्पानो भाषा ने मुझे बहुत जल्दी अपना लिया। मैंने हिस्पानो में कविताएँ लिखीं एवं दोनों भाषाओं के कवियों की कविताओं के अनुवाद भी किए। हिस्पानो से हिंदी में अनुवाद करते हुए सबसे बड़ी बाधा शब्दकोश की आती है। यदि कोई हिंदी-हिस्पानो शब्दकोश मिलता भी है, तो उसमें सीमित शब्द होते हैं, जो कि किसी भी अच्छे अनुवाद के लिए पर्याप्त नहीं होते हैं। समय बहुत लगता है, शब्दों का सही तुल्य-शब्द खोजने में। फ़िलहाल मैंने ही शब्दकोश बनाना आरम्भ किया है। इसपर पूरा ध्यान देना चाहती हूँ, ताकि हिंदी-हिस्पानो का एक सम्पूर्ण अधिकृत शब्दकोश सर्व साधारण को उपलब्ध हो सके।

हिंदी और हिस्पानो के साहित्यिक परिदृश्य में आप क्या विशेष अंतर पाती हैं?

सबसे अच्छी बात जो मैंने स्पेन में अनुभव की है, यह है कि बाल्यावस्था से ही बच्चों को साहित्य पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है और उनमें धीरे-धीरे रुचि जागृत की जाती है। स्कूल में छात्रों को उम्र के अनुसार हर महीने एक पुस्तक पढ़कर उसके बारे में लिखने का कार्य दिया जाता है। बचपन से ही उन्हें साहित्य के पठन-पाठन की आदत हो जाती है। साथ ही, बड़े होने तक वे लिखने के गुर भी सीख लेते हैं। शायद इसीलिए यहाँ पर डिजिटल दुनिया होने के बावजूद, पढ़ने का माहौल अब तक बना हुआ है।

पॉडकास्ट्स में आपने विश्व भर के लेखकों की ओर से अच्छे लेखन के बारे में सलाह और सुझाव प्रस्तुत किए हैं। आपकी यह पॉडकास्ट श्रृंखला अन्य लेखकों के लिए भी बहुत लाभप्रद होगी। इस सीरीज़ का विचार कैसे आया?

हिस्पानो लेखन और हिंदी लेखन में समानताएँ और अंतर दोनों हैं। मैं विभिन्न लेखकों की विचारधाराएँ देखती थीं। पॉडकास्ट्स बनाते समय लगा कि ये विचारधाराएँ नए और पुराने लेखकों के लिए लाभप्रद होगा।

एक लेखक के नाते अन्य लेखकों को आपकी मुख्य सलाह क्या होगी? लेखक को क्या-क्या ध्यान में रखना चाहिए?

लेखक भाषा के प्रति निष्ठावान हो तथा वर्तनी विषयक त्रुटियों से बचे रहे। प्रतिदिन लेखन का अभ्यास करे और ज्यादा-से-ज्यादा पढ़े। पुराने लेखकों की बात ध्यान से सुनें और उनके अनुभवों से परिचित होवें।

अपने नवीन लेखन, उसकी विषयवस्तु और आगामी पुस्तकों के बारे में कुछ बताइए।

मेरा एक कहानी-संग्रह 'तुम नासमझ' प्रकाशनाधीन है। सामाजिक विषयों पर आधारित कुछ रेडियो नाटक लिख रही हूँ। इसके बाद कोविड-केंद्रित एक उपन्यास लिखने का विचार है।

indiasmart@gmail.com

नई पीढ़ी के लिए नए माध्यम गढ़ता लेखक अनुराग शर्मा से एक बातचीत

धर्मपाल महेंद्र जैन
अमेरिका

पिट्सबर्ग (अमेरिका) में रहने वाले अनुराग शर्मा सुप्रसिद्ध वेब पत्रिका 'सेतु' के संपादक हैं और राही रैंकिंग में स्थान प्राप्त करने वाले सम्मानित लेखक हैं। जीवन और मनुष्यता के प्रति उनके बोध में संस्कृति की गहरी पैठ है, जिसमें वेद है, गीता है और श्रुत परंपरा भी। उनके कार्य में कर्मठता है और कंप्यूटर व इंटरनेट का प्रयोग भी समाहित है। सूर, मीरा, तुलसी और कबीर की श्रद्धा-भक्ति और वैचारिकता उनके व्यक्तित्व में झलकती है, वहीं युवा पीढ़ी तक पहुँचने की ललक भी दिखाई देती है। मौन साधक की तरह अपने काम को साधना की तरह जीने वाले अनुराग से बातें करते हुए कहीं उलझन नहीं होती। उनकी प्रतिभा किसी चोर-दरवाज़े से नहीं, बल्कि खुले और स्वाभाविक ढंग से सामने आती है। स्पष्ट चिंतन और परस्पर समझ बढ़ाने वाली उनकी सोच कायल करती है और विस्मित भी। विस्मित इसलिए, कि वे अपने ढेर सारे कामों को निस्पृह दृष्टि से देखते हैं और अपने कामों का आनंद उठाते हैं। यूँ तो वे एक बैंक के आईटी क्षेत्र में परियोजना प्रबंधक हैं, पर मेरे लिए वे मासिक सेतु के संपादक हैं, जिसमें मैं व्यंग्य स्तंभ बिंदास लिखता हूँ। धीरे-धीरे वे मेरे दोस्त बन गए, सलाहकार भी और आने वाली परियोजनाओं में साथी भी। इंटरनेट पर अपना रेडियो और चैनल चलाते हैं। तो, चलिए अनुराग से खुलवाते हैं, उनकी असीम शांति के नीचे दबी कुछ परतें -

आप साहित्य में ऑलराउंडर हैं। जब आप लिखना आरम्भ करते हैं, तो क्या आपको मालूम होता है कि आप कविता लिखेंगे या कहानी लिखेंगे? या फिर वह रचना हिंदी में होगी या अंग्रेज़ी में?

हाँ, ऐसा होता है। सच यह है कि जिन रचनाओं पर सामान्यतः प्रवासी हिंदी लेखन का ठप्पा लगता है, वैसे विषयों पर मैं अंग्रेज़ी में लिखता हूँ। कार्य-संबंधी लेखन भी अंग्रेज़ी में होता है। जब हिंदी में लिखना शुरू करता हूँ, तब गद्य विधा या पद्य विधा स्वतः ही उभर आती है। मैं जितना लिखता हूँ, उतना कहता या सुनाता हूँ। एक ताज़ा रहस्योद्घाटन 'रेडियो ड्रामा' के बारे में है। पिछले कुछ महीनों से मैं 'हवामहल की तर्ज़ पर' हर सप्ताह एक नया रेडियो नाटक रच रहा हूँ। मैंने पाया कि हिंदी में रेडियो नाटकों का अभाव है, तो उस विधा में मैंने सोच-समझकर लिखना शुरू किया और रेडियो प्लेबैक इंडिया पर काफ़ी अच्छी प्रतिक्रियाएँ मिल रही हैं।

नई पीढ़ी में लोकप्रिय हो रहे आपके इंटरनेट रेडियो चैनल तथा वहाँ प्रसारित होने वाली सामग्री के बारे कुछ-कुछ जानता हूँ। कृपया इसे विस्तार से बताइए।

हिंदी को नई पीढ़ी में लोकप्रिय बनाना है, तो हमारा लेखन नए माध्यमों में भी प्रसारित होना चाहिए। यूट्यूब, मेन्ज़ा, स्पॉटिफ़ाय ऐसे इंटरनेट ऐप्स हैं, जो नई पीढ़ी को आकर्षित करते हैं। इन पर हम हवामहल 2.0, बोलती कहानियाँ, 'कुछ घर की, कुछ दुनिया भर की' जैसे कार्यक्रम चला रहे हैं। इन कार्यक्रमों का निर्माता-निर्देशक मैं हूँ, कुछ नाटकों की पटकथा भी लिखता हूँ। आपने पिछले सप्ताह मेरा नाटक 'यारी है इमान' सुना। 'चोरी-चोरी' भी काफ़ी पसंद किया गया। बोलती कहानियाँ कार्यक्रम में आपके व्यंग्य भी सराहे गए। कथाकार कमलेश्वर की रचना 'चप्पल' को बीस हज़ार व्यूज़ मिले। हम समकालीन हिंदी साहित्य को इस तरह भी नई पीढ़ी के सामने लाना चाहते हैं। कई युवा वॉइस आर्टिस्ट हमसे जुड़े हैं, स्पेन की पूजा अनिल, भारत से अरुण कालरा आदि। दुनिया से संवाद करने के ये नए तरीके मुझे पसंद हैं।

आपकी आवाज़ श्रोताओं को सम्मोहित कर जाती है। पेशेवर उद्घोषक के अंदाज़ में जब आपकी प्रस्तुतियाँ सुनता हूँ, तो कई बार लगता है कि आपको आईटी की बजाय किसी प्रसिद्ध टीवी चैनल में एंकर होना चाहिए था। आपने बहुत कोशिशें कीं और कई रोचक कार्यक्रम दिए। कोई खास कहानी आपकी ज़ुबानी सुनना चाहेंगे।

मेरी एक पुरानी कविता की दो पंक्तियाँ हैं -

''मैं ऐसा हूँ या वैसा हूँ, समझ मुझको न आता है। फ़रिश्ता

कोई कहता था, कोई ज़ालिम बताता है।''

जो कह रहा हूँ, उसे किसी संस्कृति, कार्यक्षेत्र या राष्ट्रीयता के प्रति मेरी धारणा न माना जाए, इस अनुरोध के साथ यह कहूँगा कि कार्यक्षेत्र में (पिछले 37 वर्षों में) मेरी आवाज़ और मेरी बात सदैव महत्त्वपूर्ण मानी गई। लेकिन व्यावसायिक क्षेत्र के बाहर भारत में और यहाँ अमेरिका में भी भारतीय और हिंदी समूहों के 'लाउड' वातावरण में मैंने अपनी आवाज़ को नक्कारखाने में तूती की तरह पाया है। वह सुनाई नहीं देती, बल्कि कई बार तो लगता है कि सुनने योग्य ही नहीं समझी जाती। हाँ, यह सच है कि रेडियो और पॉडकास्ट के श्रोताओं का फ़ीडबैक अत्यधिक उत्साहवर्धक रहा है और वहाँ प्रयोग भी बहुत किए। प्रेमचंद की एक कहानी है पर्वत यात्रा, इसे मैंने रेडियो नाटक बनाया। इसके पंद्रह पात्रों में से ग्यारह पात्रों को मैंने स्वर दिए और चार पात्रों को पूजा अनिल ने। इसे खासा सराहा गया।

'सेतु' का सम्पादन और प्रकाशन करते हुए सात साल हो गए हैं और अब तक आपको तीस लाख से अधिक 'हिट्स' प्राप्त हुए हैं। अमेरिका से नियमित निकलने वाली इस हिंदी वेब पत्रिका को अपने पाठक वर्ग से किस तरह की प्रतिक्रियाएँ मिलती हैं... भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में बसे पाठक 'सेतु' से क्या उम्मीद करते हैं... 'सेतु' को लेकर आपका सपना क्या है?

'सेतु' हिंदी और अंग्रेज़ी, दोनों के स्वतंत्र संस्करणों में आती है। मुझे नहीं लगता कि अंग्रेज़ी में कोई विशेष समस्या है, लेकिन हिंदी संस्करण की चुनौतियाँ पाठकों से कम, हिंदी के लेखकों से अधिक हैं। हिंदी के उत्साहित रचनाकारों के पास प्रेषण के नियम पढ़ने का धैर्य भी नहीं है, प्रामाणिकता और गुणवत्ता की तो बात ही क्या करें। उनके अनुवाद मौलिक होने के बजाय अंग्रेज़ी अनुवादों के पुनरानुवाद होते हैं और वे इस तथ्य का उल्लेख करना भी आवश्यक नहीं समझते। वे एक ही रचना एक-साथ अनेक पत्रिकाओं को भेज देते हैं, जो बिना जानकारी के उसे प्रकाशित कर देती हैं। टंकण की त्रुटियों से लेकर गैर-ज़िम्मेदाराना कॉपी-पेस्ट तक, आप जो कुछ भी सोच सकते हैं, एक सम्पादक के रूप में मुझे उससे निरंतर दो-चार होना पड़ता है। लेकिन प्रसन्नता की बात है कि आप सहित अनेक गम्भीर लेखक 'सेतु' से जुड़ चुके हैं और 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' के मान को सार्थक कर रहे हैं।

पाठक भी 'सेतु' की प्रामाणिकता और गुणवत्ता को पहचानते हैं। वे जानते हैं कि हिंदी पत्रिकाओं में 'सेतु' विश्वस्तरीय पैमाने पर खड़ी उतरती है। अब 'सेतु' के लिए अपने सपने के बारे में क्या कहूँ... बस यह निरंतर चले, कुछ निधि एकत्रित हो और पत्रिका स्तरीय बनी रहे।

अमेरिका में भारतीय संस्कृति के प्रमुख केंद्रों में से पिट्सबर्ग शहर एक माना जाता है। यहाँ बसने और यहाँ के भारतीय समाज के बारे में अपने अनुभव साझा करें। अमेरिकी माहौल कैसा है और उसमें आपकी भागीदारी किस रूप में रही है?

पिट्सबर्ग पारिवारिक वातावरण वाला मध्यमाकार नगर है। अमेरिका में कानून-व्यवस्था बहुत अच्छी है। स्वाभाविक है कि हमारे बच्चे, विशेषकर लड़कियाँ यहाँ सुरक्षित महसूस करती हैं। भारत में कुछ लोगों के जीवन का एकमात्र उद्देश्य इतना भर होता था कि किसी तरह धोखे से शाकाहारी सहकर्मियों को अण्डा या माँस खिला दिया जाए, जबकि यहाँ बिल्कुल भिन्न, बल्कि विपरीत जीवन-शैली वाले लोग भी भारतीय पारम्परिक मूल्यों का आदर करते हैं। विकसित देश होने का अर्थ केवल भौतिक विकास नहीं, बल्कि नागरिकों की मानसिक एवं सामाजिक परिपक्वता भी है।

हिंदी अमेरिका के लगभग सत्तर विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाती है और भारतवंशियों की बसाहट वाले कई स्कूल अंचलों में। आप भी हिंदी-शिक्षण से शौकिया तौर पर जुड़े रहे हैं। हिंदी पढ़ाने का आपका कैसा अनुभव रहा? कृपया साझा करें।

एक विदेशी भाषा के रूप में विश्वविद्यालयों में उपस्थिति होते हुए भी यहाँ का हिंदी-शिक्षण सामान्यतः प्रौढ़ शिक्षा जैसा है। कोई हिंदी भारत-प्रेम के लिए सीखता है और कोई दादी-नानी से बात करने के लिए। पिट्सबर्ग के चिन्मय मिशन में मैं स्वैच्छिक रूप से हिंदी पढ़ाता रहा। घर से पच्चीस मील दूर जाकर पढ़ाता, बच्चों को पाठ्य-सामग्री से लेकर कॉपी-पेंसिल आदि सुलभ कराता। बर्फ़ में मैं और बच्चे बाहर खड़े स्कूल-कक्ष खुलने की प्रतीक्षा करते रह जाते। कभी-कभी

निराशा भी होती है कि समुदाय में हिंदी को वांछित समर्थन नहीं मिल पाता।

आप अमेरिका जैसे बहुसांस्कृतिक समृद्ध देश में सर्वाधिक माँग वाले आईटी क्षेत्र में कार्यरत हैं। क्या प्रवासी जीवन आपको आत्मिक संतुष्टि देता है।

आपके प्रश्न के उत्तर में बस इतना कहूँगा कि यह प्रवासी जीवन सुखद है, लेकिन प्रिय जन दूर हों, तो आत्मिक संतुष्टि कहाँ? घर तो वहीं है, जहाँ आपके लोग हैं, माता-पिता हैं। यहाँ हिंदी वाले लोग कहाँ? मुख्यधारा में काम करते हुए जो लोग मिलते हैं, बदलते रहते हैं, आत्मीयता इतनी जल्दी नहीं बन पाती। एकाकीपन और अंदर से खोखलापन जैसा लगता है।

संपादन, रेडियो, ब्लॉगिंग और वेब गोष्ठियों में आप सक्रिय हैं। फिर, कविता-कहानी लिखने के लिए समय कहाँ बचता होगा... लिखते हुए आपको चालीस साल हो गए। आपकी पुस्तकों व आने वाली पुस्तकों के बारे में अधिक जानने की इच्छा है।

भारत में नौकरी के दौरान अभिव्यक्ति पर नियंत्रण के नियमों के कारण सही मायने में लेखन अमेरिका आकर ही शुरू हुआ। पूर्णकालिक नौकरी में समयाभाव होता है। सेतु के सम्पादन में बहुत कुछ पढ़ना पड़ता है। बोलती कहानियाँ, हवामहल आदि भी काफ़ी समय लेते हैं। समय निकालकर लिखता तो हूँ, लेकिन छपाने के मामले में थोड़ा संकोची हूँ। जो मित्र बार-बार रचनाएँ माँगाते हैं, वहाँ छप जाता हूँ। लगभग यही स्थिति गोष्ठियों की है। हिंदी के सेमिनार अक्सर मेरे काम के समय में होते हैं। संकोच होते हुए भी मना करना पड़ता है।

मेरी पहली पुस्तक 'इंडिया एज़ एन आईटी सुपर पॉवर' अंग्रेज़ी में थी, जिसमें आने वाले समय में आईटी में भारतीयों के छा जाने की भविष्यवाणी की गई थी। कथा-संग्रह 'अनुरागी मन' को महात्मा गांधी संस्थान (मॉरीशस) का प्रथम 'आप्रवासी हिंदी साहित्य सृजन सम्मान' मिला था। लघुकथा-संकलन 'छोटी-सी बात', कुछ एकल व अनेक साझा संकलन प्रकाशित हुए हैं। एक उपन्यासिका और एक लघुकथा-संग्रह शीघ्र आ रहे हैं।

चलिए, अंतिम प्रश्न। महात्मा गांधी संस्थान व राही रैंकिंग ने आपके काम को मान्यता दी है। आपको करीब से जानता हूँ, इसलिए कुरेद सकता हूँ। क्या आप प्रचार-प्रसार की दुनिया में ठगा हुआ महसूस करते हैं...

शाकाहारी हूँ, धोखा तो क्या, अंडा भी नहीं खाता। इसलिए ठगा हुआ तो नहीं, लेकिन अजनबी अवश्य महसूस करता हूँ। मैं हिंदी साहित्यिक परिदृश्य के जितना निकट आता गया, मुझे उतना ही यह समझ आता गया कि मैं यहाँ मिसफ़िट हूँ। खुशी है कि महात्मा गांधी संस्थान व राही रैंकिंग ने अपने मूल्यों को बनाए रखा है। लेकिन मेरी चिंता खुद से ज्यादा हिंदी की चिंता है। कुल मिलाकर किसी भी भाषा-परिवार से जिस परिपक्वता व ईमानदारी की आशा होनी चाहिए, उससे हम हिंदीवाले अभी बहुत दूर हैं। हिंदी के प्रति हीन-भावना रखने वाले लोग हिंदी को गौरवान्वित नहीं कर सकते। ऐसे लोग खुद को ही रेवड़ी बाँट सकते हैं और वह काम बखूबी हो रहा है। अंग्रेज़ी की कहावत है, 'मिडियॉक्रिटी ब्रीड्स मिडियॉक्रिटी'। मठाधीश सक्षम साहित्यकारों से भयभीत हैं। सो, अपने स्वार्थ के लिए हिंदी का अहित किया जा रहा है। बड़ी पत्रिकाएँ स्तरहीन दिखती हैं। बीबीसी हिंदी की साइट ही देख लीजिए, लगता है कुछ भी मौलिक नहीं, अंग्रेज़ी और उर्दू राय और समाचारों का अनुवाद मात्र करते हैं, उतने में भी वर्तनी और मंतव्य से लेकर स्टाइलशीट तक, हर प्रकार की विसंगति मिल जाएगी। गीतांजलि श्री को अंतरराष्ट्रीय और दीपक शर्मा को राष्ट्रीय पहचान मिलने के बाद उन्हें पहचान मिली, लेकिन उससे पहले उनका विश्वस्तरीय लेखन हिंदी में उपेक्षित ही रहा। लेखक अपने-अपने गुटों में प्रशंसा और पुरस्कारों के लेन-देन से खुश हैं। शोर-शराबा बहुत है, लेकिन सर्वोत्तम लेखन की उत्कंठा, वह पिपासा दिखाई नहीं देती। हिंदी के परचमबरदारों में मौलिक सोच का अभाव तो है ही, वे अंग्रेज़ी की शक्ति के कारणों का विश्लेषण भी नहीं करना चाहते। हिंदी के नाम पर चल रही संस्थाओं को समर्पित व्यक्तित्वों की आवश्यकता है।

आपके काम और व्यक्तित्व के बारे में इस बेबाक बातचीत के लिए आपका बहुत आभार अनुराग जी।

dharmtoronto@gmail.com

फ़िजी की हिंदी सेविका - श्रीमती सुकलेश बली से साक्षात्कार

सुभाषिनी लता कुमार
फ़िजी

श्रीमती सुकलेश बली का जन्म भारत में हुआ और डॉ. राजेन्द्र बली से शादी करके, सन् 1973 में वे फ़िजी में आ बसीं। यहाँ वे हिंदी भाषा की अग्रणी महिला शिक्षिकाओं में से एक हैं। उनके मार्गदर्शन में यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़िजी में स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी की शिक्षा शुरू हुई। वे सवेनी लौटोका में रहती हैं। उनका हिंदी-शिक्षण और वेद-प्रचार का अनुभव बहुत व्यापक है। उन्होंने अपने जीवन के 42 साल हिंदी-शिक्षण में लगा दिए। फ़िजी में उन्हें कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है, जैसे 'फ़िजी समिति पुरस्कार', भारतीय संस्कृति संवर्धन परिषद् द्वारा 'आर्य रत्न', हिंदी परिषद् फ़िजी द्वारा 'लिविंग लेजेंड अवॉर्ड' (Living Legend Award) आदि। 'ये मेरा फ़िजी', 'ए देश के नवजवानो!', 'फ़िजी दिवस' आदि उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। अवकाश प्राप्त करने के बाद वे अपना समय वैदिक शिक्षण में व्यतीत कर रही हैं।

आप हमें अपने बचपन और प्रारंभिक शिक्षा के बारे में कुछ बताइए।

मेरा जन्म 1 अगस्त, 1943 को जालंधर, पंजाब में हुआ। वह भारत-पाकिस्तान के विभाजन का ऐतिहासिक काल था। मेरा जन्म एक शरणार्थी शिविर में हुआ था। मेरा परिवार लाहौर से विस्थापित होकर आया था। फिर वहाँ से हम मुंबई आ गए। मेरी प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा दयानन्द बालिका विद्यालय में हुई। मुझे बचपन से यज्ञ और मंत्रोच्चारण करना अत्यंत प्रिय था और इसके साथ-साथ हिंदी भाषा और साहित्य के प्रति मेरी रुचि थी। हमारे घर में 'चंदा मामा' साप्ताहिक पत्रिका का आना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त 'नवनीत', 'सरीता', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' आदि पत्रिकाएँ हमारे घर में आती थीं। इन्हें पढ़ने के लिए मैं और मेरी भाभी लड़ाई भी करती थीं कि पहले कौन पढ़ेगा। हिंदी के साथ-साथ 11वीं कक्षा तक मैंने संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की, जो वेद के मंत्रोच्चारण में सहायक सिद्ध हुईं। 11वीं के बाद, मैं मुंबई विश्वविद्यालय गई, जहाँ मैंने इतिहास और हिंदी विषयों में बी.ए. किया। इतिहास में मास्टर्स किया। इसके साथ ही हिंदी की अलग परीक्षाएँ देती रहीं, जैसे साहित्य रत्न।

कृपया आप हमें अपने कार्य-क्षेत्र के विषय में बताइए।

1971 से 1973 तक मैंने भारत में उच्च विद्यालय में अध्यापन किया। शादी के बाद जून 1973 में मैं फ़िजी आ गई। जनवरी 1974 से मैंने डी.ए.वी. गर्ल्स, डी.ए.वी. बोइस और भवानी दयाल स्कूल में अंशकालिक शिक्षिका के रूप में हिंदी पढ़ाना आरंभ किया। सूवा के इन विद्यालयों में पढ़ाने के बाद, अपने पति डॉ. रजेन्द्र बली के ट्रांसफ़र होने के कारण 'बा' शहर आ गई। 1975 से मैंने डी.ए.वी. कॉलिज 'बा' में पढ़ाना आरंभ किया और सन् 1975 से लेकर 1995 तक डी.ए.वी. कॉलिज 'बा' में हिंदी विषय पढ़ाती थी। फिर सन् 1996 में मैं पंडित विष्णु देव मेमोरियल कॉलिज, सवेनी लौटोका आ गई। मुझे सूवा जाना पड़ा, जहाँ मैंने आर्य प्रतिनिधि सभा के स्कूलों में पढ़ाया। 2003 से 2009 तक मैंने सूवा में डी.ए.वी. गर्ल्स कॉलिज में पढ़ाया। इस तरह मुझे कई माध्यमिक पाठशालाओं में हिंदी पढ़ाने का अवसर प्राप्त हुआ। इस बीच मैं यूनिवर्सिटी ऑफ़ द साउथ पैसिफ़िक, सूवा में अंशकालिक हिंदी अध्यापिका के रूप में कार्यरत हुई, जहाँ मैं 100 स्तर और 200 स्तर के फ़ाउंडेशन कोर्स पढ़ाती थी। 2009 में 60 वर्ष की आयु में मैंने अवकाश ग्रहण कर लिया। इसके बाद सन् 2008 में मैंने यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़िजी में हिंदी विभाग की अध्यक्षता सँभाली और हिंदी प्राध्यापिका के रूप में काम किया।

फ़िजी में 2016 से पहले स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी की पढ़ाई उपलब्ध नहीं थी, लेकिन आपने हिंदी में स्नातकोत्तर शिक्षा प्रदान करवाने के लिए काफ़ी काम किया है। इस विषय में हमसे कुछ साझा कीजिए।

हिंदी में स्नातक होने के बाद मेरे छात्र स्नातकोत्तर हिंदी

शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक थे, लेकिन फ़िजी में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी और सभी छात्र अपना घर-बार छोड़कर भारत पढ़ने नहीं जा सकते थे। इसलिए बहुत सोच-विचारकर मैंने वर्ष 2014 में स्नातकोत्तर (हिंदी) के पाठ्यक्रम पर काम करना आरंभ किया। मैंने यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़िजी में प्रथम बार फ़िजी में हिंदी में स्नातकोत्तर कोर्स उपलब्ध कराया। उस समय कम छात्र थे, फिर धीरे-धीरे संख्या बीस-बाइस छात्र तक पहुँची।

अपने साहित्य प्रेरणा के बारे में हमें कुछ बताइए।

छात्रों पर अपने गुरु, साहित्यिक परिवेश, पारिवारिक वातावरण और मित्रों का काफ़ी प्रभाव पड़ता है। मुझ पर भी मेरे गुरुओं का प्रभाव रहा। कवि नीरज से तो मैंने बैठकर कविताएँ सुनी हैं। बचपन से ही मुझे पढ़ने का बड़ा शौक था। मुझे नहीं लगता कि मैंने प्रेमचंद, अमरीता प्रीतम, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय आदि का कोई भी उपन्यास छोड़ा है। लेखन में मेरी विशेष रुचि कविताओं में रही है। मैंने कहानी कम लिखी है। कहानियाँ लिखकर इधर-उधर रख देती हूँ और भूल जाती हूँ। हाँ, गणित में मैं बहुत कमज़ोर थी। घर पर जब मैं हिंदी की पुस्तक लेकर बैठती, तब मेरे भैया देख लेते और मुझे बहुत डाँट पड़ती। संभवतः मेरे पिछले जन्म के कुछ संस्कार होंगे, जिस कारण मुझे हिंदी और संस्कृत में इतनी दिलचस्पी है।

क्या आपने कभी सोचा था कि आपको भारत से इतनी दूर फ़िजी आना पड़ेगा?

मैंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि मैं फ़िजी आऊँगी। मेरी दिलचस्पी यूरोप जाने की थी। मैं इंग्लैंड जाना चाहती थी, जहाँ मेरी बहन रहती थी। इतिहास के पाठ्यक्रम में 'राष्ट्र-मंडल देश' नामक एक विषय था, जिसमें आखिरी में फ़िजी देश का विषय आता था। लेकिन उसे मैं कभी नहीं पढ़ती थी। यह तो भाग्य का खेल है। डॉ. साहब से विवाह हुआ और मैं यहाँ आ गई। ईश्वर ने लिखकर रखा था कि यहाँ आना है, हिंदी के लिए कार्य करना है और मातृभाषा की सेवा करनी है।

आपने हिंदी में कई कविताएँ लिखी हैं। उसमें से आपकी सबसे प्रिय रचना कौन-सी रही है?

मुझे अपनी रचना 'ये मेरा फ़िजी' अच्छी लगती है। यह कविता फ़िजी पर आधारित है, जिसके वाक्य इस प्रकार हैं -

''ये दुनिया इक कर्मक्षेत्र, इक कर्मक्षेत्र है,
जिसमें इक नन्हा-सा देश, नन्हा-सा देश है,
ये मेरा फ़िजी, प्यारा-सा फ़िजी।
फ़िजी प्रशान्त का स्वर्ग कहलाता,
रंग-रंग के फूल खिलाता।
सबको मिलकर रहना सिखाता,
विभिन्न जाति और धर्म मिलाता।
ये मेरा फ़िजी, प्यारा-सा फ़िजी...''

1997 में भारत के 50वें स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर गिरमिट सेंटर में आयोजित कार्यक्रम में फ़िजी और भारत को ध्यान में रखकर मैंने यह कविता लिखी थी। मैं फ़िजी और भारत से प्यार करती हूँ। मेरी दूसरी कविता – 'आ के जाता रहा, जा के आता रहा...' - ये दोनों कविताएँ मेरे दिल के अत्यंत निकट हैं।

आप आगे क्या लिखने के बारे में सोच रही हैं?

एक तो मेरा विचार है अपनी आत्मकथा लिखने का, जिसकी शुरुआत हो चुकी है। इसमें से 'भाग एक' लिख लिया है। दूसरी लेखन-योजना मेरे वेद-प्रचार का संकलन है। मैं रेडियो फ़िजी पर लगभग तीस वर्षों तक रेडियो कार्यक्रम देती आ रही हूँ और अपने वेद-प्रचार के प्रवचनों की एक पुस्तक बनाना चाहती हूँ। इस पुस्तक में तीन भाग होंगे - भाग एक - वेद-प्रचार, भाग दो - सांस्कृतिक कार्यक्रम और भाग तीन - भाषण-लेखन। मैंने विद्यार्थियों के लिए भाषण लिखे थे, जिन्हें मैं एक पुस्तक का आकार देना चाहूँगी। बस ईश्वर से यही प्रार्थना है कि मेरी योजनाएँ सफल हो जाएँ।

हमारी भी कामना है कि आपका यह काम शीघ्र ही पूरा हो जाए। क्या पाठकों के लिए आपका कोई संदेश है?

पाठकों को मैं कहना चाहूँगी कि हिंदी को लेकर आप घबराइए नहीं। आप जैसे फ़िल्में देखते हैं और गाने सुनते हैं, वैसे ही हिंदी को अपने दिलों में उतारकर देखिए।

शिक्षकों के लिए, मेरा संदेश है कि दिल से पढ़ाइए, ऐसा न सोचें कि पढ़ाना सिर्फ़ मेरा जॉब है, कोई सीखे या न सीखे, मेरा क्या जाता है।

छात्रों से मैं कहना चाहती हूँ कि हिंदी को अपने दिल में उतारें। गलतियों से न डरें। गलतियाँ सबसे होती हैं और इन्हीं से व्यक्ति सीखता है। न तो शिक्षकों को बच्चों को गलतियों के कारण निराश करना चाहिए और न ही बच्चों को स्वयं निराश होना चाहिए। शिक्षकों का काम है कि पाठ को दिलचस्प बनाएँ, छोटी-छोटी कहानियाँ आप स्वयं पढ़ें और कक्षा में बच्चों को कहानियों के माध्यम से प्रोत्साहित करें। सरल भाषा का प्रयोग करें, कोई बात नहीं यदि उसमें फ़िजी हिंदी के कुछ शब्द आ जाएँ। हिंदी कक्षा को इतना दिलचस्प बनाएँ कि बच्चों की नज़रें आप से न हटें और न आपकी नज़रें उनसे हटें। प्यार-मुहब्बत से दुनिया जीती जा सकती है। आप खुद हिंदी से प्रेम करें और बच्चों में भी हिंदी के प्रति प्रेम बढ़ाएँ।

आपके समय और बहुमूल्य विचारों के लिए धन्यवाद। यह सौभाग्य की बात है कि आप जैसी प्रतिभासंपन्न शिक्षिका हमारी गुरु माता रही हैं।

subashni.kumar@fnu.ac.fj

विमर्शों की संवेदनाओं को व्यक्त करती रमेश कुरे की 'जनमोर्चा तथा अन्य कहानियाँ'

रमा नवले,
नांदेड़, महाराष्ट्र राज्य, भारत
उमेश दत्त तिवारी,
भदोही, उत्तर प्रदेश, भारत

मराठवाड़ा के अध्ययनशील प्राध्यापक एवं सृजनधर्मी रचनाकार तथा कई पुरस्कारों से नवाज़े गए प्रो. रमेश कुरे का पहला कहानी-संग्रह 'जनमोर्चा तथा अन्य कहानियाँ' 2021 में, यश प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। वर्तमान समय में विविध विमर्शों पर बहस हो रही है। ऐसे समय में यह कहानी-संग्रह इन विमर्शों की संवेदनाओं को लेकर आता है। इन कहानियों में हाशिये के समाज की पीड़ा कम, पर उनका आत्मविश्वास अधिक है। ये कहानियाँ हाशिये के समाज का रोना लेकर नहीं आती, बल्कि उनके संघर्ष की जीवटता और विजय का उल्लास लेकर आती है। इन कहानियों में निराशा के स्वर कहीं भी नहीं हैं, इसके विपरीत परिस्थितियों से लड़ने, उसे मात देने का साहस है। दूसरी बात, एक बिलकुल नए विषय - आरक्षण पर लिखी गयी उनकी कहानियाँ विषय की ताज़गी से भरपूर है। उनकी कई कहानियाँ आरक्षण और उसके परिणाम तथा इसे लेकर सवर्णों की मानसिकता को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती है। साधारणतया आज़ादी के पचास वर्ष के बाद से लेकर अमृत महोत्सव वर्ष तक के अद्यतन कालखंड की स्थितियों पर लिखी गयी ये कहानियाँ एक ओर इस कालखंड के हाशिये के समाज के संघर्ष को उभारती है, तो दूसरी ओर हिंदी कहानी में एक नए विषय के साथ पदार्पण करती है।

यह सर्वविदित है कि विमर्श के केंद्र में हाशिये का समाज होता है। विमर्श जाति, वर्ण, वंश, लिंग, ज़मीन, संख्या, अपाहिजत्व के आधार पर उपेक्षित समाज के सुख-दुख की बात करते हैं। उन पर बहस करते हैं, उनके अस्तित्व और अस्मिता को जगाते हैं, उनके मानवाधिकार के लिए संघर्ष कर उन्हें मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। किस वर्ण, जाति, वंश में जन्म ले, यह मनुष्य के हाथ में नहीं है। कौन-सा लिंग धारण करे, इसके लिए उनकी स्वीकृति नहीं ली जाती है। शरीर की जैविक रचना कैसी हो, इस पर उनका अधिकार नहीं है। इसके बावजूद उन्हें उपेक्षा और अपमान झेलना पड़ता है। वे शोषण के शिकार हो जाते हैं। कुछ को उनकी ज़मीन से बेदखल किया जाता है, तो कुछ पर संख्या के आधार पर वर्चस्व स्थापित करने का प्रयास होता है। अपराधी कोई और होता है और सज़ा कोई और भुगतता है। सारे साधनों से वंचित और गुलामी के लिए मजबूर इस समाज की अत्यंत दयनीय स्थिति देखकर लेखक का मन बेचैन हो उठता है और सहज ही मन में यह प्रश्न उठता है कि इन लोगों के पास जीवन जीने के नैसर्गिक संसाधन क्यों नहीं है? यह बेचैन करनेवाला प्रश्न लेखक के हाथ में कलम थमा देता है। कुरे जी की दृष्टि में लेखन संवेदनशील मन का आत्मविसर्जन है। बेचैन मन का चैन ही सृजन है। फिर वे शुरू करते हैं, एक-एक चरित्र को कागज़ पर उतारना। विशेष बात यह है कि ये चरित्र अपनी लड़ाई खुद लड़ रहे हैं और अपने-अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए कठिन संघर्ष से गुज़र रहे हैं। इस संघर्ष की गाथा यह कहानी संकलन है।

लेखक का उद्देश्य संवैधानिक मूल्यों की स्थापना है। समता स्थापित करना, हर एक को अपनी स्वतंत्रता का उपभोग लेने का अवसर उपलब्ध कराना एवं न्यायपूर्ण व्यवस्था की स्थापना की भित्ति पर हमारा संविधान खड़ा है। इसलिए आज़ादी के बाद भेदभाव पर आधारित, श्रेणीबद्ध समाज में इन मूल्यों की स्थापना के लिए संविधान द्वारा ही आरक्षण की नीति लागू की गयी थी। कुरे जी केवल आरक्षण के समर्थक ही नहीं हैं, बल्कि इस नीति को प्रभावी रूप में लागू होते हुए वे देखना चाहते हैं। यह नीति उनके ज़ेहन में बसी हुई है। तभी वे यह कहानी-संकलन आरक्षण के जनक

छत्रपति शाहू महाराज एवं इसे प्रभावी रूप से अमल में लाने के लिए संविधान का निर्माण करनेवाले डॉ. बाबासाहब आंबेडकर को समर्पित कर देते हैं। लेखक ने जिस नीति का समर्थन किया है, यह नीति समाज में समता स्थापित करने के साथ ही हाशिये के समाज को सत्ता तक पहुँचाकर उनमें भी आदेश देने की शक्ति भर सकती है। साथ ही, ये कहानियाँ आरक्षण नीति की जाँच-पड़ताल भी करती है।

इन कहानियों के लेखन का काल आज़ादी के पचास वर्ष बाद शुरू होता है और अमृत महोत्सव वर्ष तक की यात्रा पार करता है। यह कालखंड संविधान लागू होने के बाद मताधिकार और आरक्षणाधिकार द्वारा उपलब्ध शिक्षा के अवसरों का लाभ उठाकर, अपनी अस्मिता और अस्तित्व के प्रति जागरूक पहली पीढ़ी का राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने का काल है, यह विशेष है। यह बात सही है कि आरक्षण के कारण अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग के लोगों तथा महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन आया है। उन्हें अवसर मिले हैं। यह बात लेखक अनजाने में स्वीकारते हैं। उनकी कहानियाँ इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। क्योंकि वास्तविक जीवन में अपमान और गुलामी की ज़िंदगी जीनेवाले चरित्र उनकी कहानियों में सार्वजनिक सेवाएँ और राजनीति में आते हुए दिखाई देते हैं। यह बात दूसरी है कि इन लोगों को आरक्षण के कारण ये लाभ मिले; पर यथार्थ कुछ और है। वास्तविक सत्ता पारंपरिक रूप से सत्ता पर बैठे सवर्ण व्यक्तियों एवं प्रस्थापितों के हाथ में ही है। लेखक यह सत्ता यथार्थ रूप में इन हाशिये के लोगों के हाथ में सौंपना चाहते हैं, उन्हें अधिकारी बनाना चाहते हैं। अपनी कहानियों के माध्यम से इसकी राह वे खोलना चाहते हैं। यह बात उनके दिमाग में पक्की होने के कारण ये कहानियाँ सपाट और प्रचारात्मक लग सकती है, पर विषय की ताज़गी और अपने उद्देश्य तक इन लोगों को पहुँचाने का लेखक का विश्वास निश्चित ही काबिले तारीफ़ है। क्योंकि बीच की यात्रा जटिल और संघर्षपूर्ण है और यह संघर्ष जीवंत है। यह संघर्ष ही कहानी के पाठकों को बाँधकर रखने में समर्थ हो जाता है। लेखक का यह मानना है कि आज़ादी के बाद आरक्षण की नीति लागू करने के बावजूद भी यह नीति जिनके लिए बनाई गयी थी, उन्हें इसका लाभ करीब पचास वर्ष तक नहीं मिला। आरक्षण लागू करने में आनेवाली बाधाएँ और इसमें की जानेवाली राजनीति तथा आरक्षण को स्वीकारते समय की मानसिकता को लेखक सूक्ष्म रूप से पकड़ पाए हैं। उनका मानना है कि आरक्षण को कभी इस देश ने दिल से स्वीकारा ही नहीं। बरसों से पिछड़ी जातियों को गुलाम बनाकर रखने की, उनका शोषण करने की आदत रही है। उन सत्ताधारियों की मानसिकता इनके आदेश को मानने के लिए कैसे तैयार हो सकती थी? भले ही कानून इनके पक्ष में हो, पर ज़मीनी हकीकत अलग थी। यह हकीकत ये कहानियाँ बयान करती हैं। यदि आरक्षण को स्वीकारा भी जाता, तो इस नीति की धज्जियाँ उड़ाने में प्रस्थापित वर्ग किसी प्रकार की कोई कसर नहीं छोड़ता। एक ओर सालोंसाल राजनीति के पैंतरे आज़माने में माहिर यह वर्ग सत्ता और साधन से संपन्न था, तो दूसरी ओर गुलाम मानसिकता के साधन संपत्ति और सत्ता से विहीन ये हाशिये के लोग थे। संघर्ष कैसे संभव था? संघर्ष बराबरी के लोगों में होता है। यहाँ तो वर्ग ही बेमेल थे। ये कहानियाँ इन बेमेलों की लड़ाई की कहानियाँ हैं। बरसों से गाँव की सत्ता एक ही परिवार के झूले में लोरियाँ सुन रही थी। आरक्षण के कारण इस परिवारवाद पर आँच आ रही थी। बरसों से सत्ता का उपभोग लेनेवाला यह वर्ग राजनीति में माहिर था, उसके पैंतरे वह जानता था। उसी छल-कपट की बुद्धि का उपयोग कर वह एक ओर आरक्षण कानून का पालन कर रहा था, पर दूसरी ओर सत्ता को अपने ही कब्ज़े में रखकर अपना स्वार्थ साध रहा था। आरक्षण नीति के लागू होने के बावजूद प्रस्थापितों द्वारा सत्ता और संसाधनों पर अपना ही अधिकार जमाए रखने की कुटिल वृत्ति को लेखक ने अपनी कहानियों द्वारा उजागर किया है। 'जाति न पूछिए ....' का उच्च वर्णीय और सत्ताधारी पिता का पुत्र मोहन, चमार जाति की गीता से प्रेम विवाह करता है। इसके परिणाम उसे नहीं, गीता को भुगतने पड़ते हैं। गीता के पिता को आत्महत्या के लिए मजबूर किया जाता है और परिवार को गाँव छोड़ने के लिए बाध्य। दूसरी ओर गीता मोहन के परिवार की ओर से केवल नफ़रत झेलती रहती है। पर आरक्षण नीति के कारण गाँव के सरपंच का पद अनुसूचित जाति की महिला के लिए

आरक्षित हो जाता है, तो गीता से केवल और केवल नफ़रत करनेवाले मोहन के पिता गीता को चुनाव में खड़ा कर सत्ता अपने ही हाथ में रखने का खेल रचते हैं।

खुले वर्ग की महिला के लिए आरक्षण की घोषणा के बाद 'कठपुतली का विद्रोह' कहानी की विधवा शारदा को चुनाव लड़ने के लिए प्रवृत्त कर सत्ता हथिया ली जाती है। उसे केवल नाममात्र हस्ताक्षर के लिए रखा जाता है। बरसों से अपने ही घर में झाड़ू-पोंछा और सफ़ाई का काम करनेवाली 'इंदू' कहानी की इंदू को चुनाव में खड़ा कर जिताकर, उसके नाम की सत्ता अपने ही हाथ में रखकर गाँव के लिए उपलब्ध सारी सरकारी सुविधाओं का लाभ वे खुद उठाते हैं। 'बीस साल बाद' कहानी में अन्य पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षित जगह 'बाहर के लोग' होने के नाम पर बीस साल तक खाली रखी जाती है। उनको आतंकित कर न उन्हें चुनाव में खड़ा होने दिया जाता है और न चुनाव लड़ने दिया जाता है। 'जूते की ज़िंदगी' की जना के लाख प्रयास करने के बावजूद भी उनके लिए आबंटित घर दूसरों को ही दिए जाते हैं। सवर्णों द्वारा सारे लाभ खुद उठाते रहने के बावजूद वे आरक्षण की तीखी आलोचना करते रहते हैं; जिससे आरक्षण संबंधी इनकी मानसिकता का ही परिचय मिलता है – "बात तो एकदम सही कही आपने तलाठी साहब। निकम्मों को कितना भी दो, कम ही गिरता है। ये आरक्षण और रियायतें यह सब कुछ बंद कर देनी चाहिए। तब समझ में आएगा हरामखोरों को। टपरी दो ... स्कूल की फ़ीस माफ़ करो ... स्कूल की वर्दी दो, खाना दो, कर्ज़ा माफ़ करो, हर जगह रियायतें दो, और फिर नौकरी में भी आरक्षण दो। सरकार की मति मारी गयी है।" दलितों और स्त्रियों का आदेश देना उन्हें बिलकुल भी सुहाता नहीं है। वे जी तो रहे हैं लोकतंत्र में, पर उनकी मानसिकता अभी भी सामंतवादी ही है।

उपर्युक्त स्थितियों के लिए लेखक केवल इन सत्ताधारियों को ही ज़िम्मेदार नहीं मानते, बल्कि इन स्थितियों के लिए पिछड़े वर्ग में स्थित श्रेणीबद्धता और भेदभाव को ज़िम्मेदार मानते हैं। बरसों से जाति आधारित विषम समाज में जीनेवाला यह वर्ग भी भेदभाव की मानसिकता से ग्रस्त है। उनमें भी ऊँच-नीच का भाव है। महार, मातंग, ढोर, चमार आदि जातियों में विभक्त समाज संगठित नहीं हो पा रहा है। बाबासाहब द्वारा बौद्ध धर्म स्वीकारने के बाद भी इन जातियों को अपने आपको बौद्ध कहने में शर्म आ रही है। हिंदुओं को बौद्ध बनाने में लेखक को संस्कारगत बाधाएँ दिखाई दे रही हैं। जैसे - जयभीम बोलना, नील लगाना, आंबेडकर जी की प्रतिमा घर में लगाना इन पिछड़ी जातियों को नागवार गुज़र रहा था। कर्म-सिद्धांत के ऊपर का इनका विश्वास तोड़ना कठिन था। 'जनमोर्चा' तथा 'क्या हम हिंदू हैं?' कहानियाँ इस बात की ओर संकेत करती है। सत्ताधारी भी इस बात का फ़ायदा उठाकर उनमें फूट डालने का प्रयत्न करते रहते हैं। इसके बावजूद लेखक इस कहानी के माध्यम से इन्हें संगठित कर पाए हैं। वे उनमें प्रस्थापित व्यवस्था से विद्रोह और टकराहट का जुनून भर पाए हैं। आज़ादी के बाद इनकी आज़ादी की एक और लड़ाई की ज़रूरत को वे महसूस करते हैं। यह लड़ाई एक ओर भीतरी अर्थात् अपने-आप से है और दूसरी ओर प्रस्थापितों से है। उनका पक्का विश्वास है कि हाशिये के विकास की कुंजी आरक्षण है। इसलिए आंबेडकर की नीति का विरोध करनेवाले भी आरक्षण की माँग करते हुए दिखते हैं। अत: आरक्षण के अधिकार को लागू करने में किया जानेवाला संघर्ष इन कहानियों की मूल चेतना है। लेखक का स्वर निराशावादी न होकर आशावादी है। इस संकलन की प्रत्येक कहानी संघर्ष के बाद पिछड़ों के विजय हासिल करने से समाप्त होती है। इस कारण कहीं-कहीं कहानी का अंत यथार्थ न लगकर कृत्रिम भी लगता है। लेखक इतना आगे बढ़ चुके हैं कि एक समय आता है, जब वे आरक्षण नहीं चाहते, बल्कि उसके बदले देश के सभी संसाधनों पर समान अधिकार चाहते हैं। यह सोच उनकी प्रौढ़ मानसिकता का ही प्रतीक है और भारत में समता और न्याय की स्थापना के लिए प्रौढ़ होते लोकतंत्र का भी परिचय है।

इस संकलन की कुछ कहानियाँ स्त्री-विमर्श, कुछ किन्नर विमर्श और कुछ विकलांग विमर्श से संबंधित है। स्त्री के प्रति देखने की भोगवादी दृष्टि से ये कहानियाँ बार-बार रूबरू कराती हैं। गरीब और अमीर स्त्रियों के प्रति देखने की समाज की दृष्टि का वे परिचय देते हैं। गरीब आदमी की जवान लड़की पर उन्हें सबकी नज़रें टिकी हुई दिखाई देती

है, जो सच भी है। इसलिए वे कहते हैं – "गरीब के घर जवान लड़की रखना आग से खेलने बराबर है" वह पिछड़े वर्ग की लड़की रातभर नोंचकर फेंक देने के लिए होती है – "छी... जिस जूती को पैरों में पहना जाता है, उसे लौंडे ने अपने सर पर चढ़ा लिया। अरे यह नीच भोगने के लिए होती है, दिल में सजाने के लिए नहीं। इतनी ही जवानी बेकाबू हुई थी, तो रातभर नोंचकर फेंक देता ... नामर्द कहीं का। बरसों से बाप-दादाओं द्वारा जमाया हुआ रौब मिट्टी में मिला दिया। यह नहीं होगा ... मैं उसे हरगिज़ नहीं होने दूँगा।" कभी-कभी वे ऐसी माँ की पीड़ा पाठकों के सामने लेकर आते हैं, जो शिक्षित पति एवं परिवारवालों के दबाव के कारण स्त्री भ्रूण को गिरा देती है। पर जब भ्रूण को गिरा देती है, तो मरनेवाले भ्रूण के साथ वह अंदर-ही-अंदर बिखरती जाती है। परिवार का बाहरी दबाव और भीतर-ही-भीतर मरते भ्रूण की पुकार सुनकर एक माँ का तरसता-तड़पता मन, इससे उत्पन्न बेचैनी; उसकी यह पीड़ा पाठकों को भी यातना देती है। आखिर में वह अपने भ्रूण के साथ न्याय करती है और इस यातना से मुक्ति पाती है। लेकिन इसके लिए उसे पति एवं परिवार से नाता तोड़ देना पड़ता है। यह कहानी स्त्री-जीवन की वास्तविकता को सामने लाती है और यह प्रश्न उपस्थित करती है कि क्या स्त्री को अपनी स्वतंत्रता का उपयोग करने और निर्णय लेने के लिए आज भी घर छोड़ना पड़ेगा? सामंती मानसिता ने स्त्री-सौंदर्य के मापदंड निश्चित किए हैं। उसका सौंदर्य भी दोष है और उसकी कुरूपता भी। क्या कुरूप स्त्री की भावनाएँ नहीं होतीं? केवल काम करना ही उसका नसीब है? 'पथरीली ज़मीन' यह कहानी इन प्रश्नों को उपस्थित करती है। हमारे शरीर की रचना किस प्रकार हो यह प्रकृति का निर्णय है। परंतु प्रकृति से उत्पन्न शारीरिक दोष के लिए किन्नर किस तरह उपेक्षा झेलते हैं, इसका यथार्थ चित्र 'आगे न पीछे' कहानी उपस्थित करती है। अचानक शरीर में शुरू हुए बदलाव के कारण कैसे परिवार की उपेक्षा एवं तकलीफ़ झेलनी पड़ती है, स्कूल का व्यवहार बदल जाता है, लोग चीढ़ाने... मज़ाक उड़ाने लगते हैं, छेड़खानी करने लगते हैं, तब उसकी मानसिक स्थिति का दर्दनाक चित्र वे प्रस्तुत करते हैं। पर लेखक की खूबी इस बर्ताव पर मात करने में और राह बनाने में है।

किसी भी कहानी की सफलता वातावरण की सजीव सृष्टि में है। 'जूते की ज़िंदगी' कहानी में रास्ते पर बैठकर काम करनेवाले चमार का जीवन और उसके काम करने का तरीका जीवंत हो उठा है। 'पथरीली ज़मीन' के प्रारंभ में ही विवाह के घर का उत्साहपूर्ण माहौल पाठकों को विवाह की तैयारी वाले घरों में ले जाता है। इस संकलन की अधिकतर कहानियाँ आरक्षण नीति से उत्पन्न विषैले माहौल से रूबरू कराती है। यह कहानी-संग्रह लेखक का पहला कहानी-संग्रह होने के कारण प्रारंभ में सहज-सरल-सपाट रूप में दिखाई देनेवाली भाषा अंतिम कहानियों में सुंदर बिंबों की सृष्टि करते हुए गहराई नापने लगती है। 'क्या पथरीली ज़मीन के नसीब में बरसात नहीं होती?' – लेखक का यह छोटा-सा वाक्य कुरूपता के कारण अपमान और उपेक्षा झेलनेवाली कुरूप लड़की की तड़प को उजागर करता है। जब इस तड़प को किसी का हल्का-सा स्पर्श उद्वेलित करता है, तो विश्वास-अविश्वास ये शब्द गुम हो जाते हैं और तड़प उत्कंठा में डूब जाती है। इस अनुभूति को व्यक्त करते हुए लेखक कहते हैं - '.. पर जेठ की तपती ज़मीन ने कभी पहली बरसात का नाम पूछा है कि वह पश्चिम से आयी है या पूरब से?' वह तो केवल समर्पण चाहती है, भविष्य के बारे में सोचने की बुद्धि इन भावनाओं के सामने क्षीण हो गयी है - "ढलते हुए सूरज ने अपनी लालिमा से सारी ज़मीन को लालेलाल किया। धरती मानो सुहाग के सिंदूर को पसार कर सूरज के आलिंगन के लिए तैयार बैठी हो। ज़मीन को क्या मालूम कि सूरज उसे छोड़कर जानेवाला है।"

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि विमर्शों की इन कहानियों में एक ओर खुरदरा यथार्थ है, राजनीति की कुरूपता है, पिछड़ों के खिलाफ़ खेले गए षड्यंत्र हैं, हाशिये के लोगों का अधिकारों के लिए संघर्ष है, तो दूसरी ओर कुरूपता के भीतर से झाँकती कोमल भावनाएँ भी हैं। लेखक में असीम संभावनाएँ हैं।

ramanawle@gmail.com

profumeshtiwari@gmail.com

'घुमक्कड़ी - अंग्रेज़ी साहित्य के गलियारे में' पुस्तक समीक्षा

डॉ. कमला नरवरिया
मध्य प्रदेश, भारत

हिंदी साहित्य जगत में मनीषा कुलश्रेष्ठ एक जाना-पहचाना नाम है, जिन्होंने सात उपन्यास, दस कहानी-संग्रह और एक कविता-संग्रह लिखा है। इसके अलावा उन्होंने एक यात्रा-वृत्तांत 'होना अतिथि कैलाश का' भी लिखा है, जो उनकी कैलाश यात्रा से संबंधित है। लेखिका की अद्यतन पुस्तक 'घुमक्कड़ी - अंग्रेज़ी साहित्य के गलियारे में' नाम से भी एक यात्रा-वृत्तांत है। यह अपनी तरह का एक अनूठा यात्रा-वृत्तांत है, जो अंग्रेज़ी साहित्यकारों को जानने का एक अमूल्य दस्तावेज़ भी है।

मनीषा जी का यह यात्रा-वृत्तांत उनके द्वारा की गई ब्रिटेन यात्रा पर आधारित है। यह दो भागों में विभाजित है, जो लेखिका द्वारा दो कालखंडों में की गई यात्राओं का प्रतिफल है। प्रथम भाग में सन् 2019 में लेखिका द्वारा अपने पति अंशु कुलश्रेष्ठ के साथ की गई यात्राओं का ब्यौरा मिलता है और दूसरे भाग में सन् 2023 में लेखिका द्वारा की गई एकल यात्राओं का वृत्तांत है।

सन् 2019 में जब लेखिका अपने पति के साथ यात्रा करती हैं, तब वे लंदन, 221-बी बेकर स्ट्रीट, एडिनबरा और हार्बर सिटी घूमती हैं। इन जगहों पर घूमते हुए लेखिका महसूस करती हैं कि यहाँ पर लेखकों का बहुत सम्मान किया जाता है तथा उनकी यादों को संरक्षित रखने के लिए संग्रहालय स्थापित किए गए हैं, जिनमें उन लेखकों से जुड़े जीवन और साहित्य से संबंधित अभिलेखों, वस्तुओं इत्यादि को सहेजकर रखा गया है।

लेखिका लंदन में चार्ल्स डिकेंस संग्रहालय जाती हैं, जहाँ डिकेन्स के जीवन से जुड़ी वस्तुएँ रखी हुई देखती हैं। उसके बाद वे संसार के प्रसिद्ध पते 221-बी बेकर स्ट्रीट पहुँचती हैं। एडिनबरा के अपने प्रवास के दौरान लेखिका अंशु जी के साथ घूमते हुए इस शहर के लेखकों तथा यहाँ के इतिहास एवं प्लेग की बीमारी में मारे गए लोगों के बारे में जानकर दुखी होती है। साथ ही, उन्हें यह देखकर आश्चर्य होता है कि भारत को पिछड़ा व अंधविश्वासी बताने वाले पश्चिमी देश अपने यहाँ 'घोस्ट टूर' आयोजित कर मुनाफ़ा कमा रहा है।

एडिनबरा के पश्चात् लेखिका अपने पति के साथ हार्बर सिटी की यात्रा करती हैं, जहाँ वे 'किंग्स एंड बाथ्स' स्नानागार देखती हैं। इसका वर्णन वे विस्तार से करती हैं। एक अंश प्रस्तुत है -

"थर्मे स्नानागारों में घुसकर अमीर और रसूखदार महिलाओं के साथ बतियाते हुए नहाना है... भवन के तहखानों में तरह-तरह के गरम-ठंडे पानी के सोते हैं। रोमन स्नान-गृह और एक संग्रहालय, जिसमें एक्का सुलिस मूर्तियाँ हैं।"

पुस्तक के द्वितीय खण्ड में लेखिका की सन् 2019 में जो यूरोप यात्रा अधूरी रह गई थी, वह सन् 2023 में जाकर पूरी होती है।

अंग्रेज़ी लेखकों को जानने के क्रम में वे कीट्स और फ़्रायड के समाधि-स्थल पर पहुँचती हैं तथा वेल्वेट एस्केप में वे विलियम, डोरोथी और सैम्यूअल के निवास-स्थल पर जाती है, जो अब संग्रहालय में तब्दील कर दिया गया है। अपनी यात्रा के दौरान वे यहाँ के मौसम, खान-पान और जीवन-शैली को भी समझने की कोशिश करती हैं।

मनीषा जी यात्रा के अनेक पड़ाव पार करते हुए उस जगह पहुँचती हैं, जहाँ से बीटल्स ने अपनी संगीत यात्रा प्रारम्भ की थी। समूह में यात्रा करना और एकल यात्रा करना एक-दूसरे से भिन्न प्रकार का अनुभव होता है। इस बात को लेखिका बर्कनहेड से बेलफ़ास्ट जाती हुई अनुभव करती हैं। क्रूज़ से सफ़र करने के दौरान टाइटैनिक जहाज़ के बनने और उसके दुखद अंत की कहानी जानकर उनका मन करुणा से भर उठता है। उसके पश्चात् वे वाइल्ड के स्मारक स्थल पर पहुँचती हैं। जहाँ वाइल्ड से जुड़ी वस्तुओं को वे बड़े प्रेम से देखती हैं।

यह पुस्तक अंग्रेज़ी साहित्य के महान् साहित्यकारों के जीवन के उजले पक्ष के साथ उनके जीवन के स्याह पहलुओं

को भी दर्शाती है। मनीषा जी एक सजग लेखिका होने के साथ-साथ स्वयं एक संवेदनशील स्त्री भी हैं। इसीलिए वे इन महान् लेखकों के जीवन से जुड़ी उन स्त्रियों के संघर्ष और पीड़ाओं को भी देख पाती हैं। वे उन स्त्रियों को अपनी पुस्तक में उकेरती हैं, जो इतिहास में कहीं दर्ज नहीं हैं।

वे पुस्तक में एक जगह लिखती हैं -

"लंबा दाम्पत्य और दस बच्चे। हर जगह साथ देने वाली कैथरीन, घर में साहित्यिक दावतें रखने वाली कैथरीन डिकेन्स के प्रति इतनी समर्पित कैथरीन, जिसने किताब भी लिखी तो डिकेन्स के प्रिय खानों की 'व्हाट शाल वी हैव फ़ॉर डिनर' यानी कैथरीन का जीवन उन अठारह लोगों के परिवार में इसी बात के आगे-पीछे घूमता है कि आज रात खाने में क्या बनेगा?... पत्रों से पता चलता है कि डिकेन्स ने अपनी पत्नी को अमान्य ढंग से पागल घोषित कराने की योजना बनाई थी, वे उसे पागलखाने पहुँचाने की कोशिश कर रहे थे।"

लेखकों से जुड़ी वे स्त्रियाँ, जो उनके जीवन में चुपचाप नींव का पत्थर बन गईं। जिनके मौन सहयोग से वे यश शिखर तक पहुँचे। यदि उनका ज़िक्र इस पुस्तक में नहीं किया जाता, तो पुस्तक से कुछ ज़रूरी हिस्सा छूट-सा जाता। इन स्त्रियों के बारे में लिखे बिना शायद यह पुस्तक मुकम्मल नहीं होती। पुस्तक पढ़ते हुए ऐसा लगता है जैसे लेखिका इस बात को भली-भाँति जानती थीं। इसलिए उन्होंने पुस्तक का अंतिम अध्याय 'महानता का अंधियारा नेपथ्य' नाम से इन स्त्रियों के ऊपर लिखा है।

यात्रा के दौरान लेखिका अच्छे अनुभवों के साथ कुछ असुविधाओं का भी सामना करती हैं, जो स्वाभाविक बात है। ब्रिटेन में घूमते हुए वे प्रकृति के उन अनछुए पहलुओं को भी पुस्तक में दर्ज करना नहीं भूलती हैं, जिन्हें हम साधारण समझकर अनदेखा कर देते हैं। साधारण में असाधारण को खोज लेना लेखिका की खूबी है और यही खूबी इस पुस्तक को असाधारण बनाती है। कुल मिलाकर यह पुस्तक अपने नये नज़रिए से अंग्रेज़ी ज़मीन और अंग्रेज़ी साहित्यकारों को जानने का एक अवसर प्रदान करती है।

skamla830@gmail.com

विवाह संस्था के मिथक-भंग और पारिवारिक संबंधों के विघटन की त्रासदी का दस्तावेज़ – 'आधे अधूरे'- मोहन राकेश

डॉ. अरुणा अजितसरिया एम बी ई
यूके

मोहन राकेश का 'आधे अधूरे सिर्फ़ एक नाटक ही नहीं है। यह हमारे समसामयिक समाज, परिवार, व्यक्ति और उनके पारस्परिक संबंधों में आए हुए बदलाव का गम्भीर समाजशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी है। परिवार और विवाह जैसी समय-सिद्ध संस्थाओं का विघटन वर्तमान शताब्दी का एक कटु यथार्थ है, जिसे मोहन राकेश ने एक मध्यवर्गीय परिवार के परिवेश में संवेदनशील रूप से चित्रित किया है।

'आधे अधूरे' नाटक आज के जीवन के एक गहन अनुभव-खंड को मूर्त करता है। यह नाटक मानवीय संतोष के अधूरेपन का रेखांकन है। नाटक के पात्र – सावित्री, महेंद्रनाथ, बड़ी बेटी बिन्नी, छोटी बेटी किन्नी और अशोक सभी मानवीय दुर्बलताओं से पूर्ण और नितांत परिचित लगते हैं। नाटक के प्रारम्भ में सूत्रधार का कथन, 'सड़क के फुटपाथ पर चलते आप अचानक जिस आदमी से टकरा जाते हैं, वह आदमी मैं हूँ', नाटक पर नितांत खरा उतरता है। रंगमंच के निर्देश द्वारा भी नाटककार मध्य-वित्तीय स्तर से ढहकर निम्न-मध्य-वित्तीय स्तर के घर का वातावरण निर्मित करता है, जहाँ 'एक चीज़ का दूसरी चीज़ से रिश्ता लगभग टूट चुका है... गद्दे, परदे, मेज़पोश और पलंगपोश अगर हैं, तो इस तरह घिसे, फटे या सिले हुए कि समझ में नहीं आता कि उनका न होना क्या होने से बेहतर नहीं था?'

'आधे अधूरे' नाटक आधुनिक जीवन के अधूरेपन जैसे जटिल और संवेदनशील विषय को पारिवारिक संबंधों के

विघटन की त्रासदी के माध्यम से अत्यंत सशक्त रूप से प्रस्तुत करने में सक्षम है। इस परिवार का हर सदस्य एक-दूसरे से कटा हुआ है। घर की हवा तक में उस स्थायी तल्खी की गन्ध है, जो महेंद्रनाथ, बड़ी बेटी बिन्नी, अशोक और छोटी बेटी किन्नी के मन में ऊब, घुटन, आक्रोश, विद्रूप, दम घोंटने वाली मनहूसियत के रूप में भरी हुई है। नाटक की भूमिका में पात्रों के परिचय से यह स्पष्ट है। मोहन राकेश के अनुसार, महेंद्रनाथ में, 'ज़िंदगी से अपनी लड़ाई हार चुकने की छटपटाहट' है। महेंद्रनाथ परिवार का मुखिया है, वह कभी एक सफल और कर्मठ कारोबारी रहा होगा, जिसकी आय से घर में खुशहाली थी। पर वर्षों की बेरोज़गारी और अकर्मण्यता के कारण अब वह नितांत नकारा हो गया है। नाटक में वह एक हारा हुआ, बिखरा-सा और परिस्थितियों के सामने घुटने टेक देने वाला व्यक्ति है – शारीरिक रूप से क्लांत, मानसिक रूप से उत्साहहीन और आर्थिक रूप से पत्नी की कमाई पर आश्रित! - उसमें न तो आत्मविश्वास है और न ही आत्मसम्मान। वह एक परावलम्बी व्यक्ति है, जिसमें अपने दो पैरों पर खड़ा होने की सामर्थ्य नहीं। बड़ी बेटी में 'संघर्ष का अवसाद' और व्यक्तित्व में 'बिखराव' है। छोटी लड़की के 'भाव, स्वर, चाल हर चीज़ में विद्रोह है' लड़के के 'चेहरे से झलकती है खास तरह की कड़वाहट।' भाई-बहन में परस्पर संवाद केवल अपना आक्रोश और असंतोष व्यक्त करने के लिए होता है। उनमें परस्पर जोड़ने वाले स्नेह-सूत्र का नितांत अभाव है। वे अपने जन्म की परिस्थितिवश भले ही एक परिवार में पैदा हुए हैं, उनमें आपसी सामंजस्य है ही नहीं। उनके आपसी सम्बन्ध का अधूरापन घर को एक सुखी परिवार के रूप में स्थापित करने के मिथक को झुठलाता है।

मोहन राकेश ने पात्रों की मन:स्थिति और संवेदनाओं की टकराहट को तीव्रता से प्रस्तुत किया है। वे सभी अतृप्त, असंतुष्ट, कुंठित, क्रुद्ध और आतंकित हैं। इस अभिशप्त परिवार का हर एक सदस्य एक-दूसरे से कटा हुआ है, घर की त्रासदायक हवा से वे अपने और एक दूसरे के लिए ज़हरीले हो रहे हैं।

सावित्री के चरित्र में आधुनिक मध्यवर्गीय नारी के जीवन की विडम्बना के दर्शन होते हैं। नाटक में सावित्री की चार भूमिकाएँ हैं। वह एक स्त्री, पत्नी, माँ और प्रेमिका है। वह इन चारों भूमिकाओं में सामंजस्य नहीं बैठा पाती है। फलत: वह किसी भी भूमिका का निर्वाह सफलतापूर्वक नहीं कर पाती है। परिवार में आर्थिक समस्याओं एवं पारस्परिक सामंजस्य के अभाव से जूझती हुई सावित्री ना तो सफल पत्नी बन पाई, ना ही सफल प्रेमिका! एक सफल माँ तो वह है ही नहीं। गृहस्थी के आर्थिक उत्तरदायित्व को अकेले सँभालने के संघर्ष में उलझी हुई सावित्री स्त्रीत्व के नैसर्गिक गुणों - ममता, कोमलता, मधुरता आदि को कहीं खो बैठी है। सावित्री में सबसे बड़ी कमी यह है कि वह स्वयं अधूरी स्त्री होकर भी एक संपूर्ण पुरुष की तलाश में है। पति महेंद्रनाथ की अकर्मण्यता से तिक्त होने के परिणामस्वरूप उसके प्रति उसका व्यवहार तिरस्कार और कटुता भरा है, जिसे वह छिपाने का प्रयत्न तक नहीं करती है। उसके संवाद उसकी हताशा और खीज ज़ाहिर करते हैं। घर आने पर उसे घर की स्थिति, 'रोज़ आने पर पचास चीज़ें यहाँ-वहाँ बिखरी मिलती हैं', से शिकायत, जो कि असल में जगमोहन से ही है, व्यक्त होती है। पति-पत्नी के सम्बन्धों में गहरी दरार उत्पन्न करके एक ऐसी दमघोटू स्थिति का वातावरण बन जाता है, जिससे पूरा परिवार पीड़ित है। मोहन राकेश ने नाटक में इसका मनोवैज्ञानिक चित्रण अत्यंत सजीवता और तीव्रता के साथ किया है। सावित्री एक सफल प्रेमिका बनने में भी असमर्थ है। सिंघानिया के आने पर वह अपने बेटे के लिए नौकरी की समस्या की ही चिंता करती है। सावित्री में सबसे बड़ी कमी यह है कि वह स्वयं अधूरी स्त्री होकर भी पूरे पुरुष की तलाश में भटकती है। उसके जीवन की त्रासद स्थिति को मोहन राकेश ने अत्यंत सक्षम शैली में प्रामाणिकता प्रदान की है। इस परिवार के हर सदस्य की विडम्बना असंतुष्ट और एक दूसरे से कटे रहना है। अपनी संतान के लिए सावित्री एक आदर्श माँ नहीं बन पाई। महेंद्रनाथ की बेकारी की हालत में घर और बाहर का बोझ सँभालते हुए सावित्री अत्यंत कटु हो गई और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए पर पुरुषों का सहारा चाहती है। सावित्री स्वयं एक ऐसी स्त्री है, जो सब कुछ पाने की अभिलाषा में घर और बाहर में से किसी एक को भी पूरी तरह से नहीं सँभाल पाती। सच तो यह है कि

जो लोग ज़िंदगी से बहुत कुछ चाहते हैं, उनकी तृप्ति अधूरी ही रहती है। उसके असंतोष की प्रतिक्रिया पूरे परिवार पर प्रतिबिम्बित है। नाटक के अंत में जुनेजा सावित्री की पूर्ण पुरुष की असंभव तलाश का स्पष्टीकरण करता है, 'महेंद्र की जगह कोई जुनेजा, कोई शिवजीत, या कोई जगमोहन होता तुम्हारी ज़िंदगी में, तो साल-दो-साल बाद तुम यही महसूस करती कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है - कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना। वह उतना-कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस किसी के साथ भी ज़िंदगी शुरू करती, तुम हमेशा इतनी ही खाली, इतनी ही बेचैन रहती।' जो लोग जीवन से बहुत कुछ अपेक्षा रखते हैं, उनकी तृप्ति अधूरी ही रहती है।

सभी पात्रों के माध्यम से मोहन राकेश ने मानवीय संतोष के अधूरेपन को रेखांकित किया है। बड़ी लड़की बिन्नी अपनी माँ के पूर्व प्रेमी मनोज रूपी हमदर्द को पाते ही घर से भाग गई। मनोज के साथ विवाह करके भी उसके असंतोष ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। अधूरेपन और असंतोष की बेचैनी घर में नहीं बल्कि स्वयं उसके मन में है, जिससे छुटकारा पाना संभव नहीं। और असंतोष का कारण मनोज का कोई व्यवहार या चारित्रिक दोष नहीं, 'वजह सिर्फ़ वह हवा है, जो हम दोनों के बीच से गुज़रती है।' उसको लगता है कि 'छोटी-छोटी बातें अड़चन नहीं होतीं, मगर अड़चन बन जाती हैं। एक गुबार-सा है, जो मेरे भीतर भरा रहता है और मैं इंतज़ार में होती हूँ कि कब कोई बहाना मिले, जिससे उसे बाहर निकाल सकूँ।' उसकी इस अड़चन के पीछे उसके परिवार की विषाक्त हवा है, जिससे वह छुटकारा पाने में असमर्थ है। मनोज को इसका एहसास है कि, 'मैं इस घर से अपने अंदर कुछ ऐसी चीज़ लेकर गई हूँ, जो किसी भी स्थिति में मुझे स्वाभाविक नहीं रहने देतीं।' उसकी बात की सच्चाई से बिन्नी की कड़वाहट और बढ़ जाती है और उसे नकारने की असमर्थता में उसके भीतर प्रतिशोध की भावना जागती है। वह चाहती है कि 'कुछ ऐसा कर डालूँ, जिससे उसके मन को कड़ी-से-कड़ी चोट पहुँचा सकूँ।' पर जब कुछ नहीं कर पाती तो मायके चली आती है, फिर एक बार खोजने की कोशिश करने कि कौन सी मनहूस चीज़ है इस घर में, जिसे लेकर बार-बार उसे हीन किया जाता है।

लड़का, अशोक बेकार और दिशाहीन है। नौकरी की तलाश करने के बजाय वह पत्रिकाओं से अभिनेत्रियों की रंगीन तस्वीरें काटता हुआ इस इंतज़ार में है जब वह भी यहाँ से भाग सकेगा। अपने पिता के लिए उसके मन में करुणा है, मन-ही-मन उसे अपने पिता के बेचारेपन में अपना भविष्य दिखलाई देता है, और माँ के लिए केवल आक्रोश। वह बड़ी बहन के मनोज के प्रति प्रेम को केवल घर से निकलने का ज़रिया भर मानता है। क्योंकि प्रेम जैसी उदात्त भावना का उसके मन में अस्तित्व ही नहीं। अपने भविष्य के लिए उसके पास ना कोई योग्यता है ना आकांक्षा। माँ के पैसेवाले मित्रों का घर पर आना उसे नागवार लगता है, 'क्योंकि उनके आने से हम जितने छोटे हैं, उससे और छोटे हो जाते हैं।'

छोटी लड़की किन्नी अपना बचपन न जी पाने को अभिशप्त है। वह अपने माता, पिता, भाई, बहन – किसी के भी प्रति लगाव नहीं अनुभव करती है। उसके मन में सबके प्रति एक कड़वाहट और आक्रोश है। अपनी छोटी-छोटी आवश्यकताओं के पूरा ना होने पर 'कैंची की तरह ज़ुबान चलाती है।' यौन सम्बन्धों में दिलचस्पी लेकर वह उम्र से पहले ही 'बड़ी' हो रही है। मोहन राकेश ने 'आधे-अधूरे' नाटक में युवा पीढ़ी के मोह-भंग, दिशाहीनता और अधूरेपन की सामाजिक समस्याओं का पात्रों की आंतरिक संवेदना के विश्लेषण द्वारा अत्यंत सफलता से चित्रण किया है।

महेंद्रनाथ सावित्री से मन-ही-मन प्रेम करता है, किंतु उसे जताना नहीं जानता। सावित्री भी उसे कभी चाहती रही होगी, पर विवाह के बाद उसके निकट आने पर उसके प्रति वितृष्णा का अनुभव करने लगी, क्योंकि वह उसकी अपेक्षाओं को पूरा करने में असमर्थ है। पति-पत्नी जब भी आमने-सामने पड़ते हैं, बात चाहे कहीं से भी शुरू हो, तानेबाज़ी, बहस, कटुता, आरोप-प्रत्यारोप पर जाकर अटक जाती है। पति-पत्नी के आपसी सम्बंधों में कटुता का एक बड़ा कारण परिवार की बिगड़ी हुई आर्थिक परिस्थिति है। पर वह एकमात्र कारण नहीं है। वस्तुत: सावित्री को अपने लिए जिस

संपूर्ण पुरुष की आकांक्षा है, उसके समक्ष महेंद्रनाथ अपने को बौना पाता है। सावित्री की कमाई पर निर्भर महेंद्रनाथ बेकार, उद्देश्यहीन और दयनीय, अकर्मण्य और ज़िंदगी से हारा हुआ है। किसी समय वह गृहस्थी का कर्ता-धर्ता रहा होगा, पर परिस्थितियों ने उसे कहीं का नहीं रखा। अब वह केवल, 'एक ठप्पा, एक रबड़ का टुकड़ा' मात्र बनकर रह गया है। सावित्री के पुरुष-मित्रों के बारे में ताने देकर अपने मन की भड़ास भले ही निकाले, लेकिन उनका सामना करने का साहस नहीं जुटा पाता और इसलिए उनके आने की खबर सुनकर अपना बचा-खुचा आत्मसम्मान बचाने के लिए घर से बाहर चला जाता है। लेकिन घर से बाहर जाकर भी उसे चैन नहीं मिलता। हारकर घर लौटना उसकी विवशता है। नाटक के अंत में भी थका हारा, बीमार और बेसहारा महेंद्रनाथ घर लौटता है, क्योंकि यही उसकी नियति है।

राकेश ने 'आधे अधूरे' में बाह्य घटनाओं के संघर्ष के बजाय पात्रों की मन:स्थितियों और संवेदनाओं की टकराहट को आंतरिक विस्फ़ोट के रूप में तीव्रता और सघनता से प्रस्तुत किया है। इसके चरित्र मध्य वर्ग के सामान्य व्यक्ति हैं – महत्वाकांक्षी, अतृप्त, असंतुष्ट, कुंठित, आतंकित, क्रुद्ध और अंतर्द्वंद्वग्रस्त! वे रिश्तों में एक दूसरे से कटे-बंधे और सतत तनाव-ग्रस्त हैं। नाटक के पाँच पुरुष एक ही व्यक्ति के विविध रूप या पहलू हैं, जो मिलकर एक जटिल पुरुष चरित्र की सृष्टि करते हैं। सावित्री की पूर्ण-पुरुष की तलाश, छटपटाहट, लड़ाई और विवशता उसे आज की बहुआयामी स्त्री के करीब लाती है। वह न तो पुराण काल की सती-सावित्री है और न ही अत्याधुनिक और पूरी तरह से स्वच्छंद स्त्री। नाटक का अनुभव क्षेत्र केवल महेंद्रनाथ और सावित्री के परिवार तक ही सीमित नहीं। जुनेजा, जगमोहन और सिंघानिया की परिस्थितियाँ और दुनिया कुछ अलग है, पर सब के सब अपने वर्तमान से असंतुष्ट और किसी काल्पनिक सुख की तलाश में हैं। किन्नी की सहेली, सुरेखा के माँ-बाप के भी विवाहेतर संबंध का संकेत नाटककार ने किया है। मनोज और बिन्नी की परिस्थितियाँ अन्य पात्रों से भिन्न हैं, पर उनकी नियति में एक समानता है – वे अपने वर्तमान से असंतुष्ट संत्रस्त जीवन बिताने के लिए अभिशप्त हैं। नाटक का केंद्रीय भाव परम्परागत सामाजिक संबंधों की जकड़ से संघर्ष करते हुए पात्रों की मनोदशा का चित्रण करना है। संबंध चाहे पिता-पुत्र, पिता-पुत्री, माँ-बेटी, भाई-बहन या पति-पत्नी के हों, सबके बीच एक कटुता भरी और दर्दनाक दूरी है, जिसे वे दूर करने का प्रयास तक नहीं करते। लेखक ने विवाह संस्था के मिथक को नाटक की दो विवाहित स्त्रियों – सावित्री और बिन्नी के माध्यम से तोड़ने का प्रयास किया है। दोनों की परिस्थितियाँ अलग हैं, पर नियति एक समान! दोनों के वैवाहिक जीवन में दरार पड़ी हुई है। सावित्री की शादी वर्षों पूर्व हुई थी, इसलिए दरार भी उतनी ही गहरी है। बिन्नी अपनी पसंद से मनोज से शादी करके भी असंतुष्ट है, उसके मन में एक प्रकार की रिक्तता है, जिसे वह कोई नाम नहीं दे पाती। मनोज भी मन-ही-मन यह अनुभव करता है कि उस घर से वह न जाने क्या लेकर आई है, जो उसके वैवाहिक जीवन में घुन की तरह भीतर ही भीतर खाकर नष्ट कर रहा है। कुल मिलाकर यह नाटक परिवार और विवाह जैसी परंपरागत संस्थाओं, मानवीय जीवन-मूल्यों के अवमूल्यन और महत्वाकांक्षा की अंधी दौड़ में बेसुध व्यक्तियों की आंतरिक विकृतियों को अनावृत करता है।

समसामयिक जीवन की समस्याओं में पति-पत्नी के खण्डित सम्बन्ध, स्त्री की पारम्परिक भूमिका में हुआ परिवर्तन, युवा पीढ़ी की उद्देश्यहीनता (अशोक) और अनुशासनहीनता (छोटी बेटी), पारिवारिक एकाई का विघटन आदि सामाजिक विकृतियाँ वर्तमान समय की ज्वलंत समस्याएँ हैं, जो व्यक्ति और समाज के सामंजस्य को लील रही हैं। इस दृष्टि से 'आधे-अधूरे ' केवल एक नाटक ही नहीं, यह हमारे समाज, परिवार और व्यक्ति और उनके पारस्परिक संबंधों में लगातार आए बदलाव का गंभीर समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी है। विवाह और पारिवारिक इकाई जैसी समय-सिद्ध संस्था के विघटन की त्रासदी वर्तमान समय का एक कड़वा यथार्थ है, जिसको मोहन राकेश ने बाह्य घटनाओं के संघर्ष के बजाय पात्रों की मन:स्थितियों और संवेदनाओं की टकराहट द्वारा तीव्रता से प्रस्तुत किया है। नाटक में मोहन राकेश ने समसामयिक जीवन एवं सम्बन्धों की उथल-पुथल और आधुनिक व्यक्ति की यातनापूर्ण नियति को बाह्य घटनाओं के

संघर्ष के बजाय पात्रों की मन:स्थितियों और संवेदनाओं की टकराहट को अत्यंत सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है।

लेखक के अनुसार आज के समाज में हर व्यक्ति अपने-आप में अधूरा है। सावित्री कहती है, 'सब के सब एक जैसे हैं। मुखौटे सबके अलग-अलग हैं, पर चेहरे सबके एक ही हैं।' उनका खण्डित व्यक्तित्व आज की महत्वाकाक्षिणी स्त्री की अपेक्षाओं की पूर्ति करने में असमर्थ है। कुल मिलाकर यह नाटक परिवार और विवाह जैसी परंपरागत संस्थाओं, मानवीय जीवन-मूल्यों के अवमूल्यन और महत्वाकांक्षा की अंधी दौड़ में बेसुध व्यक्तियों के आंतरिक अधूरेपन को अनावृत करता हुआ अपने शीर्षक को पूरी तरह से सार्थक करता है।

arunaajitsaria@yahoo.co.uk

एक साहित्यिक जासूसी उपन्यास

उषा राजे सक्सेना
यूके

जासूसी उपन्यास और साहित्यिक! ... हा! हा! हा!

बहुत बड़ा विरोधाभास है, परंतु 'निष्प्राण गवाह' को पढ़ने के बाद संभवतः आप मुझसे सहमत होंगे। कादंबरी मेहरा की यह पुस्तक अपवाद है।

ब्रिटिश जासूसी उपन्यासों के लेखक आर्थर कानन डायल और अगाथा क्रिस्टी के उपन्यास ब्रिटेन के हाई-स्कूल और कॉलिज के पाठ्यक्रम में लगे हुए हैं। रहस्य और रोमांच से भरपूर यह जासूसी पुस्तक 'निष्प्राण गवाह' भी उसी स्तर की है। उपन्यास की भाव-भूमि, इसके किरदार, घटनाक्रम और जासूसी करने की ज़बरदस्त टेक्नॉलोजी सब ब्रिटिश परिवेश के हैं। इस जासूसी उपन्यास का कथ्य भी अंग्रेज़ी जासूसी उपन्यासों की तरह खूब अच्छी और कसा हुआ है। हत्या, रहस्य-रोमांच, अपराध, गोपनीयता और रोमांचकारी घटनाक्रम के साथ विश्लेषण की आधुनिक जासूसी टेकनीक तथा भाषा-प्रवाह और किस्सागोई ही पाठक को 'आगे क्या होगा' की जिज्ञासा को हर पल उकसाता हुआ रोमांचित करता है, जैसा कि ऊपर कहा है, 'निष्प्राण गवाह' का प्लॉट, कुछ इस तरह बुना गया है कि पाठक, अंत से पहले हत्या का रहस्य जान तो क्या सूँघ भी नहीं पाता है। उपन्यास की जासूसी भाषा परिष्कृत है और शिल्प सधा हुआ, कलात्मक और प्रभावोत्पादक है।

उपन्यास 'निष्प्राण गवाह' अस्सी और नब्बे के दशक में युवा खूबसूरत लड़कियों के रातों-रात गायब होते जाने की 'अनसॉल्व्ड मिस्ट्री' पर आधारित 95 पृष्ठ का एक अत्यंत रोचक सत्य घटना पर आधारित साहित्यिक जासूसी उपन्यास है। सत्य घटना से मेरा तात्पर्य मात्र इतना ही है कि 1980-90 के दशक में 17-18 वर्ष की कई खूबसूरत कमसिन लड़कियाँ जैसे नीली आँखों वाली सूज़ी लैम्पू, लंबे सुनहरे बालों वाली स्टैसी नोबेल, 'बनी-गर्ल'- ब्लैक डेलिया, जैसी हसीन लड़कियों के गायब हो जाने की रोमांचकारी, रहस्यात्मक घटनाएँ भुलाए नहीं भूलती हैं। उपन्यास 'निष्प्राण गवाह' गायब होती उन मासूम लड़कियों की याद दिलाती हैं, जो आज भी ब्रिटेन की 'अनसॉल्व्ड मर्डर मिस्ट्री' हैं। साहित्यिक से मेरा तात्पर्य पुस्तक की स्तरीय भाषा, कथ्य पर लेखिका की असाधारण पकड़, साथ ही विषय की सिस्टेमैटिक, विधि-विधान के साथ जाँच, गहन पड़ताल के साथ उसका सामाजिक जुड़ाव। निश्चित ही कादंबरी मेहरा ने इस जासूसी कथा-वस्तु का अंत तक बड़े ही प्रभावोत्पादक ढंग से निर्वाह किया है।

जासूसी उपन्यासों और रहस्यात्मक हत्याओं पर लिखी गई कहानियों और उपन्यासों को हिंदी साहित्य-जगत में बड़ी हेय दृष्टि से देखा जाता है। एक तरह से जासूसी उपन्यास हिंदी साहित्य का वर्जित क्षेत्र है। हिंदी के मठाधीश उसे रहस्य और रोमांच का सस्ता साहित्य मानते हैं। आज तक देवकी नंदन खत्री का उपन्यास 'चंद्रकांता संतति' जिसने भारतीय पाठकों को हिंदी सीखने और पढ़ने के लिए उत्प्रेरित किया उसे हिंदी के साहित्य जगत में पूर्णरूप से साहित्य का दर्जा नहीं प्राप्त

हो सका। कादंबरी मेहरा जैसी सूझ-बूझ और बौधिक चेतना रखने वाली एक सफल महिला लेखिका ने यह सब जानते हुए भी यह खतरा क्यों मोल लिया? क्या यह भी एक विचित्र रहस्य नहीं है?

ब्रिटेन में ही नहीं संपूर्ण विश्व में कहीं-न-कहीं रोज़ हत्याएँ होती हैं और अनेक अनसुलझी हत्याएँ प्रायः सबूत न मिल पाने के कारण ठंडे बस्ते में चली जाती हैं। कभी-कभी बरसों बाद कोई प्रमाण मिल जाने पर उनकी फ़ाइल खुलती है। ऐसे में अधिकांश प्रमाण नष्ट हो चुके होते हैं और संबंधित लोगों में से कुछ लोग अल्ला मियाँ को प्यारे हो चुके होते हैं, कुछ विदेश गमन कर गए होते हैं और कुछ नर्सिंग-होम में याददाश्त खोकर मरने की घड़ियाँ गिन रहे होते हैं, किंतु जासूस तो जासूस ही होते हैं। वे बाल में से खाल निकाल लेते हैं। ऐसे ही एक रहस्यमय घटना का उद्‌घाटन होता है, कादंबरी मेहरा के उपन्यास 'निष्प्राण गवाह' में।

निष्प्राण गवाह है मृतक लड़की का कालीन में लिपटा हुआ कंकाल, जो वर्षों पूर्व उसके हत्यारे ने बीच समुंदर में अपने 'लक्ज़री याट' से फेंका था। कालीन में लिपटी मृतक लड़की की देह समुंदर के तूफ़ानी थपेड़े खाती रही और संयोगवश एक दिन ज्वार-भाटा की उत्ताल तरंगों ने उसे उसी कॉटेज के पिछवाड़े सूनसान समुद्र-तट पर लाकर पटक दिया, जहाँ पर उसकी हत्या हुई थी। बरसों-बरस उस लिपटे हुए कालीन पर रेत और खर-पतवार की पर्तें जमती रहीं।

तकरीबन एक-डेढ़ दशक बाद, लंदन के दक्षिणी समुद्र-तट पर बसे, बोर्नमथ शहर के पास उस खस्ताहाल बंद पड़े कॉटेज की किस्मत जगी, जब स्कूल टीचर मार्टिन गिलबर्ट ने उसे खरीदकर अपना रिटायरमेन्ट हाउस बनाने की मंशा से रंग-रोगन आदि कर के ठीक-ठाक किया। मार्टिन ने 21 जून की शाम, ब्रिटेन के मूल बाशिदों केल्टिक जनजाति के पेगन त्यौहार यानी वर्ष का सबसे लम्बा दिन, कॉटेज के गृह-प्रवेश, अपनी प्रेमिका डिनीस का जन्मदिन तथा अपने अवकाश प्राप्ति का उत्सव एक साथ मनाने की सोची।

शाम को 'बारबेक्यू' पार्टी की सारी तैयारी करने के पश्चात् आग जलाने के लिए मार्टिन एक लकड़ी का गट्ठर उठाकर चला आ रहा था कि रास्ते में उसे ठोकर लगी, वह लड़खड़ाकर गिर पड़ा उसे चोट लगी। उसने सोचा जश्न के बीच कहीं उसके मेहमानों को ठोकर ना लगे, अतः उसने फावड़े से उस रेत के टीले को हटाकर उस जगह को समतल करने की कोशिश की, तो वहाँ रेत में दबा हुआ हरे और पीले रंग का 'रोल' किया हुआ कालीन नज़र आया। 'उसे याद आया कि मास्टर बेडरूम में एक कोने में इसी रंगरूप का फूसड अटका हुआ है। मार्टिन ने डंडी के सहारे उसे थोड़ा और फरोला, तो देखा पूरा गलीचा, रोल किया हुआ, दबा पड़ा है।' पृष्ठ- 12-13। इसी बीच उसका पड़ोसी डेविड वहाँ आ गया। दोनों ने मिलकर रेत हटाकर जब कालीन उठाने की कोशिश की, तो कालीन में से झाँकते लम्बे सुनहरे बालों को देखते ही दोनों के मुँह से 'हेल्प-हेल्प' की चीख निकल पड़ी। पल भर में पुलिस की लाल-नीली बत्तियों वाली गाड़ियाँ आईं, कालीन समेत लाश को कब्ज़े में लेकर, कॉटेज को सरकारी ताला लगा समुद्र-तट के उस हिस्से पर लाल फीते की बाड़ लगा दी... आगे इस रहस्यमय, रोमांचकारी 'निष्प्राण गवाह' की गवाही की कथा उपन्यास के पृष्ठों पर अंकित हैं।

उपन्यास 'निष्प्राण गवाह' मात्र 95 पृष्ठ का है। इस छोटे-से जासूसी उपन्यास में लगभग 30-32 किरदार हैं, जो कथानक और विषय-वस्तु के प्रतिपादन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण 'रोल' करते हैं। बीच-बीच में उपन्यास के बुनावट में ब्रिटेन के 8-10 शहरों, कस्बों, समुद्र-तटों के साथ स्पेन के समुद्र-तट और 'जेम्स बॉन्ड- 700' के लक्ज़री यॉट' जैसा खूबसूरत शब्द-चित्र भी अंकित करते हैं। पुस्तक में आए शहरों, नगरों, यूरोपीयन मयखानों, ड्रग-पुशिंग आदि के चित्रात्मक वर्णन पाठकों के लिए मात्र रोचक और पठनीय ही नहीं, बल्कि हिंदी बेल्ट के पाठकों के समाजशास्त्रीय समझ को पुख्ता करने का माध्यम भी बने हैं।

उपन्यास में जगह-जगह बिंबात्मक, प्रभावोत्पादक मुहावरेदार भाषा का प्रयोग है। रहस्य और रोमांच से भरा यह उपन्यास समाजोन्मुख भी है, क्योंकि उपन्यास का ताना-बाना, घटना-चक्र आदि अंग्रेज़ी-साहित्य, गणित की अध्यापिका कादंबरी मेहरा के बेहतरीन कल्पनाशील एवं विश्लेषणात्मक दिमाग की उपज है। 'निष्प्राण गवाह' पढ़ते हुए विशेषकर भारतीय पाठक को ब्रिटेन के आठवें और नौवें

दशक के रहन-सहन, माइग्रेंट समुदाय, उनके संघर्ष, ब्रिटेन की सामाजिकता, ब्रिटेन की यौन प्रवृत्तियाँ यानी परमिस्सिव सोसाइटी, टूटते रिश्ते, श्रम-शोषण, यौन-शोषण, किशोरों की नशाखोरी, ब्रिटेन के निम्न मध्यवर्गीय जीवन, अनिवार्य शिक्षा, एज ऑफ़ कॉन्सेन्ट, ब्रिटेन की बदलती पब संस्कृति, अपराध सेक्स आदि के साथ ब्रिटेन के कॉमन मार्केट के साथ व्यापारिक समझौतों से आई आर्थिक मंदी आदि के अच्छे-खासे प्रामाणिक संदर्भ मिलते हैं, जो लेखिका के साक्षात अनुभवों को प्रतिबिंबित करता है।

वस्तुतः उपरोक्त संदर्भ कादंबरी ने कहानी के कलेवर में सायास किसी चतुर कलाकार की मीनाकारी की तरह बड़ी खूबसूरती से किस्सागोई अंदाज़ में छोटे-छोटे पैराग्राफ़ में पाठक की जिज्ञासा बढ़ाते हुए बड़ी चतुराई से बुने गए हैं। वस्तुतः ये जानकारियाँ उपन्यास की गति और प्रवाह को बोझिल न बनाकर उपन्यास के 'इंट्रिकेट पैटर्न' में तरह-तरह के रंग भरते हुए मनोरंजक और संवेदनशील बनाते हैं। कहानी में आए चरित्रों के अंग्रेज़ी नाम अवश्य ही भारतीय पाठकों को पन्ने पलटने की थोड़ी-सी किलस पैदा कर सकता है, क्योंकि अंग्रेज़ी नामों की ध्वन्यात्मकता अकसर मिलती-जुलती होती है, जैसे स्टीव, स्टुअर्न, स्टुअर्ट, स्टीवेन्सन आदि। लेखिका इस पर ध्यान दे सकती थी, पर हो सकता है यह भी एक जासूसी उपन्यास की माँग हो। वस्तुतः इस कसे हुए छोटे-से उपन्यास का फलक बहुत बड़ा और प्रभावी है।

अंत में कादंबरी ने ब्रिटेन के जासूसी विधि-विधान की गहरी खोज की है। पाठक की दृष्टि जब उपन्यास के शीर्षक पर पड़ती है, तब वह शीर्षक के विरोधाभास से सर्वप्रथम आकर्षित होता है। उपन्यास में कदम-कदम पर रहस्य और रोमांच की नई-नई असरदार आवृत्ति होती है। कहानी के कई किरदार बार-बार संदेह के घेरे में आते हैं, पर फिर थोड़ी ही देर बाद एक अन्य किरदार, जो बिल्कुल निर्दोष-सा लगता है वह निशाने पर आ जाता है। संपूर्ण उपन्यास जासूस, जासूसी, पुलिस, हत्यारों, अंडर वर्ल्ड आदि के दाँव-पेंचों, संसनीखेज़ हत्याओं, रहस्यों, षड्यंत्रों, हथकंडों, मोड़ों और गुंजलकों से निकलते हुए 'निष्प्राण गवाह' की गवाही दर्ज करता है। कादंबरी का यह उपन्यास रामकुमार वर्मा, जेम्स हिल या जिम डेविस जैसे निर्देशक की 'वेल डाइरेक्टेड मिस्ट्री मूवी' की तरह कुर्सी पर बैठे दर्शक को नाखून चबाने या पहलू बदलते हुए मर्डर के राज़ के खुलने का इंतज़ार करने को मजबूर करता है... अंत में सोचती हूँ कि 'निष्प्राण गवाह' की गवाही को राज़ ही रहने देना ही ठीक रहेगा...।इसलिए कि पाठक आगे की कहानी कौतूहल और रोमांच के साथ उपन्यास के पन्नों पर पढ़ें।

'निष्प्राण गवाह' जैसे साहित्यिक जासूसी उपन्यास का अवदान कर, कादंबरी मेहरा ने ब्रिटेन के हिंदी साहित्य को जिस तरह समृद्ध किया है, वह वस्तुतः प्रशंसनीय एवं स्वागत योग्य है। उपन्यास का शीर्षक 'निष्प्राण गवाह' सांकेतिक एवं हर तरह से आकर्षक एवं रहस्यात्मक है। उपन्यास की भाषा चरपरी, मुहावरेदार, समृद्ध, सरस और रोचक है। मुझे पूरी आशा है कि विश्व हिंदी जगत् में कादंबरी मेहरा का रहस्यात्मक, साहित्यिक जासूसी उपन्यास 'निष्प्राण गवाह' अपनी रोचक, चित्रात्मक एवं कथात्मक शैली के कारण लोकप्रिय होगा।

usharajssaxena@gmail,com

विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस
की शोध पत्रिका
2025

पता : इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स 73423, मॉरीशस
Address : Independence Street, Phoenix 73423, Mauritius

फ़ोन / Phone : +230-6600800
ई-मेल / E-mail : info@vishwahindi.com
वेबसाइट / Website : www.vishwahindi.com
डेटाबेस / Database : www.vishwahindidb.com

मुद्रण : स्टार पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, भारत
Print : Star Publications PVT LTD, Bharat
info@starpublic.com & info@hindibook.com

कवर डिज़ाइन : डॉ. प्रकाश झगारू, मॉरीशस
Cover Design : Dr. Prakash Jhugaroo, Mauritius
pjhugaroo@gmail.com